श्रीः

श्रीमते रामानुजाय नमः

आचार्य हृदयम्

अळगिया मनवाल पेरुमाल नायनार

मनवाळ मामुनि (वरवरमुनि स्वामी) के तमिल व्याख्यान्

का स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य, अहमदावाद के संस्कृत अनुवाद पर आधारित



आळवार तीर्थ, तिरुपति

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

श्रीः

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्रीकौण्डिन्यगोत्र सरसीरुहबालभानुम् श्रीरङ्गदेशिकपदाब्जरसैकभृङ्म्।

श्रीराजेन्द्रसूरिचरणाश्रितमप्रमेयम् श्रीमत्पराङ्कुशगुरुं शरणं प्रपद्ये।।



पिता श्रीराघवा चारी

माता सकलमति देवी

श्रीः



श्रीमते रामानुजाय नमः

आचार्य हृदयम्

अळगिया मनवाल पेरुमाल नायनार

मनवाळ मामुनि (वरवरमुनि स्वामी) के तमिल व्याख्यान् का

स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य, अहमदावाद, संस्कृत अनुवाद पर आधारित



आळवार तीर्थ, तिरुपति

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी 2025

AACHAARYA HRUDAYAM

First Edition 2025

Composed by -

Srikrishna Prapannachari, Ph.D.

78 LIC Colony, Chitragupta Nagar, kankarbagh, Lohia Nagar

Patna 800020 (Bihar)

prapnnachari@gmail.com

Printed Copies 500

Contribution Rs 300=00 (postage extra)

Printed at-

RNR Printers & Publishers, 19 Thandavarayan Street,

Triplicane, Chennai – 600005, Tamil Nadu

Author's published Titles:

1-The Crest Jewel: Srimadbhagwat Mahapuran with Mahabharat (English) ISBN 978-81—7525-855-6

2-Thiruppavai (Hindi)

3-Nalaayir Divya Prabandham (Hindi) ISBN 978-93-5067-885-5

4- Divya Charitamrut (Hindi) ISBN 978-93-5174-131-2

5-Divya Granthmaal (collection of sixteen books of Swamy Sri Prankushachaarya ji Maharaj)

6-Divya Kathamruta Srimadbhaagavat Saara ISBN 978-93-5566-642-0 -93-5566-642-0

विषय सूची

दो शब्द

मूल पुस्तक में मणिप्रवाल के 234 चूर्णिका (सूत्र) हैं। तमिल एवं संस्कृत के मिश्रण को मणिप्रवाल कहते हैं। आचार्य हृदयम् एक विलक्षण एवं अपूर्व कृति है। इसके लेखक श्रीरङ्गम् निवासी श्री पिल्लै लोकाचार्य स्वामी (ई.1205-1311) के छोटे भाई अळगिया मनवाल पेरुमाल नायनार (सौम्य जामातृदेव) हैं। इनका जीवनकाल ई. 1207-1309 है। नमपिल्लै के शिष्य वडुक्क तिरुवीथीपिल्लै (श्रीकृष्णपाद स्वामी 1167-1264) इनके पिता थे जो श्रीरङ्गम् के उत्तरवीथी में रहते थे। भाष्यकार श्री रामानुज स्वामी (ई.1017-1137) के समकालीन शिष्य श्री कुरेश स्वामी (कुरत्त आलवान्) के बड़े सुपुत्र श्री पराशर भट्ट (ई.1122-1174) के शिष्य नान्जीयर (श्री वेदान्ति स्वामी) के शिष्य नमपिल्लै (श्री कलिवैरीदास स्वामी) थे।

आचार्य हृदयम् की तमिल में टीका श्री वरवरमुनि स्वामी (मनवाल मामुनि, रम्यजामातृ मुनि, ई. 1370-1443) ने लिखी है। आचार्य हृदयम् के लेखक नायनार ने इसे स्वयं श्री पेट्रार स्वामी को पढ़ाया और इन्होंने इसे श्री आयी स्वामी को पढ़ाया। श्री आयी स्वामी से इसके रहस्य को श्री वरवरमुनि स्वामी ने समझा। उदाहरण स्वरूप- सूत्र 22 के मूलमन्त्र के रहस्य तथा अन्य इसी तरह के रहस्य सूत्रों का ज्ञान इन्होंने श्री आयी स्वामी से ही प्राप्त किया।

बाद में श्री वरवरमुनि स्वामी की टीका का विस्तार श्री अण्णङ्गराचार्य स्वामी, काञ्चीपुरम् ने किया। इन्हीं टीकाओं के आधार पर श्री बी. आर. पुरुषोत्तम नायडु ने तमिल में अतिविस्तृत टीका ई.1965 में प्रकाशित की। ई. 1952 में स्वामी श्री रामप्रपन्नाचार्य, अहमदावाद ने एक संस्कृत टीका प्रकाशित की। डा. जी. दामोदरन्, श्रीवारि विश्वविद्यालय तिरुपति, ने आचार्य हृदयम् पर अंग्रेजी में एक क्रीटीकल स्टडी लिखी जिसे टी.टी.डी (तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्) तिरुपति ने ई.1976 में प्रकाशित किया। ई. 2015 में डा. जे. रंगास्वामी ने अपने डीलिट् उपाधि के शोधग्रन्थ के रूप में आचार्य हृदयम् का अंग्रेजी में दो खण्डों में विस्तृत व्याख्यान प्रकाशित किया। इसका आधार श्री वरवरमुनि स्वामी की टीका है जो श्री रामानुज स्वामी के परवर्तीकाल में प्रचलित श्रीवैष्णवमत के सिद्धान्तों को समाहित किये हुए है।

नम्माळवार (श्री शठकोप स्वामी) की कृति सहस्रगीति (तिरुवायमोळी) के अन्तःभाव को आचार्य हृदयम् में बहुत विलक्षणता से प्रकाशित किया गया है। श्री शठकोप स्वामी की अन्य रचनायें तिरुविरुत्तम, तरुवाशिरियम् तथा पेरिय तिरुवन्दादि क्रमशः मूलमन्त्र (अष्टाक्षर मन्त्र) तथा चरममन्त्र की व्याख्या हैं जबकि तिरुवायमोळी द्वयमन्त्र की व्याख्या है। इन चारों रचनाओं

को क्रमशः ऋक्, यजु, अथर्व तथा सामवेद के सदृश तमिल वेद कहे जाते हैं। श्री राघवाचार्य स्वामी, वृन्दावन ने स्वामी रामप्रपन्नाचार्य की संस्कृत टीका के प्राक्कथन में आचार्य हृदयम् के चारों प्रकरण के विषयों को प्रतिपादित किया है जो यहाँ साभार प्रस्तुत है।

पहला प्रकरण -

1-त्याज्य एवं उपादेय के ज्ञान हेतु परमकारुणिक भगवान् ने शास्त्र प्रदान किया है।

2-उनसे ज्ञान प्राप्त करना दुस्तर समझ उनके सारभूत श्रीमन्त्र प्रदान किया।

3-शास्त्रों एवं उनके सारभूत श्रीमन्त्र के प्रतिपाद्य वस्तु का भेद बताया।

4-उन दोनों के अधिकारियों के भेद बताये।

5-इसी हेतु सहस्रगीति के प्रभाव का वर्णन किया।

6-सहस्रगीति से प्रणेता श्री शठकोप स्वामी का प्रभाव बताया।

दूसरा प्रकरण-

1-उस प्रभाव के कारण भगवत्कृपाकटाक्ष का वर्णन किया।

2-उस कृपाकटाक्ष से प्राप्त नम्माळवार (श्रीशठकोप स्वामी) के ज्ञान-भक्ति को बताया।

3-ज्ञान-भक्ति की अवस्था में आळवार के मुख से निकले पदों का वर्णन किया।

4-आळवार की भक्तिदशा में सभी भगवत्प्रेमियों के साथ समानता का वर्णन।

5-भक्तिदशा में अन्यापदेश में कहे गये वचन का स्वापदेश बताना।

तीसरा प्रकरण-

1-दिव्यदेशों में विराजमान भगवान् के दिव्यगुणों का वर्णन।

2-उन गुणों एवं उनसे पूर्ण भगवान् के अनुभव से प्राप्त हर्ष का वर्णन।

3-आळवार के हृदय में अपरिमित हर्ष का नहीं समाने के कारण हर्षातिरेक का दिव्यप्रबन्धम् की रचना में प्रकट होना।

4-श्रीमद्भगवद्गीता एवं सहस्रगीति की समानता बताना।

5- श्रीमद्भगवद्गीता की अपेक्षा सहस्रगीति को श्रेष्ठ बताना।

6- श्रीमद्भगवद्गीता एवं सहस्रगीति में उपदेश की शैली का भेद बताना।

चौथा प्रकरण-

1-उपदेश करने योग्य विषयों की अर्थविशेषता का वर्णन।

2-उपदेश के योग्य शिष्यों के लक्षण।

3-उन लक्षणों से रहित भक्तों के साथ उपदेश की सफलता का वर्णन।

4-दिव्यप्रबन्धम् में तीनों रहस्यमन्त्रों के रहस्यार्थ का वर्णन।

5-रहस्यत्रय में निहित अर्थपञ्चक का दिव्यप्रबन्धम् में वर्णन।

6-दिव्यप्रबन्धम् के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण का वर्णन।

7-जगतरक्षण एवं साधुपरित्राण हेतु भगवान् के अवतार के सदृश दिव्यप्रबन्धम् का अवतार।

8- सहस्रगीति के शतकों में भगवान् के दिव्यगुणों का प्रतिपादन।

9-करुणासिन्धु भगवान् ने आळवार के हृदय में तत्त्वज्ञान से लेकर भगवत्प्राप्ति से विशेष अवस्था का प्रादुर्भाव किया।

10-सहस्रगीति के शतकों में दूसरों को दिये गये उपदेश-विशेषों का वर्णन।

11-भगवत्प्राप्ति-अनुभूति से सम्पन्न आळवार को संसार में रखने के प्रधान एवं सामान्य कारणों का वर्णन।

12-आळवार के परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति के अवस्था-विशेष का वर्णन।

13-सहस्रगीति के प्रधान तात्पर्य का वर्णन।

आचार्य हृदयम् के प्रस्तुत हिन्दी भावानुवाद की रचना श्री सुदर्शन पाण्डेय, राँची, श्री हरिनारायण स्वामी गोविन्दराज भगवान् मन्दिर तिरुपति, श्री भाष्यम् स्वामी काञ्चीपुरम्, श्रीवैष्णवश्री श्रीरङ्गम् श्रीवासुदेवन स्वामी, गीता स्मृति, पूणे तथा श्री रंजय कुमार, सरता जहानाबाद के सहयोग से सम्भव हो सका है। **श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।**

15 मई 2025, तिरुपति। **निवेदक - श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी**

श्रीमते शठकोपाय नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः

1 तनियन्

आचार्य स्वान्तः वक्तारं अभिरामवराभीतम् ।

श्रीकृष्ण तनयं वन्दे जगद्गुरुवरानुजम् ।।1।।

दिव्य ग्रन्थ, "**आचार्य हृदयम्**" के लेखक **अळगिया मणवाल पेरुमाल नायनार** की मैं पूजा करता हूँ जो श्रीकृष्ण (श्रीकृष्णपाद स्वामी - वडक्क तिरुवीथी पिल्लै) के पुत्र हैं तथा पिल्लैलोकाचार्य के छोटे भाई हैं।

द्रविडाम्नाय हृदयं गुरुपर्वकृपागतम् ।

रम्यजामातृदेवेन दर्शितं कृष्णसूनुना ।।2।।

द्रविड वेद तिरुवायमोडी (सहस्रगीति) का ज्ञान गुरु परम्परा से मिलते रहा है। वह ज्ञान श्रीकृष्ण (श्रीकृष्णपाद स्वामी) के पुत्र अळगिया मणवाल पेरुमाल नायनार की कृपा से मिला।

पणवाळ् अरवणैप् पळ्ळि पयिलवार्क् केव्वुयिरुम्

गुणभोगं एन्-रु कुरुकैक्कतिपण उरित्त तुय्य

उणर्पावि नुट्पोरुळ् ओन्-रु मरिया वुलकरिय

मणवाळन् मारान् मनमुरैत्तान् वण्मुटुम्पै वन्दे।। 3।।

आळवार तिरुनगरी के नाथ, नम्माळवार (श्रीशठकोप स्वामी) ने स्पष्ट किया है कि सभी आत्मा श्रीरङ्गनाथ भगवान् के सेवक हैं, जो तेजोमय फणवाले शेषनाग पर शयन करते हैं। आळवार का यह दिव्यज्ञान समस्त शास्त्रों का सार है । उदार मुदुबैय कुल के अळगिया मणवाल पेरुमाल नायनार ने अज्ञान से ग्रस्त संसारवासियों के लाभ के लिए ही इसका वर्णन किया है।।3।।

मातवत्तोन् मारन् मनम् कूरुम् मणवाळन्

तोतवत्तित् तूयमरैयो रानपेट्रार् नीदियिनाल

अङ्कवर् ताळ् सेर्प्रार् आय्मणवाळमुनि

पूङ्कमलत् ताळकळ् नेन्जे पोट्रु ।।4।।

परम तपस्वी मारन (नम्माळवार - शठकोप स्वामी) के दिव्य हृदय का अळगिया मणवाल पेरुमाल नायनार ने वर्णन किया जो पहले पेट्रार नामक व्यक्ति को प्राप्त हुआ । इनसे तिरुनारायणपुरम् के अयि जनन्याचार्य को मिला जिन्होंने इसे मणवाल मामुनि (श्रीवरवर मुनि) को दिया और इन्होंने इसके वैभव का सर्वत्र प्रचार - प्रसार किया । हे मन ! इनके चरणों की वन्दना करो ।।4।।

2. विषय-प्रवेश

दिव्य आनन्द से भरे त्रिपाद्विभूति श्रीवैकुण्ठ लोक में श्रीमहालक्ष्मी के साथ सर्वनियन्ता भगवान् नित्यसूरियों की सेवा स्वीकार करते हैं । ज्ञान तथा

आनन्द आदि दिव्यगुणों से परिपूर्ण नित्यसूरिगण सर्वनियन्ता भगवान् की ईच्छा के अनुसार ही उनकी सेवा में रत रहते हैं । लीला विभूति अर्थात् धरती पर विराजमान बद्ध जीवों की स्थिति से द्रवित होकर भगवान् उनके उद्धार के बारे में निरन्तर सोचते रहते हैं।

प्रलय के बाद सभी चेतन भी अचेतन (जड़) की तरह स्थूल रूप में ही भगवान् के उदरस्थ रहते हैं। **श्रीरङ्गराज स्तव उत्तरशतक 41** में श्री पराशर भट्ट ने कहा है -

अचिदविशेषितान् प्रलयसीमनि संसरतः करणकलेवरैर्घटयितुं दयमानमनाः ।
वरद ! निजच्छयैव परवानकरोः प्रकृतिं महदभिमानभूत-करणावलि-कोरकिणीम् ।।

हे वरद ! प्रलयकाल में सभी जीव अचेतन की तरह ज्ञानहीन हो जाते हैं। परन्तु केवल आपके संकल्प से वे ज्ञानेन्द्रियों के साथ रूप भी प्राप्त कर लेते हैं। मूल प्रकृति को आप महद, अहंकार, पांच तत्व, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों में परिवर्तित कर देते हैं। आपकी असीम उदारतासे ही जीवों को आपके चरणारविन्द में अनुराग होता है तथा वे अपनी इन्द्रियों को संयमित रखते हैं। **श्रीरङ्गराज स्तव उ. 1 ".....मानं प्रदीपमिव कारुणिको ददाति ।...."** के अनुसार परमदयालु प्रभु ही वेद रूपी ज्ञानदीप देते हैं जिसके प्रकाश में हम कृत्य - अकृत्य का निर्णय कर पाते हैं। जीवों के कल्याण हेतु संत - मुनियों के अन्तर्यामी होकर आप स्मृति - इतिहास - पुराणादि प्रदान करते हैं।

लम्बे समय के प्रयास से शास्त्रों का ज्ञान सीमित मात्रा में प्राप्त होता है। इसी के कारण आत्मा के उद्धार हेतु प्रभु ने अष्टाक्षर रूपी ब्रह्म - विद्या का ज्ञान दिया। जब जीव इससे वांछित लाभ न ले सके तब वे स्वयं सबों के कल्याण हेतु श्रीराम एपवं श्रीकृष्णादि के रूप में अवतरित हुए । जीवात्मा प्रभु की इस उदारता से लाभान्वित होने में सक्रिय न हुए क्योंकि अवतारी परमात्मा को अपने से अलग एक विलक्षण दिव्य स्वरूप वाले ही मान बैठे।

परम कारुणिक प्रभु के मन में तब विचार आया कि ये बद्ध जीव किसी बद्ध जीव की ही भाषा समझेंगे । उनकी दृष्टि शठकोप स्वामी (आळवार) पर पड़ी। ये शरीरधारी होकर जन्म-मृत्यु के चक्कर से ग्रस्त थे। भगवान् की दयामयी दृष्टि तथा निर्हेतुक कृपा से इन्हें दिव्यज्ञान तथा उनकी भक्ति मिल गयी।

कृतादिषु प्रजा राजन् कलौ इच्छन्ति सम्भवम् ।

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ।। भागवत 11/5/38

नारायण परायण होने से आळवार ने भगवान् के स्वभाव, रूप, गुण तथा विभूति आदि का आनन्द लिया। फलस्वरूप सांसारिक जीवों पर दया से अभिभूत होकर उन्होंने सहस्रगीति (तिरुवायमोळी के पासुरों) को गाया जो सांसारिकों के लिये कल्याणकारी हुआ। इसी तरह का उदाहरण वाल्मीकि रामायण भी है। एक दिन किसी बहेलिये द्वारा एक मादा क्रौंच पक्षी की हत्या से विषादग्रस्त होने पर महर्षि वाल्मीकि के मुख से स्वतः एक श्लोक

निकल पड़ा। द्र. बालकाण्ड 2.15 । तब ब्रह्मा के प्रोत्सान पर उन्होंने समस्त रामायण की रचना की। सहस्रगीति सारगर्भित सिद्धान्तों से भरपूर एक बहुत ही बृहद रचना है। इसके सभी 1102 पद भगवत् प्रेरित हैं और भगवान् की ही उक्ति माने जाते हैं। सामान्य जनों को इसे समझना बहुत सुगम नहीं है। आचार्यगण मौखिक रूप से इसकी व्याख्या करते रहे हैं। **अळगिया मणवाल पेरुमाल नायनार** ने बहुत अनुग्रह करके सहस्रगीति के विशेषार्थ को **आचार्य हृदयम्** में लिखा है। यह रचना न बहुत छोटी है, और न बहुत बड़ी। इसमें मणिप्रवाल की 234 चूर्णिकायें हैं। संस्कृत के साथ तमिल शब्दों के मिश्रण को ही मणिप्रवाल कहते हैं।

आचार्य हृदयम् में सहस्रगीति के पदों में निहित सभी सिद्धान्तों को कुशलता के साथ पिरोया गया है जो आचार्य (यानी आळवार) के हृदय को अत्यन्त प्रिय है। जहाँ कहीं भी मात्र "**आळवार**" शब्द का प्रयोग हुआ है उसका तात्पर्य **नम्माळवार** (श्रीशठकोप स्वामी) है। आळवार को ही सर्वप्रथम आचार्य कहा गया है - **आद्यस्य नः कुलपतेः वकुलाभिरामः**।

नायनार ने दिव्यप्रबन्धम् के पासुरों से प्रासंगिक उद्धरणों का उल्लेख अपनी रचना में बहुत ही श्रद्धा से किया है। सभी आळवारगणों को दिव्यज्ञान तथा भगवान् की भक्ति विशेष भगवत् कृपा से प्राप्त थी। इसीलिए दिव्यप्रबन्धम् के शब्द दिव्यानन्द प्रदान करने के साथ-साथ अकाट्य तथा प्रामाणिक माने जाते हैं। नायनार की यह रचना दिव्यप्रबन्धम् के प्रति प्रेम को दृढ़ से दृढ़तर करता है। सभी 12 आळवारों की रचनाओं

के संग्रह को दिव्यप्रबन्धम् कहते हैं। इसमें कुल 24 प्रबन्ध संग्रहित हैं और सब मिलाकर दिव्यप्रबन्धम् में करीब 4000 पद / पासुर हैं।

<u>प्रथम एक हजार के प्रबन्ध</u>

1. पेरियाळवार / श्री विष्णुचित्त स्वामी का पेरियाळवार तिरुमोळी
2. आण्डाल / गोदा जी का तिरुप्पावै एवं नाच्चियार तिरुमोळी
3. कुलशेखर आळवार का पेरुमाल तिरुमोळी
4. तिरुमळिशैयाळवार / भक्तिसार स्वामी का तिरुच्चन्दविरुत्तम्
5. तोंडराडिप्पोडि आळवार / भक्तांघ्रिरेणु स्वामी का तिरुमालै एवं तिरुप्पळिळयळुच्चि (श्रीरङ्गनाथ सुप्रभातम्)
6. तिरुप्पाण आळवार / मुनिवाहन स्वामी का अमलनादिपिरान्
7. मधुरकवि आळवार का कण्णिनुणशिरुताम्बु

<u>दूसरे एक हजार के प्रबन्ध</u>

1. तिरुमङ्गै आळवार / परकाल स्वामी का पेरिया तिरुमोळी, तिरुक्कुरुदाण्डगम् एवं तिरुनेडुदाण्डगम्

<u>तीसरे एक हजार के प्रबन्ध (इयर्पा)</u>

1. पेय्यगै आळवार / सरोयोगी का मुदलतिरुवन्दादि
2. भूदत्त आळवार / भूत स्वामी का इरन्डाम् तिरुवन्दादि
3. पेय्य आळवार / महय्य स्वामी का मून् राम तिरुवन्दादि
4. तिरुमळिशै आळवार / भक्तिसार स्वामी का नान्मूगन तिरुवन्दादि

5. नम्माळवार / शठकोप स्वामी का तिरुविरुत्तम् , तिरुयाशिरियम् एवं पेरिय तिरुवन्दादि
6. तिरुमङ्गै आळवार / परकाल स्वामी का तिरुवेळुकूट्रिरुक्कै, शिरिय तिरुमडल एवं पेरिय तिरुमडल
7. तिरुवरङ्गत्तमुदनार का रामानुज नुट्रन्दादि

<u>चौथे एक हजार के प्रबन्ध</u>

नम्माळवार / शठकोप स्वामी का तिरुवायमोळी / सहस्रगीति

3.मणिप्रवाल में मूल चूर्णिका, संस्कृत सूत्र, सामान्य अर्थ एवं विशेषार्थ

चूर्णिका - 1

श्रीरङ्गराज स्तव उ. 1 में कहा है कि -

हर्तुं तमस्सदसती च विवेक्तुमीशो मानं प्रदीपमिव कारुणिको ददाति।

तेनावलोक्य कृतिनः परिभुञ्जते तं तत्रैव केऽपि चपलाश्शलभीभवन्ति ।।

दयासागर भगवान् वेद का ज्ञानदीपक देते हैं जिससे कि हम अज्ञान के अन्धकार को दूर कर अपने लाभ-हानि को समझ सकें। वेद - शास्त्रादि भगवान् को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। परन्तु इस संसार के मोह में ही लीन रहनेवाले प्राणी इस दीपक में एक फतिंगे की तरह कूदकर अपना प्राण गँवा बैठते है।

मूल त. - कारुणिकनान सर्वेश्वरन् अरिविला मनिसर् उणर्वेनुम् सुडर् विल्लक्केट्रिप् पिरङ्गिरुल्ल नीङ्गि मेलिरुन्द नन्दा वेद विल्लक्कैक् कण्डु नल्लदुम् तीयदुम् विवेकिक्कैकु मरैयाय् विरिन्द तुल्लक्कमिल् विल्लक्किल् कोल्लुत्तिन प्रदीपमान कलैगल्लै निर्मैयिनाल अरुल्ल सेय्दान् ।

सूत्र सं. 1- श्रीकारुणिकः सर्वेश्वरोऽज्ञमनुष्याणां ज्ञानरूपोज्जवलदीपमारोप्य महान्धकारनिवृत्त्या उपरिस्थितनित्यदीपं दृष्टवा सदासती विवेक्तुम् वेदरूपतया विस्तृतान्निश्चलदीपादुत्पादितानि प्रदीपरूपशास्त्राणि स्वभावेना-वदत्।

सामान्य अर्थ - दयालु सर्वेश्वरन् ने अपने अनुग्रह की वर्षा करते हुए वेद का शाश्वत ज्ञानदीप देकर अविद्याग्रस्त लोगों के अज्ञान का नाश किया जिससे कि वे भले - बुरे की पहचान कर सकें। स्वयं भगवान् ही "अ" अक्षर हैं तथा "अ" से ही वेद का विस्तार हुआ है।

विशेषार्थ - भगवान् दयालु तथा स्वतन्त्र हैं। अगर केवल दयालु रहें और स्वतन्त्र न रहें तब सब कुछ न कर पायेंगे। इसीतरह, केवल स्वतन्त्र रहें और दयालु न रहें तब बद्ध जीव का कल्याण न हो पायेगा। दयालु तथा स्वतन्त्र दोनों गुणों के ही कारण जीव का कल्याण सम्भव होता है।

सर्वेश्वर से नियन्त्रक भगवान् एवं नियन्त्रित आत्मा के सम्बन्ध का भी बोध होता है। इस तरह का उल्लेख लक्ष्मी तन्त्रम् में है। "**कृपायोगाश्च शाश्वतात्**" सर्वदा दयालु रहते हैं। "**ईशेशितव्य सम्बन्धात् अनितम् प्रथमादपि**" नियन्त्रक भगवान् एवं नियन्त्रित आत्मा का यह स्वाभाविक

सम्बन्ध है। इस नियन्त्रक - नियन्त्रित सम्बन्ध का दयालुता के साथ संयोग होना ही जीव के उद्धार का कारण होता है। चूर्णिका में **कारुणिक** अर्थात् दयालुता को पहले रख कर **सर्वेश्वर** यानी नियन्त्रक - नियन्त्रित सम्बन्ध कहना यह बताता है कि भगवान् जीव को अपना समझ कर ही दयालुतावश बद्ध जीव के उद्धार के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं।

अज्ञानी लोग- यह भक्तांघ्रिरेणु स्वामी का प्रबन्ध **तिरुमालै** 13 से उद्धृत है। "**अन्धम् तम इवाज्ञानम्**" अज्ञान एवं अन्धकार दोनों समान हैं। "**हर्तुं तमः** ..." में भी अज्ञान को अन्धकार कहा है। इसी के कारण अज्ञान के अन्धकार में पड़ा बद्ध जीव आत्मा तथा प्रकृति के अन्तर को समझ नहीं पाता है। पेय्याळवार के **मुनरान् तिरुवन्दादि**-94 तथा भूतद आळवार **के इरन्दाम् तिरुवन्दादि**-1 में प्रकाशपूर्ण ज्ञान के दीपक जलाने की ही बात कही गयी है। ज्ञान का दीपक तेल एवं बत्ती के दीपक की गन्दगी से सर्वथा ही पृथक है। ज्ञान के प्रकाश में अपनी तथा दूसरों की आत्मा के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। परकाल स्वामी के **पेरिय तिरुमोळी 5.7.3** में वेद से घोर अन्धकार को दूर करने की बात कही गयी है। पेरियाळवार तिरुमोळी **1.9.10** में विष्णुचित्त स्वामी ने अज्ञान के अन्धकार को अन्ततः दूर होते कहा है।

पेरियाळवार तिरुमोळी 4.3.11 में भगवान् को वेदान्त के सिर का चमकता प्रकाश कहा है। परकाल स्वामी के **पेरिया तिरुमोळी 3.8.1** में इन्हें "**नन्दा विल्लक्कु**" अर्थात् शाश्वत प्रकाश का दीपक कहा है। शठकोप स्वामी ने

तिरुवायमोळी 4.7.10 में भगवान् को वेद में सर्वत्र चमकता प्रकाश कहा है। सर्वदा अपने अन्नत ज्ञान से प्रकाशित रहना ही इनका सच्चा स्वरुप है और वेद से ही इन्हें समझा जा सकता है। ज्ञान का अन्तःचक्षु ही इन्हें दर्शाता है। **पेरिय तिरुवन्दादि 3** में शठकोप स्वामी ने सत्-असत् के भेद को समझाते हुए अच्छे-बुरे को दर्शाया है। भाव है कि भगवत्विषय अच्छा है एवं संसार बुरा है। भगवान् को देखने पर संसार को त्यागने तथा मोक्ष को प्राप्त करने का भाव जगता है और संसार के दुर्गुण दृश्यमान होने लगते हैं। परकाल स्वामी के **पेरिय तिरुमोळी 8.9.4** से ज्ञात है कि भगवान् का प्रकाश ही वेद में फैला हुआ है। भक्तिसार स्वामी के **तिरुच्चन्द विरुत्तम 4** से स्पष्ट है कि भगवान् रूपी दीपक बिना किसी विच्छेद के जलते रहता है। कहा है - **अकारवै सर्वा वाक् -** वेद अकार अक्षर "अ" का ही विस्तार है। श्री**रङ्गराजस्तव उ.1 - 'मानं प्रदीपम्'** परमकारुणिक भगवान् से प्रदत्त शास्त्र एक वृहत दीप है जो त्याज्य एवं ग्राह्य का ज्ञान कराता है। परकाल स्वामी के **पेरिय तिरुमोळी 7.8.2** में चारों वेद को ही शास्त्र कहा है। परकाल स्वामी के **पेरिय तिरुमोळी 2.8.5** से स्पष्ट है कि वेद एवं इसकी व्याख्या करने वाले वेदांग आदि ग्रन्थ शास्त्र हैं। शब्द एवं उसके अर्थ, वाच्य-वाचक सम्बन्ध को दर्शाते हैं। अकारम् भगवान् से तुल्य है और इसी को ब्रह्म कहते हैं। देना भगवान् का स्वभाव है। कारण कि वे सबके स्वामी हैं और दयालु हैं।

चूर्णिका - 2

विवेक किसको कहते हैं इसमें यही समझाया गया है। किसी एक वस्तु से दूसरे की भिन्नता को जानने की क्षमता को विवेक कहते हैं।

मूल त. - विवेक फलम् वीडु पट्टु।

सूत्र सं. 2- विवेकफलं त्याग उपादानं च।

सामान्य अर्थ - विभिन्नता को जानने की क्षमता के ही कारण त्याज्य तथा ग्राह्य का बोध होता है।

विशेषार्थ - अच्छे एवं बुरे का अन्तर समझने की क्षमता ईश्वर प्रदत्त होती है। किसको छोड़ना है और किसको प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहना है, यह भगवत् अनुग्रह से होता है। **तिरुवायमोळी 1.2.1** - सबकुछ पूर्णरूप से त्याग करो, तथा **तिरुवायमोळी 1.2.5** -सबसे लगाव का त्याग करके भगवान् को समर्पित हो जाओ।

चूर्णिका - 3

क्या छोड़ना और क्या रखना है, इसे यहाँ स्पष्ट किया है।

मूल त. - त्याज्योपादेयङ्ल सुक दुक्कङ्ल

सूत्र सं. 3- त्याज्यं दुःखम् उपादेयं सुखम्।

सामान्य अर्थ - आनन्द को ग्रहण करे और दुःख का त्याग करे।

विशेषार्थ - कहा है, "**सुखी भवेयम् दुःखी मा भूवम्**"। हम सुखी रहें, हमें कोई दुःख न हो। सबको सुख ही प्राप्त करने की ईच्छा होती है, कोई

दुःखी नहीं होना चाहता है। इसलिए आनन्द प्राप्त करने का ही प्रयत्न करता रहे।

चूर्णिका - 4

कर्म एवं समय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सुखी या दुःखी रहता है। यहाँ इस चूर्णिका में इसीके मौलिक स्वरूप का वर्णन हुआ है।

मूल त. - इवट्टक्कु एल्लै इन्बुतुनबल्लि पन्मामायत्तु अळुन्दुगैउम् कळिळप्पुम् कवर्वुमट्टप् पेरिन्बत्तु इन्बुरुगैउम् ।

सूत्र सं. 4 - स तद्वधिः सुखदुःखावहमहामायानि मग्नतागर्वक्लेश-निवृत्तिपूर्वक महानन्दावाप्तिश्च।

सामान्य अर्थ - शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध इन्द्रियों की विस्मयकारी क्रियायें हैं जो संसार में दुःख के कारण हैं। वैकुण्ठलोक का शाश्वत आनन्द कर्मजनित दुःख से मुक्त करता है।

विशेषार्थ - संसार की वस्तुओं के संसर्ग के ही कारण वासनागत सुख तथा दुःख का अनुभव होता है। **तिरुवाशिरियम् 6 -** बुरे कार्य एवं निर्दयता में लिप्त हो मृदु वेदना लेते हैं जो नरक को ले जाता है। संसार की स्थिति शाश्वत है और इसे पार करना दुस्तर है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध के जाल में फंसे ज्ञानियों के लिए भी इससे निकलना कठिन है। **तिरुवायमोळी 7.1.8** में कहा है कि ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध अमृत देने के बहाने धोखा में रखते हैं। यह संसार अन्तहीन दुःख का

आगार है। **तिरुवायमोळी 2.3.10** में कहा है कि सांसारिक सुख महत्वहीन तथा क्षणिक होते हुए भी अहंकार कारक होता है। वासनागत सुख न मिलने पर दुःख उत्पन्न होता है। शुद्ध सात्विक आनन्द परमपदवासी भक्तों की संगति से मिलती है। **तिरुवायमोळी 10.9.11** के अनुसार परमपद धाम में भगवान् के समक्ष खड़े रहने पर चिरन्तन दिव्य आनन्द मिलता है। परमपद धाम में शाश्वत प्रकाश प्रवाहित (**तिरुवायमोळी 8.10.5**) होते रहता है।

चूर्णिका - 5

इस चूर्णिका में जीवात्मा को मिलनेवाले सुख-दुःख के कारण को स्पष्ट किया है।

मूल त. - अनन्तक्लेश निरतिशयानन्द हेतु - मरन्देन् अरियगिल्लादे उणर्विलेन् एणिलेन् अयर्देनरुम् उय्युम् निन् रवोन रै नङरिन्दानन् उणर्विनुल्ल् ल्ले अम्बरिसेन् रुम् सोल्लुगिर ज्ञातव्य पञ्चक ज्ञान अज्ञानगल्ल ।

सूत्र सं. 5- अनन्तक्लेशनिरतिशयानन्दहेतू विस्मृतवान् ज्ञातुमशक्तः ज्ञानविरहितः अशक्तः क्लिष्टोऽहमिति चोज्जीवनप्रकारं स्थितमेकं सम्यग् ज्ञातवान् ज्ञानस्यान्तः अवश्यकर्तव्यमित्युक्तज्ञातव्यं पञ्चकज्ञानाज्ञाने।

सामान्य अर्थ - अर्थपञ्चक के ज्ञान से विहीन होना अन्तहीन दुःख का कारण बनता है। अर्थपञ्चक के ज्ञान से सम्पन्न होना अतिशय आनन्द प्रदायक होता है।

विशेषार्थ - **जितन्ते स्तोत्र** - **1.4** "**संसारसागरं घोरमनन्त क्लेशभाजनम्। त्वामेव शरणम् प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः** ।।" संसार बहुत ही दुस्तर तथा दुःख का अनन्त सागर है। अपने मन को संयमित रखकर जो भगवान् को उपाय मानते हैं वे संसार से पार उतरते हैं। अर्थपञ्चक की अनभिज्ञता से संसार के साथ सम्बन्ध का बने रहना ही अन्तहीन दुःख का जनक है। अर्थपञ्चक के पाँच अंग हैं- पर-स्वरुप, स्व-स्वरुप, उपाय-स्वरुप, विरोधि-स्वरुप एवं फल-स्वरुप।

(क) पर-स्वरुप से भगवान् के अनन्त कल्याणगुणादि का बोध होता है। **पेरिय तिरुमोळी 6.2.2** में परकाल स्वामी ने कहा है कि पूर्व के जन्मों में हम आपको भूल गये थे।

(ख) स्व-स्वरुप से हम भगवान् के प्रति अपने दायित्वों (कैंकर्यादि) को जानते हैं। **तिरुवायमोळी 2.9.9** में बताया गया है कि अपने वास्तिक स्वरुप को न जानने के कारण हम अपने को सबकुछ मान लेते हैं।

(ग) उपाय-स्वरुप से भगवान् को प्राप्त करने के लिए भगवान् को ही उपाय मानते हैं, अर्थात् भगवान् की कृपा से ही हम उनको प्राप्त कर सकते हैं। द्र. **पेरिय तिरुमोळी 1.6.1** ।

(घ) विरोधि-स्वरुप भगवान् की प्राप्ति के विघ्न-वाधा आदि हैं। **पेरिय तिरुमोळी 1.6.6** से यह स्पष्ट है कि हिंसा, झूठ, अहंकार, विलासिता आदि में संलिप्त सांसारिक जीवन भगवद्-भक्ति में विघ्न-वाधा उत्पन्न करते हैं।

(ङ) फल-स्वरुप से जीवन का एकमात्र पुरुषार्थ भगवत्लीला के कीर्त्तन से अतिशय आनन्द की प्राप्ति का बोध होता है। शठकोप स्वामी **पेरियतिरुवन्दादि 82** - "सच्चाई से अनभिज्ञ रहते हुए हाथ में अँगूठी धारण कर छलिया मृग का वध करने वाले प्रभु के बिना थके प्रशस्तिगान न करके जीवन को व्यर्थ गँवा दिया।"

श्रीविष्णु पुराण 6.5.59 - निरस्त-अतिशय-आह्लाद-सुख-भावैक-लक्षणा। भेषजं भगवत्प्राप्ति-एकान्त-आत्यन्तिकी मता।। अर्थात् अविचल भगवत्भक्ति से प्राप्त परमानन्द सांसारिक तुच्छ सुख से मिलने वाले जीवन के ताप से छुटकारा की एक मात्र औषधि है। अर्थपञ्चक का ज्ञान रहने से भगवान् को प्राप्त करने के अतिशय आनन्द का उल्लेख दिव्यप्रबन्धम् विभिन्न स्थलों पर हुआ है। **पेरिय तिरुमोळी 6.3.6** में **पर-स्वरुप** के लिए कहा है कि अपने उद्धार हेतु आपको अपने हृदय में स्थित पाया। **स्व-स्वरुप** के लिए भगवान् को अपनी आत्मा के रुप में मधु, दूध, गन्ने की तरह विराजने का सन्दर्भ **तिरुवायमोळी 8.8.4** में है। यहीं **8.8.3** में प्रभु की कृपा को **उपाय-स्वरुप** की तरह दर्शाया है। **विरोधी-स्वरुप** को **तिरुवायमोळी 5.7.8** में भ्रम उत्पन्न करने वाली दुष्ट इन्द्रियों को कहा

है। भक्तांघ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 38** में कहा है कि पुरुषार्थ रुपी **फल-स्वरुप** भगवान् का कैंकर्य है।

ज्ञानान् मोक्षः अज्ञानात् संसारः। ज्ञान से मोक्ष और अज्ञान से बन्धन मिलता है। **हारीत संहिता 9 - प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः प्राप्त्युपायफलं प्राप्तेः तथा प्राप्तिविरोधि च वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः मुनयश्च महात्मानो वेदवेदार्थवेदिनः।** सार्वभौम सत्ता के भगवान्, जीव का स्वरूप, भगवान् को प्राप्त करने के उपाय तथा उत्पन्न बाधा को वेद तथा इतिहास पुराण में बताया है। वेद के अन्तःभाव को समझनेवाले सन्त-मुनियों ने भी इसी को समझाया है। तात्पर्य है कि अर्थपञ्चक का ज्ञान ही जीवात्मा का उद्धारक कहा है।

चूर्णिका - 6

ज्ञान तथा अज्ञान का क्या कारण है, इसी का वर्णन इस चूर्णिका में है।

मूल त. - इवङ्क्कु कारणम् इरण्डिल अन्निनिल अन्नुगैगल्ल ।

सूत्र सं. 6 - एतत्कारणे द्वयोरेकस्य प्राचुर्यम्।

सामान्य अर्थ - ज्ञान या अज्ञान में डूबे रहना ही इसका कारण है।

विशेषार्थ - अर्थपञ्चक की अनभिज्ञता के कारण विचार राजसिक तथा तामसिक प्रवृत्ति वाला बना रहता है। भक्तिसार स्वामी ने **तिरुचन्दविरुत्तम 68** में कहा है कि सत्व गुण से हीन जीवात्मा बाकी दो गुणों के कष्ट से तबतक प्यार करते हैं जबतक मृत्यु उनकी सहायता में नहीं आती। परकाल

स्वामी ने एक ही पासुरवाले **तिरुवेळुकुट्रिरुक्कै** में कहा है कि सत्त्वगुण में जो स्थित हैं वे भगवान् को अच्छी तरह जानते हुए जन्म एवं मृत्यु के दो धागे को तोड़ डालते हैं। राजस एवं तामस गुण अन्यथा ज्ञान तथा विपरीत ज्ञान को देने वाले हैं।

चूर्णिका - 7

विभिन्न गुणों से युक्त होने के कारण को बताया गया है।

मूल त. - **सत्व असत्व निदानम् इरुल्ल तरुम् अमलङ्लाग एन्नुम जन्मजायमान काल कटाक्षङ्ल्ल ।**

सूत्र सं. 7 - जन्मेत्युक्तमज्ञानावह संसारे जन्म सत्त्वस्य निदानं जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः। एतन्मूले द्विधप्रबलकृपासत्कर्मणी।

सामान्य अर्थ - भगवान् की कृपा चितवन से सत्व गुण मिलता है। उनकी कृपा की अनुपस्थिति में प्राणी असत्व गुण (राजस एवं तामस) से ग्रस्त रहता है।

विशेषार्थ - इस संसार में जन्म ही राजस एवं तामस से ग्रस्त रहने के कारण होता है। फलस्वरुप जीव पर अज्ञान का प्रभाव बना रहता है। नम्माळवार **तिरुवाय. 10.6.1-** इस काले संसार में अब कोई जन्म नहीं चाहता। **महाभारत मोक्षपर्व** में कहा है - **जायमानं हि पुरुषं यं पश्येत् मधुसूदनः । सात्विक स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थ चिन्तकः।।**

इस संसार में जन्म लेने पर भी भगवान् की कृपा से सात्विक गुण का ही प्रभाव रहता है। ऐसा ही **तिरुवायमोळी 1.9.9** में भी कहा है।

चूर्णिका - 8

इन कारणों को यहाँ स्पष्ट किया है।

मूल त. - इवङ्कक्कु मूलम् इरुवल्लरुळळ मलविनैगळळ ।

सूत्र सं. 8- जन्मनो मूलं संबद्धोभयविधप्रबलकर्मेत्यात्मना।

सामान्य अर्थ - संसार में जन्म लेने पर भी जीव को अपने पुण्य के कारण से भगवान् की कृपाकटाक्ष मिलती है।

विशेषार्थ - जीवात्मा के साथ लिपटे हुए उसके पुण्य या पाप ही उसके जन्म के कारण बनते हैं। **तिरुवायमोळी 1.5.10** में भी ऐसा ही कहा है। **तिरुवायमोळी 5.9.10** से स्पष्ट होता है कि अच्छे कर्म करनेवालों पर अनुग्रह करना ही भगवान् का मूल स्वाभाव है।

चूर्णिका - 9

इसके कारण और स्पष्ट किये गये हैं।

मूल त. - **कर्मकृपाबीजम् पय्न्निनन्ट्र अरुल्ल पुरिन्द एङ्गिट्र अविद्या सौहार्दङ्गल्ल** ।

सूत्र सं. 9 - कर्मकृपाबीजेऽसत्ये स्थितं कृपापूर्णेत्युक्तेऽविद्यासौहार्दे।

सामान्य अर्थ - जीवात्मा का अज्ञान उसके कर्म का उत्पादक बीज होता है। जीव को भगवान् की कृपा उनकी सहृदयता से मिलती है।

विशेषार्थ - आत्मा का अज्ञान उसके कर्म का कारण होता है। शठकोप स्वामी ने **तिरुविरुत्तम 1** में इसे दुष्टतापूर्ण कार्य में प्रवृत्त निम्नस्तरवाला अनर्गल ज्ञान कहा है। **इरण्डाम् तिरुवन्दादि 59** में भूदत्त आळवार ने कहा है कि भगवान् के दिव्यहृदय में कृपा बसती है। जीवात्मा के कल्याण के लिए भगवान् के दिव्यहृदय की दयालुता ही आवश्यक है। कहा है -

ईश्वरश्च सौहार्दं यदृच्छा सुकृतं हरेः । विष्णोः कटाक्षं अद्वेषं अभिमुक्यं च सात्विकैः सम्भाषणम् षडेतानि आचार्यप्रपत्ति हेतवः।। ईश्वर की सहृदयता, जीवात्मा से अनजाने में किये गये शुभकृत्य, भगवान् की कृपाचितवन, चेतन का भगवान् के प्रति कुविचार का अभाव तथा अनुराग की उपस्थिति, और सज्जनों के साथ वार्ता में रत रहने की प्रवृत्ति - ये छः होने पर आचार्य की शरणागति मिलती है। चेतन की मुक्ति में ईश्वर की कृपा ही मुख्य है जो उनके हृदयकमल का श्रृँगार है।

चूर्णिका - 10

आत्मा की अज्ञानता तथा भगवान् की दयालुता के कारण बताये गये हैं।

मूल त. - **एतन्निमित्तैन् मुन्नमे मुदै मुन्नमेयान अचित् अयन अनादि सम्बन्धङ्गल्ल।**

सूत्र सं. 10 - एतन्निमित्ते प्रथममेवेत्युक्ताचितऽयनाऽनादिसम्बन्धौ।

सामान्य अर्थ - अचित (प्रकृति) अनादिकाल से परमात्मा का वासस्थान है और अचित से जीवात्मा का पुरातन सम्बन्ध उसके अज्ञान का कारण है।

विशेष अर्थ - **तिरुविरुत्तम 95** में शठकोप स्वामी ने कहा है कि हर जीवात्मा को पुनर्जन्म एवं मृत्यु की आवृति में पड़कर विभिन्न शरीरों में गुजरते देखकर माता-पिता की तरह दयालु प्रभु उसकी रक्षा में आते हैं। **तिरुवायमोळी 2.3.6** में शठकोप स्वामी की उक्ति है कि भगवान् सभी चित्-अचित् के निवास हैं और हम चिरन्तन दास की तरह अनादि काल से उनसे जुड़े हैं। पुरातन काल से अचित से जुड़े रहने से जीवात्मा पुण्य / पाप अर्जित करता है और बार-बार जन्म ग्रहण करता है। इसीसे अज्ञानग्रस्त होकर राजस-तामस गतिविधियों में प्रवृत रहता है। फलस्वरुप वह अर्थपञ्चक के ज्ञान से दूर रहता है और संसार में दुःख भोगता है। **अज्ञानात् संसारः** अर्थात् अज्ञान ही संसार में बन्धन कारक होता है। कहा है कि - **ज्ञानात् मोक्षः** - ज्ञान से मुक्ति मिलती है। जीवात्मा का भगवान् से पुरातन सम्बन्ध होने से उनका दयार्द्र हृदय जीव पर अनुग्रह करता है, परिणामस्वरुप उनकी कृपा-चितवन से जीव शुभ कर्मों में प्रवृत होकर अर्थपञ्चक को आत्मसात् करते हुए मोक्ष का भागी बनता है।

चूर्णिका - 11

आत्मा पर उपर्युक्त दोनों सम्बन्धों के प्रभाव को बताया है।

मूल त. - इवै किट्टमुम वेट्टुवेल्लानुम् पोले ओण् पोरुल्ल पोरुल्ल अल्लाद एन्नादे नानिलादा यानुम् उल्लनावन एनगिर्ट्रा साम्यम् पेट्र्त तिन्ड्रूदि अन्दमुम् वळुवुमागिट्र हानि सत्तैगल्लै उण्डाक्कुम् ।

सूत्र सं. 11- एतौ किट्टः पेशस्कृदिव तेजोवस्त्ववस्तुभूतमित्यविचार्य नास्म्यहमपि सन्नित्युक्तासाम्यापन्नं भक्षित्वा ध्यात्वा नाशाभिवृद्धि-रूपहानि स ते जनयतः।

सामान्य अर्थ - चमकता रत्न जैसे धूल के संसर्ग से धूमिल हो जाता है, तथा भृंगी के संसर्ग में कोई अन्य कीड़ा भी भृंगी बन जाता है, उसी तरह से जीवात्मा सांसारिक अचेतन जड़ प्रकृति की वस्तुओं के सम्पर्क के कारण अज्ञानग्रस्त बना रहता है। परन्तु भगवान् से जुड़े रहने पर जीवात्मा मुक्त हो जाता है।

विशेषार्थ - अचित् से संसर्ग - **तिरुवायमोळी 1.2.10** में कहा है कि आत्मायें अनन्त हैं और आनन्द में डूबे रहना उनके स्वाभाविक गुण हैं। **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.7** के अनुसार "**रसो वै सः**" "**रसम् हि एव अयम् लब्धवाऽऽनन्दी भवति। एष ह्येवानन्दयाति।"** आनन्दरसमूर्ति परमात्मा ही सर्व आनन्द का कारण है। उन्हें प्राप्त कर जीवप्राणीमात्र आनन्द प्राप्त करता है। सांसारिक कामनायें अचित् जड़-प्रकृति वस्तुयें हैं, जैसे - घर, भूमि, वाहन, स्त्री, संतान, अन्य विलासिता की वस्तुयें आदि। **विष्णु पु. 2.12.37- 'यन्नास्ति'** अचित् जड़ वस्तुयें। **तिरुवायमोळी 1.2.4** में इन्हें आनन्द गुण से हीन बताया है। **तिरुच्चन्दविरुत्तम 65** में भगवान् को जीवात्माओं के

प्रकट होने के पूर्व का बताया है। अर्थात् जीवात्माओं का अपना अस्तित्व भगवान् की कृपा पर निर्भर है। **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.6** में "**असन्नेव स भवति**" अर्थात् भगवान् के अस्तित्व को नहीं जाननेवाला अपना अस्तित्व भी खो बैठता है।

नारायण (अयन) से लगाव - सबके वासस्थान (अयन) नारायण स्वयं हैं। भृंगी के डसने के भय से अन्य कीड़ा भी भृंगी जैसा बन जाता है। इसीतरह जीवात्मा भी ज्ञानहीन होकर अचित् जड़-प्रकृति जैसा व्यवहार करता है। **तिरुवायमोळी 5.7.3** में बताया है कि अपने अस्तित्व को भूले हुए जीवात्मा को भी भगवान् अपने कैंकर्य में स्वीकार कर लेते हैं। **मुण्डक उपनिषद् 3.1.3** - "**तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति**।" भगवान् के दर्शन से प्राणी के सभी पुण्य-पाप धुल जाते हैं और उसमें उनके समतुल्य गुण आ जाते हैं। वह विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर भगवान् के सदृश सर्वत्र विराजमान होने का आनन्द लेता है। श्री शठकोप स्वामी ने **पेरिया तिरुवन्दादि 76** में अपने को सर्वत्र व्याप्त कहा है। जीवात्मा भगवान् को प्राप्त करके अपने अस्तित्व का अनुभव करता है। **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.6 -** "**सन्तमेनं ततो विदुः।**" भगवान् को जानकर आत्मा अपने अस्तित्व को जान लेता है।

चूर्णिका - 12

जीवात्मा का अचित् एवं भगवान् से सम्बन्ध पुरातन काल से है। क्या यह शाश्वतकालीन है ?

मूल त. - **ओनड्रू कूडिनदाय्प् पड्ट्रड्डुक्क मीण्डु अळिगैयैए पळवडियेन् एन्नुम् अदु ओनड्डुमे ओळियाददु** ।

सूत्र सं. 12 - एकः सम्बद्धः सम्बन्धच्छेदन निवर्तते अतः प्राचीनदास इत्येक एव दूरीक्रियमाणोऽपि न निवर्तते।

सामान्य अर्थ - जीवात्मा का अचित् के साथ अस्वाभाविक सम्बन्ध है, जबकि भगवान् के साथ उसका सम्बन्ध स्वाभाविक है। भगवान् में उसके अचित् के साथ के सम्बन्ध को मिटाने की शक्ति है। अतः भगवान् के साथ का सम्बन्ध ही शाश्वत है।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी ने **पेरिया तिरुमोळी 1.1.1** में कहा है कि शरीर धारण ही बहुत बड़ा दुःख है। जीवात्मा शरीर के कारण अचित् के साथ सम्बन्ध अर्जित करता है। **पेरिया तिरुमोळी 11.4.9** के अनुसार पाप के साथ हमारे सम्बन्ध को प्रभु मिटा देते हैं। सरोयोगी के **मुदल तिरुवन्दादि 59** में कहा है कि पाप से सम्बन्ध मिट जाता है। इसका तात्पर्य है कि कुकृत्य, पाप, अज्ञान तथा मन के भ्रम रूपी शरीर की बीमारियाँ ही शरीर देने वाले होते हैं और इनसे छुटकारा मिल जाता है।

तिरुप्पल्लाण्डु 11 में श्री विष्णुचित्त स्वामी लक्ष्मीपति नारायण से प्रार्थना में कहते हैं कि हम भी आपके सनातन दास हैं। भगवान् एवं जीवात्मा का शेष - शेषी (स्वामी - सेवक) का नाता चिरन्तन है और **तिरुप्पावै 28** के अनुसार यह नाता कभी भी तोड़ा नहीं जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि कर्म के कारण जीवात्मा सहसा अचित् से जुड़ जाता है, परन्तु यह

अस्थाई तात्कालिक होता है। शास्त्रों ने कर्म के कारण सहसा अचित् से जुड़ने को एक अनादिकालिक प्रक्रिया कहा है। परन्तु एक दिन भगवान् की अकारण कृपा से अचित् के नाता से जीवात्मा मुक्त हो जाता है।

चूर्णिका - 13

आत्मा के साथ अपनी नाता के कारण ही भगवान् वेद - शास्त्रादि प्रदान करते हैं।

मूल त. - **इन्द उदरत्तरिप्पु त्रैगुण्य विषयमानवट्ट्डुक्कु प्रकाशकम्।**

सूत्र सं. 13 - अयमुदरसम्बन्ध एव त्रैगुण्यविषयस्य प्रकाशकः।

सामान्य अर्थ - शेष-शेषी नाता से ही भगवान् शास्त्र प्रकट करते हैं ।

विशेषार्थ - नारायण में सबों का वास है और वे सब में वसते हैं। सत्व-रज-तम से लिप्त चेतन के कल्याण हेतु भगवान् शास्त्र प्रकट करते हैं। **त्रैगुण्यविषया वेदा** (**गीता 2.45**) से स्पष्ट है कि चेतन के कल्याण में निरत वेद सत्व-रज-तम तीनों गुणों से युक्त होते हैं। सत्व-रज-तम तीनों गुणों से युक्त चेतन के लक्ष्य एवं उपाय के बारे में वेद में विस्तार से वर्णन है। **चूर्णिका-1** में है कि चेतन पर दयावश ही भगवान् वेद प्रदान करते हैं।

चूर्णिका - 14

जीवात्मा से स्नेह रखते हुए भगवान् ने केवल मोक्ष प्राप्त कराने वाले शास्त्र को प्रकट न कर ऐसे शास्त्र को भी प्रकट किया जिसमें सांसारिक तथा स्वर्गादिक सुख प्राप्त करने के साधनों का भी वर्णन किया गया है। ऐसा क्यों ?

मूल त. - **वत्सलैयान माता पिळ्ळै पेगनियामल् मण तिन्नविट्टु प्रत्युषदम् इदुमापोले एव्वुयिर्क्कुम् तायिरुक्कुम् वण्णमान इवनुम् रुचिक्कु ईडागप् पन्दमुम् बन्दम् अड्डुप्पदोर् मरुन्दुम् काट्टुमिट्रे ।**

सूत्र सं. 14 - वत्सलामाता पुत्रमनिरुद्धं मृदं भक्षयित्वा प्रत्यौषधं प्रयुक्ते सर्वात्मनां मातृस्वभावोऽयम् अपि रुच्यनुगुणं बन्धम् बन्धनिवर्तकमौषधं च प्रदर्शयति।

सामान्य अर्थ - माता बच्चे को मिट्टी खाने के बाद उसे विकल न छोड़कर औषधि से उपचार करती है, उसी तरह भगवान् जो सबके लिए मातृवत्सलता से ओत-प्रोत रहते हैं उसके सुख का बन्धन देने के साथ-साथ उससे निवारण की औषधि भी देते हैं।

विशेषार्थ - बच्चे की इच्छानुसार माँ उसे मिट्टी खाने से रोकती है परन्तु मिट्टी खा लेने के बाद उपचार भी करती है। **तिरुवायमोळी 1.5.3** तथा **पेरिया तिरुमोळी 11.6.6** के अनुसार भगवान् सब प्राणियों के साथ मातृवत् स्नेह रखते हैं। चेतन की रुचि के अनुसार भगवान् उसे सांसारिक सुख के बन्धन से बन्धने देते हैं लेकिन दयालु माँ की तरह उसे बन्धन से छूटने का उपाय भी करते हैं।

चूर्णिका - 15

सत्व, रज, तम से लिपटे चेतन अपनी रुचि के अनुरूप सांसारिक सुख का लक्ष्य प्राप्त करने के प्रयास में अपने को बन्धनकारी संसार में डुबे रहने की प्रवृत्ति बना लेता है। क्या वह संसार में सर्वदा के लिए डूबा तो नहीं रह जायेगा ? यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि नहीं ऐसा नहीं है, बल्कि मोक्ष की सीढ़ी के ये प्रारम्भिक पादानों की तरह काम करते हैं।

मूल त. - अदु तानुम् आस्तिक्य विवेक अन्यशेषत्व स्वस्वातन्त्रय निवृत्ति पारतन्त्रयन्गल्लै उण्डाक्किन् वळि ।

सूत्र सं.15 - स चास्तिक्यविवेकान्यशेषत्व स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्ति पारतन्त्र्याणामुत्पत्तिमार्गः।

सामान्य अर्थ - भगवान् ने ही एक-एक कदम से बढ़ने की व्यवस्था की है - आस्तिकता, विवेक, अन्यशेषत्व निवृत्ति (किसी दूसरे से आशा नहीं रखना) तथा पारतन्त्रय (सम्पूर्ण भरोसा)।

विशेषार्थ - भगवान् ने न केवल मोक्षदायक शास्त्र ही बनाया बल्कि काले जादू वाले पाषण्ड मत का भी प्रवर्तन किया। इसके पीछे कारण हैं -

- तमोगुण से भरे लोग को शास्त्र में विश्वास नहीं है। दूसरे को हानि पहुँचाकर वे दुष्टता से धन अर्जित करते हैं। उनकी मोक्ष में रुचि नहीं होती है। कहा है - **श्येनेनाभिचरन् यजेत्-** ये जादूवाले श्येन विधि से पूजा करके दूसरे की हानि करते हैं। इस तरह से

पाषण्डमतवाले शास्त्र में उनको विश्वास होने लगता है। तब वे शास्त्रों की सार्थकता समझने लगते हैं और आस्तिकों की तरह शास्त्रों में विश्वास करने लगते हैं कि भगवान् की कृपा से ही शास्त्र सब प्राप्त हुए हैं।

- **ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत -** तदुपरान्त भगवान् ऐसे लोगों को स्वर्ग प्राप्त करानेवाले विधियों (ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ) के शास्त्र से अवगत कराते हैं। तब ऐसे लोग प्रकृति और आत्मा के अन्तर समझने लगते हैं।
- तब इन लोगों को अनन्यशेषत्व निवृत्ति अर्थात् भगवान् को छोड़कर दूसरे किसी देवता के कैंकर्य करने की भावना से मुक्त करते हैं।
- अब ऐसे लोग भगवान् की भक्ति के आनन्द में प्रवृत्त हो जाते हैं और अपनी स्वतन्त्रता को निस्सार समझने लगते हैं।
- धीरे-धीरे ऐसे जन अपने प्रयास से निवृत्त होकर भगवान् की शरणागति (प्रपत्ति) स्वीकार कर लेते हैं। अर्थात् पारतन्त्रय (भगवान् पर ही निर्भर रहने) गुण से सम्पन्न होकर स्व-स्वरूप को समझने लगते हैं।

इस तरह से भगवान् जीवात्मा को एक-एक कदम अपनी ओर चलाकर शास्त्रों के माध्यम से उसका कल्याण करते हैं।

चूर्णिका - 16

शास्त्रों का अध्ययन कर उन्हें सीखने में अनेकों कठिनाइयों को देखते हुए भगवान् ने शास्त्रों के सार के रूप में मूलमन्त्र (मूल मन्त्र - ऊँ नमो नारायणाय।) का ज्ञान दिया जिसको आसानी हृदयंगम करते हुए अभ्यास किया जा सकता है।

मूल त. - **चतुर्विधमन देह वर्ण आश्रम अधिकार फल मोक्ष गति युग धर्म व्यूह रूप क्रियादिगळ्ळै अट्रिविक्किट्र पाट्टुप परपुक्कु - पेरिय तीविनिल ओन्वदाम कूड्डुम् मानिडप् पिट्रवियुम् आक्कै निलैयुम् ईरिरण्डिलोनड्डुम् इळ्ळमैयुम् इसैवुम् उण्डाय, पुगुवरेलुम् एन्गिट्रदुक्कुळ्ळळ्ळे विग्नमट्र निन्ट्रवा निल्ला प्रमादियैक कोण्डु अट्रक्कड्कै अरिदेनट्रिट्रे वेदसार उपनिषद् सारतर अनुवाक सारतम गायत्रियिल मुदलोदुगिट्र पोरुळ्ळ् मुडिवआन सुरुक्कैत् तेय्ववण्डाय् अन्नमाय् अमुदम् कोण्डवन शाकैगळ्ळिलुम् ओदम् पोल किळ्ळर् नालवेदक् कडलिलुम् तेनुम् पालुम् अमुदुमाग एडुत्तुप् पेरुविसुम्बरुळ्ळुम् पेररुळ्ळाले सिन्गामै विरित्तदु ।**

सूत्र सं. 16- चतुर्विधदेहवर्णाश्रमाधिकारफलमोक्ष साधनगतियुगधर्म व्यूहरूप-क्रियादिज्ञापक वाक्यविस्तरस्य महाद्वीपनवमांश मनुष्यजन्मशरीरस्थिति द्विकद्वैकबाल्ये रुचीनां सम्भवे प्राप्नुवन्ति चेत् इत्येतत् अन्तर्विघ्ननिवृत्तौ स्थितस्थलेऽतिष्टताप्रमाथिना निःसन्देहोऽभ्यासो दुष्कर इति खलु वेदे सारो-पनिषत् सारतरानुभवाकसारतमगायत्र्यां प्रथमधीतम् अर्थपूर्णसंग्रहं देवभ्रमरो हंसो भूत्वा अमृतग्राही शाखाभ्यः समुद्रवद् वर्द्धमानचतुर्वेदसमुद्राच्च मधु-क्षीरामृततपोद्धृत्य महाकाशप्रद महाकृपयाऽसंकुचितं प्रकाशयामास।

सामान्य अर्थ - जम्बुद्वीप के भारतवर्ष में जन्म लेकर भी चारों वेद, चारों वर्णाश्रम, चारों लक्ष्य, चारों मुक्ति, चारों ऊपाय, चारों युग, चतुर्व्यूह आदि का सम्यक अध्ययन कठिन है। दयालु भगवान् ने ही नारायण को बताने वाले रहस्य मन्त्रों को प्रकट किया जो वेद के सार हैं।

विशेषार्थ - चार तरह के निम्नांकित ऊपाय, विषय तथा वस्तु आदि ज्ञान प्रदायक माने गये हैं।

देह - देव, मनुष्य, तिर्यक (पशु-पक्षी), स्थावर (पौधे, नदी, पहाड़ आदि)

वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

आश्रम - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्त, संन्यास।

अधिकार - आर्त (धन नाश से दुःखी), जिज्ञासु (आत्मानन्द चाहने वाले), अर्थार्थी (धनवान बनने की इच्छावाले), ज्ञानी (अर्थपञ्चक जानने वाले)।

फल - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

मोक्ष - सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य।

साधन - कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति।

गति - गर्भ (पुनर्जन्म), यमलोक (नरक यातना), धूम्रमार्ग (स्वर्गादि), अर्चिरादि मार्ग (वैकुण्ठलोक)।

युग - कृत, त्रेता, द्वापर, कलि।

युगधर्म - **ध्यान्कृते यजन्यज्ञैः त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।।** विष्णुपुराण 6.2.17 । ध्यान से कृतयुग में, यज्ञ से त्रेता में, पूजा - अर्चना से द्वापर में जो प्राप्त होता है वही कलिकाल में भगवान् के नाम संकीर्तन से प्राप्त होता है।

व्यूह - वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ।

रूपम् - भक्तिसार स्वामी के **तिरुचन्द विरुत्तम 44** के अनुसार दूध सा श्वेत, तपते सुवर्ण का लाल, काई का हरित नीलापन, काया फूल का कालापन रंग विभिन्नयुगों कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि में भगवान् के रंग होते हैं।

क्रिया - सृष्टि, पालन, संहार तथा मोक्ष ।

इसके अतिरिक्त व्यूह के चार भेद और हैं। 1. वासुदेव से आमोद प्रदान करनेवाले केशव, नारायण तथा माधव। 2. संकर्षण से प्रमोद प्रदान करनेवाले गोविन्द, विष्णु तथा मधुसूदन। 3. प्रद्युम्न से सम्मोद प्रदान करनेवाले त्रिविक्रम, वामन तथा श्रीधर। 4. अनिरुद्ध से वैकुण्ठ प्रदान करनेवाले ह्रीषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर। भक्तिसार स्वामी के **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 76** में इनसे सम्बन्धित चार तरह की विशेषतायें बताये गये हैं। **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.6.1** में श्रीविष्णुचित्त स्वामी ने जम्बुद्वीप का उल्लेख किया है। इसके नौ क्षेत्रों में पुराकाल का भारतवर्ष समस्त भूमंडल का प्रतीक था परन्तु आज भारत का भूभाग छोटा है। बद्रीनारायण भगवान् को यहाँ स्थित होने से यह भोगभूमि तथा मोक्ष भूमि दोनों माना जाता

है। **श्रीविष्णु पुराण 2.3.24** में देवताओं ने भारत में जन्म लेनेवाले व्यक्तियों को अपने से भी भाग्यशाली कहा है - **गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे । स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।। भागवत 11.2.29** - "**दुर्लभो मानुषो देहो**" कहा है। **श्रीविष्णु पुराण 2.3.23** में हजारों जन्म के बाद भारत में मानव देह का मिलना कहा है। **अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तमः । कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्** ।।

तिरुक्कुरुदाण्डगम् 8 में परकाल स्वामी ने मानव देह दुर्लभ कहा है।

तिरुवायमोळी 1.2.2 - तड़ित से भी क्षणिक यह मानव देह है। **भागवत 11.2.29** "**दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।**"

तिरुचन्दविरुत्तम् 90 - भक्तिसार स्वामी ने न तो ऊत्तम कुल और न वेद की संस्कृति से परिचित कहते हुए प्रभु के चरणों को ही सहारा कहा है।

श्रीविष्णु पुराण 1.17.76 - "**तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा।**" उचित अवस्था की प्रतीक्षा न करके विवेकी व्यक्ति बचपन से ही अपने कल्याण का उपाय करे। **तिरुवायमोळी 2.10.1**- इसके पहले कि युवाकाल का रंग फीका पड़े तिरुमालैरुञ्जोलै (मदुरै के पास सुन्दरबाहु भगवान् का मन्दिर आडगर कोईल) विना श्रांत हुए जाते रहो। नम्माळवार **पेरिया तिरुवन्दादि 26 -** हर काम के लिए इच्छाशक्ति आवश्यक है।

तिरुमालै 3 भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी - वेद से स्वीकृत है, अगर एक सौ साल की आयु मिलती है तो आधी आयु नींद में जाती है। शेष पचास साल बचपन, युवा, बुढ़ापा, रोग, भूख आदि में बीतता है। कहा है- **शतायुर्वै पुरुष।** साधारणतया मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष की होती है। **उत्तर गीता 7.10- अनन्तपारं बहुवेदितव्यं अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।** शास्त्र अगाध है, इसके लिए सौ वर्ष की आयु भी कम है। इसमें भी शास्त्र सीखने में अनेकों विघ्न-बाधायें आती हैं। कहा है- **श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि।**

परकाल स्वामी **पेरिया तिरुमोळी 1.1.4** - क्षणार्ध के लिए भी मन स्थिर नहीं रहता है। हम भटकते रहते हैं। **गीता 6.34** - "**चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्** ।" मन बहुत ही चञ्चल है, हठात् सांसारिक वासनाओं से लगा रहता है। **तिरुमालै 7** भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी - शास्त्रज्ञ या वेदज्ञ शास्त्र के सार समझने में लगे रहते हैं। परन्तु इनका व्यवहारिक उपयोग दुस्तर है - नम्माळवार **पेरिया तिरुवन्दादि 37** - भगवान् के विभिन्न रूपों को समझने के द्वन्द में न पड़कर कृष्ण की पूजा करो। **वैकुण्ठ दीक्षित्त्यम्** में कहा है **- असारमल्पसारं च सारं सारतरं त्यजेत्। भजेत्सारतमं शास्त्रं रत्नाकर इवामृतम्।।** सारहीन, अल्पसार वाले, सारवाले या सारगर्भित सारवाले शास्त्रों को त्याग दो। नारायण अनुवाक् का विष्णु गायत्री सारों का सार है और वेदान्त का अमृत है। शास्त्रों के ज्ञान से अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के सर्वोत्तम भाव को समझना ही मुख्य लक्ष्य है।

वेद का पूर्व भाग कर्मकाण्ड का है जो बन्धनदायक है। इसके विपरीत वेद का उत्तर भाग **वेदसारोपनिषत्** वेदान्त / उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप और उनकी प्राप्ति के उपाय का शास्त्र है। नारायण अनुवाक् शास्त्रों के श्रेष्ठ सार के रूप में नारायण की सर्वोच्चता तथा जगत के एकमात्र नियन्ता को प्रतिपादित करता है।

विष्णु गायत्री (**ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्**) से स्पष्ट होता है कि भगवान् सबके अन्तरात्मा हैं। यह भगवान् के नारायण, वासुदेव तथा विष्णु नाम के तीन व्यापक मन्त्रों को शास्त्रों के श्रेष्ठतम् सार को उद्‌भाषित करता है। विष्णु गायत्री में पहले "**नारायणाय विद्महे**" बोलकर नारायण की सर्वश्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हैं। भूतद् आळवार के **इरण्डाम् तिरुवन्दादि 39** - सभी वेद एक स्वर से सर्वनियन्ता माधव के दिव्यनामों की प्रशस्तिगान की श्रेष्ठता का ही वखान करते हैं। **पाञ्चरात्र** में कहा है - **ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च। सर्वमष्टाक्षरान्तःस्थं यच्चान्यदपि वाङ्गमयम्।।** अष्टाक्षर मन्त्र में ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व वेद पूर्णतया समाहित हैं।

पेरियतिरुमोळी 6.10.6 - श्रीमन्नारायण का दिव्यनाम शहद, दूध तथा अमृत है जिसे भगवान् ने ही वेद के सार बताये हैं। **तिरुवायमोळी 9.9.4** - गरुड़ पर सवारी करनेवाले भगवान् फूलों के रसपान करनेवाले बड़े भौंरे जैसे हैं जिन्होंने वेद से अमृतरूपी अष्टाक्षर मन्त्र दिया। **पेरियतिरुमोळी 5.7.3 -** असुरों ने वेद को जब अंधकार में डाल दिया तब आपने हंस रूप

से सबों को जैसे हंस दूध से पानी को अलग करता है उसी तरह से अष्टाक्षर मन्त्र को प्रकट किया। **पेरियतिरुमोळी 6.10.6** - हम अष्टाक्षर मन्त्र की ही साधना करें। **तिरुवायमोळी 1.8.10** - सागर की लहरों की तरह यह वेद का सार है। परकाल स्वामी का **पेरियतिरुमोळी 6.10.3** - भगवान् ने देवों के भय को दूर करने के लिए सागर को मथकर अमृत निकाला। विष्णुचित्त स्वामी के **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.3.11** - चारों वेद सागर हैं और अष्टाक्षर मन्त्र इनके मथने से अमृत की तरह प्रकट हुआ है। **पेरियतिरुमोळी 1.4.4** - हे मन ! अलकनन्दा गंगा के तट पर अवस्थित बद्रिकाश्रम में नर ऋषि - नारायण ऋषि के रूप वाले भगवान् को भज जिन्होंने दयालुतावश भक्तों की बाधाओं को दूर किया। उन्होंने हमारे स्वरूप को बताने वाले शास्त्रों को स्पष्ट किया। **पेरियतिरुमोळी 10.6.1-** नर-नारायण भगवान् ने पावन शास्त्रों के सार बताये। लोकाचार्य स्वामी **मुमुक्षुपडी 5-7 -** चेतनों को परमपद देने के विचार से भगवान् ने शिष्य (नर) एवं आचार्य (नारायण) होकर मूलमन्त्र को प्रकाशित किया। आचार्य का आदेश तब प्रभावी होता है जब शिष्य आचरण में लाये। सभी शास्त्रों से मिलनेवाला ज्ञान स्वयं के श्रम से अर्जित धन की तरह है। मन्त्रोपदेश से मिलनेवाला ज्ञान विना श्रम के अर्जित पितृधन के समान है।

चूर्णिका - 17

संसारी बद्ध जीव के कल्याण हेतु कृपालु भगवान् ने शास्त्रों के सार मूल मन्त्र (अष्टाक्षर मन्त्र) को बताया। उन्होंने कैसे और किनके हित के लिए इस रहस्य को प्रकट किया ?

मूल त.- **मुनिवरै इडुक्कुम् मुन्नीर वण्णनायुम् वेळ्ळियिट्टा शास्त्र तात्पर्यङ्गळ्ळुक्कु विशिष्ट निष्कृष्ट वेषङ्गळ् विषयम् ।**

सूत्र सं. 17- मुनीन् प्रगृह्य जलवर्णो भूत्वा प्रकाशितयोः शास्त्रतात्पर्ययोर्वि-शिष्टनिकृष्टवेषौ विषयौ।

सामान्य अर्थ - भगवान् ने स्वयं मूल मन्त्र को प्रकट किया और मुनियों ने यह बताया कि इसके लाभार्थी कौन होंगे।

विशेषार्थ - **तिरुवायमोळी 10.7.7** - महान ज्ञान वाले ऋषि - मुनियों ने पुराणों के माध्यम से हमारे अज्ञान को मिटाने के उपाय बताये। स्वयं भगवान् ही इन मुनियों के स्वरूप में प्रकट हुए। **श्रीविष्णुपुराण 3.4.5** -

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् । को हि अन्यो पुण्डरीकाक्षन् महाभारतकृद्भवेत् ।। कृष्णद्वैपायन व्यास को नारायण जानो। कमलनयन भगवान् को छोड़कर महाभारत की रचना कौन कर सकता है ! अन्तर्यामी परमात्मा सबके हृदय में बसते हैं। इसी कारण से शरीरधारी जीवात्मा शास्त्रों के साधक हो सकते हैं। परकाल स्वामी **पेरियतिरुमोळी 1.4.10** - अलकनन्दा गंगा तट पर बसनेवाले श्यामवदन बद्रिकाश्रम के प्रभु ने जीवात्मा के शरीर का विचार छोड़कर मात्र उसके उद्धार के लिए मूलमन्त्र

का उपदेश दिया। स्पष्ट है कि सामान्यतया शास्त्र का ध्येय शरीर है जबकि उसका सार मूल मन्त्र आत्मा के उद्धार पर केन्द्रित है।

चूर्णिका - 18

शास्त्र तथा उसका सार मूल मन्त्र की साधना केवल विशेष लोगों के लिए है क्या ? यहाँ इसे स्पष्ट किया गया है।

मूल त.- **तोल् पुरैये पोमदुक्कुप् पळुदिला योग्यदै वेणुम् मनमुडैयीर इङ्गिट्र श्रद्धैये अमैन्द मर्मस्पर्शिक्कु नानुम् नमरुम् इन्नुम्बदि सर्वरुम् अधिकारिगळळ ।**

सूत्र सं 18- चर्मस्पर्शनैव गच्छतो निर्दोषयोग्यताऽपेक्षिता। मनःशालिन इत्युक्तश्रद्धामात्रापेक्षस्य मर्मस्पर्शिनोऽहं मदीया इति सर्वेऽधिकारिणः।

सामान्य अर्थ - जो शास्त्र केवल शरीर को महत्व देता है उसके लिए व्यक्ति को विशेष योग्यता चाहिए। आत्मोद्धारक मूल मन्त्र के लिए दृढ़वती इच्छावाले सभी योग्य होते हैं।

विशेषार्थ - भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 42** - निष्कलंक, उत्तम कुलवाले, चारों वेद में निष्णात सांसारिक सुख-साधन के साथ आत्मोद्धार के लिए पर्याप्त योग्यता वाले हैं। जबकि मूलमन्त्र के लिए केवल इच्छा-शक्ति ही पर्याप्त है। सबकोई इसके लिए योग्य हैं। **तिरुवायमोळी 10.5.1** - भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की चाहवाले नारायण नाम का स्मरण करें। **पाञ्चरात्र - "श्रद्धैवै कारणं पुंसां अष्टाक्षर परिग्रहे"** - अष्टाक्षर सीखने के लिए केवल

इच्छा चाहिए। परकाल स्वामी **पेरियतिरुमोळी 6.10.6** - भक्तगण हमारे साथ **"नमो नारायणाय"** दुहरायें । स्पष्ट है कि शास्त्र के लिए विशेष योग्यता चाहिए परन्तु शास्त्रों के सार मूलमन्त्र के लिए कोइ योग्यता नहीं चाहिए।

चूर्णिका - 19

शास्त्र के मुमुक्षु तथा मूलमन्त्र के मुमुक्षु की स्थिति का वर्णन ।

मूल त. - **शास्त्रिगळळ तेप्पक्कैयरैप्पोले इरण्डैयुम् इडुक्कीप् पिट्रिविक्कडलै नीन्द सारग्यर् विट्टत्तिलिरुप्पारैप् पोले इरुकैयुम् विट्टुक्करै कुड्गुम् कालम् एण्णुवर्गळळ्** ।

सूत्र सं. 19- शास्त्रिणः प्लवहस्ता इवोभयं गृह्णन्तो जन्मसागर तरेयुः। सारज्ञा नौकास्था इवोभयहस्तमपि विहाय तीरं कदा सन्निदध्यात् इति चिन्तयेयुः।

सामान्य अर्थ - शास्त्र के प्रेमियों की स्थिति उस तैराक जैसी है जो नदी को अपने बल से तैरकर पार करना चाहता है। जबकि मूलमन्त्रवाले जहाज पर चढ़कर आराम से नदी को पार करनेवाले जैसे हैं।

विशेषार्थ - बृहदारण्यक उपनिषद् 2.4.5 - आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। हे मैत्रेयी ! परमात्मा के साक्षात्कार हेतु उनकी महिमा, लीलाचरित्र, दिव्यगुणों तथा ऐश्वर्यों की कथा सुननी चाहिए, उसपर मनन करना चाहिए और पुनः पुनः विचार करना चाहिए। परमात्मा की इसतरह गौरवगाथा से प्रशंसा करते हुए उनकी पूजा करे। **मुण्डक उपनिषद्**

2.2.5 - अमृतस्यैष सेतुः - अमृतस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने का सेतु परमात्मा स्वयं हैं। **मुण्डक उपनिषद्** 2.2.6 - **ओमित्येवं (ओम् इति एवम्) ध्यायथ आत्मानम्** - प्रणव के साथ परमात्मा का ध्यान करे। **ब्रह्मसूत्र 3.2.37 - फलमत उपपत्तेः** - यह कहना युक्तिसंगत है कि भगवान् ही सब कर्मों के फलदाता हैं। **तिरुवायमोळी 2.8.1 -** भगवान् की कृपा से संसार सागर पार किया जा सकता है। जब कोइ तैराक तैरते समय एक हाथ से नाव को पकड़ता है तथा दूसरे हाथ से तैराकी करता है तब नाव रूपी सहारा ही भगवान् की कृपा के समान है।

जिसको मूल मन्त्र की अच्छी समझ हो जाती है वह अपना प्रयत्न छोड़कर भगवान् को ही एकमात्र उपाय समझता है। **विष्णुधर्मोत्तर - संसारार्णव मग्नानाम् विषयाक्रान्त चेतसाम्। विष्णुपोतं विना नान्यत् किञ्चदस्ति पारायणः।।** जन्म-मरण के जाल में फँसे वासनाग्रस्त जीव को भगवान् विष्णुरूपी नाव को छोड़कर संसार सागर से पार उतारने वाला कुछ भी नहीं है। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 5.4** - वैकुण्ठन् रूपी नाव । भगवान् के ज्ञान, शक्ति आदि पर से ध्यान हटाकर पारतन्त्र्य (भगवान् पर ही पूर्ण आश्रय) को उपाय मानना है। **तिरुवायमोळी 6.9.9** - क्या अभी भी दिव्यचरणों में लगने का समय नहीं आया है ? **तिरुवायमोळी 1.2.9** - इस जीवन के अन्तहोने के बाद ही परमपद के कैंकर्य का अवसर मिलेगा।

चूर्णिका - 20

शास्त्र को जाननेवाले जो अपने प्रयत्न पर भरोसा करते हैं, और जो शास्त्रों के सार मूलमन्त्र को सीखकर एकमात्र भगवान् के भरोसे रहते हैं, यहाँ इनकी इस तरह की प्रवृत्ति के कारण समझाये गये हैं।

मूल त.- **इवै स्वरूपत्तै उणर्नदु उणर्नदु उणरवुम् उणर्वैप् पेट्रवूर उनिगवुणरवुम् उण्डाम् ।**

सूत्र सं 20- इदं स्वरूपं ज्ञात्वा ज्ञात्वा ज्ञाने ज्ञानं प्राप्तुं प्रवर्तयति सम्यग्ज्ञाने च स्यात्।

सामान्य अर्थ - शास्त्री अपने पर तथा भगवान् पर भरोसा रखते हैं, जबकि सारज्ञ भगवान् की कृपा से तत्त्व को जानकर उन्हीं के ही भरोसे रहते हैं।

विशेषार्थ - **तिरुवायमोळी 1.3.6** - यद्यपि शास्त्र से प्रेम रखने वाले शास्त्री लोग शरीर तथा रूपहीन (बिना लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई वाले) आत्मा के अन्तर को जान चुके हैं, परन्तु इससे उन्हें भगवान् का साक्षात्कार नहीं होगा। **तिरुवायमोळी 8.8.3** - नैसर्गिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रभु की मृदु कृपा की आकांक्षा से उन्हें उनकी ही कृपा से अपने हृदय में रखा। आपने यह आभास कराया कि चैतन्य शरीर, जीवन एवं संग्रहण सब व्यर्थ हैं। **तिरुमालै 38** - शरीर एवं आत्मा के अन्तर के तत्त्वज्ञान को स्पष्ट रूप से जानते हुए ज्ञान एवं आनन्द प्राप्त करने वाली आत्मा को जाननेवाले का भगवान् तथा भागवत के ऊपर पूर्ण भरोसा रहता है। अपना सब भार भगवान् के ऊपर छोड़कर कोइ भी प्रयत्न करने से मुक्त रहता है।

चूर्णिका 21 -

आत्मा का **शेषत्व** (सेवा करनेवाला) एवं **ग्यातृत्व** (ज्ञानवाला) स्वाभाविक स्वरूप है। **भोक्तृत्व** (आनन्द लेनेवाला) **ग्यातृत्व** का परिणाम / फल है। भगवत् अनुभव ही भोक्तृत्व है - **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति - (तैत्तिरीय उपनिषद् 2.1**) वह भगवान् के साथ रहता हुआ उनके सभी दिव्यगुणों का आनन्द लेता है, अर्थात् सब प्रकार के भोगों को अलौकिक ढंग से अनुभव करता है। **बृहदारण्यक उपनिषद् 6.3.10 - न हि विज्ञातुर् विज्ञातेर् विपरिलोभो विद्यते** (आत्मा के ज्ञान का नाश नहीं होता)। **जानाति एवायं पुरुषः** (आत्मा को पुरुष ज्ञात है)। शास्त्रों के ज्ञान से जीवात्मा इस तरह समझता है। शास्त्रों के सार मूलमन्त्र से ओत-प्रोत रहने पर स्वरूप **पारतन्त्र्य** (भगवान् पर पूर्णतया आश्रित होना) और **भोग्यता** (उन्हीं के मुखविलास) हेतु का अनुभव होता है।

मूल त.- **शेषत्व भोक्तृत्वङ्गळ् पोलन्ट्रे पारतन्त्र्य भोग्यतैगळ्**

सूत्र सं. 21- शेषत्वभोक्तृत्वे इव न भवतः पारतन्त्र्यभोग्यत्वे।

सामान्य अर्थ - पारतन्त्र्य एवं भोग्यता, शेषत्व तथा भोक्तृत्व से श्रेष्ठ माना जाता है।

विशेषार्थ - "**इष्ट विनियोग अर्हता मात्रम्**" इच्छा के अनुसार सर्वदा जीवात्मा को उपलब्ध रहनेवाले को शेषत्वम् कहते हैं। **पुरुषसूक्त - पतिं विश्वस्य -** भगवान् ही समस्त विश्व के सार्वभौम स्वामी हैं। कहा है- **यस्यास्मि -**

जिसका मैं बन्धुआ दास हूँ। शेषी (प्रभु) की इच्छा पर जीवात्मा का सर्वदा उपलब्ध रहना ही पारतन्त्र्य है। शेषत्व स्वर्ण के एक टुकड़े की तरह है जिससे आवश्यकतानुसार कोई आभूषण बनाया जा सके, परन्तु पारतन्त्र्य बने बनाये आभूषण की तरह है जिसे जब चाहे पहना जा सके। ज्ञान के आधार पर आनन्द लेनेवाले भोक्तृत्वम् का सहारा लेते हैं। भोग्यता किसी वस्तु के सहज स्वाद से जुड़ा है। भोग्यता लक्ष्य है, जबकि भोक्तृत्वम् स्वाद चखने का एक बनावटी उपाय है।

चूर्णिका 22 -

मूलमन्त्र जीवात्मा को अपने सहज स्वरूप का बोध कराता है। यह **"प्रणव (ॐ)", "नमः"** तथा **"नारायणाय"** तीन शब्दों से बना है।

- **अ** (भगवान्), **उ** (एकनिष्ठता), **म** (जीवात्मा) के संयोग से **ॐ** बना है। जीवात्मा एक मात्र भगवान् के लिए है, यही एकनिष्ठता है। यह शेष-शेषी (सेवक-स्वामी) सम्बन्ध का बोध कराता है।
- **न** एवं **मः** ही **नमः** है। इसका भाव है कि मैं अपने लिए नहीं हूँ। इससे सम्पूर्ण समर्पण का अनुभव होता है। तात्पर्य है कि जीवात्मा भगवान् को ही एक मात्र रक्षक मानता है।
- **नारायणाय** = **नार** + **अयन** + **आय।**
- **नार** + **अयन** के दो अर्थ हैं। 1) सभी शाश्वत जड़ एवं चेतन भगवान् में बसते हैं, उन्हीं पर आश्रित हैं। 2) भगवान् समस्त जड़-चेतन में अन्तर्यामी के रूप में बसते हैं।

• **आय** का अर्थ, भगवान् की सेवा में रहना ही लक्ष्य है।

मूल त.- **ग्यान चतुर्तिगळ्ळिळन् मेलेयिट्रे आनन्द षष्टिगळ्ळुक्कु उदयम्**

सूत्र सं. 22 - स्वरूपयाथात्म्यप्रकाशके मूलमन्त्रे दृश्यत इत्याह ज्ञानेति।

सामान्य अर्थ - प्रणव के **मकार** का ज्ञान भोक्तृत्व का प्रतीक है, और इसमें चतुर्थी विभक्ति का लोप शेषत्व (कैंकर्य) को बताता है। **नारायणाय** की चतुर्थी विभक्ति आनन्द से समाहित है। **नमः** पारतन्त्र्य (भगवान् पर पूर्ण भरोसा) की अभिव्यक्ति है।

विशेषार्थ - जीवात्मा के स्वरूप में शेषत्व तथा भोक्तृत्व शास्त्र के अर्जित ज्ञान के कारण है, परन्तु पारतन्त्र्य एवं भोग्यता इसका सहज स्वरूप है। सामान्यतया, प्रणव का मकार जीवात्मा को भगवत् कैंकर्य के कारण अपने प्रयत्न से भोक्तृत्व अर्थात् अपने लिए आनन्द / प्रसनन्ता प्राप्ति करने का बोधक है। यह अन्ततः भगवान् की प्राप्ति में विघ्नकारक है क्योंकि जीवात्मा अपनी ही प्रसनन्ता में मुग्ध रहता है।

इसके विपरीत, अष्टाक्षर के **"नमः"** का **"म"** भी जो जीवात्मा का प्रतीक है, **"नमः"** के **"नकार"** से अपने लिए कोई आनन्द की आकाँक्षा नहीं रखता है। विद्वान् सन्तगण **"नमः"** में आनेवाले षष्टी की विभक्ति से युक्त **"मः"** को **काकाक्षि न्याय** से सम्पूर्ण मूलमन्त्र के लिए प्रयुक्त बताते हैं। काकाक्षि कौए की आँख है जो चारों तरफ घूमती है। और यह **"नमः"**

"प्रणव के मकार" पर भी लागू होता है। फलस्वरूप शेषत्व तथा भोक्तृत्व से पारतन्त्र्य एवं भोग्यता की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।

श्रीमते शठकोपाय नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः

3.मणिप्रवाल में मूल चूर्णिका, सामान्य अर्थ एवं विशेषार्थ

चूर्णिका - 23

पारतन्त्र्य एवं शेषत्व को और स्पष्ट करना

मूल त.- मुळ्ळैत्तेळुन्द सूर्यतुल्य याथात्म्य चरमम् विदियिल काणुम् प्रथम मध्यम दशैगळ्ळैप् पगल् विळ्ळक्कुम् मिन्मिनियुम् अक्कुम्

सूत्र सं. 23- उदिताभिवृद्ध सूर्य्यतुल्ययाथात्म्याऽवस्था भूतं चरमं विधौ दृश्यमाने प्रथममध्यमदशे दिवादीपं खद्योतं च कुर्यात्।

सामान्य अर्थ - पारतन्त्र्य एवं भोग्यता जीवात्मा के स्वाभाविक मौलिक स्वरूप हैं जो उगते सूर्य की तरह चमकते रहते हैं। शेषत्व एवं भोक्तृत्व प्रारम्भिक तथा बीच के स्वरूप हैं जो चमकते सूर्य के प्रकाश की तुलना में दिन में जलते दीपक एवं जुगनु की तरह फीके प्रकाश वाले हैं।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 1** - आत्मस्वरूप को प्राप्त करनेवाला ज्ञान पहाड़ों के बीच से ऊपर उगनेवाले चान्द की तरह है। **श्रीविष्णुपराण 6.5.62 - यथा सूर्यस्तथा ज्ञानम्** - ज्ञान सूर्य की तरह है। पारतन्त्र्य एवं भोग्यता ही जीवात्मा का मौलिक **याथात्म्य स्वरूप** है। परकाल स्वामी ने आत्म-साक्षात्कार ज्ञान को उगते चान्द के उदाहरण से

समझाया है। जैसे चान्द शीतल प्रकाश देनेवाला भगवान की अद्भुत् देन है, उसीतरह पारतन्त्र्य एवं भोग्यता **याथात्म्य स्वरूप** ज्ञान है जो भगवान् की कृपा से मिला है। चूर्णिका 20 द्रष्टव्य। परकाल स्वामी **तिरुक्कुरुदाण्डगम् 18** - शास्त्र के अनुरूप श्रवण, मनन आदि से शेषत्व का प्रारम्भिक ज्ञान मिलता है। इसके फलस्वरूप बीच की अवस्थावाला भोक्तृत्व का ज्ञान मिलता है। यह चरम अवस्थावाले पारतन्त्र्य एवं भोग्यता के ज्ञान के प्रकाश के समक्ष अनुपयोगी दिन के दीपक तथा जुगनु के अतिमन्द प्रकाश की तरह है।

मूलमन्त्र के प्रणव (ॐ) के पहले अक्षर "**अ**" में चतुर्थी विभक्ति के लोप से शेषत्व का बोध होता है। यह प्रणव के अन्तिम अक्षर जीवात्मा के प्रतीक "**म**" में स्थित होकर ज्ञातृत्व के कारण भोक्तृत्व कारक होता है और फलस्वरूप जीवात्मा स्वयं आनन्दित होता है। मूलमन्त्र के "**नमः**" पद से पारतन्त्र्य तथा "**नारायणाय**" से जीवात्मा को भोग्यता अर्थात् भगवान् को प्रसन्न रखने का गुण प्राप्त होता है। अतः पारतन्त्र्य - भोग्यता को शेषत्व - भोक्तृत्व से श्रेष्ठ माना गया है।

चूर्णिका 24 -

स्वरूप ज्ञान तथा याथात्म्य स्वरूप ज्ञान में किसका परित्याग और किसे ग्रहण करें।

मूल त.- नालिल ओन्ड्रु प्रवर्तकम्, ओन्ड्रु निवर्तकम्

सूत्र सं. 24- चतुर्षु एकं प्रवर्त्तकम् एकं निवर्त्तकम्।

सामान्य अर्थ - शेषत्व (सेवा), भोक्तृत्व (स्वयं आनन्द लेना), पारतन्त्र्य (सम्पूर्ण समर्पण) तथा भोग्यता (आनन्द देने की वस्तु) में भोकतृत्व स्वयं के प्रयत्न के कारण प्रवृत्तिपरक है। परन्तु भोग्यताके कारण जीवात्मा अपने सब प्रयत्नों से निवृत्त हो जाता है।

विशेषार्थ - जीवात्मा का **याथात्म्य स्वरूप** उसे भगवान् का भोग्य बनाता है। वे इसे पाकर प्रसन्न होते हैं। भगवत् प्राप्ति के लिए जीवात्मा को स्वयं किसी उपाय का सहारा नहीं लेना पड़ता है।

चूर्णिका 25 -

जो भगवत् कैंकर्य करते हैं वे भी शेषत्व गुणवाले हैं। तब उनका भोक्तृत्व गुण प्राप्त करने का क्या उद्देश्य है ?

मूल त. - मुड्ग्पाडरक्कु क्रियांगमानवै इरण्डुम् सेयल तिन्दीर वृत्तियिल स्वनिर्बन्धम् अड्ङ्क्कुम्

सूत्र सं. 25- पूर्वेषां क्रियांगम् एतदुभयमपि व्यापारान्निवृत्तानाम् वृत्तौ स्वनिर्बन्धं छिन्द्यात्।

सामान्य अर्थ - शास्त्र से पूर्णतया अवगत उपासकों के लिए शेषत्व - भोक्तृत्व उनकी उपयोगी क्रियायें होती हैं।

विशेषार्थ - भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 88** - प्रभु का नाम गाते, ध्यान करनेवाले अपने कर्मों का क्षय करते हैं। अन्य उपायों का सहारा छोड़नेवालों के शेषत्व-भोक्तृत्व भी प्रभु को प्रसन्न करता है। भगवान् को महिमान्वित करनेवाला शेषत्व (कैंकर्य) जीवात्मा की राह के सभी रोड़ों को दूर करता है। जो पारतन्त्र्य - भोग्यता से पूर्णतया अवगत रहते हुए भोक्तृत्व से प्रसन्न रहता है, वह भी भगवान् की प्रसन्नता होती है। रामानुज स्वामी **श्रीभाष्य - परगतातिशयाधानेच्छय उपादेयत्वमेव यस्यरूपं स शेषः।** जब कोई अपनी (जीवात्मा) स्वेच्छा से प्राप्त स्वरूप से दूसरे में (भगवान्) रुचि उत्पन्न कर दे तो उस रूप को दासत्व कहते हैं। तात्पर्य है कि अपनी इच्छा (भोक्तृत्व) को गौण करके भगवान् की इच्छा (भोग्यता)

को प्रधानता देना ही शेषत्व है। **तैत्तिरीय उपनिषद् 3.10 - अहम् अन्नम् अहम् अन्नम् अहम् अन्नम्** - भगवान् मुझसे आनन्दित होंगे .... आनन्दित होंगे। **अहम् आनन्दः...**मैं भगवान् से आनन्दित हूँ।

चूर्णिका 26 -

ऐसे जीवात्मा के लिए कर्म तथा कैंकर्य की समानता को क्रिया एवं वृत्ति से समझाया है।

मूल त.- कर्म कैंकर्यन्गळ् सत्य असत्य नित्य अनित्य वर्ण दास्य अनुगुणन्गळ्

सूत्र सं. 26 - कर्मकैङ्कर्ये सत्यासत्य नित्यानित्य वर्णदास्याऽनुगुणे।

सामान्य अर्थ - अस्थाई वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित क्रिया क्षणिक है। भगवत् कैंकर्य का दासभाव चिरन्तन सत्य है।

विशेषार्थ - शरीर किसी वर्णाश्रम से जुड़ सकता है, परन्तु आत्मा पर यह लागू नहीं होता है। शरीर छूटने पर वर्णाश्रम के संबन्ध का अन्त हो जाता है तब क्रिया का भी अन्त हो जाता है। क्रिया की नश्वरता शरीर की नश्वरता से जुड़ा है। एक ही जीवात्मा एक-एक करके अनेकों शरीर में

घूमता है। जीवात्मा सनातन है, शरीर की तरह वह नश्वर नहीं है। इसीलिए उसका भगवान् से सेवक का नाता स्थाई एवं नित्य है।

चूर्णिका 27 -

क्रिया एवं कैंकर्य का प्रेरक कौन है ?

मूल त.- इवट्ट्रुक्कु विधिरान्गळळ् प्रेरेरकन्गळळ्

सूत्र सं. 27- अनयोर्विधिरागौ प्ररकौ।

सामान्य अर्थ - कृत्य-अकृत्य के नियम एवं इच्छा शक्ति प्रेरक होते हैं।

विशेषार्थ - यजुर्वेद का विधान - **यजेत्** - यज्ञ करो। कर्म मीमांसा का विधान- **जुहयात् -** हवन करो आदि कर्म के प्रेरक हैं। **शरणागति गद्य** में श्रीरामानुज स्वामी ने कहा है - **भगवद्नुभव जनित अनवधिक अतिशय प्रीतिकारित अशेषावस्थोचित अशेषशेषतैकरतिरूप नित्यकिङ्करो भव** - सभी तरह के कैंकर्य से भगवान् की प्रीति का अनुभव होता है। **तिरुवायमोळी 10.8.10** - हमारे प्रभु ! आपकी सुखद सेवा करके हमें आपके चरण मिल गये।

चूर्णिका 28 -

मूल त.- मण्डिनारुम् मट्ट्रैयारुम् आश्रयम्

सूत्र सं. 28- अनयोराश्रयोभिनिविष्टा अन्ये च।

सामान्य अर्थ - कर्म के स्थान शास्त्र के नियम हैं, और कैंकर्य के स्थान दिव्यदेश हैं।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **तिरुक्कुरुन्दाण्डगम् 18** - जो शास्त्रिय रीति का अनुसरण करके भगवान् को प्रकाशपुञ्ज के रूप में देखते हैं, वे लोग कर्म के आश्रय स्थान हैं। **तिरुक्कुरुन्दाण्डगम् 19** - तिरुक्कण्डियूर, श्रीरङ्गम्, तिरुमेय्यम्, काञ्चीपुरम्, तिरुप्पेर नगर, तिरुक्कडलमल्लै आदि दिव्यदेश के अर्चाविग्रह के भगवान् की पूजा छोड़ मुक्ति के अन्य उपाय नहीं हैं।

चूर्णिका 29 - कौन कर्म और कौन कैंकर्य के लिए सुगम हैं।

मूल त.- अरुळळ् मुदिय निड्डत्ति अडैय निन्ट्रदुम् नल्लदोररुळळ् तन्नाले नन्ड्डम् इळिळयनागिट्रदुम् विषयम्

सूत्र सं 29- कृपापूर्त्यर्थे स्थापयित्वा यथा प्राप्नुयुस्तथा स्थिताः समीचीना द्वितीयकृपया सुलभश्च विषयः।

सामान्य अर्थ - शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले देवतागणों को पूजते हैं। भगवान् इन देवताओं के अन्तर्यामी हैं। कैंकर्य के साधकों को दिव्यदेश के अर्चाविग्रह सुलभ होते हैं।

विशेषार्थ - भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 2** - सभी कर्मों की तपस्या का फल चक्रधारी प्रभु ही देते हैं। **तिरुवायमोळी 5.2.8** - प्रभु ही सब देवों के रूप में विराजते हैं। सभी देवों को अर्पित कर्मों का फल आप ही देते हैं। भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 10** - भगवान् अतिशय करुणा करके श्रीरङ्गम् में प्रकट हुए। **तिरुवायमोळी 3.6.11** -हृदय के प्रिय भगवान् हृदय के अनुभव से मिलते हैं।

मूल त.- इवट्ट्राले साधारणम् असाधारणम् एन्नुम्

सूत्र सं. 30- अतः साधारणमसाधारणमित्युच्यते।

विशेषार्थ - देवताओं के अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्यामी होने से कर्म की साधारण अवस्था होती है। कैंकर्य के अर्चाविग्रह प्रत्यक्ष होने से कैंकर्य असाधारण (अतिउत्तम) अवस्था की होती है।

चूर्णिका 31 -

कैंकर्य करनेवालों के लिए सामान्य कर्म गौण होते हैं।

मूल त. - जात्याश्रम दिक्षैगळ्ळिल भेदिक्कुम् धर्मन्गळळ् पोले अत्ताणिच्छेव-गत्तिल पोदुवानदु नळुवुम्

सूत्र सं. 31- जात्याश्रमदीक्षासु विभिन्ना धर्मा इवान्तरङ्गदास्ये साधारणं च्यवते।

विशेषार्थ - **आपस्तम्ब सूत्र - स्वकर्मब्राह्मणस्य अध्ययनम् अध्यापनं यज्ञो याजनम् दानं प्रतिग्रहणम् दायाद्यं शिलोञ्छोऽन्यच्च अपरिग्रहम् एतान्येव क्षत्रियस्याध्यापन-याजन प्रतिग्रहाणीति परिहार्यं दण्डयुद्ध अधिकानि। क्षत्रियवद् वैश्यस्य दण्डयुद्धवर्जं कृषिगोरक्षवाणिज्याऽधिकम्।** अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना तथा कराना, दान देना तथा लेना ये छः ब्राह्मण के कर्म हैं। खेत से अन्न चुनकर खाना तथा उदारतापूर्ण दयाभाव आदि ब्रह्मण की वृत्ति है। क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए अध्यापन-यज्ञ कराना-दान लेना ये तीन त्याज्य हैं। इसके अतिरिक्त युद्ध करना तथा दण्ड देना क्षत्रिय के कर्तव्य हैं। वैश्य को गोपालन, खेती तथा व्यापार करना उनके कर्तव्य हैं। **शुश्रुषा शूद्रस्य इतरेषां वर्णानाम् -** अन्य तीनों वर्ण की इच्छा की पूर्ति करना तथा तदनुरूप फल प्राप्त करना ये शूद्र के कार्य हैं।

शास्त्र से प्रत्येक वर्ण के लिए उनकी अवस्था (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के अनुसार अलग-अलग कर्मों के प्रावधान हैं। **मनुस्मृति 6.03 - सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।** वानप्रस्थ की दशा में कृषिकार्य से प्राप्त आहार का त्याग करते हुए गाँव व नगर को छोड़ वन चला जाये। **मनुस्मृति 6.06- वसीत चर्म चीरं वा।** मृगचर्म या वल्कल वस्त्र धारण करे। संन्यास दशा - **मनुस्मृति 6.25- अनग्निः अनिकेतः स्यात्।** अग्नि तथा घर भी त्याग दे।

दीक्षित जनों के लिए भी सबके कर्म अलग रूप से बताये गये हैं। स्वरूप याथात्म्य दर्शियों को जो अपने मौलिक स्वरूप को जानते हैं यद्यपि ऊपर्युक्त वर्ण-आश्रम के कृत्य ऐक्षिक और गौण होते हैं तथापि शिष्ट लोग एवं आचार्य के बताये मार्ग का अनुसरण करते हैं। श्रीविष्णुचित्त स्वामी **तिरुप्पलाण्डु 8-** प्रसाद, आभूषण तथा चन्दनादि प्रभु के अनुग्रह से मिला है। संसार के लोगों के कल्याण हेतु भगवान् ने भी **गीता 3.23 - 3.24** में कहा है - **यदि हि अहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।23। उत्सीदेयुः इमे लोका न कुर्यां कर्म चेत् अहम्। सङ्करस्य च कर्ता स्याम् उपहन्याम् इमाः प्रजाः।24।** भाव है कि मनुष्य-

देहधारी भगवान् भी जो कर्म करते हैं वे सांसारिकों को अनुसरण करने हेतु ही करते हैं। इस तरह से वे लोग अपने आपको विनाश से बचा लेते हैं।

चूर्णिका 32 -

भगवत् कैंकर्य एवं सांसारिक कर्म में कोई सहभागिता नहीं है।

मूल त.- साधना साध्यन्गळिळल मुदलुम् मुडिवुम् वर्णधर्मिगळळ् दासवृत्तिगळळ् एन्ड्रु तुट्रैवेट्रिडुवित्तदु।

सूत्र सं. 32- साधनसाध्ययोराद्यं तौ वर्णधर्मिणो दासवृत्तिनश्च इति घट्टं पृथक्कुरुतः।

विशेषार्थ - साधना का पहला उपाय कर्म है और लक्ष्य भगवान् का कैंकर्य है। वर्णधर्मी सर्वदा शास्त्र के कर्म में ही लगे रहते हैं। दास्यवृत्तिवाले भगवान् के कैंकर्य को ही प्रधान मानते हैं। तिरुवहिन्दपुरम् (तमिलनाडु में कडलोर समुद्र के किनारे वेदान्त देशिक स्वामी का साधनास्थल, चिदम्बरम के समीपस्थ) में एक जीयर स्वामी उस घाट पर स्नान नहीं करते थे जहाँ वर्णधर्मी लोग स्नान करते थे। उनका घाट अलग था। एक दिन एक ब्राह्मण ने उनसे पूछा कि आप हमलोगों के घाट पर स्नान क्यों नहीं

करते हैं ? उन्होंने कहा कि वर्णधर्मी और दास्यवृत्तिवालों के लक्ष्य अलग होने के कारण उनमें सहभागिता का अभाव है। इसीलिए हमारा घाट अलग है। प्रामाणिक कथन है - **विष्णोर्दासा वयं यूयं ब्राह्मणा वर्णधर्मिणः अस्माकं दासवृत्तीनां युष्माभिर्नास्ति संगतिः।** हे ब्राह्मणगण! आपलोग अपने वर्ण के अनुसार कर्म करनेवाले हो जबकि मैं भगवान् विष्णु का कैंकर्य करनेवाला श्रीवैष्णव हूँ। अतः आपकी और हमारी संगति नहीं हो सकती।

चूर्णिका 33 -

कर्म में रत रहनेवाले और कैंकर्य के लक्ष्यवाले की वृत्ति जन्म से ही अलग होती है।

मूल त.- वेद वित्तुक्कळ्ळुम् मिक्क वेदियरुम् छन्दसाम् मातावालुम् अदुक्कुम् तायाय्तायिनुम् आयिन सेय्युम् अत्तालुम् पिट्प्पिक्कुम् अदु इरुवर्क्कुम् श्रेष्ठजन्मम्

सूत्र सं. 33- वेदविदोऽतिशयित वेदविदश्च छन्दसां मात्रा तस्या अपि मात्रा मातुः प्रियतमतया चोत्पादयन्ति । एतदुभयोः श्रेष्ठं जन्म।

विशेषार्थ - गुरु की दीक्षा से ज्ञान का शरीर मिलता है जिसे पुनर्जन्म कहते हैं। **महाभारत वन प. 88.25 - ये च वेदविदोविप्राः ये च आत्मविदो जनाः।** वेद के पूर्वभाग में निष्ठावाले कर्मकाण्डी हैं। '**आत्मविदो जनाः**' आत्मतत्त्व के ज्ञानी वेदान्त निष्ठावाले वेद के मर्म जाननेवाले हैं। **तैत्तिरीय उप. - गायत्रीच्छन्दसां माता।** वेद जाननेवाले का पुनर्जन्म सभी छन्दों की माँ गायत्री मन्त्र की दीक्षा से होता है। **पाञ्चरात्र - ऋचो यजूंषि सामानि तथैव आथर्वणानि च। सर्वम् अष्टाक्षरन्तःस्थं यच्चान्यदपि वाङ्गमयम्।।** अष्टाक्षर मूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) में ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद तथा इतिहास-पुराणादि का सार समाहित है। वेद-तात्पर्य जाननेवालों का पुनर्जन्म गायत्री मन्त्र की माँ मूलमन्त्र की दीक्षा से होता है। परकाल स्वामी **पेरिया तिरुमोळी 1.1.9** - मूलमन्त्र माँ से भी अधिक उदार है। **आपस्तम्ब सूत्र - स हि विद्यातः तं जनयति तत् श्रेष्ठं ज्ञानम्।** शरीर देने वाली माँ (गायत्री) से उज्जीवन देनेवाला ज्ञान (मूलमन्त्र) श्रेष्ठ है।

चूर्णिका 34 -

दोनों के अन्य पुकारु नाम से परिचय।

मूल त.- अन्दणर मट्रैयोर एन्ड्रुम् अडियार तोण्डरेड्डुमस इवर्गळ्ळुक्कु निरुपकम्

सूत्र सं. 34- ब्राह्मणा वैदिकाः इति दासा भक्ताः इति च एतेषां निरूपकम्।

सामान्य अर्थ - कर्मनिष्ठा वालों को तमिल में **अन्दणर** एवं **मट्रैयोर** कहते हैं। कैंकर्यनिष्ठा वालों को **अडियार** तथा **तोण्डर** कहते हैं।

विशेषार्थ - कर्मनिष्ठा वालों के कर्म वर्ण पर आधारित होते हैं और वर्ण शरीर से जुड़ा हुआ है। भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 43** - चार वेद तथा छः वेदांग पढ़नेवाले अपने को अगली श्रृंखला वाले **अन्दणर** (ब्राह्मण) कुल का अभिमान करते हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 1.5.9** - वैदिक **अन्दणर** (ब्राह्मण) अपनी छाती पर उपवीत का प्रदर्शन करते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 6.7.8** एवं **7.9.7** - परकाल स्वामी पूछते हैं कि प्रभु आप वैदिक **मट्रैयोर (**ब्राह्मण**)** की प्रतिद्वन्दिता या अग्नि-होम में हैं या भक्तों के हृदय में ?

कैंकर्यनिष्ठा वालों की पहचान वर्ण पर आधारित यज्ञोपवीत धारण या होमाग्नि - कार्य से न होकर उनकी **किञ्चित्कारत्वम्** (अल्प भगवत् सेवा) एवं **शेषत्व** की दृढ़ भावना से होती है। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरुमोळी**

1.10 - श्रीरङ्गम् रङ्गनाथ भगवान् के परिसर में उपस्थित भक्तों को **अडियार** कहा है। **तिरुवायमोळी 3.7.4** और **6.9.11** में **तोण्डर-तोण्डर** अर्थात् श्रीमन्नारायण के भक्तों के सेवक, तथा श्रीमन्नारायण के भगवद्भक्तों को **तोण्डर** कहा है।

चूर्णिका 35 -

क्या ये लोग केवल पुकारु नाम से या गाँव एवं किसी कुल-वंश के नाम से पहचाने जाते हैं ?

मूल- ओरु तलैयिल ग्रामकुलादि व्यपदेशम् कुलम् तरुम् एन्नुम् मासिल कुडिप पळियेन्ड्रु पदियागक् कोयिलिल वाळुम् एन्बर्गळळ्

सूत्र सं 35- एकत्र ग्रामकुलदिव्यपदेशः कुलं ददातीत्युक्त निर्दोषकुलापवाद इति वासिनः श्रीरङ्गे वर्द्धमाना इति वदन्ति।

सामान्य अर्थ - कर्मनिष्ठावाले गाँव तथा कुल-वंश को अपनी पहचान मानते हैं, जबकि कैंकर्यनिष्ठावाले कुल-वंश को निरर्थक मानते हुए अपने को दिव्यदेश (मंदिर - श्रीरङ्गम्, काञ्ची वरदराज आदि, तिरुपति-तिरुमला आदि) से जोड़ते हैं।

विशेषार्थ - कुल-वंशादि मात्र शरीर की पहचान है। इसमें अहंकार का भाव है। अतः शरीर को आत्मा माननेवाले का यह विश्वास त्रुटिग्रस्त है। शेषत्व को समझनेवाले ऐसा नहीं मानते। परकाल स्वामी **पेरियतिरुमोळी 1.1.9** - दिव्यनाम नारायण ही श्रेष्ठ कुल में जन्म देंगे। महय आळवार **मुन्-राम् तिरुवन्दादि 10** - भगवान् के नाम स्मरण से ऊँचाकुल मिलता है। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 8.9** - हाथी के समान तिरुवेङ्कटम् के काले बादल। **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.1.3 -** हम आपके भक्त हैं, आपका मन्दिर मेरा घर है। ये सब भगवान् तथा उनसे जुड़े स्थान आदि भक्तों को आश्रय देते हैं। **परमैकान्ति धर्म** में कहा है**- एकान्ती व्यपदेष्टव्यो नैव ग्रामकुलादिभिः, विष्णुना व्यपदेष्टव्यः तस्य सर्वं स एव हि।** भगवान् पर आश्रित अपने जन्मस्थान-कुल-वंशादि से न पहचाने जाकर भगवान् विष्णु के साथ अपने सम्बन्ध से जाने जाते हैं।

चूर्णिका 36 -

कर्मनिष्ठावाले तथा कैंकर्यनिष्ठावाले के पूर्वजों का वर्णन।

मूल - विप्रर्क्कु गोत्र चरण सूत्र कूटस्थर् पराशर पाराशर्य बोधायनादिगळ् ; प्रपन्नजन कूटस्थर् पराङ्कुश परकाल यतिवरादिगळ् ।

सूत्र सं. 36- विप्राणां गोत्रसूत्रचरणकूटस्थाः पराशरपाराशार्यबौधायनादयः प्रपन्नजनकूटस्थाः पराङ्कुशपरकालयतिवरादयः।

सामान्य अर्थ - पराशर, व्यास, बोधायन आदि को ब्राह्मणों के गोत्र, चरण तथा सूत्र के प्रधान पूर्वज कहा है। नम्माळ्वार, तिरुमङ्गै आळ्वार, रामानुज स्वामी आदि प्रपन्नों के पूर्वज होते हैं।

विशेषार्थ - ब्राह्मणों को तमिल में **अन्दणर** एवं **मट्रैयोर** से सम्बोधित करते हैं। इनके पराशर आदि गोत्र होते हैं। अमर शब्दकोश के अनुसार गोत्र, जनन, कुल, अभिजन्म तथा अन्वय समानार्थी हैं। वशिष्ठ, काश्यप, भरद्वाज, वत्स आदि विभिन्न गोत्र वालों के लिए पराशर पूर्वज के प्रतीक रूप में सम्बोधित किये गये। **चरण** शब्द वेद की शाखाओं को बताता है - जैसे, काटकम्, कलापम् आदि। व्यास ने वेद के कई भाग किये तथा कट, कलाप, कण्व आदि उसके प्रसारक अधिकारी बनाये गये। इसीलिए व्यास को **चरण** का पूर्वज कहा गया। **सूत्र** के पूर्वज बोधायन आदि कहे गये, क्योंकि कर्मानुष्ठान के सूत्र / कल्प के ये लोग निर्णायक कहे जाते हैं। **श्रीरङ्गराज स्तव उ. 18 - शिक्षायां वर्णशिक्षा** से अक्षरों के उच्चारण को बताया। **श्रीरङ्गराज स्तव उ. 18- कल्पेऽनुष्ठानम् उक्तम्** से कल्प सूत्र को

विभिन्न कर्मों के करने की विधि निर्धारित करने वाला कहा गया। बोधायन, आपस्तम्ब, आश्वलायन आदि विभिन्न सूत्रों के निर्धारक हैं। इसीलिए बोधायन को सूत्र के प्रतीक पूर्वज के रूप में बताया गया।

तमिल में प्रपन्नों को **अडियार एवं तोण्डर** कहा जाता है। इनके पूर्वज नम्माळ्वार, तिरुमङ्गै आळ्वार, रामानुज स्वामी आदि होते हैं। **श्रीपराङ्कुशाष्टकम् 5- पत्युः श्रियः प्रसादेन प्राप्त सर्वज्ञ सम्पदम् । प्रपन्नजनकूटस्थम् प्रपद्ये श्रीपराङ्कुशम् ।।** श्रीमन्नारायण की कृपा से प्राप्त पूर्ण ज्ञानवाले सर्वज्ञ नम्माळ्वार, जो प्रपन्नों के प्रधान पूर्वज हैं, हम उनकी शरणागति लेते हैं। मूल व्यक्ति को कूटस्थ कहते हैं जिन्होंने प्रपत्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इसीलिए इन्हें प्रपन्नजन कूटस्थ कहते हैं।

चूर्णिका 37 -

कर्मनिष्ठा से ब्राह्मण्यत्व तथा कैंकर्यनिष्ठा से वैष्णवत्व प्राप्त होते हैं।

मूल त.- अध्ययन ज्ञान अनुष्टाङ्गळाले ब्राह्मण्यम् आगिराप पोले चन्दनङ्गल आयिरमुम् अट्रियक्काट्टु वल्लारानाल वैष्णवत्व सिद्धि ।

सूत्र सं. 37- अध्ययनज्ञानानुष्ठानैर्ब्राह्मण्यमिवच्छंदांसि सहस्रं च ज्ञातुमभ्यसितुं शक्ताश्चेद् वैष्णवत्वसिद्धिः।

सामान्य अर्थ - जैसे वेद के ज्ञान और जीवन में उसके अनुशरण से व्यक्ति ब्राह्मण बनता है, उसीतरह तिरुवायमोळी के व्यवहारिक प्रयोग से वैष्णवता मिलती है।

विशेषार्थ - कहा है- **स्वाध्यायोऽध्येतव्य।** वेद का ज्ञान वाञ्छित है। आचार्य की निगरानी में वेद का अध्ययन एवं समझते हुए जीवन में उसको व्यवहार में लाने से ब्राह्णत्व की प्राप्ति होती है। **तिरुवायमोळी 10.9.11 -** हजार पद का यह दशक जो याद कर लेंगे वे चारण बन जायेंगे। अर्थात् वेद रूपी तिरुवायमोळी को सीखनेवाले वाले ब्राह्मण बन जाते हैं। **तिरुवायमोळी 5.5.11 - नम्माळवार** कहते हैं कि जो इसे समझकर गायेंगे वे धरती पर रहते हुए भगवान विष्णु से एकाकार हो जायेंगे। प्रामाणिक कथन है- **अध्येतव्यं द्विजश्रेष्ठैर्वेदरूपमिदं कृतम्।** वेद स्वरूप तिरुवायमोळी ब्राह्मण से सीखे। भाव है कि आचार्य से इसे सीखकर जीवन में उतारनेवाले श्रीवैष्णव बन जाते हैं।

चूर्णिका 38 -

जो संस्कृत वेद समझते हुए अध्ययन कर उसे जीवन में व्यवहार में लाते हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं, परन्तु तमिल वेद नहीं जानने के कारण वे वैष्णव नहीं बन पाते। इससे उनके ब्राह्मणत्व में कोई दोष नहीं होता।

मूल त.- इन्द उटपोरुळ् कट्टुणर्नदु मेलैत् तलै मट्रैयोर आगादारै अयल सदुप्पेदिमार एन्ड्ड उत्पत्ति निरूपिक्कुम्

सूत्र सं. 38- एतदन्तर्वस्त्वभ्यस्य ज्ञात्वा ये उत्कृष्टवेदान्तिनो न भवन्ति ते ततो बाह्या इत्युत्पत्तिर्निरूपणीया।

सामान्य अर्थ - द्रविड़ वेद के मर्म को जिन्होंने विद्वान आचार्य से नहीं सीखा परन्तु प्रसिद्ध वेदान्ति हो गये वे वेद से अनभिज्ञ रहते हैं।

विशेषार्थ - उपनिषद् के सारभूत द्रविड़ वेद को सीखना चाहिए। मधुरकवि आळवार **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु - 9** - नम्माळवार ने वेद के सार को सहस्रगीति में भर दिया है। सरोयोगी - **मुदल तिरुवन्दादि 66 -** विद्वान एवं ऊँची मेधा के वैदिक ऋषिगण सागर में शयन करनेवाले प्रभु के नाम लेने की चाहत रखते हैं। भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 39 -** ऊँचे कुल में जन्म, वेद में पारंगत अगर प्रभु की सेवाभाव से हीन हैं तब वे नीचे कुलवाले से हीन हैं। **पद्मपुराण** में कहा है- **विष्णुभक्तिविहीनो यः**

सर्वशास्त्रार्थवेद्यपि। ब्राह्मण्यं तस्य न भवेत् इत्युत्पत्तिरन्वेषणीया।। विष्णु भगवान् की भक्ति से विहीन वेद-शास्त्र में पारंगत होने पर भी वे ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते। कहा है- **यः पुत्रः पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम्। यो विष्णुं सततं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम्।।** जो पुत्र अपने पिता से घृणा करता है वह किसी अन्य से जन्मा हुआ माना जाता है, उसीतरह जो भगवान् विष्णु से घृणा करता है वह निम्न कुल का माना जाता है।

चूर्णिका 39 -

इस बात को स्पष्ट किया है कि तिरुवायमोळी वेद है। **तिरुवायमोळी 10.9.11-** रत्नजड़ित मण्डप में भक्त प्रभु के समक्ष खड़ा होकर चिरआनन्द में मग्न था। इस दशक को याद करनेवाले चारण (भक्त) बन जायेंगे।

मूल - एव्वुलगत्तु एव्वेवैयुम् एङ्गैयले वेदम् बहुविदम्

सूत्र सं. 39- यद् यद् लोके ये ये इत्युक्तत्वाद् वेदो बहुविधः।

विशेषार्थ - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद - वेद की अनेकता को बताते हैं। वेद बहुत प्रकार के हैं। **तिरुवायमोळी 3.1.6** - संसार जो शास्त्र पढ़ता

है वे भगवान् की आंशिक गाथा वाले ही हैं। अतः द्रविड़ वेद भी वेद का एक प्रकार ही है।

चूर्णिका 40 -

इस बात को स्पष्ट किया है कि सभी वेद एक ही भाषा में नहीं हैं।

मूल - इदिल संस्कृतम् द्राविड़म् एङ्गिट्र पिरिवु रुगादिभेदम् पोले

सूत्र सं. 40- अत्र संस्कृतो द्राविड़ इति विभाग ऋगादिभेदवत्।

अर्थ - संस्कृत वेद एवं तमिल वेद उसीतरह से वेद का भेद बताते हैँ जैसे ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व।

चूर्णिका 41 -

इस बात को स्पष्ट किया है कि वेद की संस्कृत भाषा अनादि है परन्तु तमिल तो अगस्त मुनि की देन है।

मूल त.- सेन्दिट्रत्त तमिळ एङ्गैयले अगस्त्यमुम् अनादि

सूत्र सं. 41- छविमद्राविड़ेत्युक्तत्वादागस्त्याप्यनादिः।

अर्थ - परकाल स्वामी - तिरुनेडुन्दाण्डगम् 4 - ब्रह्मा एवं इन्द्रादि के नाथ ही संस्कृत एवं तमिळ् वेद के रूप में प्रकट हुये हैं। लुप्त तमिळ् भाषा को अगस्त्य मुनि ने प्रकट किया। अतः तमिळ् भी अनादि है। **कम्ब रामायण अकत्तियर पटलम्** में है - तमिळ तथा संस्कृत वेद, दोनों अनादि हैं।

चूर्णिका 42 -

इस बात को स्पष्ट किया है कि तिरुवायमोळी वेद का एक भेद है।

मूल - वडमोळि मट्रै एन्ट्रदु तेन्मोळि मट्रैयै निनैत्तिट्रे

सूत्र सं. 42- संस्कृतवेद इत्युक्तिर्द्राविड़वेदं स्मृत्वा हि।

अर्थ - तिरुवायमोळी 8.9.8 - इस बात को ध्यान में रखते हुए कि दक्षिण की भाषाओं में भी वेद है, नम्माळवार ने केवल वेद न कहकर संस्कृत वेद का उल्लेख किया है।

चूर्णिका 43 -

इस बात को स्पष्ट किया है कि जैसे संस्कृत वेद के अंग एवं उपांग हैं उसीतरह तिरुवायमोळी के भी अंग एवं उपांग हैं।

मूल त.- वेद चतुष्टयाङ्गोपाङ्गङ्गळ्ळ पदिनालुम् पोले इन्नालुक्कुम् इरुन्तमिळ् नूल पुलवर् पनुवल आङ्रम् मङ्ट्रै एण्मर् नन्मालैगळ्ळुम्

सूत्र सं. 43- वेदचतुष्टयांगोपांगानि चतुर्दशवत् एतच्चतुष्टस्यापि महाद्रविड़ -शास्त्र विद्वदुक्तानि षट् अन्येषामष्टनाम् समीचीना मालाश्च।

अर्थ - वेद - अंग - उपांग कुल 14 हैं। ऋक्, यजुः, अथर्व एवं साम चार वेद हैं। शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प तथा ज्योतिष वेद के छः अंग हैं। मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्म शास्त्रादि उपांग हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, शिल्प / अर्थशास्त्र को उपवेद कहा गया है।

शठकोप स्वामी के 4 प्रबन्ध - 1) **तिरुविरुत्तम** ऋक् वेद का सार, 2) **तिरुवाशिरियम** यजुर्वेद का सार, 3) **पेरियतिरुवन्दादि** अथर्ववेद का सार तथा 4) **तिरुवायमोळी** सामवेद का सार है। तिरुमंगै आळवार / परकाल स्वामी के छः प्रबन्ध तमिळ वेद के छः अंग हैं। अन्य दस आळवारों के प्रबन्ध उपांग तथा शास्त्रादि हैं। परकाल स्वामी - **पेरिया तिरुमोळी 2.4.10, 1.7.10** - परकाल स्वामी के पद तमिळ् शास्त्र के मधुर गीतमाला हैं।

सरोयोगी - **मुदल तिरुवन्दादि 57** - तमिळ पद शास्त्र की गीतमाला हैं।

नम्माळवार **तिरुविरुत्तम् 1-** अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति नहीं प्राप्त करेंगे। परकाल स्वामी **पेरियतिरुमोळी 1.1.1-** कष्टदायक काले जन्म को निराशाभरे हृदय से जानता हूँ। परकाल स्वामी के छः प्रबन्ध नम्माळवार के चार प्रबन्धों के अंग माने गये हैं क्योंकि दोनों की रचनाओं में समान निम्नांकित विशिष्टियाँ पायी जाती हैं - 1) भगवान् के प्रति परमप्रीति, 2) अर्चावतार से अतिशय लगाव, 3) भगवान् से संयोग एवं वियोग की बारम्बारता, 4) किसी अन्य - सखी तथा माँ - की वाणी का उपयोग, 5) वियोग में भगवान् के पास दूत भेजना, 6) मडल का उपयोग जिसमें सार्वजनिक रूप से प्रेमी से लगाव का प्रदर्शन, 7) इन्द्रियों से विघ्न / भय, 8) भगवान् की परम स्वतन्त्रता के प्रति शिकायत, 9) बार-बार भगवान् की प्रपत्ति, 10) भगवत् - वियोग का अतिशय दुःख, 11) दूसरों के दुःख से दुखी होना और उन्हें बार-बार भगवत् - प्रीति एवं प्रपत्ति का परामर्श देना। पराशर भट्ट **श्रीरङ्गराजस्तव उ. 18- शीक्षायां वर्णशिक्षा पदसमधिगमो व्याक्रियानिर्वचोभ्यां, छन्दश्छन्दश्चितौ स्याद्गमयति समयं ज्यौतिषं रङ्गनाथ। कल्पेऽनुष्ठानमुक्तं ह्युचितगमितयोर्न्यायमीमांसयो - स्स्यात्, अर्थव्यक्तिः पुराणस्मृतिषु तदनुगास्त्वां विचिन्वन्ति वेदाः।। शिक्षा**

से वेद के शब्दों का उच्चारण, **व्याकरण** एवं **निरुक्त** से शब्द का ज्ञान, **गायत्री** से छन्द का व्याकरण, **ज्योतिष** से काम करने का शुभ समय, **कल्पसूत्र** से सम्यक कर्म निष्पादन और **मीमांसा** से अर्थ का ज्ञान प्राप्त होता है। हे देवादिदेव रङ्गनाथ! उपांगो के साथ वेद आपको ही खोजता है।

चूर्णिका 44 -

इस बात को स्पष्ट किया है कि नम्माळवार के प्रबन्ध अन्य आळवारों के प्रबन्ध से श्रेष्ठ हैं।

मूल - सकल विद्यादिक वेदम् पोले इदुवुम् दिव्यप्रबन्ध प्रधानम्

सूत्र सं. 44- सकलविद्यधिको वेद इवायमपि दिव्यप्रबन्धप्रधानः।

अर्थ - कहा है - **अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या हि एताश्चतुर्दश।।** छः **अङ्ग**, चार **वेद**, **मीमांसा शास्त्र**, **तर्कशास्त्र, पुराण** एवं **धर्मशास्त्र** चौदह विद्या हैं। इन चौदह में जबकि वेद को भी रखा है तबभी वेद समेकित रूप से सब का वोध कराता है। सभी तमिल चार हजार पदवाले दिव्यप्रबन्ध वेद हैं जिसमें तिरुवायमोळी भी है,

परन्तु तिरुवायमोळी सबसे श्रेष्ठ है और मात्र इसे ही तमिल वेद कहा जाता है। भाव है कि अन्य प्रबन्ध इसी में समाहित हैं।

श्रीमते शठकोपाय नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः

3.मणिप्रवाल में मूल चूर्णिका, सामान्य अर्थ एवं विशेषार्थ

चूर्णिका - 45

वेद - त्रुटिरहित शास्त्र भगवान् की देन हैं एवं अनादि हैँ। तिरुवायमोळी भी इसी तरह के गुणों से सम्पन्न है।

मूल त.- वेद नूल् इरुन्तमिळ् नूल् आज्ञै आणै वसैयिल एतमिल सुरुति सेविक्किनिय ओदुगिनरदु उण्मै पोय्यिल पादै पण्डै निर् कुम् मुन्तै अळिविल्ला एन्नुम् लक्षणङ्गळ ओक्कुम्

सूत्र सं. 45- वेदशास्त्रं महाद्रविड़शास्त्रम् आज्ञाशपथः दोषरहितो निर्दोषः श्रुतिः श्रोत्रभोग्यं अधीयमानं सत्यम् असत्यरहिता गीतिः अनादिः स्थिरः अनादि नाशरहितः इति च लक्षणानि तुल्यानि।

अर्थ - दिव्यप्रबन्धम् के निम्नांकित उद्धरण वेद एवं नम्माळवार के प्रबन्धों के गुणों को दर्शाते हैं। 1) भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **- तिरुमालै 3** - शास्त्र ही वेद हैं। परकाल स्वामी **- पेरिय तिरुमोळी 1.7.10 -** महान तमिळ् शास्त्र गीत। 2) पाञ्चरात्र में कहा है - **श्रुतिः स्मृतिः ममैवाज्ञा** - श्रुति एवं स्मृति भगवान् की आज्ञा हैँ। **तिरुवायमोळी 6.3.11** - हजार पद वाले से यह दशक। 3) **पेरिय तिरुमोळी 5.3.2** - चारो वेद त्रुटिविहीन हैं। **तिरुवायमोळी - 1.6.11 -** निर्मल हजार पदों वाला है। 4) **तिरुवायमोळी - 1.1.7 -**

श्रुतियाँ दिव्य हैं। जो कान से सुनी जाय वह श्रुति है - **श्रूयते इति श्रुतिः**। आचार्य द्वारा वेद के मधुर पाठ को कान से सुनते हैं। **तिरुवायमोळी 10.6.11-** पदों के सुन्दर एवं मधुर शब्द। 5) भक्तिसार स्वामी - **तिरुच्चन्दविरुत्तम 72 -** वेद में सबकुछ सत्य है। **तिरुवायमोळी 4.3.11 -** इसमें झूठ की गन्ध भी असह्य है। 6) परकाल स्वामी - **पेरिय तिरुमोळी 5.7.1.** - वेद शाश्वत है। **तिरुवायमोळी 6.5.4 -** चारों वेद सनातन हैं। **तिरुवायमोळी 6.5.11 -** इसके पुरातन हजार पद। **तिरुवायमोळी 9.7.11 -** इसके आनन्दप्रद हजार पद हृदयग्राही हैं।

चूर्णिका - 46

वेद की तरह तिरुवायमोळी अपौरुषेय है।

मूल - सोल्लप्पट्ट एन्र इदिल कर्तरुत्वम् स्मृति अत्तै स्वयम्भू पदैत्तन एन्रदु पोले ।

सूत्र सं. 46- उक्त इत्यत्र कर्तृत्वस्मृतिश्च तत्र स्वयम्भूः सम्पादितवान् इतिवत्।

अर्थ - **तिरुवायमोळी 8.10.11** में इसे शठगोपन द्वारा भगवान कृष्ण का उसीतरह यशगान कहा है जैसे भगवान् से ब्रह्मा को वेद मिला। कहा है- **अनादिनिधना ह्येषा वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।** ब्रह्मा से प्रकट किया हुआ वेद का स्रोत त्रुटिरहित है। **पेरिय तिरुमडल 10-** योगनिद्रा से जागकर भगवान् ने सृष्टि करने हेतु नाभिकमल पर ब्रह्मा को प्रकट किया जिन्होंने वेद की

रचना की। जैसे अनादिकालिक वेद का श्रेय ब्रह्मा को मिला उसीतरह से शाश्वत दिव्यप्रबन्ध का श्रेय आळवार को मिला है।

चूर्णिका - 47

नम्माळवार ने पहले से उपलब्ध पदों को मात्र प्रकट किया है।

मूल - नाल वेदम् कण्ड पुराण ऋषि मन्त्र दर्शिगळैप् पोले इवरैयुम् ऋषि मुनि कवि एन्नुम् ।

सूत्र सं. 47- चतुर्वेदद्रष्टा पुराणर्षिमन्त्रदर्शिवदमुम् ऋषिं मुनिं कविमाह।

अर्थ - वेद एवं पुराण के मन्त्रों को विभिन्न ऋषि-मुनियों से जैसे प्रणीत कहा है उसीतरह से नम्माळवार को तिरुवायमोळी के लिए कहा है।

परकाल स्वामी - **पेरिय तिरुमोळी 8.10.1 -** भगवान् ने चार वेद प्रकट किये। कहा है- **अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः।** पुनः सत्यवतीनन्दन वेदव्यास चार वेद तथा अठारह पुराण के द्रष्टा हुए। कहा है- **संकीर्णबुद्धयो देवा ब्रह्मरुद्रपुरःसराः। शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम्।। तैर्विज्ञापित कार्यस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः। अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात्।।** जब भ्रमित विचारवाले ब्रह्मा, शिव आदि वेद को न समझने के कारण नारायण प्रभु के पास गये। सत्यवती एवं पराशर से महायोगी का अवतीर हुआ। **महाभारत- कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणप्रभुम्।** प्रभु स्वंय कृष्णद्वैपायन के रूप में प्रकट हुए। **महाभारत- दर्शनात् ऋषिः मननशीलो मुनिः कविः क्रान्तदर्शी।** सत्य का दर्शन करने से ऋषि, महान् स्मृति होने

से मुनि और शास्त्रों पर सुचिन्तन करने से कवि हुए। **महाभारत- श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे भरतर्षभ।** हे जनमेजय व्यास का सिंहनाद सुनो जिनको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का का मर्म ज्ञात था। **महाभारत- एवं विधं भारतं तु प्रोक्तं येन महात्मना। सोऽयं नारायणः साक्षाद् व्यासरूपी महामुनिः।।** वही महान् आत्मा व्यास हैं जिनके मुँह से महाभारत कहा गया। **महाभारत - साक्षाद् लोकान् पावयानः कविर्मुख्यः पाराशर्यः।** लोकों को पवित्र करनेवाले कवियों में व्यास सबसे श्रेष्ठ हैं। कहा है - **नमः ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः।** मन्त्र बताने वाले ऋषि को नमस्कार है। **भगवान् शौनको मुनिः।** और भगवान् शौनकमुनि को नमस्कार। भाव है कि नम्माळवार को भी ऋषि, मुनि एवं कवि कहा जाता है जिन्होंने पूर्व से उपलब्ध तमिल पासुरों / पदों को पुनः प्रकट किया। **श्रीरङ्गराजस्तव पू. 6 - ऋषिं जुषामहे कृष्णतृष्णातत्त्वमिवोदितम् । सहस्रशाखां योऽद्राक्षीद् द्राविडीं ब्रह्मसंहिताम् ।।** भगवान् कृष्ण के लिए प्यास की साक्षात् मूर्ति शठकोप ऋषि बहुत प्यारे हैं जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से हजार शाखाओं वाले तमिल वेद को प्रकट किया। **पराङ्कुश अष्टकम् 6 - शठकोपमुनिं वन्दे शठानां बुद्धि दूषणम् । अज्ञानां ज्ञानजनकं तिन्त्रिणीमूलं संश्रयम् ।।** अज्ञान देनेवाली दूषित शठ नामक वायु को नष्ट कर ज्ञान प्रदान करनेवाले इमली वृक्ष की जड़ में निवास करनेवाले शठकोप मुनि की मैं वन्दना करता हूँ। **तिरुवायमोळी 3.9.10 -** शठकोप स्वामी एक मात्र भगवान् के ही कवि हैं।

चूर्णिका - 48

नम्माळवार के सभी प्रबन्ध अनादिकालिक हैं।

मूल - पदैत्तान कवि एन्न पोदे इदुवुम यथापूर्व कल्पनमामे ।

सूत्र सं. 48- स्रष्टुः कवेरित्युक्तेरेवायमपि यथापूर्वकल्पनो भवेत्।

अर्थ - तिरुवायमोळी 3.9.10 - नम्माळवार कहते हैं कि भगवान् नारायण ही समस्त जगत के सृष्टिकर्ता हैं। ऐसे प्रभु का सर्वदा के लिए कवि होकर किसी दूसरे के लिए हम कभी गा सकते हैं क्या? सबके कल्याण के लिए प्रभु ही बार - बार सृष्टि करते हैं और संहार करते हैं। **तैत्तिरीय उप. सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।** सूर्य चन्द्रमा आदि को पूर्व के कल्प की तरह प्रकट करते हैं। इसी तरह द्रविड़ वेद भी पूर्व कल्प की तरह प्रकट होते हैं।

चूर्णिका - 49

आळवार को दिव्य प्रबन्धम् भगवान् से आशीर्वाद स्वरूप मिला है। संसारी प्राणियों पर दया से द्रवित होकर आळवार ने इसे गाया।

मूल - उरक्कम् तलैकोण्ड पिन्नै मरै नान्गुम् उणर्न्द तन्गळ् अप्पन्ओडे ओदिन चन्दच्चदुमुगन् सलङ्गलन्द वेण पुरिनुल मानुरी तिरितन्दु उण्णुम् कामन् उदै इरुक्किलङ्गु ज्येष्ठ पुत्रादिगळुक्कु मरै पयन्दाप्पोले आदुमिल कालत्तु एन्दैयान व्यामुदलप्पन् पिरमगुरुवाय इराप्पगल् मुन् स्पल्ल, कट्रनमे एन्न इवरुम् नाविनाल् नन्मैयाल एन्नु ओदनल्ल पिराक्कलैक् काणमिङ्गळ्

एन्नु सोल पयिट्र् वेदम् ओदुवार् ओत्तागैयालै आथर्वाणादिगळ् पोले इदुवुम पेर पेट्रदु ।

सूत्र सं. 49- निद्रानन्तरं वेदांश्चतुरः स्मरतः स्वपितुः सकाशादधीत-वांश्छन्दश्चतुर्मुखः सजलश्वेतोपवीतमृगचर्मधृग् भिक्षाशी कामजिदाल-पनशीलः ज्येष्ठपुत्रादीनध्यापयामास यथा तथा सर्वाभावकालिके पितरि समुचितकारणे परमगुरौ नक्तं दिवं पुरो वदति अभ्यस्याम इत्युक्तोऽयमपि जिह्वया सामाचीन्येन अभ्यसितुं समर्थान् अभ्यस्यन्तु इत्यध्यापयामास। तादृगयं वेदोध्येतृवेदत्वादाथर्वणादिवन्नामाप।

सामान्य अर्थ - ब्रह्मा को वेद का ज्ञान भगवान् से मिला। ब्रह्मा ने इसे रुद्र तथा अन्यों को पढ़ाया। इसीतरह से नम्माळवार को भगवान् ने दिव्य प्रबन्धम् पढ़ाया। इनसे इसका ज्ञान मधुरकवि आळवार आदि को हुआ। वेद के गाने वाले आथर्वणम् आदि से भी वेद को उनके गानेवाले के नाम से ही जाना गया। शठकोप स्वामी ने दिव्य प्रबन्धम् गाया इसलिए यह इनके द्वारा विरचित माना गया।

विशेषार्थ - पेरिय तिरुमडल 8- भगवान् अपनी योगनिद्रा को पूरा होने पर सृष्टि रचना के लिए विचार करते हैं। प्रलय के समय भगवान् की दयालुता से सभी प्राणी तथा वस्तु बिना रूप तथा नाम के सूक्ष्म स्वरूप में स्थित रहते हैं। जब सृष्टि का समय आता है तब ब्रह्मा को प्रकट करने के पूर्व सूक्ष्मावस्था वाले जड़-चेतन के कल्याणार्थ भगवान् सबसे पहले महत् तथा अण्डम् (अण्डाकार विश्व) की सृष्टि (को प्रकट) करते हैं। भूतद् आळवार -

इरण्डाम् तिरुवन्दादि 48 - आपने प्रभु चारो वेद को प्रकट किया। श्रीविष्णुचित्त स्वामी **- पेरियाळवार तिरुमोळी 2.5.8 -** चार शिरवाले ब्रह्मा वेद से युक्त हुए। परकाल स्वामी **- पेरिय तिरुमोळी 2.2.7 -** चतुर्मुख ब्रह्मा भगवान् नारायण को पिता के रूप में पूजते हैं। **श्वेताश्वेतर उपनिषद् 6.18 -** में कहा है - **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तँ ह देवमात्म-बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षः वै शरणमहं प्रपद्दे।।**

वैकुण्ठ प्राप्ति की इच्छा से उस परम नियन्ता की शरण लेता हूँ जिन्होंने चतुर्मुख ब्रह्मा को बनाया। यज्ञोपवीत, मृगचर्म धारण करनेवाले तथा भिक्षाटन से जीवन निर्वाह करनेवाले जटाधारी ब्रह्मचारी रुद्र को ब्रह्मा ने वेद पढ़ाया। भक्तिसार स्वामी **- तिरुच्चन्दविरुत्तम् 113 -** जटा में गंगा धारण करनेवाले ब्रह्मचारी भिक्षु रूपवाले नीलकंठ शिव हाथ में नरखोपड़ी लिये भगवान् के पास अपनी यातना के शमन के लिए आये। सरोयोगी - **मुदल तिरुवन्दादि 46 -** श्वेत यज्ञोपवीतधारी शिव। परकाल स्वामी **- पेरिय तिरुमोळी 10.9.4 -** मृगछाला पहने शिव। परकाल स्वामी **- तिरुक्कुरुन्दा -ण्डगम् 19 -** भिक्षाटन से खानेवाले। भक्तिसार आलवार **- नान्मुगन् तिरुवन्दादि 78** - तपस्यारत शिव ने कामदेव को जला दिया। परकाल स्वामी **- पेरिय तिरुमोळी 6.6.8 -** पुरुष सूक्त पाठी अष्टभुजी रुद्र। कहा है- **ब्रह्मणः पुत्राय ज्येष्ठाय।** ब्रह्मा के प्रथम पुत्र शिव इत्यादि। **मुदल तिरुवन्दादि 60 -** वेद ज्ञान प्राप्ति का साधन।

तिरुवायमोळी 4.10.1 - प्रलयकाल में जब न तो कोई देवगन थे, न विश्व था, न प्राणी थे, और कुछ भी नहीं था, आपने ब्रह्मा को बनाकर उनके साथ देवगन, विश्व तथा अन्य प्राणियों को बनाया। पर्वतनुमा महलों वाले आळवार तिरुनगरी में आप खड़े हैं। तो इनको छोड़कर तू अन्य किस देवता को खोजते हो ? **तिरुवायमोळी 3.4.4 -** जब सर्वत्र सब कुछ शून्य था हमारे निर्मल प्रभु विराजमान थे। सबके आप ही पिता हैं। आपने सबको अपने में रख लिया था। **तिरुवायमोळी 7.9.3 -** आप हमारी वाणी में स्वयं प्रवेश कर गये। निर्मल भक्तों की आवाज में आप अपनी प्रशस्ति स्वयं गाते हैं। **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.2.8 -** पीत वस्त्रधारी प्रभु प्रथम गुरु हैं। **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.2.3 -** आपने दिन - रात शास्त्र पढ़ाया। **तिरुवायमोळी 7.9.2 -** लग रहा था कि हम अपने शब्दों में गा रहे हैं परन्तु आप अपने शब्दों में प्रशस्ति गाये हैं। **नम्माळवार तिरुविरुत्तम 64 -** आपके दिव्य नाम के गान को ही सीख सका। नम्माळवार ने सीधा भगवान् से सीखा और मधुरकवि आळवार आदि को इसका ज्ञान कराया। ये सब नम्माळवार को आचार्य मानते हैं। **मधुरकवि आळवार - कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु 2 -** मुझे आपके (नम्माळवार के) पासुरों के पाठ से अतिशय आनन्द मिला। मैं आपके दिव्य चरणों का सर्वदा के लिए आश्रय ग्रहण करता हूँ। आपको छोड़कर किसी अन्य देवता को नहीं जानता। आप आळवार तिरुनगरी के सर्वेसर्वा हैं। **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु 4 में मधुरकवि आळवार** कहते हैं - सम्मानित वैदिकों ने मुझे नाकाम समझा। मेरे माता - पिता शठकोप स्वामी / नम्माळवार हैं। मेरे दैनिक कार्यकलाप इनके

नियन्त्रण में हैं। **तिरुवायमोळी 9.1.11** - नम्माळवार कहते हैं कि जो इस दशक को गायेंगे वे हमारे चिरंतन नाथ हैं। **तिरुवायमोळी 6.8.6 -** तुझे उनका नाम सिखाया । **तिरुवायमोळी 9.5.8 -** भगवान् का दिव्य नाम सिखाया। **तिरुवायमोळी 3.1.6 -** अलग - अलग वेद के विशेषज्ञ अलग - अलग व्यक्ति होते हैं। जैसे - आथर्वणम्, तैत्तिरीयम्, काण्वम् आदि । जो जिस वेद में निष्णात हैं वे उसके पर्याय हो जाते हैं। **तिरुवायमोळी 1.2.11 -** नम्माळवार ने सबसे पहले तिरुवायमोळी सीखा इसलिए यह उन्हीं का शब्द कहा गया। अतः तिरुवायमोळी भी वेद कहा गया है।

चूर्णिका - 50

यह बताया है कि नम्माळवार का कौन सा प्रबन्ध किस वेद का बोधक है।

मूल - इयर्पा मुन्रुम् वेदत्रयम् पोले। पण्णार पादल पण्पुरै इसैकोळ् वेदम् पोले।

सूत्र सं. 50- इयल्यात्रयं वेदत्रयवद् रागपूर्णा गीती रागपूर्णस्वरशालिवेदवत्।

सामान्य अर्थ - इयर्पा के इनके तीन प्रबन्ध ऋक्, यजुर् एवं अथर्व वेद हैं। तिरुवायमोळी गीत - संगीत के तर्ज पर होने के कारण सामवेद कहा गया।

विशेषार्थ - तिरुविरुत्तम - ऋक् वेद, तिरुवाशिरियम - यजुर्वेद, पेरिय तिरुवन्दातदि - अथर्ववेद, तिरुवायमोळी - सामवेद।

तिरुवायमोळी 10.7.5, 6.6.5 - यह प्रबन्ध **मधुर गीत एवं उसके संगीत की धुन से भरपूर है।** परकाल स्वामी - **पेरिय तिरुमोळी 5.3.2 -** मधुर

संगीत की धुन से भरा वेद। विषय वस्तु के भाव एवं भाषा से यह स्पष्ट है कि तिरुवायमोळी सामवेद के समतुल्य है।

चूर्णिका 51 -

ऋक् वेद ही सामवेद की तरह विकसित हुआ है। इसी तरह नम्माळवार का तिरुवायमोळी मधुर संगीत की धुन से सम्पूरित तिरुविरुत्तम है।

मूल - रुक्कु सामत्ताले सरसमाय् स्थोपत्ताले परमबुमा पोले सोल्लार् तोडैयल इसै कूट्टा अमरसुवै आयिरम् आयिट्ठु ।

सूत्र सं. 51- ऋक् सामरसेन सरसास्तोमेन विस्तृता भवति तथा वचःपूर्णस -संदर्भ गानसमुदायपूर्णरससहस्रं भवति।

अर्थ - सामवेद का संक्षिप्त रूप ऋक् वेद है। **छान्दोग्य उपनिषद् 1.1.2- ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः** - ऋक् का रस साम तथा साम का रस उत्-गीत है। सामवेद संगीत की धुन से भरपूर है। कहा है - **रुचस साम रसः** - ऋक् में संगीत का रस ही साम है। **तिरुविरुत्तम 100 -** यह दिव्य शब्दों की माला है। **तिरुवायमोळी 2.4.11 -** संगीत की धुन सम्पूरित । **तिरुवायमोळी 1.3.11 -** मधुर हजार पदवाला।

चूर्णिका 52 -

तिरुवायमोळी सामवेद की शाखा छान्दोग्य उपनिषद् के समतुल्य है।

मूल - छान्दोगन् एन्-रु सामान्यम् आगामल् मुदलिले पिरित्तु याळ् पयिल् गानस्वरूपियैप् पालैयागियेन्-रु विशेषिक्कैयाले वेदग्ल्तच्चमि नान् एन्-र्

सामम् तोन्-र उद्गीत प्रणवत्तै प्रथमत्तिले माराडि चरमगति मुडिवागत् तोण्डर्क्कु अमुदेन्न देवान्नमाक्कि महाघोष नल्वेद ओलिपोले महाध्ययनमेन्नप् पाडुगैयाले इत्तैच्छान्दोग्य समम् एन्बर्गळ्

सूत्र सं. 52- छान्दोग इति सामान्येनान्तर्भाव्य प्रथमं विभज्य वीणाया - मभ्यस्यमानगानस्वरूपिणोपालैभूत्वेति विशेषतत्वाद् वेदगीतस्वाम्यहमि - त्युक्तसामेति ज्ञापयितुमुद्गीथप्रणवं प्रथमं परिवर्त्यचरमगत्यवसानत्या भक्तानाममृतमिति देवान्नं कृत्वा महाघोषसमीचीनवेदघोषवन्महाध्ययन - मिति गीतत्वादयं छन्दोग्यसम इति वदन्ति।

अर्थ - **भक्तिसार - तिरुच्चन्द विरुत्तम 14** - भगवद् नाम का गीत सामवेद है। **परकाल स्वामी - पेरिय तिरुमोळी 2.2.7** - समियप्पन अर्थात् सामवेद में जो जगत के एकमात्र नियन्ता कहे गये हैं। **गीता 10.22 - सामवेदोऽस्मि** - वेदों में सामवेद हूँ। **परकाल स्वामी - पेरिय तिरुमोळी 5.5.9 -** छान्दोग्य, तैत्तिरीय, कौषीतकी, अग्निवेदी - पाँच अग्नि तथा पाँच यज्ञ, सामवेदी - सामवेद का अर्थ बतानेवाले प्रभु। छान्दोग्य उपनिषद् सामवेद का भाग है और आळवार के गीत इसके समतुल्य हैं।

तिरुवायमोळी 2.3.7 - याळ् वह वाद्य यन्त्र है जो तार से मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है और वाद्य शास्त्र के नियमों का अनुसरण करता है। भगवान् याळ् की आनन्ददायी मधुर ध्वनि हैं। **परकाल स्वामी - पेरियतिरुमोळी 7.3.7** - याळ् के तने हुए तार से विशेष मधुर पालैधुन के

सदृश्य भगवान् अत्यन्त मधुर हैं। भगवान् के साथ साम तथा गीत दोनों जुड़े हैं। यही छान्दोग्य सामम् है। आळवार ने छान्दोग्य साम ही गाया है।

छान्दोग्य उपनिषद् 1.1.2- ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः - ऋक् का रस साम तथा साम का रस उद्-गीत है। **छान्दोग्य उपनिषद् 1.1.1- ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत -** ॐ उद्गीथ का अंश है। उपासना में पहले ॐ का ध्यान करे। अ, उ, म के संयोग से ॐ बना है। नम्माळवार ने तिरुवायमोळी का शुभारम्भ "**उयर्वर**" अर्थात् "**उ**" से किया है। यह उद्गीथ का बोधक है जो ॐ के समतुल्य है। तिरुवायमोळी का अन्त "**उयरन्दे**" से हुआ है। इसका अन्त का अक्षर "**द**" है। प्रारम्भ का "**उ**" एवं अन्त का "**द**" उद्गीत का "**उत्**" हुआ जो भगवान् के नाम के गान का पर्याय है।

छान्दोग्य उपनिषद् 5.10.1-2 में अर्चिरादि गति का उल्लेख है। **तिरुवायमोळी 10.9.1** में अर्चिरादि को चरम गति कहा है। यह परमपद प्राप्त कराता है। गर्भ, याम्य तथा धूम गति (**5.10.3**) संसार का बन्धन देनेवाला है। साम नित्यसूरि एवं मुक्तात्मा को अतिआनन्द देनेवाला है। **तैत्तिरीय उपनिषद् 3.10** - **एतत् साम गायन् आस्ते** - इस साम का गायन करता रहता है। **हावु हावु हावु** - आश्चर्य, आश्चर्य, आश्चर्य। **अहम् अन्नादः अहम् अन्नादः अहम् अन्नादः** - मैं ही भगवान् का आनन्द लेनेवाला हूँ। **तिरुवायमोळी 9.4.9** - हमारे हृदय ने भक्तों को आनन्द देनेवाली गाथा गायी है। भगवान् के तिरुअध्ययन उत्सव में साम का गायन समूह में ऊँचे स्वर में गाते हैं। कहा है- **सर्वेभ्योऽपि हि वेदेभ्यः सामघोषो महानभूत्।**

अन्वघोषयदत्यर्थं तेन ब्रह्माण्ड मण्डपः। सामवेद का घोष सभी वेद से ऊँचा है। यह वैकुण्ठ के मण्डप में गूँजता है। **तिरुवायमोळी 5.9.3** - भक्त सागर गर्जन की तरह पाठ करते हैं। तिरुवायमोळी छान्दोग्य उपनिषद् है।

चूर्णिका - 53

प्रणव का तिरुवायमोळी से सम्बन्ध।

मूल - पुरवियेळ् ओरु कालुडैय तेरिले तिरुच्चक्करम् ओत्तुक् कालचक्करच् चेङ्गोल नडावि ज्योतिश्चक्र ओळि सुरुक्कि अग्निषोम्लय तेजोमृतत्तुक्कु ऊङ्कुम् मन्देहर्क्कुच् चेन्दलयुम् मुक्ति मार्गत् तलै वासलुम् कण्णावान् कण्णिल् पिरन्द कण्मणियुम् त्रय्लमयमुमान मण्डलत्तिले तण्डामरै सुमक्कत् तोळवळैयुम् कुळैयुम् तिरुच्चेय्य मुडियुम् आरमुम् पडैयुम् तिगळुम् पोन्मेनियुम् सेन्जुडर्त् तामरैक् कण्णुमाय् अणिनिमूरति ईदेन्नुम्बदि इरण्डैयुम् तन्निरमाक्कुगिर सेय्याळान विध्यैयोडे अरुक्कन् मेविन सदाध्येय तेजस्सिन् सामरसोद्गान नामम् उळ्ळुरैयान अध्यङ्गळाले ओरायिरमाम् अवट्रिले ओन्-रै आयिरमुगत्तिनाल अरुळिन तीर्थम् पोले तीर्थङ्गळ् आयिरमुमाग विस्तरिक्किरार एन्-रु वेद गुरु उपदेशम् ।

सूत्र सं. 53- सप्तसप्त्येकपादे श्रीचक्रसदृशे कालचक्राज्ञाप्रवर्तके ज्योतिश्चक्र कान्तिसंकोचकेऽग्नीपोमीयतेजोऽमृतस्रोतो द्वारे मन्देहानां रक्तानले मुक्तिमार्ग प्रथमद्वारे चक्षुर्भवतश्चक्षुष उत्पन्ने चक्षुर्मणौ त्रयीमये मण्डले शीतलतामरसेनोह्यमानस्य केयूर कुण्डल किरीट हारायुधोज्जवल हिरण्य विग्रहयुक्तस्य रक्तकान्तिमत् तामरसनयनस्य अलङ्कार वर्णवन्मूर्तिरिय -

मिति भ्रमो यथा स्यातयोभयमपि स्वस्वरूपं कुर्वन्त्या रक्तांगनया विद्यया सहार्कं व्याप्तस्य सदाध्येयतेजसः सामरसोद्गाननामान्तर्भावमाद्यन्ताभ्याम द्वितीयसहस्र एकं सहस्रमुखेन प्रवहतीर्थवत् तीर्थसहस्रं विस्तारयतीति वेदगुरु -पदेशः।

सामान्य अर्थ- उत् भगवान् श्रीमन्नारायण का दिव्य नाम है**।** आप सूर्यमण्डल में अपने सुन्दर दिव्य आभूषणों तथा आयुधों से अलङ्कृत होकर विराजते हैं। भगवान् के चरणों से निकलने वाली गंगा जैसे हजार धाराओं में बँटकर जगत् को पवित्र करती है उसी तरह **उयर्वर** से शुरु होकर **उयरन्दे** से अन्त होनेवाली तिरुवायमोळी के हजार पदों में संसार को पवित्र करनेवाली आपकी लीलाओं का गुणगान है।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **शिरिय तिरुमडल् -** सात घोड़े से खीचे जानेवाले रथ वाले। **पेरिय तिरुमोळी 5.7.8** - रथ में एक ही चक्का है। कहा है- **सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्।** एक चक्कावाले रथ को सात घोड़े खींचते हैं। **श्रीविष्णु पुराण 2.8.5 - हयाश्च सप्तछन्दांसि तेषां नामानि मे श्रृणु। गायत्री च बृहत्युष्णिजगती त्रिष्टुमेव च, अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताः छन्दांसि हरयो रवेः।।** गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पङ्क्ति नामके सात छन्द सूर्य के सात घोड़े हैं। कहा है- **एकोऽश्वो वहति सप्तनामा।** सात नामवाले घोड़े सूर्य-रथ खींचते हैं। **श्रीविष्णु पुराण 2.8.4 - त्रिनाभिमति पञ्चारे वण्नेमिन्यक्षयात्मके । संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठतम् ।।** छः ऋतुओं (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर) की नेमि (चक्के

की बाहरी परिधि) से युक्त कालचक्र रूपी सतत गतिशील समस्त चक्का में चार उपभागों के तीन भागवाले (तीन चतुर्मासा) नाभि से सम्वत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इत्वत्सर नामके पाँच अरे (चक्के की तिली - केन्द्र से परिधि को जोड़नेवाला) जुड़े हैं। कहा है- **सर्वं प्रतिष्ठितम्।** सभी आयामों को लेकर। सात घोड़े के एक चक्कावाला यह रथ अन्य रथों से पूर्णतया भिन्न है।

नम्माळवार - तिरुविरुत्तम् 88 - मेरुके ऊपर स्थित सूर्य, नारायण प्रभु के दिव्यहाथ में विराजनेवाले सुदर्शन चक्र के समान हैं। **नम्माळवार - तिरुविरुत्तम 33 -** आप अपने उदार चक्र से कर्म के अन्धकार को दूर करते हुये विस्तृत धरती एवं आकाश में शासन करते हैं। **तिरुवायमोळी 7.2.7** - कालचक्र धारण करनेवाले। **तिरुविरुत्तम 13-** प्रचण्ड सुनहले ज्योति वाले सूर्य। **भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी - तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि 3** - प्रभातकालीन ज्योति क्षितिज पर फैल रही है। तारे एवं चन्द्रमा फीके पड़ गये हैं।

कहा है- **अग्निं वा आदित्यः सायं प्रविशति तस्माद्ग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे उभे हि तेजसी संपद्येते।** सन्धयाकाल में सूर्य अग्नि में प्रवेश करते हैं। इसीलिए रात में अग्नि दूर से ही दिखती है क्योंकि रात में सूर्य एवं अग्नि के प्रकाश एक दूसरे से मिल जाते हैं। **श्रीविष्णुपुराण 2.8.23 - प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे। विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात्प्रकाशते।।** सूर्यास्त होने पर उसका प्रकाश अग्नि में प्रवेश कर जाता है, इसलिए अग्नि दूरही से प्रकाशित होने लगती है। **श्रीविष्णुपुराण 2.12.4 एवं 5 -**

क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्यायति दीप्तिमान् । मैत्रेयैककलं सन्तं रश्मिनैकेन भास्करः ।4। हे मैत्रेय ! देवताओं के पान करते रहने से अपनी कला में क्षीण हुए चन्द्रमा का सूर्यदेव अपनी एक किरण से पुनः पोषण करते हैं। **क्रमेण येन पीतोऽसौ देवैस्तेन निशाकरम्। आप्याय यत्यनुदिनं भास्करो वारितस्करः।5।** जिस क्रम से (कृष्ण प्रतिपदा से चतुर्दशी तक) देवगण चन्द्रमा का पान करते हैं उसी क्रम से जलापहारी सूर्यदेव उन्हें शुक्ल प्रतिपदा से प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। चन्द्रमा के अमृत को देवगण कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक एक-एक भाग पीते हैं और अमावस्या को बचे भाग का अमृत पितृ पीते हैं। शुक्लपक्ष में सूर्य प्रथमा से पूर्णमासी तक शनैः शनैः सब पूरा कर दते हैं। अतः सूर्य ही अग्नि के प्रकाश एवं चन्द्रमा के अमृत के स्रोत हैं।

अस्त होते सूर्य के रथ को मन्देहास राक्षसगण रोक कर उनपर आक्रमण करते हैं। **नम्माळवार - तिरुविरुत्तम 82** - राक्षसों की तरह सूर्य की ज्वाला में जलने लगते हैं। दुष्ट प्रकृतिवाले मनुष्य राक्षस कहे जाते हैं, जैसे - रावण। दुष्ट देवता (सुर) ही असुर कहे गये हैं। **पेरिय तिरु. 1.4.1-** धरा को ऊपर उठाने वाले प्रभु ने रावण को धराशायी किया। **पेरिय तिरु. 2.2.2-** तलवारधारी राक्षसराज रावण का अन्त किया। सामान्यतया, दोनों एक दूसरे के पर्याय की तरह प्रयोग किये जाते हैं। कहा है- **तदुह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाऽभिमुखाः सन्ध्यायां गायत्र्याभिमन्त्रिया आप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति। ता एता आपो वज्रीभूय तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति।** सन्ध्याकाल की उपासना में गायत्री मन्त्र के उपासक पवित्र

अर्घ्य का जल ऊपर की ओर फेंकते हैं। इस जल से सूर्य में लाल अग्नि प्रकट होती है। मन्देहास राक्षस उसमें गिरकर मरने लगते हैं।

श्रीविष्णुपुराण 2.8.50, 51 - सन्धयाकाले च सम्प्राप्ते रौद्रे परमदारुणे। मन्देहाराक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।50। प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम् । अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिने दिने।51। ब्रह्मा के शाप से मन्देहास का शरीर अक्षय रहकर भी गायत्री के उपासकों का ऊपर की ओर फेंके गये अर्घ्य के जल से अस्तकालीन सूर्य में उत्पन्न लाल ज्वाला में रोज गिरकर सन्ध्या समय में मरते हैं। कहा है - **अर्चिषमेवाभि संभवन्ति। तत् भित्वा सूर्यमण्डलम्।** वैकुणठ की ओर जाने वाले अर्चिमार्गी सूर्यमण्डल के बीच से होकर जाते हैं। **परकाल स्वामी - शिरिय तिरुमडल** 7 - सूर्यमण्डल से जानेवाले अमर हो जाते हैं। **पेरियतिरुमोळी 4.5.10** - सूर्यमण्डल में प्रवेश कर सर्वदा चमकते रहेगा।

तिरुवायमोळी 1.8.3 - देवों एवं मनुष्यों की आँखों का तारा होकर आप सुखद वेंकटम् में रहते हैं। भगवान् देवों एवं मनुष्यों के शासक हैं। कहा है - **चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम्।** आप इस लोक के मनुष्यों एवं स्वर्ग के देवों की आँख हैं। **चक्षो सूर्यो अजायतः - पुरुष सूक्त्**। इनकी आँख से सूर्य की उत्पत्ति हुई है। कहा है- **जगदेक चक्षुषे।** समस्त जगत के नेत्र हैं। **त्रयीमयाय -** तीनों काल वाले सूर्य वेद हैं।

ध्येयः सदा सवितुर्मण्डले मध्यावर्ति नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटीहारी हिरण्यमय वपुः धृत शङ्खचक्रः।।

वाजूबन्द, मकराकृत कुण्डल, मुकुट आदि सभी आभूषणों से अलंकृत स्वर्णिम आभा से दीप्त नारायण कमलासन पर बैठकर सूर्य के केन्द्र में विराजते हैं। **तिरुवायमोळी 4.5.8 -** कमल फूल पर जगतनियन्ता के चरण विराजमान हैं। **सरसिजासन सन्नविष्ट।** आपके आभूषण - आप किरीट, शङ्ख तथा चक्र धारण किये हैं **-किरीटहारी हिरण्यमय वपुः धृत शङ्खचक्रः।।** प्रभु के आयुधों का आभूषण - **पेरियळवार तिरुमोळी 1.6.10. तिरुवाय. 8.4.7-** सुनहला मुकुट तथा पाँच अस्त्रों से युक्त आपका तेजोमय स्वरूप। **महयाळवार - मुन्-राम् तिरुवन्दादि 1** - आप सुनहले सूर्य की आभावाले हैं। **छान्दोग्य उपनिषद् 1.6.6 - य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणस्वात्सर्व एव सुवर्णः।** सूर्य के केन्द्र में स्थित योगियों को दृश्य प्रभु के केश, दाढ़ी से लेकर नख तक सब सुवर्णमय हैं।

तिरुवायमोळी 5.4.9 - आदित्य के तेजोमय किरणों से युक्त ऊँचा-सुन्दर रथ प्रकट नहीं हो रहा है। हाय, लालकमल सदृश सुन्दर आँखोंवाले प्रभु भी नहीं आ रहे हैं। **छान्दोग्य 1.6.7 - तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी -** सूर्य की किरणों से खिलनेवाले कमल के समान प्रभु की आँखें हैं। **महयाळवार - मुन्-राम् तिरुवन्दादि 1** - आज हमने कमल निवासिनी कजरारी आँखोंवाली श्रीमहालक्ष्मी को सागर सा सलोने प्रभु के वदन पर देखा है। सुनहले वर्ण के श्रीमहालक्ष्मीके की उपस्थिति से श्यामले प्रभु सूर्य के आकर्षक सुनहले रंग सा दिखते हैं। कहा है- **रुक्माभम् -** प्रभु के सुनहले स्वरूप को देखा है। **तिरुवायमोळी 4.4.2 - पराङ्कुश नायकी**

अपने हाथ से लालिमा लिये सूर्य को दिखाकर कहती है कि यह श्रीधर का प्रतीक चिह्न है। श्रीमहालक्ष्मी की सुनहले लाल गोराई के कारण प्रभु तथा सूर्य आकर्षक सुनहले दिखते हैं। इसी से श्रीसूक्त में इन्हें **हिरण्यवर्णाम्** कहा है। **तिरुवायमोळी 9.4.1 -** कमल पर स्थित कजरारे नयनोंवाली श्रीमहालक्ष्मी को अपने वक्षस्थल पर धारण करनेवाले प्रभु। कहा है- **विद्यासहायमादित्यसंस्थाम् विद्याप्रसादकम्।** जो दूसरों को विद्या देते हैं वे सूर्य में स्थित हैं। **विद्यासहायवन्तम् माम आदित्यस्थं सनातनम्।** लक्ष्मी के साथ उनकी सहायता करता हूँ सूर्यमण्डल में शाश्वतरूप से स्थित हूँ। सूर्य में स्थित श्रीमहालक्ष्मी के साथ प्रभु विद्या देनेवाले कहे जाते हैं। श्रीमहालक्ष्मी के साथ सूर्य में स्थित आप शाश्वत हैं।

पेरिय तिरुमोळी 2.1.7 - वेंकटम् प्रभु सूर्य के हृदय हैं। सर्वांग आभूषणों से अलङ्कृत तेजस्वी प्रभु का ध्यान करें। कहा है- **य एषोऽन्तरादत्ये।** अर्थात् सदाध्यायेत् - सूर्यमण्डल के केन्द्र में स्थित उनका सदा ध्यान करे। **उपनिषद्** में कहा है - **हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्मनाम येन सूर्यः तपति तेजसेद्धः।** ब्रह्मरूपी पक्षी के सुनहले रंग से सूर्य चमकता है। **गायत्री मन्त्र - तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गः -** जो सबको बनानेवाले हैं उनकी आभा का ध्यान करें। **श्रीरङ्गराज स्तव उ. 79 - तेजः परं तत् सवितुर्वरेण्यं धाम्ना परेणाप्रणखात् सुवर्णम् ।** वेद कहता है कि आप ही सूर्य को तेज देते हैं। सूर्य में आपके तेज का ही ध्यान करते हैं। आप पूर्णतया सुवर्णमय हैं।

उद्गीथ साम का रस है। कहा है- **तस्यउतइतिनामः।** भगवान् का नाम उत् है। यह तिरुवायमोळी का सार है। **उत्** के '**उ**' से तिरुवायमोळी का शुभारम्भ (**उयर्वर)** और अन्त (**उयरन्दे**) हुआ है। **तिरुवायमोळी 9.3.1 -** हजार नामवाले प्रभु हजार तरह से रक्षा करते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 1.4.7** - मन्दार गिरि से आनेवाली गंगा को सर्वेश्वर प्रभु हजार धाराओं में बाँटते हैं। **तिरुवायमोळी 7.10.11 -** पवित्र करनेवाले नम्माळवार के हजार पद। क्रियावाचक पद तिरुवायमोळी के पूर्वोक्त अपौरुषेयत्व को ही बताते हैं।

चूर्णिका 54 -

नम्माळवार के चार प्रबन्ध चार वेद होने के साथ - साथ उनकी व्याख्या भी करते हैं।

मूल - अनरिक्के स्वरूपगुण विभूति चेष्टतङ्गळै विशतमाक्कुगिरा पाञ्चरात्र पुराण इतिहासङ्गळ पोले नील भारूपोक्ति तेरियच चोन्न वेद उपबृहमणम् एनबर्गळ।

सूत्र सं. 54- स्वरूपगुणविभूतिचेष्टितानि विशदयन्ति पञ्चरात्रेतिहास पुराणानीवनीलभारूपोक्तिं विशदतयाऽभिदधद् वेदोपबृंहणमित्यपि केचिदाहुः।

सामान्य अर्थ - वेद, पाञ्चरात्र आगम, इतिहास तथा पुराण में जिसतरह भगवान् के दिव्य आभामय श्यामले रूप के साथ उनके शुद्ध स्वरूप, गुण, विभूति तथा लीला-चेष्टा को दर्शाया गया है, उसीतरह वेद के उपबृहमण के रूप में आळवार के प्रबन्ध में भी वर्णन किया गया है।

विशेषार्थ - नम्माळवार के चार प्रबन्ध मात्र चार वेद न होकर उनकी व्याख्या - टीका भी हैं।

भगवान् का स्वरूप -

- **मुण्डक उपनिषद् 1.1.6 - यत् तत् अद्रेश्यं अगोत्रं अवर्णं अचक्षुःश्रोत्रं तत् अपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तत् अव्ययं यत् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ।।** भगवान् न तो ज्ञानेन्द्रिय और न कर्मेन्द्रिय से पकड़ में आते हैं। उनका न कोई गोत्र, न वर्ण (रंग, जाति) और न आकृति है। वे आँख - कान आदि ज्ञानेन्द्रियों तथा हाथ - पैर आदि कर्मेन्द्रियों से रहित हैं। वे अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक, अन्तर्यामि तथा नाश न होनेवाले नित्य हैं। समस्त प्राणियों के नियामक को ज्ञानीलोग सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं।
- **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.1 - सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् -** भगवान् सनातन, ज्ञान से प्राप्त एवं सीमातीत हैं।
- **श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.**19 - **निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् । अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनं अनलं इव।।** सांसारिक सम्बन्ध से रहित, क्रिया-शून्य, शान्त, दोष रहित, अमृतस्वरूप मोक्ष दाता, जले हुए ईन्धन से युक्त अग्नि की भाँति निर्मल ज्योति वाले भगवान् का ध्यान करता हूँ।

भगवान् के दिव्य गुण - मुण्डक उपनिषद् 1.1.9 - यः सर्वज्ञः सर्ववित् - पूरे विवरण से जाननेवाले सर्वज्ञ हैं भगवान् । **श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.**6.8

- **परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।** ज्ञान, बल, क्रियारूप स्वरूपभूत अनेकों प्रकार की दिव्य शक्ति से भगवान् सम्पन्न हैं। **छान्दोग्य उपनिषद् 8.1.5 - सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः -** सभी इच्छा एवं प्रतिज्ञा से पूर्ण ।

पाञ्चरात्र में भगवान् के स्वरूप - श्रृणु तत्परमं सूक्ष्मं सर्वगं सर्वभृत्तथा। ज्ञानरूपमनाद्यन्तमविकारि निरामयम्।1। अचक्षुः श्रोत्रमस्पर्शमपाणिचरणं ध्रुवम्। नामजात्यादिरहितमवर्णमगुणं त्वपि।2। विश्वाश्रयो विश्वचक्षुर्विश्व - पाणिपदं परम्। असक्तमचरं शान्तं स्वयंज्योतिरनूपम्।3। दूरस्थमन्तिकचरं ज्ञानगम्यं निरञ्जनम्। भूतभर्तृसमं ज्योतिर्ज्योतिषां तमसः परम्।4। अक्षरं सर्वभूतस्थं तद्विष्णोः परमं पदम्। भगवान् सूक्ष्म, सर्वज्ञ, सबके आधार, ज्ञानरूप, अनादि, अविकारी तथा निरामय आदि हैं। **अहिर्बुधन्य संहिता 2.55 से 2.59 में भगवान् के दिव्य गुण -** श्रीसुदर्शन चक्र की विशेषता बताने वाली यह संहिता शंकर-नारद वार्ता के रूप में है। **अप्राकृतगुणस्पर्श निर्गुणं परिगीयते। श्रृणु नारद षाड्गुण्यं कथ्यमानं मयानघ।55।** हे निष्पाप नारद ! भौतिक प्रकृति के गुण-प्रभावों से मुक्त भगवान् के छः प्रधान गुणों को सुनिये। **अजडं स्वात्मसम्बोधि नित्यं सर्वावगाहनम्। ज्ञानं नाम गुणं प्राहुः प्रथमं गुणचिन्तकाः।56। स्वरूपं ब्रह्मणस्तस्य गुणश्च परिगीयते। जगत्प्रकृतिभावो यः सा शक्तिः परिकीर्तिता।57। कर्तृत्वं नाम यत् तस्य स्वातन्त्र्यपरिबृंहितम्। ऐश्वर्यं नाम तत् प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थचिन्तकैः।58। श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत्। बलं नाम गुणस्तस्य कथितो गुणचिन्तकैः ।59। तस्योपादानभावेऽपि विकार -**

विरहो हि यः। वीर्यं नाम गुणः सोऽयमच्युतत्वापराह्वयम् ।60।
सहकार्यनपेक्षा या तत् तेजः समुदाहृतम् ।61।

ज्ञान स्वरूप एवं गुण से युक्त, संसार के मूल होने के कारण **शक्ति** गुण से सम्पन्न, स्वतन्त्ररूप से सक्रिय रहने से **ऐश्वर्य**वाले, सृष्टि करने में दृढ़ होने से **बल**वान्, सृष्टि के मूल कारण होने पर भी इनमें कोई अन्तर नहीं होने से **वीर्य**वान्, बिना सहायता के सदा सक्रिय रहने से **तेजस**वाले।

भगवान् की दिव्य विभूति - भगवान् की विभूति (धन) सृष्टि, विभिन्न वर्ण, देवगण, मुनिजन आदि हैं जैसा निम्नांकित उद्धरणों से स्पष्ट है।

- **तैत्तिरीय उपनिषद् 3.1- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्ति यत् अभिसंविशन्ति ।** समस्त सृष्टि एवं प्राणियों को उत्पन्न करते, पालन करते तथा प्रलय में अपने में प्रवेश करा लेते वे ब्रह्म हैं।
- **पुरुष सूक्त - ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्। बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः। पदाभ्यां शूद्रो अजायत। -** ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, बाहू से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य एवं पैर से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। **अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां। पादोऽस्य विश्र्वा भूतानि। त्रिपादस्यामृतं दिवि। -** एक ही भाग में समस्त विश्व है और तीन भाग में वैकुण्ठलोक है।
- कहा है- **सहोवाच महिमानएवैषामते त्रयस्त्रिंशत्वेव अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या एकत्रिंशदिन्द्राश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशत्।** तैंतीस

देवगण हैं- आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य एवं दो देव इन्द्र तथा प्रजापति।

- **बृहदारण्यक उपनिषद् 2.6.1,2 - पौतिमाष्यो गौपवनात्, गौपवनः कौशिकात्, कौशिकः कौण्डिन्यात्, कौण्डिन्यः शाण्डिल्यात्, शाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च, गौतमः। आग्निवेश्यात्, आग्निवेश्यः शाण्डिल्याच्च........................** गुरुओं की श्रृंखला में पौतिमाष्य को ज्ञान गौपवन से, गौपवन को कौशिक से, कौशिक कौण्डिन्य से, कौण्डिन्य शाण्डिल्य से, शाण्डिल्य गौतम से, गौतम आग्निवेश्य से आदि आदि ज्ञान प्राप्त किये।
- कहा है- **सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं मन्वन्तरादिकं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।** सृष्टि, संहार, वंश, मन्वन्तर एवं वंशचरित ये पाँच पुराण के लक्षण हैं।

भगवान् की लीला (चेष्टिताम्) - तैत्तिरीय उप. - उद्धृतासि वराहेण। हे धरा!ए तू वराह भगवान् से ऊपर उठाई गयी हो। **विष्णुसूक्तम् 9 - इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।** भगवान् ने तीन पगों में संसार को नाप लिया। प्रमाण है- **रामायणं नारायणकथाम्।** श्रीमद्वाल्मिकी **रामायण** में भगवान् नारायण (राम) की लीला-कथा है। **महाभारत** में नारायण की कथा है। श्रीमद्वाल्मिकी **रामायण बालकाण्ड 29.19/20 - अथ विष्णुर्महातेजा आदित्यां समजायत। वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ।। त्रीन् पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम्। आक्रम्य लोकाँल्लोकार्थी सर्वलोकहिते रतः ।। महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमाजसा।** अदिति के गर्भ से भगवान्

विष्णु ने वामन के रूप में जन्म लिया। संसारहित में विरोचनपुत्र बलि के पास जाकर तीन पग जमीन की भिक्षा मांगी। बलि के अहंकार का दमन करते हुए समस्त संसार पर अधिकार कर ली और फिर इन्द्र को राजा बना दिया।

भगवान् के दशावतर का वर्णन **महाभारत मोक्षधर्म** में है। **महाभारत शान्ति पर्व 339.76-77 - नारदस्त्वथ पप्रच्छ भगवन्तं जनार्दनम् । केषु केषु च भावेषु त्वं द्रष्टव्यो महाप्रभो ।।** नारदजीने भगवान् जनार्दनसे पूछा - 'महाप्रभो! किन-किन स्वरूपों में आपका दर्शन (और स्मरण) करना चाहये? **श्रृणु नारद तत्त्वेन प्रादुर्भावान् महामुने । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च वामनः ।। रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्कि च ते दश। पूर्वं मीनो भविष्यामि स्थापयिष्याम्यहं प्रजाः ।।** श्रीभगवान् बोले–महामुनि नारद! तुम मेरे अवतार के नाम सुनो - मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रराम, बलराम, श्रीकृण तथा कल्कि– ये दस अवतार हैं । पहले मैं 'मत्स्य' रूपसे प्रकट होऊँगा और समस्त प्रजाको निर्भय अवस्थामें स्थापित करूँगा।

लोकान् वेदान् धरिष्यामि मज्जमानान् महार्णवे। द्वितीयं कूर्मरूपं मे हेमकूटनिभं सुत ।। मन्दरं धारयिष्यामि अमृतार्थे द्विजोत्म । मग्नां महार्णवे घोरे भाराक्रान्तामिमं पुनः।। महासागरमें डूबते हुए लोकों और वेदोंकी भी रक्षा करूँगा । वत्स! मेरा दूसरा अवतार होगा कूर्म–कच्छप। उस समय मैं हेमकूट पर्वतके समान कच्छप रूप धारण करूँगा। द्विज श्रेष्ठ ! जब देवता अमृतके लिये क्षीरसागरका मंथन करेंगे, तब मैं अपनी पीठपर मंदराचलको

धारण करूँगा। जिसके सारे अंग प्राणियोंसे भरे हुए हैं तथा जो समुद्र से घिरी हुई है, वही यह पृथ्वी जब भारी भारसे दबकर घोर महासागरमें निमग्न हो जायगी, उस समय मैं वाराह रूप धारण करके इसे पुनः अपने स्थानपर ला दूँगा। **नारायण सूक्तम् - नीलतोयदमध्यस्थाद्विद्युल्लेख भास्वरा -** काले बादल में चमकते बिजली की तरह भगवान् का दिव्य विग्रह है। **मुण्डक उपनिषद् 2.2.7 - मनोमयः प्राणशरीरनेता (शरीरो भारूप) -** सब प्राणियों के शरीर और प्राण का नियमन करनेवाले सबके मन में व्याप्त हैं। नम्माळवार के चारों प्रबन्ध में प्रारम्भ, बीच या अन्त सर्वत्र प्रभुके विग्रहका विस्तृत वर्णन है। **तिरुवायमोळी 6.9.11 -** हजार पद शठकोप स्वामी के आत्मसाक्षात्कार का वर्णन करते हैं। **तिरुविरुत्तम् 2 -** श्यामघन जैसे शरीरवाले भगवान् कृष्ण। **तिरुविरुत्तम् 94 -** काले रंग जैसा प्रभु की देह। **तिरुवाशिरियम् 1 -** हरीतमायुक्त श्यामल शरीर। **तिरुवाशिरियम् 5 -** हरे घने जंगल रंग के शरीर पर लाल कमल जैसी आँखें, होठ आदि।

पेरियतिरुवन्दादि 1- कायाफूल के रंगवाले प्रभु की गाथा। **पेरियतिरुवन्दादि 86 -** बादल ने प्रभु का रंग प्राप्त कर लिया है। **तिरुवायमोळी 1.1.1 -** अभामय दिव्य चरण सभी यातना का अन्त करते हैं। **तिरुवायमोळी 10.10.6 -** कायाफूल के रंग तथा पवाल (मूँगा) के रंग वाले का निवास हमारे हृदय में हैं।

ऐसे तो भगवान् के दिव्य स्वरूप, गुण, ऐश्वर्य आदि वेद-उपनिषद्, पुराण, इतिहास, पाञ्चरात्र एवं प्रबन्ध सर्वत्र वर्णित हैं परन्तु यह कहना

अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उक्त शास्त्रों की अपनी विशेषतायें हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि पाञ्चरात्र में भगवान् के दिव्य स्वरूप तथा गुण का वर्णन है, सृष्टि पुराण में, अवतार इतिहास में तथा दिव्य शरीर का सौंदर्य, रंग, आयुध-आभूषण-अलंकरण आदि का वर्णन नम्माळवार के प्रबन्धों में है।

चूर्णिका 55 -

विभिन्न ऋषियों से प्रणीत पुराणादि आर्ष ग्रन्थ हैं।

मूल - कल्पादिल तोट्रिङ्ग वर्णिक्कुम् चतुर्मुखन् छन्दस्सुम् मोह शास्त्र प्रवर्तकन् पिणाच्चुडलै वेन्दार अक्कुम् आरुम् अणिन्दु एरु एरिच चुळन्-राडुम् आलममर् पिच्चुत् तेळिन्दु तान् वणङ्गुमारु उरैक्कक् केट्ट सजातियर् प्रसादमुम् आर्षमूलम् ।

सूत्र सं. 55- कल्पादावुपस्थितं वर्णयतश्चतुर्मुखस्यच्छन्दो मोहशास्त्रप्रवर्तके श्मशानशवभस्मानुलिप्यास्विनाऽलङ्कृत्व वृषभमारुह्य भ्रमित्वा नृत्यति उन्मादनिवृत्तौ स्वाश्रयणीयमप्रकारमभिहितं श्रुतवतः सजातीयस्य प्रसादश्चार्ष मूलम्।

सामान्य अर्थ - सत्व, रज एवं तम के अलग-अलग या मिश्रित प्रभाव के कारण ब्रह्मा की वाणी विभिन्न ऋषियों से विभिन्न तरह की है। रुद्र अपने शरीर में श्मसान में जले हुए शवों का भस्म लगाते हैं। कटिभाग में मृगछाला, माथे पर गंगा, कण्ठ में विष धारण करनेवाले रुद्र नृत्य करते

हैं, तथा बैल की सवारी करते हैं। ये भ्रमात्मक मोह-शास्त्र के प्रचारक हैं और अपने अनुयायी ऋषियों को मोह-शास्त्र पढ़ाते हैं।

विशेषार्थ - मत्स्य पुराण - **यस्मिन्कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा। तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते।1। संकीर्णाः सात्त्विका राजसाः तामसा इति।** संसार सृजन के प्रारम्भ में सत्व, रज एवं तम मिश्रित रूप में रहते हैं। **अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु प्रकीर्तितम्। राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्णो विदुः।1। सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यधिकं हरेः। तेष्वेव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परां गतिम्।2। संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।** ब्रह्मा पर जब तमस का प्रभाव अधिक रहता है तब वे अग्नि एवं रुद्र को महान् कहते हैं। जब रजस बढ़ा रहता है तब अपनी प्रधानता बताते हैं। सत्व की अधिकायत में वे श्रीमन्नारायण की बड़प्पन करते हैं। तीनों की मिश्रितावस्था में वे सरस्वति एवं पितरों को महान् कहते हैं। जब ब्रह्मा रजस के प्रभाव में थे तब उन्होंने वाल्मीकि मुनि से कहा - **श्रीमद्वाल्मीकि रामायण 1.2.31 - मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वति** - हे वाल्मीकि ब्रह्मन् ! तेरे मुख से निकला हुआ यह छन्दबद्ध श्लोक (**1.2.15 - मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**) मेरी प्रेरणा से निकला है।

प्रमाण है- **अन्यं देव वरं देहि प्रसिद सर्वजन्तुषु। मर्त्यो भूत्वा भवानेव मामाराधय केशव।1। मां बहस्व च देवेश वरं मत्ता गृहाण वा। येनाहं सर्वभूतानां पूज्यात्पूज्यतरोऽभवम्।2। इति वरापेक्षत्वेन स्वोत्कर्षकामत्वात्।**

रुद्र ने अपने को महान् बनाने के उद्देश्य से एकबार भगवान् केशव से एक वरदान के लिए विनती की कि हे देवाधिदेव ! अगर आप हमारी पूजा कर हमसे वरदान माँगें तो अन्य भी ऐसा ही करेंगे।

त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय। भगवान् केशव ने उन्हें मोह-शास्त्र (शिव-आगम) की रचना करने को कहा जिसमें तामसिक आराधना की विधियों का वर्णन हो। इस सन्दर्भ में दिव्य प्रबन्धम् के द्रष्टव्य पासुर **पेरिय तिरुमोळी 2.6.9 -** श्मसानवासी पिंगलवर्ण के शिव। **पेरिय तिरुमोळी 10.1.5 -** श्मसान से भभूत लगानेवाले शिव का प्रभु ने दुःख दूर कर दिया। **पेरिय तिरुमोळी 1.5.8 -** जले शवों के भस्म लगाये, छेदोंभरी खोपड़ी हाथ में लिये रुद्र सभी लोकों में घूमते रहते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 9.6.1 -** जो नर-कपाल एवं व्याघ्र-छाल धारण करते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 6.7.9 -** बैल पर सवार जटाधारी शिव अपने माथे पर गंगा एवं चन्द्रमा धारण किये हुए ब्रह्मा की खोपड़ी का भिक्षा-पात्र लिये हमारे नारायण प्रभु के पास आये तो भिक्षा-पात्र को प्रभु ने अपने हृदय-रस से भरकर उन्हें शाप-मुक्त कर दिया। **इरण्डाम् तिरुवन्दादि 63 -** बृषभ-वाहन शिव, **पेरिय तिरुमडल 71 -** भस्मधारी शिव ने केश फैलाये हाथ में त्रिशूल लिये खुले आकाश में नृत्य किया। **मुदल् तिरुवन्दादि 4 -** विषकण्ठ शिव ने पीपल वृक्ष के नीचे दक्ष, पुलस्त्य, अगस्त्य एवं मार्कण्डेय को योग की शिक्षा दी।

जगत् नियन्ता नारायण वेदात्मा गरुड़ पर सवारी करते हैं। कहा है- **उन्मत्तवदुन्मत्तः प्रभुः प्रभवतामपि। रात्रौ श्मशाने पर्यटसि तत्किमेतत्त -**

वेश्वरः।। उमा शिव से पूछती है, "आप मंगल के प्रतीक श्रेष्ठतर माने जाते हैं। पागल नहीं हैं परन्तु रात्रिकाल में श्मशान में उन्मत्त की तरह घूमने जैसा हीन कर्म करते हैं"। शिव ज्ञानहीन बैल पर सवारी करते हैं। **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 17 -** पीपल वृक्ष के नीचे दक्ष, पुलस्त्य, अगस्त्य एवं मार्कण्डेय को शिव ने वह मार्ग बताया जो संसार को अपने पैरों से मापनेवाले बटपत्रशायी भगवान् की पूजा का मार्ग है। **श्रीविष्णुपुराण 1.1.26 - पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति। देवतापारमार्थ्यं च यथावदेत्वत्स्यते ।।** पुलस्त्य मुनि ने पराशर जी को वर दिया कि हे वत्स ! आप पुराणसंहिता के रचियता होंगे और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को यथावत जानेंगे। इसी तरह ऋषियों की कृपा से ही आलवार सन्तों ने दिव्य-प्रबन्ध की रचना की। नर देहधारी वाल्मीकि को देवता ब्रह्मा ने वर दिया। पराशर ऋषि को पुलस्त्य ऋषि ने वर दिया। भगवान् ने ऋषियों के माध्यम से ही इतिहास पुराणादि की रचना जैसे कराई है, उसीतरह प्रबन्ध की रचना आळवार सन्तों से हुई है।

चूर्णिका 56 -

आळवार की प्रबन्ध रचना की प्रेरणा

मूल - परमसत्वत्तोडे उळिळ उरैक्कुम् निरै ज्ञानत्तु अयनाम् शिवनाम् तिरुमालरुळ् कोण्डु इनर् पाडिनार् ।

सूत्र सं. 56- परमसत्त्वेन विचार्य वदतः पूर्णज्ञानस्याजस्य शिवस्य लक्ष्मी - कान्तस्य कृपयायमगायत्।

सामान्य अर्थ - परमसत्व अवस्थावाले भगवान् की कृपा से आळवार ने भगवान् के अन्तर्यामी बनकर पूर्ण आत्मानुभव से प्रबन्ध के पद गाये हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 1.3.5 - वेदवर्णित प्रभु को आत्मानुभव से प्राप्त करो। **स्तोत्र रत्न 12 - परमसत्त्वसमाश्रयः कः -** प्रभु शुद्ध सत्त्व के आधार हैं। आळवार ने जो कुछ कहा है वह वेद के अनुरूप है। जैसा मन में समाया वे बोलते गये हैं। शिव से कुछ ऋषियों ने भ्रमपूर्ण ज्ञान प्राप्त किये। भगवान् की स्वभावगत कृपा से फिर भ्रम दूर हुआ। **तिरुवायमोळी 4.8.6 -** ज्ञान के प्रतीक प्रभु ने सत्य के मार्ग को स्थापित किया। **तिरुवायमोळी 8.8.11 -** श्रियःपति भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र के अन्तर्यामी बनकर उनसबों से उनके निर्धारित कार्य करवाते हैं, और इसीलिए उनके नाम से विदित हैं। **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु 8 -** भगवत् प्रसाद स्वरूप प्राप्त तिरुवायमोळी के मधुर हजार पदों को शठकोपन् ने महती कृपा से उपलब्ध कराये हैं। **दिया आपने तमिल वेद जो ढूँढ़े आपसे भक्ति सीख ।**

जग हुआ आपका कृपा-पात्र पाकर सहस्र मधुर तमिल गीत।।

चूर्णिका 57 -

नम्माळवार को तिरुवायमोळी भगवत् प्रसाद से मिला है।

मूल - करुवुळ् वेरलामै अरन् अयन् एनच् सेय्युमवै पोले मूवुरुवा मुदलवन् तुप्परवाले परम कविगळाल् पाडुवियादु नेर्पडच् सोल्लुम् नीर्मैयिला एन्नैत् तन्नाक्कि एन्ना मुदल्वन्दु पुगुन्दु तप्पुदलरत् तन्नै वैगुन्दनागत् तन् सोल्लाल् ताने तुदित्तु मलक्कु नावियल् मय्य सोल्लाल् वल्लेन् एन्-रु नानुम्

सोल्लि नाडुम् कैयेडुक्कुम्बडि एन् सोल्लाल् यान् सोन्न इन्कवि एन्बित्तान् एन्-रारिरे

सूत्र सं. 57- अन्तरन्तरा पृथग्भावं हरोऽजोऽकरोत् इतीव त्रिमूर्तिरादिः सामर्थ्येन परमकवीन् गाययित्वा साक्षाद् वक्तुमनुगुणेन् स्वभावेन शून्यं मां स्वं कृत्वा मम जिह्वामूलमागत्य प्रविश्य प्रच्युतिं विना स्वं वैकुण्ठत्वेन स्ववचसा स्वयमेव स्तुत्वा स्तोत्रार्हजिह्वास्वभाववचसा वक्तुं समर्थोऽहमिति यथाहं वदामि लोकोऽपि यथा च हस्तमुद्धरेत् तथा मदवचसा मयोक्तो भोग्यकविः इति प्रसिद्धिमापादयामास इत्यवदत् खलु।

सामान्य अर्थ - आळवार ने स्वंय कहा है - भगवान् ब्रह्मा रुद्रादि के अन्तर्यामि बनकर उनलोगों से यह कहवाते हैं कि वे लोग स्वयं सृजन - संहारादि के लिए सक्षम हैं। इसीतरह भगवान् मुझमें प्रवेश कर मुझसे अपनी गाथा का गान कराते हैं और संसार अंजलिबद्ध होकर मेरा ही सम्मान करते हैं।

विशेषार्थ - विष्णुधर्मोत्तर पुराण 69, 50 - सृष्टिं ततः करिष्यामि त्वामाविश्य प्रजायते। कल्पान्ते रुद्ररूपो यो ग्रसेत सकलं जगत्। भगवान् ब्रह्मा से कहते हैं कि मैं तुझमें प्रवेश कर सृजन कार्य करूँगा। इसीतरह कल्प के अन्त में रुद्र के अन्तर्यामि बनकर संहार का कार्य करते हैं। **महाभारत कर्णपर्व 34.50** में कहा है- **विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।** अमिततेजस्वी शंकरके आत्मा हैं विष्णु। **तिरुवायमोळी 5.10.8 -** नाभिकमल पर बैठे ब्रह्मा के महान् सृष्टि कार्य के लिए आपही

गर्भ में प्रवेश करते हैं। **तिरुवायमोळी 5.10.4 -** जटाधारी शिव का वेष बदल कर आप असुरों के नगर में प्रवेश करके उनलोगों का संहार करते हैं। **तिरुवायमोळी 1.1.8 -** आपने तीन नगरों को जलाकर देवों को बुद्धि प्रदान की। आप ही स्रष्टा ब्रह्मा तथा विनाशक शिव भी हैं। **तिरुवायमोळी 7.9.2 -** आप अपने तथा सबके कारण हैं। अपने शब्दों को मेरे मुँह से निकालकर मुझे गौरव प्रदान किया। **तिरुवायमोळी 7.9.9 -** कार्य के अनुरूप आप शक्ति का प्रयोग करते हैं। घास के पत्ते से भी आप कार्य कर डालते हैं। **तिरुवायमोळी 7.9.6 -** विख्यात व्यास एवं पराशर से न गवाकर आप मुझमें घुलकर अपनी मधुर गाथा स्वयं गाये। **तिरुवायमोळी 7.9.5 -** आपने ज्ञान देकर मुझसे गाथा का गान कराया। **तिरुवायमोळी 7.9.3 -** आप हमारी जीभ पर विराज गये। **तिरुवायमोळी 7.9.4 -** उपकरण बन कर अपनी कमियों से अछूता आपकी गाथा गाया। **तिरुवायमोळी 7.9.7 -** मेरी वाणी से वैकुण्ठ की प्रशस्ति आप स्वयं गाये। **तिरुवायमोळी 7.9.2 -** गाया आपने गौरव मुझे मिला। **तिरुवायमोळी 10.7.2 -** अन्तर्यामी होकर आपने अपने बारे में अपने शब्दों से गाया।

तिरुवायमोळी 6.4.9- सात पर्वत, सात सागर तथा सात लोक के अन्त तक रथ चलानेवाले शंख-चक्रधारी प्रभु के चमत्कार हैं कि अपने ही शब्दों की गाथा से अपने आप को प्रसन्न किया है। **तिरुवायमोळी 4.5.4-** अपनी जीभ से हमने बिना किसी ज्ञान के अपने आप प्रवाहित शब्दों से आपकी प्रशस्ति गीत-माला गूँथी। **तिरुवायमोळी 4.5.2 -** मृदु शब्दों से आपकी प्रशस्ति के पदों को रचकर गाने का सौभाग्य मिला। विचित्र विश्व की

हमारी घातक यातनाओं का अन्त हो गया है। **तिरुवायमोळी 4.5.9 -** हमने आपकी प्रशस्ति गायी है, कोई मेरी बराबरी कर सकता है क्या ? **तिरुवायमोळी 2.2.11 -** ऐसा सोंचकर कि शठकोपन् ने हजार मृदु पद गाये हैं सब अंजलिबद्ध होकर मेरी प्रशंसा करेंगे। इस व्याख्या से यह स्पष्ट है के आळवार ने भगवान् की कृपा से ही ये पद गाये हैं। **तिरुवाय. 7.9.2-** लग रहा था कि हम अपने शब्दों से गा रहे हैं परन्तु आप ही अपने शब्दों में अपनी प्रशस्ति गाये हैं।

चूर्णिका 58 -

आळवार एवं ऋषियों के बीच अन्तर

मूल - धर्म वीर्य ज्ञानत्ताले तेळिन्दु हृष्टराय मेले मेले तोडुप्पारैप् पोलनरे अरुळिन भक्तियाले उळ्कलनगिच् चोगित्तु मूवारुमासम् मोहित्तु वरुन्दि एङ्गित् ताळ्नद सोरकळाले नूरकिरविवर् ।

सूत्र सं. 58- धर्मवीर्यज्ञानेन प्रसन्ना हृष्टा उपर्युपरि संदर्भयन्त इव न भवति प्रसादितया भवत्यान्तः शिथिलः शोकित्वा त्रिषण्मासान् मोहित्वा प्रयासेन विह्वलो निम्नैर्वचोभिः संदर्भयन्नयम् ।

सामान्य अर्थ - ऋषियों ने धर्म, वीर्य और ज्ञान के सहारे अपने प्रबन्धों की रचना की परन्तु आळवार के प्रबन्ध भगवत् कृपा से प्राप्त हुये हैं। भगवान् में दृढ़ भक्ति एवं आसक्ति के कारण बार-बार द्रवित होना, दुःखी होना तथा उत्कट चाह से विकल होकर मधुर पद गाना इनके स्वभाव का पर्याय हो गया था। यहाँ तक कि भगवान् के विरह तथा संयोग में ये छः

छः महीने तक तीन बार **(सहस्रगीति 1.3.1, 5.10.1, 8.8.1) अचेतावस्था (समाधि)** में चले गये थे।

विशेषार्थ - श्रीमद्वाल्मीकि रामायण 1.3.4 - हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्। तत् सर्वं धर्मवीर्येण यथावत् सम्प्रपश्यति ।। राम, लक्ष्मण, सीता, रानियों के साथ राजा दशरथ आदि के हँसना, बोलना तथा अन्य राज-काज की गतिविधियों को वाल्मीकि ऋषि अपने धर्म-वीर्य अर्थात् तपस्या के बल से देख लेते हैं। **तिरुवायमोळी 7.2.7 -** ज्ञान का आनन्द बहुत बड़ा है। यह स्पष्ट दृष्टि देता है। ज्ञानबल से ऋषिगणों ने अपनी रचनाओं का विस्तार किया है। प्रमाण है- **न बोधाद् परमसुखम्।** ज्ञान से बढ़ कर कोई आनन्द नहीं है। **तिरुवायमोळी 1.1.1 -** असीम कृपा से भगवान् ने आळवार को शुद्ध ज्ञान दिया जिससे उन्हें परिपक्व भक्ति मिली। **तिरुवायमोळी 1.4.3 -** काल-कर्म के वशीभूत हम बिल्कुल असावधान हैं। आळवार को अपने मन के अनुरूप भगवद् अनुभव का आनन्द न मिलने से तीन वार वे छः-छः महीने तक समाधि में चले गये। वियोग से तड़पते हुए उन्होंने इसे अत्यन्त आश्चर्यजनक कहा। **तिरुवाय.2.4.1-** यह किशोरी गाते-नाचते आँसू बहाते अचेत हो जाती है। **तिरुवायमोळी 1.3.1 -** सबसे श्रेष्ठ एवं पूर्णकाम होकर भी, आश्चर्य है, आपने चोरी की। **तिरुवायमोळी 5.10.1-** आपका जन्म, बालपन, पाण्डव के पक्ष में आपकी शक्ति आदि आपके अचम्भे वाले काम हमारे हृदय को आत्मसात् कर ले रहा है। **तिरुवायमोळी 8.8.1 -** भगवान् के वियोग में जब आळवार की आँखें एवं जीभ सूख गयी तब भगवान् की भी वैसी ही स्थिति हुई। वे अपने पूर्ण सौंदर्य आभूषण-

आयुधादि से युक्त आळवार में मिल गये जिससे आळवार पुनः तेज से चमकने लगे। **तिरुवायमोळी 3.8.10 -** गीतमाला से आपका यशगान करते आपके चरणारविन्द के दर्शन हेतु हम अश्रुधारा बहा रहे हैं। एक-एक शब्द बोलना पहाड़ उठाने की तरह श्रमसाध्य है। **तिरुवायमोळी 8.5.3 -** आपको नहीं देखने से उदास-मन आपको पुकार कर विलखते हुए रोता हूँ। **तिरुवायमोळी 8.5.11-** हजार पद का यह दशक प्रभु से पूछता है कि आपका दर्शन कहाँ मिलेगा ? **तिरुवायमोळी 8.5.10 -** दूध में मक्खन की तरह आप अदृश्यमान हैं ! **तिरुवायमोळी 4.5.10 -** मेरा सौभाग्य कि यह अमृतमय द्रविड़ प्रबन्ध सबसे गेय है।

चूर्णिका 59 -

आळवार सभी सन्तों-ऋषियों से श्रेष्ठ हैं।

मूल - स्वाध्याय योगङ्गळैक कङ्डुम् तेळिन्दुम कण्ड मैमैप्पाले ओदि उणर्न्दवर इन्नुम् आशापाश बद्दर्, अवन् वळङ्गुम् दिव्य चक्षूस्साले नेरे कार्सेरिन्द नीराडि कट्करिय अरुम्पोरुलैक कण्डपोदे यामुरामै एन्नुम्बडि इवर्क्कु वन्पासङ्गळ् नीन्गिड्डु ।

सूत्र सं. 59- स्वाध्याययोगावभ्यस्य वैशद्यं प्राप्य तज्जनितदर्शने वैशद्येनाधीत्य ज्ञातवन्तोऽद्य यावदाशापाशबद्धाः तद्वितीर्णदिव्यचक्षुषा साक्षान्नैल्यनिविडेन स्नात्वा द्रष्टुं दुःशकदुर्लभवस्तु दर्शनसमय एव वयं यथा न प्राप्नुम इत्यस्य दृढ़पाशा निवृत्ताः।

सामान्य अर्थ - वेद के ज्ञान तथा योग की निपुणता से कुछ लोग मुक्ति को समझ पाते हैं परन्तु वे भौतिक कामनाओं से ग्रस्त रहते हैं। भगवद् कृपा से आळवार को भगवान् के अचिन्त्य दिव्य स्वरूप की झाँकी मिली और वे सदा सांसारिक कामनाओं से मुक्त रहे।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 7.2.3- लाज छोड़कर कहती है, 'मणि प्रभु' और आकाश में देखकर उसाँसे लेती है। **श्रीविष्णुपुराण 6.6.2-3 - स्वाध्यायात् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमावसेत् । स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।।2।। तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षर्योगस्तथा परम् । न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतस्स शक्यते ।।3।।** स्वाध्याय से योग का तथा योग से स्वाध्याय को आश्रय करने से परमात्मा का ज्ञान होता है। भगवान् को चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। स्वाध्याय एवं योग की आँखों से ही उनका समझा जा सकता है। वेद समस्त शास्त्र पुराण तथा इतिहास (रामायण, महाभारत) आदि का बोधक है। अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा एवं समाधि से योग की साधना होती है। वेदाध्ययन से त्याज्य एवं उपादेय कर्त्तव्यों का सम्यक ज्ञान होता है। **तिरुवाय.3.5.5-** विद्वान जनों को वीथियों में नाचते हुए प्रभु की प्रशस्ति

गाने के लिए सीखना होगा। **गीता 16.12 - आशापाशशतैर्बद्धाः -** सैंकड़ों कामनाओं से बन्धा रहता है। **गीता 11.8 - दिव्यं ददामि ते चक्षुः -** भगवान् ने अर्जुन को जब दिव्य चक्षु प्रदान किया तब वे उनके विश्वरूप का दर्शन कर सके। आळवार को भी भगवत् प्रदत्त दिव्यज्ञान् की आँख से ही उनके दिव्य सौंदर्य की झाँकी मिली। भगवान् का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। **मुदल् तिरुवन्दादि 56 -** भगवान् के नाभि-कमल पर बैठे ब्रह्मा भी उनके चरणारविन्द को नहीं देख सकते। **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 73 -** नीलकंठ शिव तथा आठ आँखों वाले ब्रह्मा भी अपने पूर्वज के आवास वैकुण्ठ का रास्ता नहीं जानते। **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 27 -** भस्म लगाये रुद्र भी फूलों से सुसज्जित प्रभु के चरणारविन्द को नहीं देख पाते। **तिरुवायमोळी 7.7.11 -** ब्रह्मा, शिव एवं इन्द्रादि देवगण भगवान् से ज्ञान तथा शक्ति मिलने पर भी उनको नहीं देख पाते। **तिरुवायमोळी 2.7.12 -** जगत् को निगलने वाले जगन्नियन्ता दामोदर प्रभु के अंश से उत्पन्न ब्रह्मा एवं रुद्र भी उनको नहीं जान पाते।

तिरुवायमोळी 9.3.3 - वेद भगवान् को चेतनों का सार मानता है। वेद ज्ञानपुंज होते हुए भी प्रभु को नहीं जान पाता। **केनोपनिषद् 2.3 - यस्यामतं तस्य मतं -** ज्ञान के अभिमान वाले भगवान् का साक्षात्कार नहीं कर पाते।

जो नहीं जानता है वही उनको जान लेता है। **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 60 -** अरंगम् के प्रभु ! जो अपने प्रयास से आपको जानना चाहता है वह आपको नहीं जान पाता। **कठोपनिषद् 1.2.23 - नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।** यह परमात्मा न प्रवचन से, न बुद्धि और न बहुत सुनने से ज्ञात होता है। बिना उनकी कृपा के कोई उन्हें नहीं जान सकता।

तिरुवायमोळी 10.4.9 - अन्ततः फूलों से अलंकृत आपके चरणारविन्द का दर्शन हुआ। **तिरुविरुत्तम् 1 -** ऐसी कृपा कीजिये कि हम अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति, दुष्टतापूर्ण कार्य तथा गंदगी से भरे शरीर को पुनः न प्राप्त करें। **तिरुवायमोळी 8.2.11 -** भगवान् के लिए सभी कामनाओं का त्याग कर दिया। **तिरुवायमोळी 7.8.5 -** अपनी कृपा से आपने हमें सभी इच्छाओं से मुक्त कर दिया।

चूर्णिका 60 -

आळवार ने अपने जीवन को भगवान् पर आश्रित रखा।

मूल - अवरगळुक्कु कायोडु एन्नुम् इवैये दारकादिगळ् , इवरक्कु एल्लम् कण्णनिरे

सूत्र सं. 60- तेषां फलेनेत्युक्

सामान्य अर्थ - ऋषिलोग का जीवन कच्चे फल-मूलादि पर निर्भर है परन्तु आळवार के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ही फल-मूलादि सबकुछ हैं।

विशेषार्थ - पेरिय तिरुमोळी 3.2.2- प्रभु को हृदय में बसाने के इच्छुक लोगों ! कच्चे फल-सब्जी एवं हवा पर रहना, पंचाग्नि लेना, कठिन तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। **पेरिय तिरुमडल 12 -** मोक्ष को प्राथमिकता देने वाले गिरे हुए फल एवं पत्ते खाकर रहते हैं। पर्णशाला में रहना, गर्मी में धूप, जाड़े में ठंढे जल में रहना आदि से अपने को क्यों दण्डित करते हो। **पराङ्कुशाष्टकम् 3 - ऋषिं जुषामहे कृष्ण तृष्णा तत्त्वमिवोदितम्।** नम्माळवार ऋषि को पूजता हूँ जिनके लिए कृष्ण ही धारक, पोषक तथा भोग्य हैं। **तिरुवायमोळी 6.7.1 -** हमारा भोजन, पेय तथा जो पान हम चवाते हैं वे सभी कृष्ण हैं।

चूर्णिका 61 -

आळवार सभी भौतिक कामनाओं से मुक्त हैं। इसीलिए भगवान् के वियोग में तड़पते हैं। ऋषिगण सांसारिक लगाव के वियोग से विकल होते हैं।

मूल - अळुनीर तुळुम्बक कडलुम् मलैयुम् विसुम्बुम् तुळाय तिरुमालेन्-रु एङ्गे काण्गेन् एन्नुम् इवर् अलमाप्पु अवर्गळुक्कुप् पुत्र वियोगत्तिले ।

सूत्र सं. 61- रोदनजलप्रसरणं समुद्रे पर्वते आकाशे वाऽन्विष्य श्रीकान्तं कुत्र द्रक्ष्यामि इति चास्यावसादस्तेषां पुत्रवियोगे।

सामान्य अर्थ - पुत्र वियोग में जैसे ऋषि विकल होते हैं आळवार वैसे ही भगवान् के वियोग में तड़पते हैं।

विशेषार्थ - भगवान् के विरह में आळवार आँखों में आँसू भरकर उनको गहरे सागर में, दुर्गम पहाड़ों में तथा दूर आकाश में खोजते हुए भारी मन से **"श्रीमन्नारायण"** कहकर पुकारते हैं। **तिरुविरुत्तम् 2 -** पराङ्कुश नायकी की आँखें अश्रुवर्षा करती हुईं ऐसी प्रतीत होती हैं मानो तालाब के जल में दो मछलियाँ कुछ खोजते हुए एक दूसरे का पीछा कर रहीं हैं। **तिरुवायमोळी 2.1.4 -** भगवान् को सागर, पहाड़ तथा आकाश में खोजते हैं। **तिरुवायमोळी 9.8.10 -** सागर, पहाड़ एवं आकाश की शीतल वायु का अनुभव करके घवराये हृदय से उन्हें श्रीमान् कहती है। **तिरुवायमोळी 8.5.11 -** सुगंधित तुलसी की माला धारण करनेवाले प्रभु ! कहाँ आपका दर्शन होगा ? **तिरुवाय. 5.8.4-** आपके दर्शन की आकाँक्षा से आपको खोजते आकाश में देखकर रोती हूँ। जहाँ एक ओर आळवार प्रभु के वियोग से विकल होते हैं वहीं दूसरी ओर वशिष्ठ तथा व्यास अपने पुत्र वियोग से तड़पते हैं। कहा गया है - **स मेरुकूटादात्मानं मुमोच भगवान् ऋषिः। शिरस्तस्य शिलायां च तूलराशाविवापत्।1। न ममार च पातेन तदा स मुनिसत्तमः। तथाग्निमिध्वा भगवान् स विवेश महावने।2। तं तदा सुसमिद्धोऽपि न ददाह हुताशनः। दीप्यमानोऽप्यमित्रघ्नः शीतोऽग्निरभवत् क्षणात् ।3। स समुद्रमभिप्रेत्य शोकाविष्टो महामुनिः। कण्ठे बध्वा शिलां गुर्वी निपपात तदंभसि।4।** वशिष्ठ ऋषि पुत्र के मरने पर पहाड़ से कूदे, अग्नि में कूदे तथा कण्ठ में शिला बान्धकर समुद्र में कूदे परन्तु मरे नहीं। व्यास ऋषि के पुत्र शुकदेव जी जन्म के बाद बिना यज्ञोपवीत संस्कार के घर छोड़कर जब संन्यास के लिए जा रहे थे तब व्यास जी ने कातर होकर उनका पीछा करते हुए उन्हें

घर लौटने को कहा - **भागवत 1.2.2 - यं प्रव्रजन्तम्-अनुपेतम्-अपेतकृत्यम् द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव पुत्रेति।**

चूर्णिका 62 -

आळवार के जीवन के लक्ष्य तथा उपाय ऋषियों से भिन्न हैं।

मूल - फल साधन देवतान्तरङ्गळिल इवरगळ् निनैवु पेच्चिले तोन्-रुम् ।

सूत्र सं. 62- फलसाधनदेवतान्तरेषु एतेषां प्रतिपत्तिवार्तयैक ज्ञायते।

सामान्य अर्थ- देवताओं के लक्ष्य, उपायादि उनकी वाणी से स्पष्ट होते हैं।

विशेषार्थ - कर्म तथा ज्ञान भगवान् को प्राप्त करने के साधन हैं। इन्द्रादि देवों के अन्तर्यामि भगवान् ही लक्ष्य हैं। **श्रीविष्णुपुराण 6.5.59-60 -**

निरस्तातिशय आह्लाद सुखभावैक लक्षणा। भेषजं भगवत्प्राप्तिः एकान्त आत्यन्तिकी मता।।59।। तस्मात् तत् प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैः नरैः।

तत् प्राप्तिहेतुः ज्ञानं च कर्म चोक्ते महामुने ।।60।। भगवान् को पाने पर संसार के तीन तापों से छुटकारा मिलता है। इसका एक मात्र लक्षण निरतिशय आनन्दरूप सुख की प्राप्ति है। इसलिए पण्डितलोग ज्ञान तथा कर्म से उन्हें प्राप्त करने का यत्न करते हैं। इस सम्बन्ध में आळवार कैंकर्य तथा प्रपत्ति को लक्ष्य एवं उपाय कहते हैं - **तिरुवायमोळी 2.9.4 -** हमारे हृदयस्थ प्रभु सदा कैंकर्य करने कहते हैं। **तिरुवायमोळी 3.3.1 -** वेंकट प्रभु की सदा सब तरह की सेवा करो। **तिरुवायमोळी 5.10.11-** एकाग्र चित्त से एकमात्र आश्रय के रूप में शेषशायी प्रभु के चरणारविन्द की अर्चना

करो। **तिरुवायमोळी 6.10.10 -** वेंकटम् प्रभुके चरण पर गिरकर यह आश्रयविहीन जीव अपना आश्रय पा गया है। **तिरुवायमोळी 4.6.10 -** कृष्ण को छोड़कर अन्य देवता का आदर नहीं। वेद के सारस्वरूप **मूल मन्त्र - ऊँ नमो नारायणाय** - का यहाँ भाव समझना अत्यन्त उपयोगी है।

- **प्रणव 'ऊँ'** आत्मा का शेषत्व (कैंकर्य) स्वरूप बताता है। **नारायणाय** से स्पष्ट है कि कैंकर्य केवल नारायण के लिए है।
- आत्मा की भगवान् पर परतन्त्रता - सहारा **नमो** से स्पष्ट होता है। अन्य देवता की उपासना की बात विल्कुल निरर्थक तथा निर्मूल है।

चूर्णिका 63 -

चूर्णिका 58 से 62 तक नम्माळवार की श्रेष्ठता बताई गई। यहाँ से उनके प्रबन्ध की श्रेष्ठता कही जायेगी।

मूल - रामायणम् नारायण कथै एन्-रु तोडन्गि गंगा गांगेय सम्भवाद्य सत्कीर्तनम् पण्णिन एच्चिल्वाय शुद्धि पण्णामै तिरुमाल् अवन् कवि एन्-र वायोलैप् पडिये माट्रङ्गळ् आयन्दु कोण्डु उरिय सोल्वा एत्ति इदु वेदादिगळिल् पौरुष मानव गिता वैष्णवङ्गळ् पोले अरुळिच्चेयलिल सारम्।

सूत्र सं. 63- रामायणं नारायणकथामित्यारभ्य गंगागांगेयसंभवाद्यसत्कीर्तन प्रयुक्ताऽशुद्धि मदवाक्यशुद्धयपेक्षामन्तरा लक्ष्मीकान्तस्य कविरिति प्रथमोक्तप्रकारेण शब्दैर्विमर्शितैर्विरचितोऽयं वेदादिषु पौरुषमानवगीता प्रबन्धेषु सारः।

सामान्य अर्थ - ऐसा कहकर कि श्रीराम और नारायण की कथा कहूँगा उनलोगों ने गंगा तथा गांगेय (भीष्म) की कथा कहकर अपने मुँह को दूषित किया। नम्माळवार ने श्रीमन्नारायण का कीर्तिगान की घोषणा करके तिरुवायमोळी में उन्हीं का यशगान किया। जिसतरह पुरुष सूक्त वेद का, मनु स्मृति धर्म शास्त्र का, भगवद्गीता महाभारत का, श्रीविष्णुपुराण पुराणों का सार है, उसीतरह तिरुवायमोळी दिव्यप्रबन्धम् का सार है।

विशेषार्थ - श्रीवाल्मीकि मुनि ने **रामायण 1.2.41** में कहा - **कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् -** मैं ऐसे ही श्लोकों से पूरी रामायण की रचना करुँ। लेकिन उन्होंने गंगा, सुब्रमण्य, पुष्पक विमानादि की निरर्थक विस्तृत कथा कही। **महाभारत आदिपर्व** - **नारायण कथा इमाम्।** व्यास मुनि ने नारायण की कथा कहने की घोषणा करके भीष्म के जन्म, अन्य कथाओं तथा युद्ध का निरर्थक विस्तार करके इसे **युद्ध का ग्रन्थ** बना दिया। **हरिवंश** में भगवान् कृष्ण की कथा को गंगा जल की तरह मुँह को पवित्र करने वाला कहा क्योंकि वन में घूमने से जैसे धूल से कण्ठ भर जाता है वैसे ही महाभारत की निरर्थक कथाओं से उनके मुँह की स्थिति हो गयी थी। व्यास जी ने अपने मुँह को शुद्ध करने की बात कही परन्तु वाल्मीकि जी ने ऐसी स्वीकारोक्ति नहीं की।

तिरुविरुत्तम् 48 - प्रभु अपनी गाथा का गीत स्वयं रचते हैं। मैं उनके ही शब्दों को बोलने के लिए उनसे ही सीखा हूँ। **तिरुवायमोळी 6.8.11-**

अतिप्रिय शब्द । **तिरुवायमोळी 4.5.6 -** यशगान के समरूप शब्दों की रचना। **तिरुवायमोळी 2.2.11 -** भगवान् को प्राप्त करानेवाले।

कहा है- **वेदेषु पौरुषं सूक्तं धर्मशास्त्रेषु मानवम्। भारते भगवद्गीता पुराणेषु च वैष्णवम्।।** पुरुष सूक्त वेद का, मनु स्मृति धर्म शास्त्र का, भगवद्गीता महाभारत का, श्रीविष्णुपुराण पुराणों का सार है, और वेद, मनु स्मृति, महाभारत तथा अन्य पुराणों में अन्य प्रसंग भी हैं, परन्तु तिरुवायमोळी में भगवान् को छोड़कर दूसरा कोई प्रसंग नहीं है। **तिरुवाय. 8.2.11-** अन्तादि शैली पर यह निर्मल दशक शठकोपन् के हैं जिन्होंने भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द को प्राप्त करने हेतु अपनी सभी कामनाओं का त्याग कर दिया। समस्त दिव्यप्रबन्धम् सभी आळवारों के भगवद् गुणानुवाद ही हैं और तिरुवामोळी इनसबों का सार है। इसलिए अन्य ऋषियों की रचनाओं से तिरुवायमोळी श्रेष्ठ है।

चूर्णिका 64 -

तिरुवायमोळी से मेल नहीं खानेवाली रचनायें त्याज्य हैं।

मूल - गुरु शिष्य ग्रन्थ विरोधङ्गळैप् परमतादिगळाले परिहरियामल् सेन्जोल सेन्दमिळ इन्कवि परवि अळैक्कुम् एन्-रु अन्योन्यम् कोण्डाडिप् पेसिट्रे पेसुम् एककण्डरिल् एन्निल् मिगुवेन्नुम् इवर् उरैकोळ् इन्मोळी कोण्डु शास्त्रार्थङ्गळ् निर्णयिक्क वेण्डुगैयाले वलङ्गोण्ड इदुक्कुच् चेरादवै मनु विपरितङ्गळ् पोले ।

सूत्र सं. 64- गुरुशिष्यग्रन्थविरोधौ न परमतादिना परिहर्तव्यौ श्रीमदवचः श्रीमद्द्रविडभोग्यकविस्तुत्याह्वयत्सु अन्योऽन्यं श्लाघित्वा उक्तमेकमेव वदत्सु एककण्ठेषु मत्तोऽधिकः क इतिवदतोऽस्य प्रबन्धवाक्यमादाय शास्त्रेष्वर्थनिर्णयस्य कर्तव्यत्वात् प्रबलस्यास्याननुरूपाणि मनुविपरीतानीव।

सामान्य अर्थ - ऋषिगणों को गुरु-शिष्य मतभेद का समन्वय करना पड़ता है। परन्तु आलवार सन्तों ने एक स्वर से प्रभु का यशगान किया है। सबों के प्रधान नम्माळवार हैं और इनके मधुर प्रबन्धों से ही शास्त्रों को समझना है। जो शास्त्र समरूप नहीं बैठते हैं उनका परित्याग करना है।

विशेषार्थ - व्यास ने 545 सूत्रों का ब्रह्मसूत्र की रचना की है। व्यास के ब्रह्मसूत्र पर उनके शिष्य जैमिनि के अलग विचार थे। जैमिनि के कर्मसूत्र पर व्यास के भिन्न विचार थे। **ब्रह्मसूत्र** कुछ सूत्र - **1.2.32 - सम्पत्तेरिति जैमिनिः, 1.4.18 - अन्यार्थं तु जैमिनिः, 4.3.11 - परं जैमिनिर्मुख्यत्वात्, 4.4.5 - ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः।** इन सूत्रों में जैमिनि ब्रह्म के स्वभाव, गुण, क्रियाशीलता और उसके परिणाम पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं। जैमिनि को ब्रह्म का ज्ञान व्यास से मिला है, अतः यहाँ दोनों के विचार एक समान हैं। कुछ विद्वान् कहते हैं कि वेद की रचना ईश्वर की है। इसपर जैमिनि का विचार है कि चूँकि यह व्यक्ति विशेष से बना है, इसलिए इसमें कुछ त्रुटि होना स्वाभाविक है। इसीकारण से जैमिनि ने प्रायश्चित्त अथवा अन्य संस्कारों के लिए अनुष्ठान् को महज औपचारिक क्रिया बताया। कुछ विद्वान् ऐसा भी कहते हैं कि जैमिनि के कर्मसूत्र की

पृष्ठभूमि को समझने पर यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने वेद के किसी संस्कार का विरोध नहीं किया है। जो भी हो, उपर्युक्त संदर्भ यह बताता है कि गुरु शिष्य में कुछ मतविभेद तो है ही। परन्तु आळवार सन्तों में कोई मतविभेद नहीं दृष्टगत होता है और सभी दिव्य प्रबन्ध एक स्वर से भगवान् का गुणानुवाद ही करते हैं।

न्याय सूत्र में कहा है- **न हि निन्दा निन्दितुं प्रवर्तते अपि तु निन्दितेतर-त्प्रशंसितुम्।** निन्दित की निन्दा करना निन्दा नहीं है। परन्तु निन्दा के अतिरिक्त दूसरे विषय की प्रशंसा का भी यह बोधक है।

तिरुवायमोळी 10.7.1 - मधुरभाषी कविगण। **पेरियतिरुमोळी 2.8.2 -** मृदु तमिळ पदों में गानेवाले मुदलआळवारों। **तिरुवायमोळी 7.9.6 -** आपने बड़े कवियों - पराशर, व्यास, वाल्मीकि आदि को नहीं चुना। **पेरियतिरुमोळी 7.1.7 -** तिरुनिर्मलै निवासी अर्चक भक्तों के जान-प्राण। **पेरुमालतिरुमोळी 2.2 -** भक्तगण नाचते-गाते **"हे रङ्गा !"** पुकारते हैं। इसतरह से आळवारगण एक दूसरे को महिमामण्डित करते हैं।

आळवारगण एक समान गाते हैं। **तिरुमालै 22 -** वेद एवं वैदिकों ने जो बार-बार कहा है उसे दुहराने से क्या लाभ । **पेरियतिरुवन्दादि 4 -** भगवान् के गुणगान करने के कारण कौन हमसे बड़ा हो सकता है ! यानी कोई नहीं। **तिरुवायमोळी 6.5.3 -** संसार से प्रशंसित मधुर गीत जो रामायण के गीत से श्रेष्ठ हैं। शास्त्रादि की शंकाओं को स्पष्ट करना होगा। **तिरुवायमोळी 3.8.11 -** हजार पदों के ये सुविचारित सारगर्भित गीत भगवान् को प्रकट

कराने में सक्षम हैं। मनुस्मृति से मेल नहीं खानेवाले स्मृति जैसे मान्य नहीं हैं वैसेही तिरुवायमोळी से अलग विचारवाले शास्त्र त्याज्य हैं।

चूर्णिका 65 -

तिरुवायमोळी की सहायता से शास्त्र को समझानेवाले कौन हैं ?

मूल - भाष्यकारर् इदु कोण्डु सूत्र वाक्यङ्गळ् अरुङ्ग विडुवर।

सूत्र सं. 65- भाष्यकारोऽमुमादाय सूत्रवाक्यान्यनुनयितवान् तस्य मूलं विधयश्च वैदिका इति परमाचार्यवचनं इत्याह भाष्यकार इत्यादि वाक्यद्वयेन।

अर्थ - तिरुवायमोळी के सार को भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामी ने ब्रह्मसूत्र की व्याख्या श्रीभाष्य में समाहित किया है।

चूर्णिका 66 -

भगवद्श्रीरामानुज स्वामी ने तिरुवायमोळी को इस तरह से क्यों समझाया ?

मूल - अदुक्कु मूलम् - "विधयश्च" एङ्गिर परमाचार्य वचनम्

सूत्र सं. 66- तन्मूलं विधयश्चेति परमाचार्यवचनम्

अर्थ - परमाचार्य श्रीयामुनाचार्य स्वामी (आलवन्दार) - **स्तोत्र रत्न 20 - त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति प्रणाशसंसार विमोचनादयः। भवन्ति लीला- विधयश्च वैदिकाः त्वदीयगम्भीर मनोनुसारिणः।। -** वेद की विधियाँ भी आपके भक्तों के ह्रदय का अनुशरण करती हैं, अर्थात् शास्त्र नम्माळवार

जैसे भक्तों के भाव के अनुसार चलता है। प्रमाण है- **इदं कुरु इदं मा कर्षीः।** यह करो, यह न करो। शास्त्रों के प्रावधान पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा है। जिनको लौकिक लगाव नहीं है वैसे महान् भक्तों पर इस तरह के शास्त्रों के नियम नहीं लगते। उनके सब कार्य उनकी मानसिक स्थिति पर निर्भर है और शास्त्र ही उनका अनुशरण करता है।

चूर्णिका 67 -

वेदांग से जैसे वेद को समझा जाता है वैसे ही तिरुवायमोळी से सभी शास्त्रों को समझते हैं। दिव्य प्रबन्धम् तमिल वेद है जो संस्कृत वेद के समान है। नम्माळवार ने प्रामाणिक उदाहरणों से द्रविड़ वेद की उपादेयता को समझाया है।

मूल - आप्तिक्कु इवर सुरुदि मार्क्कण्डेयन् पार्त्तन् एङ्गिर इवै व्यास मनु ब्रह्मवादिगळै वेदम् सोल्लुमा पोले ।

सूत्र सं. 67- आप्त्यर्थमयं श्रुतिमार्कण्डेयपार्थान् व्यास-मनु-ब्रह्मवादिनः इव श्रुतिर्वदति।

सामान्य अर्थ - वेद के लिए व्यास, मनु तथा अन्य ब्रह्मवादियों के शब्द प्रमाण हैं, उसीतरह श्रुति, मार्कण्डेय तथा अर्जुन आदि के उद्धरण दिव्य प्रबन्धम् के लिए प्रामाणिक हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 1.1.7 - भगवान् वेद के ज्वलन्त विषय-वस्तु हैं। **तिरुवायमोळी 5.2.7 -** भगवान् की सर्वोच्चता के मार्कण्डेय प्रमाण हैं।

तिरुवायमोळी 2.8.6 - जब अर्जुन ने जयद्रथ बध के प्रसंग में भगवान् कृष्ण के चरणों पर फूल चढ़ाया तो उसे शिव के माथे पर देखा। शास्त्रों के प्रमाण भी इसी तरह के हैं। कहा है- **सहोवाच व्यासः पाराशर्यः -** पराशर पुत्र व्यास के वचन। **यजुर्वेद** में कहा है- (1) **यद्वै किञ्च मनुरवदत् तद् भेषजम्-** मनु के वचन औषधि हैं। (2) **ब्रह्मवादिनो वदन्ति -** ब्रह्म को जानने वालों के वचन। ब्रह्मवादियों की तरह नम्माळवार के वचन प्रामाणिक हैं। उन्होंने किसी को श्रेष्ठ या हीन नहीं कहा। शास्त्रों के वचन ही इनके पदों में भी उद्धृत हैं। इस तरह तमिल वेद को संस्कृत वेद के समान समझने में कोई संशय नहीं रहता है।

चूर्णिका 68 -

प्रामाणिक वचन है- **वेदरूपं इदं कृतम्।** तिरुवायमोळी वेद की तरह है। पराशर भट्ट **- श्रीरङ्गराजस्तव पू. 6 - सहस्रशाखां यो द्राक्षीद् द्राविडीं ब्रह्मसंहिताम् ।** तमिल वेद (तिरुवायमोळी) के पद ब्रह्म के बारे में हैं।

श्रीरङ्गराजस्तव पू.16 - द्राविड वेद सूक्तैः तमिल में वेद की सूक्तियाँ हैं। यह वेद की व्याख्या होने के साथ उनके गुणों से सम्पन्न है।

मूल - भारत गीतैगळिन् वेदोपनिषत्वम् पोले इदुवुम् व्याक्यैयानालुम् वेदरहस्यमाम् ।

सूत्र सं. 68- भारतगीतासु वेदोपनिषत्वमिवास्य व्याख्यात्वेऽपि वेदरहस्यत्वम्

सामान्य अर्थ - महाभारत वेद का सार है, और गीता महाभारत का सार है। इन दोनों को क्रमशः वेद तथा उपनिषद् कहा गया है। **श्रीविष्णुपुराण** में कहा है - **वेदान् अध्यापयामास महाभारत पञ्चमान् -** पाँचवाँ वेद महाभारत पढ़ाया। प्रमाण है- **भगवद्गीतासु उपनिषत्सु -** उपनिषदों में गीता। उपनिषद् वेद का रहस्य है। तिरुवायमोळी वेद की व्याख्या के अतिरिक्त छान्दोग्य उपनिषद् के रूप में साम का रहस्य है।

चूर्णिका 69 -

संस्कृत वेद की जैसे अनेक विशेषतायें हैं वैसे ही तमिल वेद के भी हैं। इनमें भाषागत विशेषतायें भी हैं।

मूल - उदात्तादि पदक्रम जडावाक्य पन्चादि पादवृत्त प्रश्न काण्ड अष्टक अध्याय अंश पर्वाद्यलंकारङ्गळ् पोले एळ्त्तु सिर्प् बन्धम् (पन्दम्) अडि तोडै निरैनिरै ओसै तळैयिनम् याप्पुप् पत्तुरै पण् इसै ताळम् पत्तु नूरायिरम् मुदलान सेय्कोलम् इडुक्कुम् उण्डु ।

सूत्र सं. 69- उदात्तादिपदक्रमजटावाक्य पञ्चाशत्पादवृत प्रश्नकाण्डाष्टक अध्यायांश पर्वाद्यलंकारा इव येत्नत्त इशैशीखंधम् अडितोडैनिरैयोशैनलै इनमाप्युप्यतुरैय्यण इशैतालपतुनूरू आपिरं प्रभृतयोऽलंकारा अस्यापि सन्ति।

विशेषार्थ - उदात्तादि से अनुदात्त, स्वरित, प्रछय का बोध होता है। उदात्त, क्रम, जड, प्रश्न, और अष्टक नामक ये स्वर वेद के लिए प्रयुक्त होते हैं और अंश, पर्व आदि उपबृह्मण के लिए हैं। **पर्वादि** से स्कन्ध, पद, वाक्य, पाद, वृत्त, काण्ड और अध्याय वेद तथा उपबृह्मण दोनों के लिए पर्युक्त हैं। श्रीरामायण का विभाजन काण्ड में है।

आळवार के प्रबन्ध की विशेषतायें हैं -

एळुत्तु - 13 लघु एवं दीर्घ अक्षर हैं।

असै - नेरसै एवं निरै

सिर्- 4 आसिरिय, 4 वेण्बा, 4 वन्जि, 16 सब के लिए, 2 ओरसै, कुल 30।

पन्दम् - तमिल विद्वानों के अनुसार पन्दम् तथा तळै एक ही हैं।

अडि - पाँच हैं - कुरळडि, सिन्दडि, अळवडि, नेडिलडि, कळि नेडिलडि।

तोडै- कुल 43 हैं- मोनै, इयैबु, एदुगै, मुरण्, अळबेदै में से प्रत्येक के आठ-आठ भेद होने से 40 हुए। 3 और हैं अन्दादित्, इरट्टैत और सेन्दोडै।

निरै निरै - नेर्-निरै-निरै, निरै-निरै-निरै आदि ।
ओसै - सेप्पै, अगवै, तुळ्ळै, तूङ्गै - 4 तरह के।
तळै - कुल 7 हैं।

इनम् - कविता 3 तरह के - ताळिसै, तुरै और विरुत्तम् ।

याप्पु - प्रबन्ध साहित्य को याप्पु कहते हैं।

पा - 4 तरह के - वेण्बा, आसिर्यप्पा, कलिप्पा और वनिजिप्पा।

तुरै - इनम् (कविता) को तुरै भी कहते हैं।

पाण् - मुदिर्न्दे कुरिन्जि, नट्टभाषै, नट्टरागम्, सेन्दिरि, पियन्दै, इन्दळम् आदि।

इसै- कुल 7 तरह के हैं।

तालम् - संगीत ध्वनि - गजकर्णम्, चोरगति, मकरध्वजम्, लक्ष्मी कीर्ति, पाणि, पादम्, गौरी, पञ्चाननम्, चतुराम्नायम्, गरुड ध्वजम् आदि।

पत्तु - तिरुवायमोळी के शतक (**नूरु**) का विभाजन दशक में उसीतरह से है, जैसे रामायण के काण्ड का सर्ग में, महाभारत के पर्व का अध्याय में तथा भागवत के स्कन्ध का अध्याय में है। **तिरुवायमोळी 9.4.11 -** शतक के विभागवाले सहस्रगीति का यह दशक। **तिरुवाय. 5.5.11-** सहस्रगीति का यह दशक। **तिरुवायमोळी 6.7.11 –** शडकोपन् के दस शतक वाले सहस्रगीति।

आयिरम् - नाल (चार) आयिरम् (हजार) पाशुर में संग्रहित समस्त दिव्य प्रबन्ध। **रामायण 1.4.2 - चतुर्विंशत् सहस्राणि श्लोकानाम् उक्तवान् ऋषिः।** चौबीस हजार श्लोक।

मुदलान - विशेष वर्गीकरण - (1) तिरुवायमोळी का पहला तीन शतक द्वय मन्त्र के उत्तरार्ध का अर्थ बताता है। बाद के तीन शतक में द्वय मन्त्र के पूर्वार्ध का अर्थ है। इसके बाद के तीन शतक द्वय को ठीक से समझाने वाले हैं। अंतिम शतक परम लक्ष्य की प्राप्ति कराता है। (2) सर्वालंकृत पासुर - **तिरुवायमोळी 4.1.11 -** सर्वालंकार अलंकृत सहस्रगीति।

चूर्णिका 70 -

वेद ही विशेष रूप से दिव्य प्रबन्ध के रूप में प्रकट हुआ है।

मूल - अथवा वेद वेद्य न्यायत्तले परत्तवपर मुदुवेदम् व्यूह व्याप्ति अवतरणङ्गळिल ओदिन निधि केट्ट मनु पदुकदैगळाय आगमूर्तियिल् पण्णिय तमिळानवारे वेदत्तै द्राविडमागच् चेय्दार एन्नुम् ।

सूत्र सं. 70- अथवा वेदवोधन्यायेन परत्वपरोऽनादिवेदो व्यूहव्याप्त्याऽवतरणे -ष्वधीतानि इति श्रुतमनुपूर्वकथाजातस्तदर्थमूर्तौ कृतद्रविडरूपो जात इति वेदं द्राविडतयाऽकरोत् इति।

विशेषार्थ - रामायण से सम्बन्धित एक प्रसिद्ध श्लोक है - **वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ।।** दशरथ पुत्र भगवान् राम वेद से समझे जाते हैं। प्रचेतस पुत्र श्रीवाल्मीकि

जी रचित रामायण वेद की आत्मा है। भगवान् के व्यूह रूप को बतानेवाला पाञ्चरात्र आगम वेद का ही अवतार है। इसीतरह भगवान् का अन्तर्यामि रूप मनुस्मृति से स्पष्ट होता है। रामायण और महाभारत विभव अवतार की कथा सुनाते हैं। तिरुवायमोळी भगवान् के अर्चारूप के गुणों के गीत हैं। ये सभी वेद के ही स्वरूप हैं।

तैत्तिरीय उप. - क्षपंतमस्य रजसः पराके। रज एवं तम से प्रभावित प्रकृति से परमपदनाथ अछूता हैं। **पुरुष सूक्त - आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् -** तमस (संसार) से ऊपर परमपद में सूर्य के रंग वाले भगवान् रहते हैं। **विष्णु सूक्त - तद्विष्णोः परमपदं सदा पश्यन्ति सूरयः** - सर्वोच्च परमपद में नित्यसूरियों को विष्णु सदा दर्शन देते हैं। **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.1 - यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।** विराटरूपवाले प्रभु सबके हृदय की गुफा में छिपे हुए हैं। ऐसा जाननेवाला साधक इनके साथ रहता हुआ इनके सभी दिव्य गुणों का आनन्द लेता है। उपर्युक्त सभी प्रकरण भगवान् की सर्वोच्चता को प्रकाशित करते हैं। **तिरुवायमोळी 1.6.2 -** अनादि कालिक वेद से प्रशंसित प्रभु की भक्तिपूर्ण सेवा ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है।

व्यूह - नित्यमुक्त जीव परमपद धाम में छः गुणोंवाले भगवान् की सेवा का आनन्द लेते हैं। **श्रीरङ्गराजस्तव उ. 39 - षाडगुण्यात् वासुदेवः पर इति स भवान् मुक्तभोग्यो बलाढ्यात् बोधात्संकर्षणस्त्वं हरसि वितनुसे शास्त्रमैश्वर्यवीर्यात्। प्रद्युम्नस्सर्गधर्मौ नयसि च भगवन्!**

शक्तितेजोऽनिरुद्धो विभ्राणः पासि तत्त्वं गमयसि च तथा व्यूह्य रंगाधिराज! आपने मुक्तात्माओं को प्रसन्न करनेवाले छः दिव्य षडगुणों से विभूषित व्यूहरूप वासुदेव को सृष्टि को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्वीकार किया। सृष्टि को समेटने हेतु बल और ज्ञान के दो गुणों से विभूषित संकर्षण आपके व्यूह का दूसरा रूप है। ऐश्वर्य एवं वीर्य गुणों से प्रद्युम्न तीसरे व्यूह रूप में आप सृजन कार्य करते हैं। शक्ति एवं तेज गुण से सम्पन्न चौथा व्यूह रूप अनिरुद्ध सृष्टि का भरण पोषण करते हुए व्यूह रूप के सिद्धान्त का प्रचार प्रसार करते हैं।

विष्वकसेन संहिता - संकर्षणादिसद्भावं भेजे लोकहितेप्सया। क्रमशः प्रलयोत्पत्तिस्थितिभिः प्राण्यनुग्रहात्।1। प्रयोजनम् अथान्यच्च शास्त्रशास्त्रार्थ तत्परैः। दशास्तुर्याः सुषुप्त्याद्याश्चातुर्व्यूहेपि लक्षये।2। कहा है कि भगवान् सबके कल्याण के लिए ही सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। शास्त्र एवं धर्म का फल ज्ञान है। शास्त्र के अर्थ से चतुर्व्यूह की अवस्थायें तुरीय (वासुदेव), सुषुप्ति (संकर्षण), जाग्रत (प्रद्युम्न) तथा स्वप्न (अनिरुद्ध) की क्रिया-कलापों को समझा जाता है। **विष्वकसेन सं. - तत्र ज्ञानबलद्वन्द्वाद्रूपं संकर्षणं हरेः। ऐश्वर्यवीर्यसंभेदोद्रूपं प्रद्युम्नमुच्यते।1। शक्तितेजः समुत्कर्षादनिरुद्धतनुर्हरेः। एते शक्तिमया व्यूहा गुणोन्मेषस्व लक्षणाः।2।** व्यूह के गुणलक्षण में ज्ञान एवं बल से संकर्षण, ऐश्वर्य एवं वीर्य से प्रद्युम्न तथा शक्ति एवं तेज से अनिरुद्ध विभूषित हैं। **महाभारत शांतिपर्व (मोक्षधर्म) 339.112 - सांख्ययोगकृतं तेन पञ्चरात्रानुशब्दितम्। नारायण**

-मुखोद्गीतं नारदोऽश्रावयत् पुनः ।।(पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्) इसमें सांख्य और योगका सिद्धान्त कूट-कूटकर भरा है। इसकी पाञ्चरात्र आगमके नामसे प्रसिद्धि है। साक्षात् नारायणके मुखसे इसका गान हुआ है। भगवान् ने स्वयं सबकुछ कहा है। वेद ही पाञ्चरात्र के रूप में प्रकट हुआ है। **इरण्डाम् तिरुवन्दादि 48 -** आपने वेद को प्रकट किया तथा जीवन-धर्म (स्मृति आदि) को ऋषियों के मुखों से कहवाया।

व्याप्ति - प्रभु ने मात्र व्यूहरूप ही नहीं स्वीकारा बल्कि सब प्राणी तथा वस्तु में अन्तर्यामि के रूप में व्याप्त हैं। इसका विस्तृत वर्णन मनु स्मृति में है। **मनुस्मृति 1.10- आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यद् आस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।** भगवान् नर कहे जाते हैं। उन्होंने जल का सृजन किया। भगवान् अर्थात् नर से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहा गया। भगवान् का पहला आवास (अयन) जल, यानी नार है, अतः उन्हें नार + अयन = नारायण कहा गया। **मनुस्मृति 12.122 - प्रशासितारं सर्वेषाम् अणीयांसम् अणोर् अपि । रुक्म-आभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात् तं पुरुषं परम्।।** स्वर्ण सी कान्तिवाले सबके नियन्ता परमपुरुष भगवान् सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं। स्वप्न की तरह स्पष्ट, वे केवल अनुभूति से समझे जानेवाले हैं। **मनुस्मृति 12.123 - एतम् एके वदन्ति-अग्निं मनुम् अन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रम् एके परे प्राणम् अपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।** इन्हें कोई अग्नि, कोई ब्रह्मा और इन्द्र, कोई प्राण तो कोई शाश्वत ब्रह्म कहते हैं। **मनुस्मृति 12.124 - एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिः व्याप्य मूर्तिभिः। जन्म-**

वृद्धि-क्षयैर् नित्यं संसारयति चक्रवत्।। पाँच तत्त्वों (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) से बने जगत् में ये सर्वव्याप्त हैं। रथ के चक्के की तरह सबको जन्म-वृद्धि-क्षय की आवृति में घुमाते रहते हैं। **तैत्तिरीय उपनिषद् 1.5 - स आत्मा। अङ्गानि अन्याः देवताः।** अन्य सब देवता उनके (परमात्मा के) अङ्ग हैं। अन्तर्यामि के स्वरूप से वेद मनुस्मृति बनकर प्रकटे। **नान्मुन् तिरुवन्दादि 76 -** प्रभु ने वेद, श्रुति, मनुस्मृति आदि प्रकट किया।

अवतरण - अतिन्द्रिय प्रभु श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिए हैं। **गीता 4.8 - परित्राणाय साधूनाम्** - सज्जनों तथा सन्तों की रक्षा के लिए प्रकट होते हैं। **नान्मुन् तिरुवन्दादि 76 -** पुराकाल की गाथा (रामायण, महाभारत) तथा मनुस्मृति आदि को प्रकट किया। **तिरुच्चन्द विरुत्तम 17 -** कितना आश्चर्यजनक है कि भक्तों के इच्छा के अनुरूप आप अनेकों अर्चास्वरूप में विराजते हैं। **मुदल तिरुवन्दादि 44 -** हे चक्रधारी प्रभु ! भक्तगण प्रेम से जिसरूप में आपको देखना चाहते हैं उस में देखते हैं। आप वही नाम स्वीकार कर लेते हैं जिससे पुकारा जाता है। आपका वही स्वभाव हो जाता है जिससे प्रेमपूर्वक हृदय में ध्यान किया जाता है। **तिरुवायमोळी 2.7.13 -** द्राविड़ सहस्रगीति के केशव के बारह नाम के यशोगान के ये मधुर पद। जैसे भगवान् अर्चारूप में अवतार लेते हैं उसीतरह संस्कृत वेद आळवार के मुख से सुगम तमिळ वेद में प्रकट होते हैं। **श्रीरामानुज नूत्तन्दादि 18 -** गहन वेदार्थ को सुगम मधुर तमिल गीत में

प्रकट करनेके लिए ही पृथ्वी पर अवतरित होनेवाले शठकोप स्वामी को आनन्द से हृदयस्थ रखनेवाले मधुरकवि आळवार के शुभगुणों को प्रकाशित कर हमसब के उद्धारक श्रीरामानुज स्वामी के श्रीचरण हमारे एकमात्र आश्रय हैं। ऊपर्युक्त सभी संदर्भों से स्पष्ट है कि तमिळ वेद की तरह विभिन्न शास्त्र भगवान् की विभिन्न विशेषताओं को प्रकाशित करते हैं।

चूर्णिका 71 -

संस्कृत वेद अपौरुषेय है। तमिल वेद के रचियता आळवार हैं और इसमें कोई त्रुटि या दोष न होकर आळवार की श्रीउक्ति होने से पवित्र है।

मूल - मण्णाडिन सह्य जलम् तोदवत्तिच चङ्गिणि तुरैयिले तुगिल वण्णत् तेण्णिराय् अन्तस्थत्तैक् काट्टुमा पोले अल्पश्रुतर कलक्किन श्रुति नन् ज्ञानत्तुरै सेर्नदु तेळिवुङ्ग आळपोरुळै अरिवित्तदु ।

सूत्र सं. 71- मृण् मिश्रं सह्यजलं परिशुद्धशंखालंकारपटे मेघवर्णस्वच्छजलं अन्तस्थं प्रकाशयति तथाल्पश्रुतक्षुब्धा श्रुतिः सम्यग् ज्ञानघटं प्राप्य नैर्मल्यं प्राप्यागाधवस्तु प्रकाशयति।

सामान्य अर्थ - जल वेग से ऊँचे स्थान से नीचे की ओर जब आता है तब साथ में मिट्टी से मिलकर कीचड़युक्त हो जाता है। नीचे उतरने पर स्नान के घाट पर कीचड़ बैठ जाता है और जल निर्मल हो जाता है। अल्पज्ञ लोग वेद को अपने विचारों से मिश्रित कर देते हैं, परन्तु वेद के मर्मज्ञ आळवार स्नान घाट की तरह निर्मल जल प्रदान करते हैं।

विशेषार्थ - पहाड़ से नीचे बहते हुए जल मिट्टी के संसर्ग से कीचड़युक्त हो जाता है। **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.8.1** - निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले सात्विक वैदिक ऋषिगण कावेरी के घाट पर स्नान करते हैं। **तिरुवायमोळी 10.3.11 -** शुद्ध जलवाले ताम्रपर्णी के शङ्खघाट पर जहाँ जल के साथ शङ्ख बहकर आते हैं। **तिरुवायमोळी 7.2.11 -** पवित्र व निर्मल जल वाले ताम्रपर्णी के किनारे। **पेरुमाळ तिरुमोळी 1.1-** निर्मल जल वाली कावेरी। **तिरुविरुत्तम् 93 -** ज्ञानसरोवर के दिव्य घाट। प्रमाण है- **विभेत्यल्प श्रुतात् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।** वेद के सीमित भाग के पाठ करने वाले अल्पज्ञों से वेद को क्षति होने का भय बना रहता है। ऐसे लोग आन्तरिक भाव को बिना जाने श्रुतियों के गलत अर्थ बताते हैं। **तिरुवायमोळी 7.5.11 -** प्रकृति के तमस से कलुषित मन को शुद्ध करता है। जीवात्मस्वरूप को ठीक जाननेवाले शडकोपन् के पद। **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 1-** दुर्लभ रहस्य को बताने वाला।

चूर्णिका 72 -

वेद के पाठ करने या उसके अध्ययन के समय निर्धारित हैं, परन्तु तिरुवायमोळी के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

मूल - मेगम् परुगिन समुद्राम्बु पोले नूर्कडल् सोल इवर वायनवाय्त् तिरुन्दिनवारे सर्वदा सर्व उपजिव्यमामे ।

सूत्र सं. 72- मेघनिःसृतसमुद्राम्बुवत् शास्त्रसमुद्रवचनमेतद् वा गातं सर्वदा सर्वोपजीव्यं भवेत्।

सामान्य अर्थ - जैसे समुद्र से जल लेकर बादल सबके लिए उपयोगी बना देता है, उसीतरह आळवार ने दिव्य प्रबन्धम् गाकर सबके हित में सर्वदा के लिए उपयोगी बना दिया है।

विशेषार्थ - समुद्र का जल नमकीन होने से उसमें रहनेवाले जलचरों के अतिरिक्त किसी अन्य के काम का नहीं है। हाँलाकि इसका उपयोग कर्मकाण्ड आदि के लिए होता है। जबकि बादल समुद्र से जल लेकर वर्षा के माध्यम से इसे सबके लिए और सर्वदा के लिए सुस्वादु बना देता है। **मून्-राम् तिरुवन्दादि 32 -** शास्त्र सागर की तरह अगाध है। इनके **अध्ययन काल-विधि** का उल्लेख **मनु स्मृति 4.95** में है। **श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा अप्युपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्चन्दांस्यधीयीत् मासान् विप्रो अर्धपञ्चमान् ।।** अपने सभी उपकर्मो को सम्पन्न कर श्रावण मास या भाद्र मास की पूर्णिमा से साढ़े चार महीने वेद का अध्ययन करे ।

मनु स्मृति 4.98 - **अत ऊर्ध्वं तु चन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत्। वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत्।।** तत्पश्चात् शुक्लपक्ष में वेद का पाठ करे और कृष्णपक्ष में वेदांगो का अध्ययन करे। **तिरुवायमोळी 6.5.7 -**आळवार के मुख से निकले हुए भगवान् के दिव्यगुण अतिआकर्षक हो गये हैं। यह भगवान् के अनुग्रह से ही संभव हुआ है। **पाञ्चरात्र - अध्येतव्यं द्विजश्रेष्ठै वेदरूपमिदं कृतम्। स्त्रीभिः शूद्रादिभिश्चैव तेषां मुक्तिः करे स्थिता।।** त्रैवर्णिक अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को वेदाध्ययन की अनुमति है। दिव्य प्रबन्ध के पाठ या अध्ययन में न तो मास या पक्ष का और न तो

कोई लिंग (पुरुष या नारी) या वर्ण (शूद्रादि) का प्रतिबन्ध है। इससे सबके हाथ में मुक्ति सुनिश्चित हो जाती है।

चूर्णिका 73 -

उपर्युक्त को उदाहरण से समझाया गया है।

मूल - मृद्गतम् पोलन्-रे पोर्कुडम्

सूत्र सं. 73- मृद्घटवन्न भवति हेमपटः।

सामान्य अर्थ - स्वर्ण पात्र मिट्टी के वर्तन से भिन्न है।

विशेषार्थ - स्वर्ण पात्र को कोई भी स्पर्श कर सकता है परन्तु मिट्टी के पात्र में स्पर्श का दोष लगता है। तिरुवायमोळी स्वर्ण पात्र की तरह है।

चूर्णिका 74 -

परम प्रभु के प्रमाण (तिरुवायमोळी) एवं प्रमेय (अर्चावतार) की सुगमता।

मूल - पेरुम्बुरक् कडलुम श्रुतिसागरमुम् अलैत्तु आळन्दु ओडुम् इडङ्गळिल अयोग्यर्क्कुच् चमैत्त मडुवुम् सायकरगमुम् मानमेय चरमम्

सूत्र सं. 74- महावाह्यसमुद्रस्य श्रुतिसागरस्य च तरङ्गितागाधप्रवाहस्थलेषु अयोग्यानां क्लृप्तो ह्रदः करकश्च मानमेयचरमः।

सामान्य अर्थ - जिनके लिए सागर सदृश भगवान् एवं शास्त्र का थाह पाना दुस्तर है, उनके लिए तिरुवायमोळी एवं अर्चावतार सरोवर तथा जलपात्र की तरह सुगम है।

विशेषार्थ - परम तत्त्व (प्रमेयम्) भगवान् के विभिन्न स्वरूप विस्तृत सागर की तरह कल्पना से बाहर हैं।

व्यूह रुप - ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति एवं तेज के छः गुणों से सम्पन्न वासुदेव अपने दो-दो गुणों से तीन रूपों में प्रकट होते हैं - ज्ञान एवं बल से संकर्षण, ऐश्वर्य तथा वीर्य से प्रद्युम्न, और शक्ति एवं तेज से अनिरुद्ध। ये सभी सागर की लहरों की तरह अगम्य हैं।

अन्तर्यामि (अदृश्य) रूप - **बृहदारण्यक उपनिषद् 5.7.22 - य आत्मा न वेद -** भगवान् आत्मा को ज्ञात नहीं हैं। **तिरुवायमोळी 7.2.3 -** नेत्रों से नहीं देखे जा सकने वाले प्रभु ।

विभव अवतार - विभवावतार में भगवान् सबको दिखते हैं। **श्रीवाल्मीकि रामायण 2.1.7 - अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ।** शाश्वत भगवान् विष्णु ने मनुष्य लोक में अवतार लिया है। प्रमाण है- **यस्यां जातो जगन्नाथः साक्षाद्विष्णुः सनातनः।** जगतनियन्ता शाश्वत भगवान् विष्णु अवतार लेते हैं। **हरिवंश 113.62 - नागपर्यंकं उत्सृज्य ह्यागतो मथुरापुरीं -** शेषनाग की शय्या छोड़कर भगवान् मथुरा में आये। **विष्णुः मानुषरूपेण चचार वसुधातले -** भगवान् विष्णु मनुष्य के रूप में धरती पर घूमे।

जो भगवान् के उपर्युक्त स्वरूप को नहीं पा सकते हैं उनके लिए अर्चा स्वरूप सुलभ एवं सुगम है। **श्रीवचनभूषण 39 - भूगतजलवत्- अंतर्यामित्वं, आवरणजलवत् परत्वं, क्षीरार्णववत् व्यूहः, प्रहवत् नदीवत् विभवः, तत्र स्थिता ह्रदा इव अर्चावतारः।** धरती के नीचे का जल अन्तर्यामि स्वरूप,

भौतिक प्रकृति के आवरण को घेरे हुए विरजा नदी का जल पर-स्वरूप, क्षीरसागर का जल व्यूह स्वरूप, नदी में बाढ़ का जल विभव स्वरूप तथा नदी का कुण्ड / ह्रद या तालाब का जल अर्चा स्वरूप है।

प्रमाण में कहा है- **मतिमन्मथानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात्।** ज्ञान की मथानी से मथने पर वेद भगवान् के परत्व को बताता है। पाञ्चरात्र में व्यूह स्वरूप प्रदर्शित है। मनुस्मृति आदि अन्तर्यामि तथा इतिहास (रामायण-महाभारत) विभव स्वरूप का बोध कराते हैं। आळवार के प्रबन्ध कुण्ड - तालाब- जलपात्र की तरह भगवान् के सुगम तथा रुचिकर अर्चावतार के आनन्द को देने वाले हैं।

चूर्णिका 75 -

नम्माळवार के शूद्र वर्ण के होने पर भी उनके प्रबन्ध अमृत तुल्य हैं।

मूल -विट्टिन्ब इनबप्पाक्कळिल द्रव्य भाषा निरूपण समम् इन्ब मारियिल आराय्च्चि।

सूत्र 75- गृहसुखसुखच्छन्दः सुद्रव्यभाषानिरूपणसममानन्द मेघनिरूपणम्।

सामान्य अर्थ - इस बात पर विचार कि (1) घर का अर्चाविग्रह किस वस्तु की बनी है, (2) तिरुवायमोळी का तमिळ में भगवद्गुणगान क्यों, और (3) नम्माळवार की जाति क्या है, ये सब हीन भावना को प्रकट करते हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 2.3.5 - भगवान् का परमप्रेमी भक्त अर्चामूर्ति की बनावट पर जैसे कभी भी विचार नहीं करता, वैसे ही वह तिरुवायमोळी

की द्रविड़ भाषा के बारे में कभी भी नहीं सोंचता। **कुलशेखर आळवार - पेरुमाळ तिरुमोळी 1.4 -** मुक्तात्मा एवं सन्तों द्वारा गाये हुए तमिळ के मधुर गीतवाले हमारे भगवान् श्रीकृष्ण। **तिरुवाय. 4.5.10-** सहस्रगीति के पद भक्तों के लिए अमृत हैं। नम्माळवार की जाति को क्या देखना है, जो सभी वैष्णवों पर बादल की तरह तिरुवायमोळी के आनन्द से सरोबोर करनेवाले गीतों की वर्षा करते हैं।

इस सन्दर्भ में शास्त्रों के उद्धरण द्रष्टव्य हैं। **ब्रह्माण्ड पुराण - विष्णोर्चावतारेषु लौहभावम् करोति यः। यो गुरौ मानुषम् भावं उभौ नरक पातिनौ।।** भगवान् विष्णु के अर्चाविग्रह को धातु समझनेवाले तथा गुरु को एक मनुष्य मात्र देखनेवाले नरकगामी होते हैं। कहा है- **यो विष्णोः प्रतिमाकारे लोहभावं करोति वै। गुरौ च मानुषं भावमुभौ नरकपातिनौ।** जो भगवान् विष्णु की मूर्ति को धातु का समझते हैं तथा गुरु को मनुष्य समझते हैं वे नरकगामी होते हैं। **अर्चावतार उपादान वैष्णवोत्पत्ति चिन्तनम्। मातृयोनि परीक्षायास् तुल्यमाहुर् मनीषणः।।** अर्चाविग्रह की बनावट तथा वैष्णव की जाति पूछना वैसा ही है जैसे अपनी माँ की योनि का विचार करना। **मत्स्य पुराण - हरिकीर्तिं विनैवान्यत् ब्राह्मणेन न नरोत्तमा। भाषागानं नगातव्यं तस्मात् पापं त्वया कृतम्।।** हे राजा ! ब्राह्मण भगवान् के गुणगान में भाषा का विचार नहीं करता। एक कवि को तमिळ में भगवद् गुणगान करने के कारण देश-निकाला करके आप पाप के भागी बने हैं। प्रमाण है- **किमप्यत्राभिजायन्ते योगिनस्सर्वयोनिषु। प्रत्यक्षितात्मानां**

नैषां चिन्त्य कुलादिकम्।। परमात्मा के प्रत्यक्षदर्शी योगीलोग के सब योनियों में जन्म लेने पर भी उनके कुल को कोई नहीं पूछता। **शूद्रं वा भगवत् भक्तं निषादं श्वपचं तथा। विक्षते जाति सामान्यत् सयाति नरकं नरः।।** भगवान् का भक्त अगर शूद्र, बहेलिया या कुत्ते का मांस खाने वाले चाण्डाल कुल का है तब भी उनकी जाति का विचार करने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है। **गीता 9.11 - अवजानन्ति मां मूढ़ा -** मूर्खलोग मेरे परत्व की उपेक्षा करते हैं। **स्तोत्र रत्न 16 - पश्यन्ति केचिद्निशं त्वद - नन्यभावाः -** माया-शक्ति के अधीन रहते हुए भी, आपमें अविचल भक्ति-भाव रखनेवाले कुछ ही महान् लोग आपकी प्रभुता को समझ पाते हैं।

चूर्णिका 76 -

तिरुवायमोळी तथा नम्माळवार भाषा या जाति की न्यूनता से मुक्त हैं।

मूल - पेच्चुप् पार्क्किल कळळप् पय्न्नूलगलुम् ग्राहङ्गळ्, पिरवि पार्क्किल अन्जाम् ओत्तुम् अरुमून्-रुम् कळिप्पनाम्।

सूत्र सं. 76- भाषानिरूपणे चोरमिथ्याशास्त्रम् अपि ग्राहयम् स्यात्। जन्मनिरूपणे पञ्चमो वेदः षट्कत्रयं च त्याज्यं स्यात्।

सामान्य अर्थ - भाषा को महत्व देनेपर वेद-विरोधि संस्कृत में कीगयी उक्ति को स्वीकार करना पड़ेगा। जाति को प्राथमिकता देने वाले को महाभारत तथा गीता को भी अस्वीकार करना होगा क्योंकि ये गैर-ब्राह्मण द्वारा विरचित हैं।

विशेषार्थ - भगवान् की प्रशंसा के पद संस्कृत में हो या द्रविड़ में सभी स्वीकारे जाते हैं। वेद-विरोधि संस्कृत की सभी रचनाओं को त्याग दिया जाता है। **पेरियतिरुमोळी 9.7.9 -** पाशुपत, बौद्ध तथा जैन रचनायें झूठे एवं भ्रम फैलानेवाले हैं। **पेरियतिरुमोळी 2.5.2 -** वेद को अस्वीकार करने वाले साहित्य को पढ़कर जीवन के बहुमूल्य समय को खराब मत करो।

पञ्चम् वेद महाभारत मल्लाहिन सत्यवती के पुत्र वेदव्यास ने लिखे और गीता यादवकुल में उत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकली वाणी है, परन्तु ये सब पूज्य हैं और सर्वदा ग्रहण किये जाते हैं। सारभाव है कि भगवान् को श्रेष्ठ बताने वाले साहित्य ग्रहण किये जाते हैं तथा अन्य को महान् कहे जानेवाले त्याग दिये जाते हैं।

चूर्णिका 77 -

नम्माळवार, भगवान् श्रीकृष्ण तथा वेदव्यास के बीच अन्तर।

मूल - कृष्ण कृष्ण द्वैपायनोत्पत्तिगळ् पोलन्-रे कृष्ण तृष्णा तत्त्व जन्मम्।

सूत्र सं. 77- कृष्णकृष्णद्वैपायनोत्पत्तिवन्न भवति कृष्णतृष्णातत्त्वजन्म।

सामान्य अर्थ - कृष्ण-तृष्णा-तत्त्व के रूप में जन्म लेनेवाले शठकोप स्वामी भगवान् कृष्ण तथा कृष्णद्वैपायन के जन्म से श्रेष्ठ माने जाते हैं।

विशेषार्थ - तिरुप्पावै 25 -पूज्य देवकी जी के गर्भ से जिस रात भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ और उसी रात सम्मानिया यशोदा जी के यहाँ पहुँच गये। वेदव्यास को ही कृष्णद्वैपायन कहते हैं, और इनका जन्म कुमारी

मल्लाह की कन्या के गर्भ से हुआ था। नम्माळवार (शठकोप स्वामी) के जन्म की महिमा **तिरुविरुत्तम 37** में वर्णित है - मेरी बेटी पराङ्कुश नायकी का जन्म कृष्ण की पूजा से हुआ है। **श्रीरङ्गराज स्तव पू. 6 - ऋषिं जुषामहे कृष्ण-तृष्णा-तत्त्वमिवोदितम्।** मैं शठकोप ऋषि की पूजा करता हूँ जो **कृष्ण-तृष्णा-तत्त्व** के मूर्तिमान् स्वरूप में प्रकट हुए।

चूर्णिका 78 -

नम्माळवार की माँ की श्रेष्ठता

मूल - पेड्रुम पेरिळन्दुम् कन्निगैयानवळुम् एल्लाम् पेट्राळायुम् तत्तुक कोण्डाळ एम्बर् निन्-रार् एन्नुम् अवळुम् नेडुङ्गालमुम् नङ्गलमिर् एन्नुम् अवळुक्कु नेरन्-रे।

सूत्र सं. 78- प्रसूयापि फलमलब्धवती कन्या च दत्तं सर्वं प्राप्तापि दत्तं स्वीकृतवतीत्युक्ता चैता दीर्घकालमपि हे पूर्णा इति वदन्त्याः सदृश्यो न भवन्ति।

सामान्य अर्थ - देवकी जी ने भगवान् कृष्ण का जन्म दिया परन्तु उनकी पोसने का आनन्द नहीं ले सकीं। यशोदा जी ने पालन-पोषण किया परन्तु जन्म देनीवाली माँ के सौभाग्य से वंचित रह गयीं। सत्यवती व्यास जी को जन्म देने के बाद भी कुमारी ही रहीं। ये सब पराङ्कुश नायकी की माँ के समान नहीं हो सकीं हैं।

विशेषार्थ- पेरियाळवार तिरुमोळी 1.3.17- मणिवर्ण के ये बालक लक्ष्मी तुल्य दवकी के पुत्र हैं, परन्तु माँ को इन्हें पालने का आनन्द नहीं मिल सका। कृष्ण बाललीला से वंचित रहने का देवकी को विषाद - **पेरुमाळ् तिरुमोळी 7.5 -** आपके ललाट के आभूषण को आपके मुखमंडल पर झूलते देखने का आनन्द नहीं मिल सका। **महाभारत आदिपर्व अध्य. 63 - जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः स वीर्यवान् (द्वीपे वदरिकामिश्रे वादरायणमच्युतम् । पराशरात्सत्यवती पुत्रं लेभे परन्तपम्) ।84।** यमुना के एक द्वीप पर पराशर के पुत्र व्यास। (बेर के वन में यमुना के एक द्वीप पर विष्णु भगवान् के अंश से पराशर मुनि से सत्यवती ने वादरायण (व्यास) को जन्म दिया)। **शान्तिपर्व अ. 349 - जज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं यं द्वीपमध्ये सुतमात्मयोगात् । पराशरात् सत्यवती महर्षिं....।3।** उदार एवं परम ज्ञानी पराशर से सत्यवती के गर्भ से जन्मलेनेवाले। **कानीनगर्भः पितृकन्यकायां तस्माद्ऋषेस्त्वं भविता च पुत्रः । 51 ।** पराशर ऋषि से पिता के घर में रहनेवाली एक कुमारी कन्या के पुत्र रूप से जन्म और कानीनगर्भ (कन्याकी संतान) कहलाने वाले व्यास। **आदिपर्व अ. 63.78 - उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि । 78 ।** पराशर के अध्यात्म-बल से सत्यवती पुनः कुमारी बन गयी। फलस्वरूप उसे व्यास को पालने का अवसर नहीं मिला।

पेरुमाळ् तिरुमोळी 7.5 में आगे कहा है कि यशोदा को भगवान् कृष्ण की बाललीला का आनन्द मिला परन्तु उनके माता बनने पर शंसय है। **पेरियाळवार तिरुमोळी 2.1.7-** यशोदा के जाये हैं या गोद लिये गये हैं ?

पेरियाळवार तिरुमोळी 3.1.3 - यशोदा कहती हैं कि आश्चर्य है ! आपको अन्यलोग हमारा पुत्र कहते हैं ! ये सभी मातायें नम्माळवार की माँ के समान नहीं हो सकतीं क्योंकि नम्माळवार की माँ ने जन्म देने के साथ इनका पालन-पोषण भी किया। **तिरुविरुत्तम् 37 -** नम्माळवार की माँ उनको कृष्ण की प्रेयसी के रूप में विह्वल देखकर कहती हैं कि मैंने भगवान् कृष्ण की पूजा से इसे प्राप्त की है। इसकी बातों को सुनकर आनन्दमग्न हो जाती हूँ जिसे वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। **तिरुवायमोळी 4.2.9 -** हे नारियों! आपलोग भी बेटीवाली हैं और उन्हें प्यार से पाला है। मैं अपनी बेटी की वेदना को क्या बताऊँ ! वह दिन-रात शंख, चक्र एवं तुलसी रटती रहती है।

चूर्णिका 79 -

सुगंधित नम्माळवार का जन्म स्थान उन दोनों से श्रेष्ठ है।

मूल - मिन नवनीतङ्गळ् गन्धिक्कुम् इडमुम् वेरिकोळ् तुळाय् कमळुम् इडमुम् तन्निल ओक्कुमो

सूत्र सं. 79- मीननवनीतगन्धस्थलं परिमलशालितुलसीपरिमलप्रदेशश्च न तुल्यौ।

अर्थ - मछली की गंध सत्यवती के स्थान से, मक्खन की गंध यशोदा के स्थान से, तुलसी से सुगन्धित नम्माळवार का स्थान श्रेष्ठ है। **तिरुवाय. 4.4.3-** किशोरी तुलसी को कसकर सूँघती है। **8.9.10-** कैसे इस किशोरी

का वदन तुलसी का सुगंध विखेरती है? भाव है कि नम्माळवार के स्थान से तुलसी की सुगंध आती है।

चूर्णिका 80 -

नम्माळवार के जन्म स्थान की श्रेष्ठता के अन्य प्रमाण।

मूल - अट्रिल तुरैयिल उळ्ळ वैषम्यम् वाचामगोचरम्

सूत्र सं. 80 - नद्यां घट्टे ग्रामे च विद्यमानं वैषम्यं वाचामगोचरः।

सामान्य अर्थ - तीनों के जन्म स्थान के नदी, घाट एवं नगर की तुलना।

विशेषार्थ - व्यास जी का जन्म स्थान नदी का द्वीप (टापू का भू-भाग) अशिष्ट परिग्रह जैसा है, अभद्र मछुआरों से जुड़ा है। घाट नावों से भरा है। नगर मछुआरों का है।

श्यामले रंग के जल-प्रवाह की यमुना नदी भगवान् कृष्ण के जन्म से जुड़ी है। जल का रंग तमोगुण का प्रतीक है। घाट कालिय नाग के विष से दूषित है और नगर गोपों का है। गोप लोग बायें एवं दायें हाथ का अन्तर नहीं समझते। **तिरुप्पावै 28 -** हर तरह से अनभिज्ञ गोपजन। नम्माळवार का जन्म ताम्रपर्णी नदी के किनारे है। **तिरुवायमोळी 9.2.5 -** शंख एवं मूंगों की बहुतायत वाली नदी। घाट को **श्रीशंखणि** कहते हैं। जलप्रवाह में श्वेत शंख धुलते रहने से यह अति शुद्ध है। **तिरुवायमोळी 10.3.11 -** शंखों से भरे घाट का तिरुकुरुगूर नगर। **तिरुविरुत्तम् 100 -** तिरुकुरुगूर में दिव्यगान करने वाले श्रेष्ठ भक्तगण रहते हैं। **तिरुवायमोळी 3.1.11 -**

संसार के कर्म बन्धन से मुक्त ईश्वरीय गुणों से संपन्न निवासी। **तिरुवाय. 3.1.11-** कुरुगूर (आळवार तिरुनगरी) भगवान् के श्रेष्ठ भक्तों का स्थान है। **तिरुवाय. 10.8.11 -** अनेक श्रेयवान् लोगों का निवास स्थान।

नदी, घाट एवं नगर की तुलना करने कर नम्माळवार अन्य दोनों से श्रेष्ठ हैं जिसे शब्दों में बांधना अत्यन्त कठिन कार्य है।

चूर्णिका 81 -

चतुर्थ वर्ण में तेजस्वी वही है जो सेवा भाव का रसज्ञ है।

मूल- त. देवत्वमुम् निन्दै आनवनुक्कु ओळिवरुम् जनिगळ् पोले ब्रह्मजन्ममुम् इळुक्कु एम्बार्क्कुप् पण्डै नाळिल पिरवि उण्णाट्टुत् तैसिरे।

सूत्र सं. 81- यस्य देवत्वमपि निंदा तस्य तेजस्कर- जन्मानीव ब्रह्मजन्म- अपि-वद्यमिति वदतां पंडनालजन्मन्यन्तर्भावस्तेजः केल।।

सामान्य अर्थ - जैसे परम तेजस्वी भगवान् मनुष्य देह में आने पर भगवान् कहाना नहीं चाहते, वैसे ही सेवाभाव से ओतप्रोत चौथे वर्णवाला अपने को तेजस्वी कहाना पसन्द नहीं करता।

विशेषार्थ - रावण वध के बाद ब्रह्मा आदि ने भगवान् राम को नारायण कहा **वा.रा. 6.117.13 - भवान् नारायणो देवः ।** परन्तु भगवान् ने कहा - **6.117.11** - **आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।** मैं तो दशरथ-पुत्र राम एक मनुष्य हूँ। गोवर्धन उठाने पर गोपजन- **वि.पु. 5.13.7- बालत्वं चातिवीर्यत्वं जन्म चास्मास्व -शोभनम्। चिन्त्यमानममेयात्मञ्छङ्का कृष्ण**

प्रयच्छति।। हे कृष्ण! आपकी यह बाल्यावस्था, विस्मयकारी बल-वीर्य और हम जैसे नीचजनों के घर जन्मलेना; इन सब बातों पर विचारने पर हम शङ्का में पड़ जाते हैं। **वि.पु.5.13.8- देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा।** आप देवता, दानव, यक्ष या गन्धर्व हों ये सब विचारने से हमें क्या प्रयोजन? हमारे तो आप बन्धु हैं, आपको नमस्कार। **वि.पु. 5.13.9- क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चत् प्रणयकोपवान्।** कुछ देर चुप रहकर प्रेम के कोप में भगवान् कृष्ण ने कहा। **वि.पु. 5.13.12 - नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः। अहं वो बान्धवो जातो नैतच्चिन्त्यामितोऽन्यथा।।** मैं देव, गन्धर्वादि नहीं हूँ। आपलोग कुछ और न सोंचें, मैं तो आपके भाई रूप से जन्म लिया हूँ। जनहित में सबकी रक्षा के लिए मनुष्य के रूप में जन्म लेने पर भी परमनियन्ता भगवान् अपने को ईश्वर नहीं कहते हैं। परन्तु मनुष्य रूप में भी उनके सभी दिव्यगुण पूर्णतया उद्भाषित होते हैं। **यजुर्वेद 3.6.3 - स श्रेयान् भवति जायमान** - वे जन्म लेने पर भी अपने तेज से आलोकित होते रहते हैं। **तिरुवायमोळी 1.3.2 -** अनेकों योनियों में जन्म लेने पर भी भगवान् के सौलभ्यादि दिव्य गुण मलिन न होकर रत्नादियों की तरह तेजोमय ही बने रहते हैं।

स्तोत्र रत्न 55 - मा स्म भूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना - एक सच्चे भक्त को भगवान् की सेवा से दूर रहनेवाले व्यक्ति के यहाँ चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में भी जन्म लेना पसन्द नहीं है। क्योंकि उच्च कुल का जन्म अहंकार उत्पन्न करता है जो सेवाभाव में विघ्न डालता है। **तिरुवायमोळी** 9.2

दशक नम्माळवार के पूर्वजों से आ रहे भगवान् के सेवा-कार्य की प्रधानता का बोध कराता है। **9.2.1 -** कुल परम्परा से सेवा-कार्य में लगे रहना। **पेरिय तिरुवन्दादि 79 -** कोई कितना भी निम्न पेशारत हो, इस धरती पर चक्रधारी प्रभु की सेवा सर्वदा गौरवशाली है। कर्म के भय से मुक्त रहते हुए वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। परमपद धाम **भोग विभूति** है जहाँ परम भोग्य भगवान् के पास रहकर कैंकर्य का अवसर मिलता है। यह संसार **लीला विभूति** है जो अनेकों जन्म तक भगवान् के कैंकर्य करने का उसी तरह का अवसर प्रदान करता है जैसा **भोग विभूति** परमपद धाम में मिलता है।

चूर्णिका 82 -

नम्माळवार का अवतार सबके परोपकार के लिए है।

मूल - त.- जनक दशरथ वसुदेव कुलङ्गळुक्कु मूत्त पेण्णुम् नडुविल पिळ्ळैयुम् कडैक्कुट्टियुम् पोले इवरुम् पिरन्दु पुगळुम् आक्कमुम् आक्कि अन्जिरैयुम् अरुत्तआर् ।

सूत्र सं. 82- जनक दशरथ वसुदेव कुलेषु ज्येष्ठपुत्रीमध्यपुत्रचरमशावा इवायमपि जनित्वा कीर्त्तिमाधिक्यं चोत्पाद्य कारामच्छिनत् ।

सामान्य अर्थ - राजा जनक की बड़ी बेटी, राजा दशरथ के मंझला पुत्र तथा वसुदेव जी के सबसे छोटे पुत्र की तरह नम्माळवार ने यशवृद्धि के साथ कारागार से मुक्ति दिलायी।

विशेषार्थ - वा.रा. 1.67.22 - जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता। सीता भर्त्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्।। सीता राजा दशरथ पुत्र श्रीराम को पति स्वीकार कर जनक कुल की कीर्ति बढ़ायेगी। राजा दशरथ के मंझले पुत्र भरत जी ने अपना राज्याभिषेक कराने से वशिष्ठ जी को मना कर दिया। **वा.रा. 2.82.12 - कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः। राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि।।** राज्य तथा मैं रामजी का हूँ। दशरथ जी का पुत्र होने से मैं राज्य को नहीं हड़पूँगा। भरत जी ने जटाधारी वनवासी की तरह वृक्ष का छाल पहनकर भूमि शयन किया। **वा.रा. 2.100.1 - जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि।** राम जी से मिलने वन में पहुँचे। भगवान् ने उन्हें जटा तथा वल्कल धारण किये हुए हाथ जोड़े अपने सामने भूमि पर गिरा हुआ देखा। राम जी के वियोग में अपनी अश्रुधारा से पङ्किल जमीन पर सोये। **वा.रा. 6.124.4 -पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते।** वन से लौटते राम जी भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जब पहुँचे तब मुनि ने कहा कि धूल धूसरित अंग वाले जटाधारी भरत जी आपके लौटने की प्रतीक्षा में हैं। भरत जी ने इस तरह कुल-वंश की प्रतिष्ठा को एक नई ऊँचाई पर पहुँचाया। भगवान् कृष्ण वसुदेव जी के सबसे छोटे पुत्र थे। **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.3.1-** इनके छः भाईयों को कंस ने जन्म लेते ही निर्दयतापूर्वक पत्थर पर पटककर मार दिया था। **पेरियतिरुमोळी 7.5.1 -** पुराकाल में अर्द्धरात्रि में जन्मे प्रभु ने अपने पिता को बेड़ी से मुक्त किया। **तिरुवायमोळी 4.2.11 -** सौन्दर्यपूर्ण कुरुगूर (आळवार तिरुनगरी) के नम्माळवार ने अपने जन्म के नगर को अतिप्रसिद्ध किया।

तिरुवायमोळी 9.2.2 - अपने कुल की परम्परा के अनुकूल भगवान् के सेवाभाव में डूबे रहे। **तिरुवायमोळी 8.5.2 -** भगवान् के वियोग में आपकी आँखें और मुँह सूखे रहते थे। **तिरुवायमोळी 7.2.1 -** इनकी माँ, नायकी भाव में डूबे अपनी बेटी के बारे में, श्रीरंगम् के भगवान् से कहती हैं कि यह रात भर चुल्लु भर-भर कर आँसू फेंकती है और चक्र-शंख बोलती रहती है। **तिरुवायमोळी 7.2.4 -** अपने हाथ-पैर को बिना हिलाये-डुलाये रातभर भूमि पर अचेत पड़ी रहती है। **तिरुवायमोळी 1.3.11 -** सहस्रगीति का यह सुन्दर दशक पाठ करनेवाले को संसार-बन्धन से मुक्त करता है। नम्माळवार ने परोपकार के भाव से संसारियों को भव-बन्धन के कारागार से मुक्त किया। तीनों ने जो काम अपने स्वरूप के अनुकूल अलग-अलग किये, वे सब नम्माळवार ने सबके परोपकार हेतु अकेले किया। सीता जी तथा भरत जी जैसा कुल-कीर्ति की वृद्धि की। भगवान कृष्ण ने माता-पिता को कैद से मुक्त किया। नम्माळवार ने संसारिकों को भव-बन्धन के कैद से मुक्त होने के उपाय में सहस्रगीति का पाठ बताया।

चूर्णिका 83 -

संसारियों के लाभ हेतु नम्माळवार का जन्म।

मूल - त. आदित्य राम दिवाकर अच्युत भानुक्कुप् पोगाद उळ्ळिरुळ् निङ्गि शोषियाद पिरविक्कडल् वट्रि विकसियाद पोदिल् कमलम् मलर्नददु वकुळभूषण भास्करोदयत्तिले ।

सूत्र सं. 83 - आदित्य रामदिवाकराच्युत भानुभिः अनिवर्त्तनी यस्यान्त ध्वान्तस्य निवर्त्तिरशोष्यस्य जन्मसागरस्य शोषणमविकसितस्य कमलस्य विकासश्च वकुलभूषणभास्करोदयेन।

सामान्य अर्थ - हृदय के अज्ञानान्धकार को दूर करने में तथा भवसागर को सुखाने में सूर्य, राम-दिवाकर (भगवान् राम) तथा अच्युत-भानु (भगवान् कृष्ण) सफल नहीं हुए। परन्तु सूर्यस्वरूप वकुल पुष्प की माला धारण करने वाले नम्माळवार (वकुलभूषण भास्कर) ने भवसागर को सुखाकर हृदय के अज्ञानान्धकार को दूर करते हुए हृदय-कमल को विकसित (खिला देना) कर दिया।

विशेषार्थ - तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि 1 - रात्रि के अन्धकार को दूर करते हुए पूरब के उदयाचल के शिखर पर सूर्य उग चुके हैं। इससे केवल बाहर का अन्धेरा दूर हुआ परन्तु अज्ञानान्धकार ज्यों का त्यों बना हुआ है। कहा है- **तमो बाह्यं विनश्येद् तु पावकादित्यसन्निधौ। स बाह्याभ्यन्तरं चैव विष्णुभक्तार्कसन्निधौ।।** अग्नि एवं सूर्य बाहरी अन्धकार को दूर करते हैं, परन्तु विष्णुभक्त भीतर एवं बाहर दोनों के अन्धकार दूर करते हैं।

वा.रा. 5.37.18 - शरजालांशुमान् शूरः कपे रामदिवाकरः। शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति।। सूर्य सदृश भगवान् राम के बाण ही किरणें हैं जो जल रूपी राक्षस शत्रुओं को सुखा देंगे। भगवान् राम संसार-सागर को नहीं सुखाते। **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.4.2 -** प्रभु की सेवा में लगने से पुनर्जन्म का संसार-सागर सूख गया। **वि.पु. 5.3.2 - तताऽखिल जगत्पद्म-**

बोधायाच्युत भानुना। देवकीपूर्व- सन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना।। संसाररूप कमल को विकसित करनेवाले सूर्य सदृश भगवान् कृष्ण (अच्युतभानु) का देवकीरूप पूर्वदिशा में उदय हुआ। **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.2.8 -** हमारे हृदय कमल में रहते हुए हमारे ललाट पर अपने चरणकमल का चिह्न (उर्धवपुण्ड्र तिलक) छोड़ दिया। **श्रीपराङ्कुशाष्टकम् 4 - यद्गोसहस्रमपहन्ति तमांसि पुंसां, नारायणो वसति यत्र सशंखचक्रः। यन्मण्डलं श्रुतिगतं प्रणमन्ति विप्राः, तस्मै नमो वकुळभूषण भास्कराय ।।** सूर्यरूप वकुल-पुष्प-मालाधारी नम्माळवार की सहस्रगीति की हजारों रश्मियाँ भक्तों के हृदय से अज्ञानान्धकार को दूर करती हैं, शंखचक्रधारी नारायण जिनके हृदय में वसते हैं, श्रुतिनिष्ठ सन्त एवं विप्रगण जिनकी पूजा-वन्दना करते हैं, ऐसे आळवार को हम पूजा-नमन करते हैं। **तिरुवाय.8.8.1** - दिव्यमहिषी, आभूषण, आयुधादि से विभूषित श्रीमन्नारायण आळवार के हृदय में बसते हैं। सूर्य जैसी आभा से पूर्ण नम्माळवार के साथ जुड़ने वाले भी उनके तेज से चमकते रहते हैं। **तिरुवायमोळी 6.7.2** - नम्माळवार से सम्बोधित कियेजाने वाले पक्षीगण भगवान् के नाम एवं सौंदर्य का गुणगान कर रहे। इनसे जुड़कर कुरुकापुरी (कुरुगूर या आळवार तिरुनगरी) ही मात्र लाभान्वित नहीं हुआ है, बल्कि सारा जगत् भगवान् का उपासक एवं नाम-यश का गायक हो गया है।

चूर्णिका 84 -

सबके रक्षार्थ नम्माळवार का जन्म चौथे वर्ण (शूद्र) में हुआ।

मूल - त. वंश भूमिगळै उद्धरिक्कक् किळक् कुलम् पुक्क वराह गोपालरैप् पोले इवरुम् निमग्नरै उयर्त्तत् ताळ इळिन्दार्।

सूत्र सं. 84 - कुलभूमी उद्धर्त्तुमधः कुलं प्रविष्टौ वाराहगोपालाविवायमपि निमग्नान् उच्चैः कर्त्तुमधः प्रविवेश।

सामान्य अर्थ - निम्नयोनि वाराहावतार पृथ्वी उद्धार तथा निम्नकुल कृष्णावतार गोपकुल कल्याण हेतु हुए। संसार-विषय-वासना में डूबे लोगों के उद्धार के लिए नम्माळवार निम्नकुल में अवतरित हुए।

विशेषार्थ - वि.पु. 5.21.12 - ययातिशापाद् वंशोऽयमराज्यार्होऽपि साम्प्रतम् । ययाति के शाप से यदुवंश राज्याधिकार से वंचित रह गया। ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु से जवानी माँगी और उसे अपना बुढ़ापा देना चाहा, परन्तु यदु ने मना कर दिया। ययाति ने तब उसे राज्याधिकार से वंचित रहने का शाप दे दिया। **वि.पु.5.20.49 - अयं स कथ्यते प्राज्ञैः पुराणार्थ - विशारदैः। गोपालो यादवं वंशं मग्नमभ्युद्धरिष्यति।।** पुराण के अर्थ विशेषज्ञ कहते हैं कि गोपाल जी डूबे हुए यदुवंश को उबारेंगे। **तिरुवायमोळी 6.4.5 -** यदुकुल के नन्द जी के यहाँ भगवान् कृष्ण प्रवेश कर गये। हिरण्याक्ष ने प्रलय-जल में पृथ्वी को डुबा रखा था। **वराह पु.- उद्धृतासि वराहेण।** भगवान् ने वराह के स्वरूप में अवतार लिया और धरती को जल से ऊपर निकाला। **वराह पु.- नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्।** वराह भगवान् को नमस्कार है, जिन्होंने खेल-खेल में धरती देवी को उबारा। **तिरुवायमोळी 2.8.7 -** आप वराह रूप में आये और गहरे जल में जाकर भूदेवी को अपने

कन्धे पर जल से ऊपर सुरक्षित लाये। **तिरुप्पल्लाण्डु 11- अभिमान तुङ्गन्** **-** आळवार महान् हैं, क्योंकि उनको अपने आप पर गर्व है कि वे भगवान् के दास हैं। नम्माळवार ने अपने आपको दास की तरह अत्यन्त नीचा मानकर चतुर्थ वर्ण में अवतार लिया। ऊच्च तीन वर्णों में जन्म लेने पर ऊँचे कुल का उन्हें सर्वनाशी अहंकार हो जाता। अतः सबके परोपकार हेतु ही उनका चतुर्थ वर्ण में अवतार हुआ।

चूर्णिका 85 -

भागवतों की महानता के उदाहरण से आळवार की महानता बताना।

मूल - त. म्लेच्छनुम् भक्तन् आन्आल् चतुर्वेदिगळ अनुवर्त्तक्क अरिवु कोडुत्तुक् कुलदैवत्तोडु अक्कप् पूजै कोण्डु पावन तीर्थ प्रसादनाम् एङ्गिर तिरुमुगप् पडियुम्, विश्वामित्र विष्णुचित्त तुलसीभृत्यारोडे उळकलन्दु तोळुकुलम् आनवन् निलैयार् पाडलाले ब्राहमण वेळ्विक्कुरै मुदित्तमैयुम्, किळमगन् तलैमगनुक्कु समसकावाय तम्बिक्कु मुन् पिरन्दु वेलुम् विलुम् कोण्डु पिन् पिरन्दारैच चोदित्तुत्तमैयनुक्कु इळैयोन् सद्भावम् सोल्लुम्बडि एककुलमानमैयुम्, तूदु मोळिन्दु नडन्दु वन्दवर्गळुडैय सम्यक् सगुण सहभोजनमुम्, ओरु पिरवियिले इरु पिरवियानार् इरुवर्क्कु धर्मसूनु स्वामिगळ् अग्रपूजै कोडुत्तमैयुम्, ऐवरिल् नालवरिल् मूवरिल् मुरपट्टवर्गळ् सन्देहियामल् सहजरोडे पुरोडाशमागच् चेय्द पुत्र कृत्यमुम्, पुष्प त्याग भोग मण्डपङ्गळिल् पणिप् पूवुम् आलवट्टमुम् विणैयुम् कैयुमान अन्दरङ्गरै मुडिमन्नवनुम् वैदिगोत्तमरुम् महामुनियिम् अनुवर्तित्त क्रममुम्, याग

अनुयाग उत्तर विधिगळिल काय अन्न स्थल शुद्धि पण्णिन वृद्धाचारमुम् अरिवार्क्किरे जन्म उत्कर्ष अपकर्षङ्गळ् तेरिवदु।

सं. सूत्र 85 - म्लेच्छोऽपि भक्तो भवति चेत् तं चतुर्वेदिनोऽप्यनुवर्त्तेयुः, तेषां ज्ञानं दत्वा कुलदेवेन तुल्यः पूजां स्वीकृत्य पावनतीर्थप्रसादो भवेदिति श्रीसूक्तिं विश्वामित्रं विष्णुचित्ततुलसीभृत्यैरेकीभूतस्य नीचकुलस्य सुस्थिरगानेन ब्राह्मणयज्ञसमाप्तिं नीच-उत्कृष्टस्य समसखा सन्नुजस्याग्रे जनित्वा खड्गं धनुश्च गृहीत्वा, अनुज्न्मनां शोधित्वा अग्रजस्य अनुज सद्भावमुक्त्वा, एककुले जात इत्यमुमर्थं दूत्यकथनगमनागमनकर्तृणां सम्यक् सगुणसहभोजनमं एकस्मिन् जन्मनि जन्म द्वयतोरुभयोरपि धर्मसूनुस्वामिदत्तामग्रपूजां पञ्चसु चतुर्षु त्रिषु पूर्वजैः सन्देहमकृत्वा सहजैः सह पुरोडाशमिति कृतं पुत्रकृत्यं पुष्पत्यागभोगमण्डपेषु कृत्रिमपुष्प तालवृन्तवीणा हस्तेष्वन्तरङ्गेषु अभिषिक्तक्षत्रिय वैदिक- उत्तम- महामुनिनां अनुवर्त्तन् क्रमम्, याग- अनुयाग उत्तरवेदिकासु कायान्न स्थलशुद्धिं कृतवतां वृद्धानामाचारं च जानद्भिः खलु जन्मोत्कर्षापकर्षौ ज्ञायेते।

सामान्य अर्थ - अधोलिखित घटनाओं में सन्निहित भाव को जाननेवाले ही ऊँच-नीच कुल के जातक के गुण का आदर करते हैं।

1. भगवत् आज्ञा है कि अगर म्लेच्छ (चारों वर्ण से बाहर) भगवान् का शुद्ध भक्त है तो वैदिकगण भी अपने इष्टदेव की तरह उसकी पूजा करें। उसके जूठे जल तथा भोजन आदर पूर्वक ग्रहण करे।

2. पंचम वर्ण के नम्पडुवान् के भगवान् के नाम के गीत से ब्रह्मराक्षस का उद्धार हुआ और वह विश्वामित्र मुनि, विष्णुचित्त स्वामी तथा भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी के कुल जैसी प्रतिष्ठावान् हो गया।
3. निषादराज गुहन् भगवान् राम का सखा था जिसे उन्होंने लक्ष्मण जी तथा भरत जी से भी अधिक मान-सम्मान दिया।
4. भगवान् राम ने शबरी के फल खाये, हनुमान जी के साथ कन्द-मूल खाये और भगवान् कृष्ण ने विदुर जी के घर का भोजन किया।
5. यद्यपि भगवान् कृष्ण तथा भक्तिसार स्वामी जन्म के घर के बाहर दूसरे के घर में पाले-पोसे गये, तद्यपि ये धर्मपुत्र युधिष्ठर तथा पेरुम्बुलियूर आदि के आदरपात्र बने।
6. पाँच, चार, तीन द्वारा ब्रह्ममेद संस्कार के दृष्टान्त - युधिष्ठर जी ने विदुर, भगवान् राम ने जटायु तथा महापूर्ण स्वामी (पेरिय नम्बी) ने मारनेरी नम्बी के दाह-संस्कार किये।
7. राजा तोण्डमान ने वेंकटेश भगवान् को मिट्टी का फूल चढ़ानेवाले कुरुम्बरुत्त नंबी का, रामानुज स्वामी ने वरदराज भगवान् के पंखा झलनेवाले तिरुक्कच्ची नंबी (काञ्चीपूर्ण स्वामी) का और लोकसारङ्ग मुनि ने तिरुप्पाण आळवार (योगीवाहन स्वामी) का सम्मान किया।
8. उत्तरवीथि श्रीरङ्म में तिरुवाराधन, तदीयाराधन तथा गृहप्रवेश में शरीर, भोजन तथा स्थान की शुद्धि।

विशेषार्थ - पाञ्चरात्र में उल्लेख है - **मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्। स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे दंभवर्जनम्।।1।। मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्रांगविक्रया। ममानुस्मरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति।।2।।**

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छे च वर्त्तते। आठ प्रकार की भक्ति से युक्त म्लेच्छ पूज्य हैं - (1) हमारे भक्तों के प्रति माता की तरह स्नेह रखना, (2) दूसरों को हमारी पूजा करते देख प्रसन्न होना, (3) स्वयं मेरी पूजा करना, (4) दंभरहित रहना, (5) मेरी कथा सुनना, (6) पुलकित हो रोमांचित होना, अश्रु प्रवाह, गला रुंधना आदि, (7) मेरा निरन्तर स्मरण, (8) जीविका उपार्जन में स्वार्थवश मेरे नाम का उपयोग नहीं करना।

पाञ्चरात्र के अनुसार - **स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स यतिः स च पण्डितः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं..** आठों भक्ति से युक्त ऐसा व्यक्ति ब्राह्मणों में श्रेष्ठतम है, मुनि है, वैभवयुक्त है, विद्यवान् है, इसके साथ ज्ञान का आदान-प्रदान करे। **तिरुमालै 42 -** निष्कलंक, उत्तम कुलवाले, चारों वेद में निष्णात भक्त अगर धनहीन हो तब भी पूज्य है। कहा है- **स च पूज्यो यथा ह्यहम् ।।** और मेरी तरह पूज्य है। **तिरुमालै 42 -** वह सम्मानीय है, हर तरह की सहायता के योग्य है। रामानुज स्वामी **गद्यत्रय वैकुण्ठगद्य 21 - मम कुलधनम् मम कुलदैवतम् -** मेरे कुल का धन तथा इष्टदेवता है। **पेरिय तिरुमोळी 2.6.4 -** हमारे मान्य देव। **पाञ्चरात्र** - **तत्पादावतुलं तीर्थं तदुच्छिष्टं सुपावनम् -** भक्त के चरण से स्पर्श किया हुआ जल अतुलनीय पवित्र तीर्थ है तथा उनका जूठा भोजन पवित्र प्रसाद है। यह

अहंकार के मद को दूर करता है। **तिरुमालै 41 -** इनका जूठन पवित्र भोजन है। नित्य रात्रि के अन्त में तिरुक्कुरुङ्गुडि जाकर नम्पाडुवान् मलै-नम्बि भगवान् को जागने के लिए सुप्रभातम् का भजन गाकर सुनाते थे। ये पञ्चम वर्ण क थे। सुप्रभातम् से भगवान् को प्रातः जगानेवालों को एक गोत्र का कहा जाता है। इस दृष्टिकोण से नम्पाडुवान् विश्वामित्र मुनि के गोत्र के हुए जिन्होंने भगवान् राम को **वा.रा. 1.23.2- कौसल्या सुप्रजाराम पूर्वासन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्।।** गाकर के जगाया था। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 2.2.1** में भगवान् कृष्ण को कहते हैं - गोपशिशु! शेषशायी नाथ! जागिये, दूध पीजिये। भक्तांघ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 45** में अपने को श्रीरंगम् के नाथ के लिए तुलसी की माला बनानेवाला कहते हैं। इससे इनका शेषत्व (भगवान् का सेवक) का भाव प्रकट होता है। रंगनाथ भगवान् को प्रातः जगाने हेतु **तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि 1 -** में आप कहते हैं - **विनती है प्रभु रंगनाथ से शुभ वेला है आप जगें**। नम्माळवार **तिरुवायमोळी 3.7.9 -** नीच जाति का अगर चांडाल में भी अधम् कोई मेरे चक्रधारी प्रभु के भक्त हों तब उनके दास का दास मेरे स्वामी होंगे। **तिरुवायमोळी 3.7.8 -** भगवान् को जानने में असमर्थ श्रेष्ठ ज्ञानी भक्त कदाचित् कुंभी पाक नरकवासी होकर वहाँ से भगवान् की प्रशस्ति गाते हैं तो वे हमारे हरेक जीवन के नाथ हैं। चौथे वर्ण के जन्म की निम्नता के ही कारण नम्माळवार कितने विनम्र हैं ! सोम शर्मा नामका एक ब्राह्मण विधिवत यज्ञ पूरा नहीं करने के कारण मरने पर ब्रह्मराक्षस हुआ। जहाँ तहाँ घूमते हुए वह नम्पाडुवान् का

शरणागत हुआ। **कैशिक माहात्म्य - तदा त्वं गीत प्रभावेन निस्तारयितु -मर्हसि। एवमुक्तावथ चण्डालं राक्षसः शरणं गतः।।** राक्षस ने कहा कि आप अपने कैशिक-पण (राग) के गीत के प्रभाव से मुझे उवार सकते हैं, और ऐसा कहकर चण्डाल कुल के नम्पाडुवान् का शरणागत हुआ। भगवान् मलै-नम्बि की सन्निधि में कैशिक राग के गीत अनादि काल से गाये जाते हैं। **यन्मया पश्चिमं गीतं स्वरं कैशिकमुत्तमम् । फलेन तस्य भद्रं ते मोक्षयिष्यसि किल्विषात्।।** नम्पाडुवन् ने मन्दिर में अन्त में गाये जानेवाले उत्तम कैशिक राग के फल से राक्षस को पाप से मुक्त हो जाने की मंगल कामना की। **इति पूर्णस्य सन्निधौ पश्चाद् गीतेन कैशिकरागेण।**

एवं तत्र वरं गृह्य राक्षसो ब्रह्मसंज्ञितः। यज्ञशापाद्विनिर्मुक्तः सोमशर्मा महायशाः।। इसतरह से सुप्रभातम् को पूरा करनेवाले कैशिक राग के प्रभाव से सोमशर्मा यज्ञ के दोष से प्राप्त राक्षस योनि से मुक्त हो गया।

गुहन् मल्लाह (मछुआरा) की नीच जाति में उत्पन्न होकर अज्ञानतावश नीच क्रियाकलापों में रत रहने पर भी भगवान् राम का सखा कहा गया। **पेरिय तिरुमोळी 5.8.1 -** "हमेशा प्यारे सखा, आओ भाई" कहकर नीच गुहन् को भगवान् राम ने अपने समर्पित भाई को भी उसका भाई बना दिया। **तिरुवाय.3.5.5-** सार्वभौम अतिउदार प्रभु। **तिरुविरुत्तम् 53-** नित्यसूरि यों के नाथ। **पेरिय तिरुमोळी 5.8.1 -** भगवान् ने लक्ष्मण को गुहन् का छोटा भाई कहा। भगवान् राम को शयन मुद्रा में जाने पर लक्ष्मण ने धनुष-बाण के साथ रात भर जागकर उनकी रखवाली की। **श्रीवचनभूषण**

247, 248- लक्ष्मण पर शंकाग्रस्त होकर गुहन् भी उनके पास अपना भुजाल लेकर रात भर जागते रहे। एक ही बार रामजी का सौंदर्य देखकर इतना मोहित गया कि उनकी सेवा में समर्पित हो गया। **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.10.4 -** भुजाल धारण करने वाले गुहन् को भगवान् ने गंगा किनारे उसे अपना भाई बनाया। **बा.रा. 2.87.24 - ततस्त्वहं चोत्तमबाणचापभृत् स्थितोऽभवं तत्र स यत्र लक्ष्मणः।** भगवान् राम के बारे श्रृंगवेरपुर का वृत्तान्त सुनाते हुये गुहन् ने भरत जी को कहा कि लक्ष्मण जब रात में राम जी की रक्षा करते हुए घूम रहे थे तब मैं भी उत्तम धनुष-बाण लिये हुये उनके साथ ही था। **वा.रा. 2.86.1 - आचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः। भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः।।** राम जी के प्रति लक्ष्मण जी का प्रेम एवं सेवाभाव गुहन अतिमहान् भरत जी को बताते हुये लक्ष्मण जी का परिचय देते हैं। इस सन्दर्भ में **वा.रा. 1.18.28** से लक्ष्मण जी के स्वाभाविक गुण प्रदर्शित होते हैं - **बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।** बचपन से ही वैभव-ऐश्वर्य बढ़ानेवाले लक्ष्मण जी राम जी के प्रति समर्पित थे। **वा.रा. 3.15.7 - परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।** पञ्चवटी आश्रम निर्माण के समय लक्ष्मण जी कहतें हैं कि चाहे सैकड़ों वर्ष क्यों न हो, मैं आप के लिए हूँ और आप पर ही आश्रित हूँ। **पेरिय तिरुमोळी 2.2.3 -** रामावतार में पहले आपने हनुमानजी को दूत बनाकर सीता जी के लिए सुन्दर संवाद भेजा। कृष्णावतार में आप स्वयं दूत बने। **वा.रा. 1.1.58 - शबर्या पूजितः सम्यग् रामो दशरथात्मजः।** शबरी से सम्मानित होकर रामजी ने वन में भोजन किया। **पेरिय तिरुमोळी**

6.2.9 - आपने छत्रधारी राजाओं के बीच दूत का काम किया। **महाभारत उद्योगपर्व 91.39 - ततः क्षत्तान्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च (विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च)**। भीष्म-द्रोणादि के घर का भोजन त्यागकर भगवान् कृष्ण ने विदुर जी का पवित्र अन्न-पेय आदि ग्रहण किया। **पेरिय तिरुमोळी 10.2.6 -** राम जी से पराजित होकर असुर शोक करते हुए कहते हैं - बन्दर दूत हनुमान के लंका आने पर ही सीता जी को लौटा देना चाहिये था। **वा.रा.1.1.78- दृष्टवा सीतेति।** लंका में सीताजी के दर्शन करके लौटे हनुमान्। **पद्मोत्तर पुराण - प्रीत्योपकाराय सुग्रीवो राज्यकांक्षी विभीषणः। निष्कारणः हनूमान् तत्तुल्यं सहभोजनम्।।** भगवान् राम का कैंकर्य सुग्रीवने अपने व्यक्तिगत लाभ हेतु किया, विभीषण ने राज्य के लिए किया, परन्तु हनुमान् जी निःस्वार्थ भाव से सेवारत थे। भगवान् राम ने हनुमान् जी के साथ उनके पत्तल से लेकर फल खाया। **पेरिय तिरुमोळी 5.8.2 -** तुम्हारी सेवा को किसी वस्तु से तौला नहीं जा सकता। धर्मपुत्र युधिष्ठर ने राजसूय यज्ञ में सबसे पहले भगवान् कृष्ण की पूजा की जिनका यदुकुल (देवकी के गर्भ) में जन्म और गोकुल यशोदा जी के यहाँ पालन-पोषण हुआ। एक ही जन्म में दो बार जन्म हुआ। भक्तिसार स्वामी का भार्गव ऋषि कुल में जन्म हुआ और दूसरे ब्राह्मण से पाले गये, परन्तु पेरुम्पुलियूर आदिकळ (महाव्याघ्रपुर स्वामी) ने यज्ञ में इनकी ही अग्रपूजा की। अग्रपूजा में इन दोनों के निम्न या उच्च कुल का विचार नहीं हुआ। ब्रह्ममेद संस्कार में पुत्रादि का विचार छोड़कर पाँच पाण्डवों में सबसे बड़े

युधिष्ठिर, अशरीरि के शब्द सुन, श्रेष्ठ ज्ञानी विदुर जी का अंतिम संस्कार पुत्र की तरह किया।

चारों भाईयों में प्रधान दशरथपुत्र राम जी ने गृध्रराज जटायु महाराज का पुत्र के रूप में अपने हाथों दाह-संस्कार किया। **वा.रा. 3.68.27 - सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्। गृध्रराजं हि धक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम्।।** हे लक्ष्मण! लकड़ी लाओ। घर्षण से आग उत्पन्न कर गृधराज का हम अपने हाथों दाह संस्कार करेंगे। हमारे कार्य के लिए इन्होंने अपना प्राण उत्सर्ग कर दिया है। **वा.रा. 3.68.31 - एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेशवरम्। ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः।।** ऐसा कह, धर्मात्मा राम जी ने पक्षीराज को चिता पर रख वैसे ही उनका दाहकार्य किया जैसे विषाद से अपने कुटुम्बों का अंतिम कृत्य करते हैं।

तीन आचार्यों (पेरिय नम्बि - महापूर्ण स्वामी, तिरुकोट्टियूर नम्बि - गोष्ठीपूर्ण स्वामी एवं पेरिय तिरुमलै नम्बि - श्रीशैलपूर्ण स्वामी) में महापूर्ण स्वामी सबसे श्रेष्ठ थे। तीनों यामुनाचार्य स्वामी के शिष्य थे, परन्तु रामानुज स्वामी की विधिवत दीक्षा (गुरुमन्त्र) प्रदान करने से महापूर्ण स्वामी तीनों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। इन्होंने चतुर्थवर्ण के मारनेरि नम्बि के परमपद होने पर उनका पुरोडास (हविष्य - बली - श्रीचूर्ण) कुत्तों अर्थात् उनके सम्बन्धियों को देने से मना कर दिया। भाव है कि उनका मृत शरीर सम्बन्धियों को न देकर उनका पुत्रकृत्य यह सोंचकर स्वयं ही सम्पन्न किया कि नम्बि का शरीर ही अग्नि में हविष्य है। नम्माळवार

तिरुवायमोळी 3.3.2 - वेंकटगिरि के प्रभु की इन्द्रादि देव पूल से सेवा करते हैं। तिरुमला पुष्प मण्डप कहा गया है। कुरुम्बरुत्त नम्बि भगवान् श्रीनिवास की परम इच्छा से उन्हें मिट्टी का फूल अर्पित करते थे। दक्षिण के राजाओं के राजा तोण्डै मन्नवन् इन्हें गुरु मानते थे। **पेरिय तिरुमोळी 5.8.9 -** दक्षिण के पट्टाभिषिक्त राजाओं के एक शक्तशाली राजा तोण्डै मन्नवन्। वेगवती नदी के उत्तर तट पर अवस्थित पुण्यकोटि विमान के नीचे विराजित सबको दर्शन एवं वर देनेवाले स्वयं श्रीहरि भगवान् वरदराज का स्थान काञ्चीपुरम् त्याग मण्डप कहा गया है। **वेगवत्युत्तरे तीरे पुण्यकोट्यां हरिस्वयं। वरदस्सर्व भूतानां अद्यापि परिदृश्यते।।** तिरुक्कच्चि नम्बि (काञ्चीपूर्ण स्वामी) हाथ से पंखा की सेवा करते हुए भगवान् वरदराज के परम स्नेहपात्र बने। नम्बि ब्राह्मण वर्ण के नहीं थे। परन्तु वैदिकों में श्रेष्ठ भाष्यकार रामानुज स्वामी इन्हें अपना गुरु मानते थे।

कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरुमोळी 1.1 -** भोग मण्डप कहे जाने वाले श्रीरंगम् के रंगनाथ प्रभु (पेरिय पेरुमाल) के कोमल चरण को कावेरी अपनी लहरों से पूजती हैं। हाथ में वीणा लिए हुए पञ्चम वर्ण के मुनिवाहन स्वामी (तिरुप्पाण आळवार) भगवान् रंगनाथ के अन्तरंग सेवक थे। ब्राह्मण वर्ण के लोकसारंग मुनि इनके अनुचर थे। देवपूजा (तिरुआराधनम्) यज् है। यज्ञ से देह शुद्धि होती है। रामानुज स्वामी पूजा के समय पञ्चम वर्ण के धनुर्दास (पिल्लै उरंग विल्ली दासर्) के शरीर को स्पर्श कर अपनी देहशुद्धि करते थे। भगवान् को भोग अर्पित किया जाना तिरुआराधनम्

याग है, और इसके बाद प्रसाद वितरण को त्वदीयाराधनम् कहते हैं। प्रसाद वितरण ही अनुयाग है। नमपिल्लै (कलिवैरि दास) वितरण के पहले प्रसाद को पिल्लै तिरुनाविरुडैय दासर् से स्पर्श कराकर पवित्र करते थे।

श्रीरंगम् के उत्तरवीथि में नडुविल् तिरुविदिप् पिल्लै भट्टर ने नवनिर्मित घर के चारों ओर पहले पिल्लै वानमामलै दासर् से परिक्रमा करके पवित्र किया। इस तरह से जो जन्म की महानता या हीनता को समझता है उसे भली-भाँति ज्ञात होजाता है कि किसका जन्म सार्थक है या निरर्थक है। तीनों उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि नीचे वर्ण का जब भगवद्भक्त हो जाता है तब वह ऊंचे वर्ण के भक्तिविहीन लोगों से श्रेष्ठ हो जाता है। इनके स्पर्श से पूजा-सामग्री, प्रसाद तथा स्थान भी पवित्र हो जाते हैं। ऐसा ज्ञानवृद्ध जनों के लोक व्यवहार से समझा जा सकता है।

चूर्णिका 86 -

प्रमाण दिया है कि जो भगवान् को नहीं जानता है वह निम्न वर्ण का है।

मूल - त. आज्ञर् भ्रमिक्किर वर्णाश्रम विद्या वृत्तङ्गळै गर्दभ जन्मम् स्वपचाधमम् शिल्पनैपुणम् भस्माहुति शव विधवा अलंकारम् एन्-रु कळिप्परगळ् ।

सं. सूत्र 86 - अज्ञानां भ्रमविषयीभूतानि वर्णाश्रमविद्यावृत्तानि गर्दभजन्म श्वपचाऽधमः शिल्पनैपुणं भस्माहुतिः शवविधवालंकार इति त्यजन्ति।

सामान्य अर्थ - ऊच्चवर्ण का जन्म, शिक्षा, पेशा तथा अनुष्ठानादि के भ्रमवाले केशर ढ़ोनेवाले गदहा, कुत्ते का मांस खानेवाले चाण्डाल, जूता बनाने में निपुण, भस्म में आहुति देनेवाले की तरह हैं। ऐसे लोगों के कार्य को विद्वान लोग मृतक तथा विधवा का अलंकार करनेवाला कहते हैं।

विशेषार्थ - अज्ञानता - आत्मस्वरूप जानने वाले अपने को श्रीमन्नारायण का सेवक मानते हैं। तदनुसार, भौतिक संसार में क्या ग्राह्य है तथा क्या त्याज्य है, उसका ज्ञान रहना चाहिए। कहा है- **चतुर्वेदधरो विप्रो वासुदेवं न विन्दति, वेदभार पराक्रान्तः स वै ब्राह्मण गर्दभः।** भगवान् वासुदेव का ज्ञान नहीं होने से वेद का ज्ञान भार ढ़ोनेवाले गदहा की तरह है। ऊच्चवर्ण का जन्म, शिक्षा, पेशा तथा अनुष्ठानादि की श्रेष्ठता के भ्रम के कारण वे गदहा-ब्राह्मण कहे जाते हैं। **कठोपनिषद् 2.15 - सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।** सभी वेद का यही रहस्य है कि चरम सत्य मात्र एक **"ॐ"** ही है। **गी. 15.15 - वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो।** भगवान् कहते हैं कि वेद से मुझे ही जाना जाता है और वेद का मैं ही ज्ञाता हूँ। जैसे केशर ढ़ोनेवाला गदहा उसकी सुगंध नहीं जानता, वैसे ही वेदपाठी ब्राह्मण वेद के रहस्य वासुदेव को नहीं जानने से गदहा-ब्राह्मण है।

चाण्डाल से अधम - ऐसा प्रमाण है - **श्वपचोपि महीपालविष्णुभक्तो द्विजाधिकः। विष्णुभक्तिविहीनस्तु यतिश्च श्वपचाधमः।।** भगवान् विष्णु का भक्त होने से कुत्ता-खानेवाला श्वपच भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। भगवान् विष्णु भक्तिविहीन एक संन्यासी नीच चाण्डाल से भी नीचा है।

शिल्पनिपुणता - वि.पु.- 1.19.41 - तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्।। कर्म वही है जो बन्धन का कारण न हो और विद्या वही है जो मुक्ति का ज्ञान कराये। इसके अतिरिक्त अन्य कर्म मात्र परिश्रम है तथा अन्य विद्यायें कला-कौशल मात्र हैं। जैसे, जूता बनाने की कला मात्र अभ्यास है।

भस्माहुति - नारायण के चरण में प्रेम के विना सारे धार्मिककृत्य भस्म में आहुति करना है। कुलशेखर आळवार **मुकुन्दमाला 25 - आम्नायाभ्यास नान्यरणयरुदितं, वेदव्रतान्यन्वहं मेदच्छेदफलानि, पूर्तविधयः सर्वे हुतं भस्मनि। तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पदद्वन्द्वाम्भोरुह संस्मृती विजयते देवः स नारायणः।।** भगवान् नारायण की जय हो ! इनके चरणारविन्द में प्रेमपूर्वक धयान के विना वेदपारायण जंगल का विलाप है, कठोर वैदिकव्रत का पालन शरीर-क्षीण करना है, और तालाब आदि का निर्माण भस्म में हवन करना है। पवित्र तीर्थों का स्नान हाथी के स्नान जैसा है जो स्नान के बाद तुरत शिरपर धूल डाल लेता है।

शव तथा विधवा का अलंकार - भागवत 10.38.12 - यस्याखिल-अमीव-हभिः सुमङ्गलैः वाचो विमिश्रा-गुणकर्मजन्मभिः। प्राणन्ति शुम्भन्ति पुन-न्ति वै जगद् यास्तद्विमुक्ताः शवशोभना मताः। भगवान् के गुण, कर्म और जन्म की लीलायें सब पापों के नाशक और परममङ्गल कारक हैं। उनके गान से वाणी पवित्र होकर संसार को प्राणवन्त, पवित्र और सुशोभित करती है। परन्तु उनके गान से रहित वाणी मुर्दे की शोभा की तरह निरर्थक

है। कहा है - **विष्णुभक्तिविहीनस्य वेदः शास्त्रं जपस्तपः। अप्राणस्येव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम् ।।** भगवान् विष्णु की भक्ति के बिना जप और तप मृतशरीर का अलंकरण जैसा है जो संसार के लोग अपनी खुशी के लिए करते हैं। **प्रादुर्भावैः सुरनरसमो देव देवस्तदीया जात्यावृत्तैरपि च गुणतस्तादृशो नात्र गर्हा। किन्तु श्रीमद्भुवनत्राणतोऽन्येषु विद्यावृत्तप्रायो भवति विधवाकल्पकल्प प्रकर्षः।।** सर्वशक्तिमान् भगवान् अवतार के समय एक सामान्य देव या मनुष्य जैसा दिखते हैं। उनके भक्त भी अपने वर्ण, व्यवहार एवं गुण की सीमा से परे दोषमुक्त होकर सम्मानित होते हैं। अतः भक्तिरहित लोगों की ऊँची शिक्षा एवं वैदिककर्म विधवा श्रृँगार सदृश है। भगवान् सम्बन्धित ज्ञानरूपी मंगलसूत्र के अभाव में ज्ञानीजन उन्हें विधवा के श्रृंगार की तरह त्याग देते हैं। भगवान् की भक्ति से रहित ऊँचा वर्ण, आश्रम, ज्ञान, कर्मादि हेय माने जाते हैं। भक्ति से जुड़कर निम्न वर्ण, आश्रम, ज्ञान, कर्मादि भी सदोपयोगी हो जाते हैं।

****** आचार्य हृदय का पहला प्रकरण पूरा हुआ ******

चूर्णिका 87 -

नारायण प्रभु के शेषत्व (सेवक) भाव वाले जन्म की उत्कृष्टता। भगवान् से जुड़े स्थानों में मुमुक्षुगण जन्म लेना चाहते हैं।

मूल सं. सूत्र 87 - शयनाय गमनायालंकरणाय च चरणौ धूलीं स्प्रष्टुं च पर्वतभवनेषु यत्किञ्चदपि जायमान तिर्यक्स्थावर जन्मानि नित्यसूरयो मुमुक्षवश्च परिगृह्णन् प्रार्थयेयुः।

सामान्य अर्थ - नित्यसूरि एवं मुमुक्षुगण भगवान् के कैंकर्य की कामना से उनकी शय्या के लिए सर्प (शेष), वाहन हेतु पक्षी (गरुड़) तथा माला के लिए तुलसी बनना चाहते हैं। भगवान् कृष्ण तथा गोपियों के चरण-स्पर्श तथा चरणरज प्राप्ति हेतु वृन्दावन की लता, औषधि एवं वृक्ष बनने के लिए प्रार्थना करते हैं। गोवर्धन पर्वत के पशु, घास तथा लता बनने हेतु विनती करते रहते हैं। नहीं तो, कम से कम, गोपियों के घर में कीड़ा ही बन जाने की इच्छा रखते हैं।

विशेषार्थ - प्रभु की लीला से जुड़े स्थावर-जंगम-तिर्यक् योनियों में उनके कैंकर्य करने की कामना से नित्यसूरिगण जन्म लेना चाहते हैं।

1. **तिरुवायमोळी 2.8.1 -** परमपद धाम में हमारे प्रभु लक्ष्मी जी के साथ शेषशय्या पर शयन करते हैं, गरुड़ की सवारी करते हैं तथा तुलसीमाला धारण करते हैं। **तिरुवायमोळी 10.2.3 -** गरुड़ ध्वजवाले प्रभु। भक्तों के रक्षार्थ भकवान् गरुड़ जी पर आनन्द से सवारी करते हैं। **तिरुवायमोळी**

1.9.7 - भगवान् कन्धे, वक्षस्थल, मुकुट तथा चरणों पर तुलसी की माला धारण करते हैं। **तिरुवायमोळी 3.7.5 -** भगवान् नित्यसूरि के नाथ हैं। नित्यसूरि स्वभाव से भगवान् के कैंकर्य में रत रहते हैं।

2. **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.6 - असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेत् वेद सन्तमेनं ततो विदुः।। इति।।** जो भगवान् को नहीं जानते हैं वे मनुष्य की गिनती में नहीं आते। जो उनको जानते हैं वे गण्यमान्य होते हैं। **पत्युः प्रजानामैश्वर्यं च पशूनां वा न कामये। अहं कदम्बो भूयासं कुन्दो वा यमुनातटे।।** कैंकर्य चाहनेवाले भागवतगण ब्रह्मा या शिव के धन की कामना न करके यमुना किनारे के कदम्ब या कुरुन्द का पेड़ बनना चाहते हैं। **नाच्चियार तिरुमोळी 4.4 -** ऊँचे कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर कृष्ण कूदे। **नाच्चियार तिरुमोळी 3.3** - यमुना स्नान करती गोपियों के वस्त्र चुराने पर वे लोग कहती हैं कि कुरुन्द के वृक्ष पर बैठकर क्या लड़कपन कर रहे हैं ! भागवतगण कदम्ब या कुरुन्द पर भगवान् कृष्ण के चरण-स्पर्श होने के कारण कदम्ब या कुरुन्द बनना चाहते हैं।

3. वृन्दावन के तृण-लतादिक गोपियों तथा भगवान् कृष्ण के चरणों की धूल से आच्छादित होते रहे। गोपियों ने घरवालों से अपने सम्बन्ध का परित्याग करके भगवान् कृष्ण को ही अपना प्रियतम माना। **भागवत 10.47.61 - आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।**

उद्धव जी की इच्छा है कि गोपियों के चरणरज-रंजित वृन्दावन में तृण-लतादिक बनूँ। सामाजिक मान्यताओं वाले घरेलू सम्वन्धों का त्याग करके गोपियाँ भगवान् की दिव्य सेवा में लग गयीं, जिसकी चाह श्रुतिधरों एवं श्रुतियाँ भी करती हैं।

4. भागवतगण गोवर्धन के पशु, तृण, लतादि बनने की कामना करते हैं। **पेरुमाल तिरुमोळी 4.1, 4.2, 4.4, 4.5, 4.10 -** कुलशेखर आळवार को वेंकटगिरि पर भगवान् के स्वामी पुष्करणी का पक्षी या छोटी मछली, चम्पक फूल, मन्दिर के एक खम्भे के पास खड़े होकर तपस्यारत रहने की चाह है। अन्ततः वे कहते हैं कि भगवान् के निवासस्थल वेंकटगिरि पर किसी भी रूप और कोई भी वस्तु बनने की समझौता कर सकता हूँ।

5. नारायण प्रभु के अन्यतम भक्त किसी भागवत के घर में कीड़ा भी वनने को तैयार हैं। **स्तोत्र रत्न 55 -** यामुनाचार्य स्वामी कहते हैं - **तव दास्य सुखैकसङ्गिनां भवनेषु-अस्तु-अपि कीटजन्म में।** जिनके लिए भगवान् नारायण की सेवा ही सर्वोत्तम सुख है उनके घर में कीट - पतंगों का भी जन्म मुझे स्वीकार है। किन्तु अभक्तों के घर में मुझे ब्रह्मा का भी जन्म स्वीकार नहीं है।

6. इस भाव को **पारतन्त्रय - शेषत्व** कहते हैं। भगवान् कृष्ण या उनके समर्पित भक्त के चरण-स्पर्श और चरण-रज-अभिषिक्त स्थावर जंगम (लता-वृक्षादिक, पशु एवं पर्वत आदि) बनकर कैंकर्यरत रहने की उत्कट इच्छा से आळवार सन्तगण प्रार्थना करते हैं। परकाल स्वामी **पेरिय**

तिरुमोळी 7.4.4 - जो भगवान् के नाम का गुणगान करते हैं उनसे मैं कभी भी अलग नहीं रह सकता।

7. उपर्युक्त स्थावर-जंगम योनि में जन्म की प्रार्थना शुकदेव मुनि, उद्धव जी, कुलशेखर आळवार तथा यामुनाचार्य स्वामी प्रभृति मुमुक्षुगणों ने की है। जबकि तिर्यक-स्थावर आदि योनि के जन्म पूर्व के विभिन्न दोषपूर्ण कर्मों के कारण मिलते हैं। **मनुस्मृति 12.9 - वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैर् अन्त्यजजातिताम्। शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।।** वचन से किये गये पाप के कारण पक्षी तथा जानवर, मानसिक पाप के कारण चण्डाल जाति, तथा शारीरिक पाप से जीव को वृक्षादि बनना पड़ता है।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि भगवत् कैंकर्य की मनसा से पाप योनियों के भी जन्म उत्कृष्ट कोटि के माने गये हैं।

चूर्णिका 88 -

ऊँचे वर्ण के ह्रास के कारण - किस कारण से उच्च कुल के शुकदेव मुनि, कुलशेखर स्वामी एवं यामुनाचार्य आदि पशु-पक्षी प्रभृति बनकर भागवत कैंकर्य करना चाहते हैं।

मूल - सं. - सूत्र 88 - शेषत्वबहिर्भूतज्ञानानन्दमयमपि असहमानास्त्याज्यो -पाधिं नाद्रियेयुः खलु ।

सामान्य अर्थ - ऊँचा वर्ण ह्रास का कारण है। ज्ञान तथा आनन्द प्राप्त करना जीव का सहज स्वभाव है। परन्तु कौन लोग और क्यों इसकी उपेक्षा करते हैं।

विशेषार्थ - यामुनाचार्य स्वामी - **स्तोत्र रत्न 57 - न देहं न प्रणान् न च सुखमशेषाभिलषितं, न चात्मानं नान्यत् किमपि तव शेषत्वविभवात् । बहिर्भूतं नाथ ! क्षणमपि सहे यातु शतधा, विनाशं तत्सत्यं मधुमथन ! विज्ञापनमिदम् ।।** हे स्वामी मधुसूदन ! मैं यह सत्य कहता हूँ। आपकी दासता की अनुपस्थिति में न देह, न प्राण, न समस्त वांछित वस्तुयें और कामनायें, न अपनी आत्मा अथवा अन्य कुछ भी हो, उसे क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता हूँ। ये सब सैंकड़ो बार नष्ट हों। अगर मेरी आत्मा भगवत् कैंकर्य में अभिरुचि नहीं रखती है तो यह सैंकड़ो बार नष्ट हो जाये। यह प्रामाणिक वचन - **ज्ञानानन्दमयस्त्वात्मा,** ज्ञान एवं आनन्द जो इसका सहज स्वाभाव है - मुझे यह कभी मान्य नहीं होगा।

जन्म के वर्ण के साथ अहंकार लगा रहता है। ऊँचे वर्ण वाले को दासता मान्य नहीं है। एक भक्त वर्ण की पहचान नहीं रखना चाहता। सांसारिक गतिविधि के प्रभाव में जीवात्मा के साथ उसके वर्ण की उपाधि लगी रहती है। उपाधि कारण न होकर मात्र प्रभाव है। ऊँची जाति में वर्ण की उपाधि अहंकार उत्पन्न करती है। ऊँचे वर्ण के होते हुये भी महान् शुक मुनि ने, इसीलिए, वर्ण की उपाधि को हेय माना।

चूर्णिका 89 -

वर्ण जीव से जुड़ा है।

मूल - सं. - सूत्र 89 - सं. अस्यौपाधिकत्वं यदा कश्चन राजा स्वं ब्रह्मर्षि कृतवतां नीचतां प्रापितवन्तं राजानं चर्मैवोपकरणीकृत्य याजयित्वा स्वर्गमारोपयत् तदैव सुव्यक्तम्।

विशेषार्थ - विश्वामित्र कुशिकवंश के राजा थे। ब्रह्मर्षि बनने लिए राजा ने लम्बे समय तक तपस्या की। किसी राजा को ब्रह्मर्षि बनाने की योग्यता वसिष्ठ मुनि को प्राप्त थी। विश्वामित्र को यज्ञ से शक्ति मिल गयी थी। **पेरुमाल तिरुमोळी 10.2 -** विश्वामित्र की यज्ञाग्नि की रक्षा भगवान् राम ने की। एक बार इक्ष्वाकुवंश के राजा त्रिशंकु ने अपने कुल पुरोहित वसिष्ठ जी से एक यज्ञ कराने का निवेदन किया जिससे राजा सदेह स्वर्ग जा सके। वसिष्ठ जी के मना करने पर वह उनके पुत्रों से वर मांगने पहुँच गया। पुत्रगण राजा से पिता के साथ उनकी वार्तालाप से अवगत होकर यज्ञ कराने से मना कर दिया। जब राजा ने दूसरे ब्राह्मण को आमन्त्रित करने की अपनी मनसा प्रकट की तब वसिष्ठ जी के पुत्रों ने अपने पिता का अपमान समझ त्रिशंकु को चण्डाल बनने का शाप दिया। शापवश राजा का सारा स्वरूप चण्डाल का हो गया। उसका जनेऊ चमड़े का हो गया। सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा से राजा तब विश्वामित्र मुनि के पास गया। उन्होंने तपस्या के बल से त्रिशंकु के जनेऊ को यज्ञ के अनुरूप वस्तु की बनाकर उसके यज्ञ को सफल कर दिया और उसे स्वर्ग भेज दिया। राजा विश्वामित्र अपने अच्छे कर्मों से क्षत्रिय होते हुए ब्रह्मर्षि बने, और राजा

त्रिशंकु अपने दूषित कर्मों से क्षत्रिय से चण्डाल बने। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति ऊँचे या निम्न वर्ण का अपने अच्छे या बुरे कर्मों के कारण बनता है। वर्ण किसी जीव के साथ जुड़ अवश्य जाता है परन्तु स्थायीरूप से उसके साथ नहीं रहता है।

चूर्णिका 90 -

स्वीकारना है या त्यागना है इसका निर्णय प्रमाण (शास्त्र), प्रमेय (भगवान्) और प्रमातृ (भागवत, गुरु, आचार्य, आळवार) के आधार पर करते हैं।

मूल - सं. - सूत्र 90 - महारूपेषु चोरवेशं शुद्धवेदमलभूतमानुषगानं सर्ववर्ण शूद्रत्वं वनवासिजातौ समुद्रवर्णवेशं द्राविडभाषायां हरिकीर्ति श्वपचेषु भक्तिधनं च जानन्तो ये ये अमरा इत्युक्तरीत्या आरोहेयुः, अविजानन्तो जात्या ब्राह्मणा अप्यनर्हतया अधःपतेयुः।

सामान्य अर्थ - कर्म के नियम का विचार किये बिना यह माना जाता है कि भगवान् की भक्ति से हीन लोग शूद्र हैं। समुद्र के रंगवाले भगवान् कृष्ण के गोपकुल के अवतार का यशगान करते हैं। दक्षिणकी द्राविडभाषा में भगवान् का यशगान आनन्ददायी है। कुत्ते का मांसभक्षी श्वपच की भक्ति प्रशंसनीय है। नित्यसूरि की तरह वह परमपद को प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण यह नहीं समझते वे नीच हैं।

विशेषार्थ - नर के रूप में बुद्ध का अवतार त्याज्य है। **तिरुवायमोळी 5.8.2 -** हे मेरे काले वृषभ ! आप अपनी इच्छा से कोई भी शरीर धारण करते

हैं। वेद को प्रमाण नहीं माननेवाले बुद्ध का स्वरूप त्याज्य है। **वा.रा. 2.109.34 - यथा हि चोरः स तथा हि बुद्ध -** चोर की तरह बुद्ध के अनुयायी दण्डनीय हैं। ये सब हमारे शास्त्रों को न मानकर हमारी मान्यताओं का अपहरण कर रहे हैं। **तिरुवायमोळी 5.10.4 -** असुरों का नाश करने हेतु भगवान् छद्म वेष में चोरी से उनके नगर में प्रवेश कर मीठे शब्दों से असुरों के मन को वेद विरोधी अधर्म में प्रवृत्त करा देते हैं। वेद सब तरह से ग्राह्य हैं, परन्तु भगवान् के बारे में चर्चा नहीं करने वाले उनके अंश त्याज्य हैं। कहा है कि **वेदे न स्मर्त्तव्यो विशेषेण वेदमन्त्रोऽपि अवैष्णव।** यद्यपि वेद में भगवान् नारायण ही सार-तत्त्व हैं, तद्यपि भगवान् विष्णु के गान नहीं करनेवाले उनके मन्त्र त्याज्य हैं। **तिरुवायमोळी 3.9.3 -** भगवान् को छोड़कर मर्त्यों के गुणगान करने का क्या लाभ ? अन्य देवगण के जीवन कर्म के नियम से संचालित होते हैं। **सर्ववर्णेषु भगवद्भक्तिहीनानां शूद्रत्वमिति -** किसी वर्ण का हो, भगवद्भक्ति हीन होने से वह शूद्र है।

महाभारत - **न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये हि अभक्ता जनार्दने।।** भगवान् के भक्त शूद्र न होकर ब्राह्मण होते हैं और भागवत कहे जाते हैं। भगवान् जनार्दन के भक्त नहीं होने पर सभी वर्ण के लोग शूद्र होते हैं।

समुद्रवर्ण के भगवान् कृष्ण वनवासी गोपकुल में आये। वन में जहाँ गौओं के लिए घास तथा जल आदि की सुविधा हो गोपजन वहीं रहते हैं। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 12.8 -** भगवान् कृष्ण वनवासी गोपकुल के थे।

विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.3.1** - नीलेसागर सा सलोने प्रभु बछड़ों के साथ वन से लौट आये हैं। हे नारियों ! आओ उनके वेष-भूषा देखो। भगवान् अपने वनवासी वेष-भूषा को पसन्द करते हैं। इस तरह के वेष में अलंकृत भगवान् के विग्रह आनन्ददायी होते हैं। **पेरिय तिरुमडल 6** - तमिळ शब्दोंवाले दक्षिण की द्राविडभाषा में ऐसा सुना है।

मत्स्य पुराण - हरिकीर्तिं विनैवान्यत् ब्राह्मणेन नरोत्तमा। भाषागानम् न कर्तव्यं तस्मात् पापम् त्वया कृत्यम्।। हे राजा ! भगवान् विष्णु को महिमामण्डित करनेवाले गीत को छोड़कर ब्राह्मण को दूसरे का गीत नहीं गाना चाहिए। दिव्य प्रबन्धम् के पद भगवान् की महानता का वर्णन करते हैं, इसलिए ग्राह्य हैं। श्वपच वर्ण के भगवान् के भक्त आदरणीय हैं। प्रमाण है कि **श्वपचोपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।** कुते का मांसभक्षी भगवान् विष्णु का भक्त होने से एक ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्दविरुत्तम् 100** - कठिनता से मिलनेवाले भगवान् के पावन चरण को श्रद्धा-विश्वास की अटूट धागा से पकड़ने वाले बुद्धिहीन भी संसार को पार कर सकते हैं। नारायण की भक्ति का दुर्लभ धन अपने प्रयत्न से प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। **प्रमाण (शास्त्र), प्रमेय (भगवान्) एवं प्रमातृ (भागवत)** के आश्रय से नारायण के अतिउज्जवल परमपद प्राप्त होते हैं। भागवतजन नित्यसूरि के समान होते हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों। **तिरुवायमोळी 10.5.8** - भगवत् नाम संकीर्तन करनेवाले कितना भी नीच हों नित्यसूरि के सदृश हैं। **तिरुवायमोळी 3.8.11-** सहस्रगीति के

इस दशक को गानेवाले, कैसे भी क्यों न हों, दिव्यधाम पहुँचते हैं। भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 43 -** अगर वेदज्ञ ब्राह्मण अपने उच्च ज्ञान के अहंकार से किसी भगवान् के भक्त को हेय दृष्टि से देखे तो तत्क्षण वह पुलैयर (चण्डाल) से भी नीच हो जायेगा। **ब्रह्माण्ड पुराण** में कहा है - **अनाचारान् दुराचारान् ज्ञातृन् हीनजन्मनः। मद्भक्तान् श्रोत्रियो निन्दन् सद्यः चण्डालतां ब्रजेत्।।** अगर कोई शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण हमारे भक्त के सदाचार, हीनकुल जन्म या ज्ञान की कमी कि निन्दा करता है तो वह ब्राह्मण तुरत चण्डाल हो जाता है। पूर्व के सूत्रों 75 से 84 तक, शठकोप स्वामी की श्रेष्ठता का वर्णन है। सूत्र 85 से 90 तक प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमातृ की सहायता से किसी एक विशिष्ट भागवत का वर्णन न करके सार्वजनिकरूप से भागवतों की महानता का वर्णन हुआ है।

चूर्णिका 91 -

प्रमाणादि से समर्थित शठकोप स्वामी (नम्माळवार) की महानता।

मूल सूत्र 91 - सं. - द्राविडमहामुनिदिक् शरण्या इति उक्तवद्भिः क्वचित् क्वचित् इत्येतेषां आविर्भावः कलिरपि नश्येत् इतिवत्सूचितः।

सामान्य अर्थ - महर्षि अगस्त्य ने तमिल भाषा का प्रचार-प्रसार किया। यह सबको शरण देनेवाले हैं एवं कलियुग का नाश करनेवाले हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 5.2.1- भक्त मंडल की जय हो। भगवान् के भक्त धरती पर समूह में घूम रहे हैं। दुःखदायी नरक नष्ट हुआ। कलिकाल

का अन्त हो जायेगा। कहा है - **दक्षिणदिक् कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणोऽपि।** अगस्त्य मुनि के पुण्य कर्म से देश का दक्षिण-भाग (द्रविड क्षेत्र) सबको शरण देनेवाला हो गया है। आळवार के तमिल प्रबन्ध इस क्षेत्र को अतिपवित्र बनाते हुए सबको मुक्ति देनेवाले हो गये हैं। **भागवत 11.5. 38 - 40 - कृतादिषु नरा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्। कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।।38।। क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः। ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।।39।। कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी। ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर। तेषां नारायणे भक्तिर्भूयसी निरुपद्रवा।।40।। (प्रायो भक्ता भगवती वासुदेवेऽमलाशयाः)।।**

हे राजन् ! सत्युग आदि में जन्म लेनेवाले कलियुग में जन्म लेना चाहते हैं क्योंकि इस युग में नारायण के महान् भक्तजन आयेंगे। द्रविडक्षेत्र में जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी (पालार), पवित्र कावेरी, पश्चिम दिशा में बहनेवाली महानदी (पेरियार) है वहाँ भक्तजनों का वास होगा। इनके जल पीने से मन निर्मल होकर भगवान् वासुदेव की भक्ति मिलेगी। देखिये, कलियुग का नाश होगा - **तिरुवायमोळी 5.2.1.** परकाल स्वामी, भाष्यकार स्वामी प्रभृति के अवतार से कलियुग निष्प्रभावी होगा। **कुरुका माहात्म्य** में कहा है - कलियुग में नास्तिकों के दुष्प्रचार का अन्त करने के लिए भगवान् विष्णु के अंश से शठकोप स्वामी का अवतार होगा। ये वेद-वेदान्त के ज्ञान से परिपूर्ण होंगे और तमिल वेद से सबको लाभान्वित करेंगे।

क्रूरे कलियुगे प्राप्ते नास्तिकैः कलुषीकृते। विष्णोरंशसम्भूतो वेदवेदार्थ तत्त्ववित्।। स्तोत्रं वेदमयं कर्त्तुं द्राविडयाऽपि च भाषया। जनिष्यति सतां श्रेष्ठो लोकानां हितकाम्यया।। तमिल मूल का आविर्भाव जहाँ सबके कल्याणहेतु नारायण प्रभु के अवतार का वोधक है वहीं शठकोप स्वामी लोकसेवा के लिए आविर्भूत हैं।

चूर्णिका 92 -

शठकोप स्वामी अत्रि आदि ज्ञानियों की तरह कोई विशिष्ट व्यक्ति हैं या स्वयं नारायण हैं ?

मूल सूत्र 92 - सं. - अत्रि जमदग्नि पंक्तिरथ वसुनन्दसूनुभूतस्य युगवर्णक्रमावतारो वा व्यासादिवदावेशो वा प्राचीनाः पारदर्शिनः श्लाघ्या इत्येतेषु एको वा प्रागनुष्ठित अनन्तोपरिस्थित पुण्यफलभूतः किमिति च शंकेयुः ।

सामान्य अर्थ - नम्माळवार के वर्ण पर विभिन्न युगों के अवतार के क्रमानुसार विभिन्न वर्ण के उदाहरण पर ज्ञानियों को शंका एवं आश्चर्य है। क्या ये अत्रि के दत्तात्रेय, जमदग्नि के परशुराम, दशरथ के राम, वसुदेव तथा नन्दगोप के कृष्ण हैं ? क्या व्यास की तरह अवतार हैं ? या नित्यमुक्त हैं या मुक्तों में से कोई एक हैं या श्वेतद्वीप के कोई निवासी हैं या पूर्व जन्मों के पुण्य से आये हैं या अनन्तशायी भगवान् की कृपा की वर्षा के परिणाम हैं ?

विशेषार्थ - कृतयुग में ब्राह्मण कुल के अत्रि-पुत्र दत्तात्रेय तथा जमदग्नि-पुत्र परशुराम हुये। त्रेतायुग में क्षत्रियकुल के पंक्तिरथ (दशरथ) के पुत्र राम हुये। पंक्ति का अर्थ दश है। इस आधार पर पंक्तिरथ दशरथ को कहा गया। द्वापर में ययाति के शापवश राज्याधिकार-रहित यदु के कुल में क्षत्रियों में नीच वैश्यवंश के वसुदेव के पुत्र कृष्ण और गायों के पालन एवं रक्षक गोपकुल के नन्दपुत्र हुये। **गीता 18.44 - कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।** कलियुग के पूर्व के तीन युगों में श्रीमन्नारायण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य कुल में आये। ऋषियों की ऐसी मान्यता है कि इसी क्रम से, कलियुग में भगवान् स्वयं, शूद्रकुल में भक्त के रूप में नम्माळवार बनकर आये। **कलौ पुनः पापरत- अभिभूते स उद्वभूव - आश्रितवत्सलत्वात्। भक्तात्मना सर्वजनान् सुगोप्तुं विश्वाधिको विश्वमयो हि विष्णुः।।** कलि के पाप परायण लोगों के बीच विश्वस्वरूप तथा विश्वजन शिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् विष्णु ही स्वयं सच्चे भक्त शठकोप स्वामी के रूप में अवतरित हुए।

क्या व्यास जी भगवान् के अवतार हैं, इस शंका का निवारण - **विष्णु पुराण 3.4.5 - श्रीकृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।** श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास को साक्षात् नारायण जानो। कहा है - **सोऽयं नारायणः साक्षाद् व्यासरूपो महामुनिः।** वेद के अनेक विभाग करनेवाले व्यास के रूप में साक्षात् नारायण हैं। नारायण ही धर्म तथा तमिल वेद को सुव्यवस्थित करनेहेतु नम्माळवार के रूप में अवतरित हैं। क्या

नित्यमुक्त की तरह नम्माळवार का अवतार है? **तिरुविरुत्तम 2 -** जिनकी स्वर्गिक जन पूजा करते हैं। संसार को व्यवस्थित करने हेतु भगवान् के आदेश से नित्यसूरियों में से एक नम्माळवार के रूप में आये हैं। इन्हें मुक्तात्माओं में से भी एक कहा जाता है। **तिरुवायमोळी 8.3.10 -** स्पष्ट विचारवाले मुनिगन ही केवल किनारा देख सकते हैं। कलुषित सांसारिकों को निर्मल बनाने हेतु जन्म के सागर को पारकरके परमपद देखनेवाले मुक्तात्मा भगवद् आज्ञा से नम्माळवार के रूप में आये। **महाभारत शान्तिपर्व 315.14 - मुक्तानां लक्षणमं हि एतद् यच्छ्वेतद्वीपवासिनम् । (ये च मुक्ता भवन्तीह नरा भरतसत्तम । तेषां लक्षणमेतद्धि तच्छ्वेतद्वीपवासिनाम् ।। १४ ।।)** भरतश्रेष्ठ ! इस लोकसे मुक्त होनेवाले पुरुषोंका शास्त्रों में जो लक्षण बताया गया है, वैसा ही आपने श्वेतद्वीपके निवासियोंका भी बताया है। श्वेतद्वीप में मुक्तजन भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। शीतल स्वभाववाले नित्यसूरि शेष जी की शय्यापर क्षीरसागर में भगवान् सोते हैं। **तिरुविरुत्तम 79 -** क्षीरसागर में भगवान् की सेवा करनेवाले स्वर्गिकों से श्रेष्ठ हैं, इनसे श्रेष्ठ श्वेतद्वीप वासी मुक्तजन हैं। भगवान् की इच्छा से, मुक्तों में से एक, नम्माळवार के रूप में संसार के कल्मष को दूर करने आते हैं। शंका उठती है कि नम्माळवार भगवान् स्वयं हैं या मुक्तों में से एक हैं। **तिरुवायमोळी 6.5.10 -** जब नम्माळवर नायकी के भाव में रहती हैं तब ये कौन हैं - नप्पिनाय (नीलादेवी), भूदेवी या श्रीदेवी। ऐसा तो नहीं है कि ये तीनों महिषियों के एकीकृत रूप हैं। यह तो स्पष्ट है कि नायकी के रूप में ये तीनों में से कोई भी हो सकती हैं।

इसी तरह से ये भगवान् के भक्तों (मुक्तों) में से कोई एक ही हैं, ऐसी तुलना के लिए कोई प्रश्न उठने की संभावना नहीं रहती है।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि ये अपने सुकृत्य या पूर्व जन्म के कोई पुण्य से तो नहीं आये। **तिरुवायमोळी 6.5.7 -** नायकी की माँ कहती हैं कि इसके द्वारा भगवान् के नाम या दिव्य आयुधों के गुण को गाना पूर्व के पुण्य हो सकते हैं या भगवान् के विलक्षण संकल्प हो सकते हैं। संसार में धार्मिक सुव्यवस्था बनाने हेतु, या तो, ये पूर्व के हजारों जन्मों के सुकृत्य से आळवार बन सके होंगे। या तो, क्षीर सागर के अनन्तशायी भगवान् की निर्हेतुक कृपा-कटाक्ष का इन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। भक्तिसार स्वामी **तिरुचन्दविरुत्तम् 45 -** हे शुभगुणवाले सागरशायी प्रभु ! संसार के जन्म-मृत्यु सागर में चक्कर काटनेवाले क्लेशग्रस्त जनों के कल्याण हेतु क्षीरसागर के योगनिद्राशायी परमकारुणिक प्रभु की कृपा से क्या ये सभी नित्यसूरियों के एकीकृत स्वरूपवाले आळवार हैं। बड़े-बड़े ज्ञानीजन भ्रमित रहते हैं, और आळवार को समझ नहीं पाते हैं। इनकी अथाह, अगम्य तथा अप्रमेय महिमा को उपर्युक्त शंकाओं की परिधि में बान्धा जाना कल्पना से परे है।

चूर्णिका 93 -

बड़े-बड़े ज्ञानीजन भ्रमित रहते हैं, और आळवार को समझ नहीं पाते हैं। इनकी अथाह, अगम्य तथा अप्रमेय महिमा को उपर्युक्त शंकाओं की परिधि में बान्धा जाना कल्पना से परे है।

बड़े-बड़े ज्ञानीजन भिन्न-भिन्न शंकाओं से ग्रस्त रहने के कारण आळवार को समझ नहीं पाते हैं।

मूल सूत्र 93 - सं. - एतन्मूलम् अहं त्वमिति प्रत्युक्त्वा आकाशे भूमौ च समसदृशरहिततया वासस्थलाज्ञाततया देवसमूहो यथा एकप्रकारेण सदृशो भवेत् तथा स्थित्वा संघनिर्वाहके सुन्दरधाम व्यामोहं कृतवति प्राप्ति लाञ्छनविशिष्टतया संतुष्य स्तबधीभावं प्राप्य लौकिकसंबन्धमपहाय शठान् दूरीकृत्य मदावलिप्तेषु अंकुशं प्रयुज्य संचरन्मृत्युर्भूत्वा क्रूरकृत्यानि यथा समीपे नागच्छेयुः तथा कलियुगं निवृत्य कृतयुगं प्राप्य उदयास्तमनकाला-वपरिज्ञाय स्थितप्रभावः।

सामान्य अर्थ - आळवार ने कभी **"मैं" "तुम"** का प्रयोग नहीं किया। इस कारण लीलाविभूति (संसार) तथा नित्यविभूति (वैकुणठ) में इनके समान अकेले या समूह में कोई नहीं है। प्रायः नित्यसूरि सामूहिक रूप से जाने जाते हैं और ये भी आलवार के समान नहीं हैं। इनके जैसा परमपद में भगवान् के साथ लगाव वाला कोई नहीं पाया जाता है। इनके होठों की लालिमा भदवत् प्रीति की अभिव्यक्ति है। भगवत् नाम स्मरण ही इनका स्वाभिमान है। भौतिक संसार से ये रागविहीन हैं। शरीर का नाश करनेवाली दुष्ट शठ-वायु सदा इनसे दूर रहती है। हाथी के अंकुश की तरह मद पर नियन्त्रण रखते हैं। मन से दुष्ट भावनाओं को भगाकर सबके हृदय में भक्ति जगाते हैं। मन को अहर्निश भगवान् के दिव्य-अनुभव में डुबाकर कलिकाल के बदले कृत् युग को प्रकट करते हैं।

विशेषार्थ - ज्ञानियों के भ्रम - आळवार की महिमा को नहीं समझने के कारण विभन्न तरह की शंका से ग्रस्त ज्ञानीजनों में भी आपस में मतभेद हैं। नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 75 -** मांस को कतर देनेवाले चक्र को धारण करनेवाले प्रभु ! धरा तथा आकाश आप में स्थित है। बिना हमारी जानकारी के आप मेरे कान के रास्ते मेरे भीतर प्रवेश कर गये। क्या हम आपसे बड़े हैं या आप हमसे बड़े हैं ? इसे कौन जानता है ? आप बतायें। चेतन एवं अचेतन से श्रेष्ठ प्रभु के साथ आळवार का अटूट लगाव है। इसलिए समानता का व्यवहार करते हुए भगवान् से ही पूछते हैं कि कौन श्रेष्ठ है। **तिरुवायमोळी 4.5.8 -** शीतल कमल के ऊपर आपके दोनों चरण प्रकट हुए हैं। हमने अपने पदों से आपका कीर्तिगान किया है। कौन हमारी बराबरी कर सकता है! **तिरुवायमोळी 6.4.9 -** दायें हाथ में चक्र तथा बायें हाथ में शंख धारण करनेवाले प्रभु का यशगान करनेवाला मेरे सदृश कोई हो सकता है ! सभी चेतन - अचेतन से श्रेष्ठ सौम्य स्वभाववाले श्रीमन्नारायण भगवान् में सृष्टि की समस्त विलक्षणतायें समाहित हैं। चूँकि ऐसे प्रभु जब आळवार के हृदयस्थ हैं, तब आळवार की पूर्णता के लिए कहाँ कुछ शेष बचा है। एक सामान्य व्यक्ति की भाँति भगवान् से वियोग की विकलता भी तिरुवायमोळी में अनोखी शैली में चित्रित है। बड़े ही सटीक शब्दों से आळवार ने तिरुवायमोळी में भगवान् के दिव्यगुणों की सुगंध विखेरे हैं। इसीलिए तो लीलाविभूति तथा नित्यविभूति में इनके समान कोई नहीं है। **सीमातीत भगवान् -** भगवत् कीर्ति के निरन्तर स्मरण में लीन रहते हुए, भागवतों के हित में आळवार ने यह स्पष्ट किया है कि

भगवान् से उनका मानसिक मिलन एवं वियोग, जीव के साथ ईश्वर के सनातन सम्बन्ध को बतानेवाला है। जीव एवं भगवान् का चिरन्तन मिलन परमपद धाम में होता है। यह सांसारिक जीव का जन्मजात गुण होता है। मुक्तजनों को पारतन्त्र्य शेषत्व का आनन्द परमपद धाम में ही मिलता है। आळवार सांसारिकों से इसीलिए भिन्न हैं कि वे भगवान् से सर्वदा मानसिक मिलन की स्थिति में रहते हैं। **तिरुविरुत्तम 75 -** सागरशायी भगवान् के भक्तगण आपके स्थायी निवास वैकुण्ठ को पसंद करते हैं कि पृथ्वी को ? आळवार का भगवान् के सीमातीत एवं अथाह दिव्य कीर्ति का आनन्द मुक्तों तथा नित्यसूरियों की स्थिति से ऊपर है। नित्यसूरिगण या तो समूह में, अथवा अकेले, इनके समान नहीं हैं। **तिरुविरुत्तम 23 -** स्वर्गिकों के समूह के आप नाथ हैं। **पेरिय तिरुवन्दादि 25 -** कृष्ण की कृपा से, अपने हृदय को अकथनीय यातना से मुक्त कर लिया है। **तिरुवायमोळी 2.5.1 -** सुन्दर स्थान में आपने हमसे प्रेम किया और हमारे प्राण में मिल गये। श्रीमन्नारायण ने आळवार पर अपने समस्त प्रेम की वर्षा की है। **आळवार के होठ की लालिमा - तिरुवायमोळी 8.9.6 -** कृशकाय किशोरी प्रभु का कृपा-पात्र बन गयी है। इसके होठ का लाल रंग प्रभु की कृपा का लाल रंग है। यह भगवान् से मानसिक मिलन का परिणाम है कि उनका सौंदर्य इस पर दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

स्वान्तः सुखाय हेतु नाम स्मरण - तिरुवायमोळी 6.5.3 - नियंत्रण खोकर यह किशोरी भावग्रस्त होकर अचेत हो गयी है। **तिरुवायमोळी 6.5.2 -**

भावग्रस्त की नाईं लेटी है। भगवान् के सौन्दर्य एवं शील आदि गुणों का स्मरण करके बाहर तथा आन्तरिक हर्षातिरेक से जीव उत्तरोत्तर द्रवीभूत होते रहता है। **छान्दोग्य उपनिषद् - स्तब्धोऽसि उत तमादेशमप्राक्ष -** जड़ताग्रस्त शिथिल व्यक्ति जैसा दिख रहे हो। क्या परमसत्य को तुमने सुना और समझा ? परमनियन्ता के साक्षात् अनुभव से नम्माळवार का व्यवहार जड़ एवं शिथिल व्यक्ति जैसा दिखता है। सांसारिक लगाव से वे सर्वथा दूर हैं। **तिरुवायमोळी 10.6.2 -** केशव का नाम गान एवं पूजा करके कर्म के बन्धन काटते हुए संसार के मोह को त्याग चुके हैं। नारायण के चरण को प्राप्त कर लिये हैं। कुलशेखर आळवार **पेरुमाळ तिरुमोळी 3.4 -** अच्छा आहार एवं सुन्दर वस्त्र चाहने वाले के साथ रहने में आनन्द नहीं मिलता। नम्माळवार लौकिक सुविधा से सर्वथा दूर रहे। **तिरुवायमोळी 2.9.9 -** अपना स्वरूप नहीं जानते हुए, मैं-मेरा के वशीभूत मैंने सोचा हम स्वयं ही हैं, परन्तु वास्तव में मैं और मेरा सबकुछ आपके अधीन है। अहंकार ममकार के वशीभूत लौकिकों के साथ नाता को त्यागकर वे सर्वदा परम नियन्ता से जुड़कर परमानन्द में निमग्न रहे।

शठकोप एवं परांकुश - शठ-वायु पर कोप - शठ वायु के कारण लौकिक लगाव होता है, साथ ही विचार दूषित हो उठता है। अपने कोप से इसको दूर भगाने के कारण आळवार शठकोप कहे जाते हैं। मुनियों के उपदेश का पालन करते हुए इनके विचार वेद शास्त्र के विरोध से दूर हैं। **मनु स्मृति 12.106 - आर्ष धर्म-उपदेशं च वेदशास्त्र अविरोधिना।** वेदशास्त्र को नहीं

मानने वाले **बाह्य** कहे गये हैं। शास्त्र को मानते हुए अपने कल्पित शुष्क तर्कों से मनमानी व्याख्या करनेवाले **कुदृष्टि** कहे जाते हैं। आळवार के वचन प्रामाणिक आधारों तथा वेदान्त के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। बाह्य-कुदृष्टि मतावलम्बियों को दूर भगाने से ही शठकोप कहे गये हैं। **परांकुश** नाम को चरितार्थ करनेवाले आळवार ने अंकुश से नियंत्रित हाथी की तरह विरोधि मतावलम्बियों को नतमस्तक रखा है। कहा है - **विद्यामदो धनमदः तृतीयोऽभिजनो मदः एते मदावलिप्तानाम् ।** विद्या, धन तथा ऊँचे कुल के अहंकार से मदग्रस्त लोगों को भगवद् नाम-गुण-स्मरण के अंकुश से नियंत्रित हाथी की तरह संयमित रखने से आळवार परांकुश कहे गये हैं।

भक्ति में निमग्न करने वाले - तिरुविरुत्तम 6 - कामदेव को निष्प्रभावी बनानेवाले, शीघ्रगामी गरुड़ारोही, असुरों के विनाशक प्रभु। वेदमय गरुड़ारोही का भाव है कि भगवान् के सहज स्वभाव एवं गुण वेद समर्थित हैं। **तिरुविरुत्तम 96 -** प्रभु ! मेरा हृदय आपके प्रेम से भर गया है। आळवार ने अपने पास आनेवाले सबों के हृदय को भक्ति से भर दिया है। यह यम के रूप में संसार में जन्म का नाश करता है तथा परमपददायक है।

क्रूरकृत्य पास नहीं आते - तिरुवायमोळी 5.2.6 - चक्रधारी प्रभु के भक्त इस धरा को युद्ध, भूख, क्रूरकृत्य तथा व्याधि से मुक्त रखेंगे। क्रूरकृत्य ही शत्रुता, व्याधि तथा क्षुधा से शरीर को क्षीण कर प्राण हरनेवाले हैं। यही सांसारिक दुःखों के मूल में है। **पेरिय तिरुवन्दादि 54 -** अहो! हमारी सारी यातनायें विना कोई अवशेष छोड़े हमलोगों से दूर चली गयी हैं। आश्चर्य

है कि वे कहाँ चली गयीं ? भक्ति के कारण क्रूरकृत्य प्रभु के पास नहीं पहुँच सके। **कृतयुग आगमन - तिरुवायमोळी 5.2.3 -** कलियुग के लुढ़कते समय का अन्त हो रहा है। **महाभारत - भविष्यत्यधरोत्तरम् -** यहाँ सबकुछ बदल गया है। इस कलियुग में चेतन - अचेतन के मूल गुण बदल गये हैं। **विष्णु पुराण 6.1.50 - कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वस्रष्टारमीश्वरम्। नार्चियिष्यन्ति मैत्रेय पाषण्डोपहता जनाः।।** कलिकाल में लोग पाषण्ड के वशीभूत होकर सबके रचयिता जगत्पति भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करेंगे। नम्माळवार की भक्ति के प्रभाव से कृतयुग आ गया है। **तिरुवायमोळी 5.2.3 -** कृतयुग का दिव्य समय आ गया है। विना किसी युगान्तर (युगसन्धि) के व्यवधान के कृतयुग का आगमन होने से यह समय वैष्णव धर्म संचरण के योग्य हो गया है।

दिन-रात परिवर्तन का बोध नहीं - आळवार के नायकी भाव का वर्णन - **तिरुवायमोळी 2.4.9 -** भगवद् भोग्य वस्तुओं के स्मरण में लीन उसे सूर्योदय-सूर्यास्त का भान ही नहीं रहता। **"मधु जैसी मीठी सुगंधित शीतल तुलसी"** बोलती रहती है। **वा.रा. 2.105.24 - नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि।** भौतिक लाभ की वस्तुयें के उपार्जन का अवसर मिलने के कारण लोग सूर्योदय होने पर प्रसन्न होते हैं। कामिनी भोग की आशा से सूर्यास्त पर भी आनन्दित होते हैं। परन्तु आयु का नित्य ह्रास हो रहा है यह भूल जाते हैं। **कहा है - प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया। सायं कामेन बाध्यन्ते जन्तवो निशि निद्रया।।** लोगों का प्रातः

काल शौच क्रयादि में, दोपहर भूख-प्यास की शान्ति में, सायंकाल स्त्री-संभोग में तथा रात्रि निद्रा में बीत जाती है। भक्ति में लीन करके नम्माळवार ने लोगों की मानसिकता को बदल डाली। परमपद धाम की तरह यहाँ भी लोग रात-दिन के आने-जाने के आकर्षण से मुक्त हो गये। उपर्युक्त कारणों से ज्ञानियों ने नम्माळवार की महानता को भिन्न-भिन्न तरह से समझा है।

चूर्णिका 94 -

नम्माळवार की महानता भगवान् की अकारण कृपा से है।

मूल सूत्र 94 - सं. अस्य हेतुः प्रतिकल्पमालस्यं विना आदृत्य फलमिति कृष्णं संतुष्य सर्वात्मकतया स्थित्वा शास्त्रमुपदिश्य योगं प्राप्य नेत्रविषयो भूत्वा, आगत्य दासनिरीक्षके लौकिकस्वभावं सम्यक्त्याजयितुं ग्रहीतुं सजातीयम् अन्विष्य पादतलज्ञाने उपरि व्यापनयोग्यम् सर्वमतिक्रान्तमहा-नेत्रयोः सर्वत्र लक्ष्यमलब्ध्वा सस्नेहकटाक्षयोग्यदिशि शरीरेषु प्रविश्य चरित्वा पर्यायेणवगाह्य कम्पमानोपरि पतितयोः पार्श्वे वीक्षणं विना कृतो विशेष कटाक्षः।

सामान्य अर्थ - प्रत्येक युग में विना श्रम के योगनिद्राशायी भगवान् आनन्द हेतु जगत की सृष्टि करते हैं। ये वेद के मुख्य विषयवस्तु हैं। संसार को सुन्दर बनाने हेतु अवतार लेकर दर्शन देते हैं। तिरछी दृष्टि से सबको देखते हैं। पूर्णरूपेण खिले कमल जैसी आँखों से अपने पादतल के नीचे तथा ऊपर सर्वत्र देखते हुए नम्माळवार पर विशेष दृष्टि डालते हैं, जो

जन्म-मृत्यु के भवसागर से अचम्भित हैं। भगवान् के साथ सर्वदा विराजमान लक्ष्मी जी इनके कृपाकटाक्ष को नहीं समझ पाती हैं।

विशेषार्थ - जीवों को भगवान् बारे में ज्ञान होने के लिए ही वे बार-बार सृष्टि रचते हैं। **तिरुवायमोळी 10.7.9 -** प्रत्येक कल्प में समस्त सृष्टि का सृजन आप अपने संकल्प से करते हैं। **पेरिय तिरुवन्दादि 18 -** विभिन्न रूपों में दिखनेवाले अक्षय बीज के सदृश प्रभु ! **तिरुवायमोळी 3.9.10 -** इस लम्बी जीवन यात्रा की आवश्कताओं के अनुरूप आप मध्य के सुखद विश्राम स्थलों का प्रावधान करते हैं। **तिरुवायमोळी 2.10.11 -** जगत के परम स्वतन्त्र नियन्ता। **तिरुवायमोळी 3.4.8 -** कृष्ण को अलौकिक तेज का प्रभु कहें, या जिसने शिव चतुरानन को बनाया, ऐसा कहें? आशानुरूप फसल नहीं भी होने पर एक कृषक बार-बार खेती करता है। जीवों को उसीतरह परमपद में उनके चरणों में नहीं भी पहुँचने पर भगवान् आशा नहीं छोड़ते और हर कल्प में सृजन करते रहते हैं। **तिरुवायमोळी 6.7.2 -** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश में स्थित प्रभु !

तैत्तिरीय उपनिषद् 2.6 - तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । जड़-चेतनमय समस्त जगत् की सृष्टि की। उसके बाद स्वयं भी उसमें प्रविष्ट हो गये। सबको रूप एवं उपाधि प्राप्त हो गई। सब में वे अन्तर्यामी के रूप में स्थित हो गये। **पेरिय तिरुमोळि 11.4.8 -** देवों एवं ऋषियों की प्रार्थना पर प्रभु ने हंस बनकर शास्त्रों को प्रकट किया। लोगों को धर्म का उचित ज्ञान प्राप्त कराने हेतु प्रभु तिर्यक योनि में हंस पक्षी बनकर अवतरित हुए।

तिरुवायमोळी 3.10.2 - तेजोमय मणि रंग के कृष्ण प्रभु गहरे क्षीरसमुद्र में श्रीअनन्त के ऊपर शयन करते हुए अर्द्धनिमलित सुन्दर रक्तिमआँखों से योगरत जगत् रक्षार्थ चिन्तन करते रहते हैं। भगवान् को मनुष्य का शरीर धारण करने पर लोग उनको देखकर ही विश्वास करेंगे। **तिरुवायमोळी 3.10.6 -** अपने नैसर्गिक तेज को अक्षुण्ण रखते हुए इस अधम धरा पर नाशवान मनुष्य शरीर से आप अवतार लिये। **कठोपनिषद् - न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् -** सर्वनियन्ता को लोग दोषयुक्त आँखों से नहीं देख सकते हैं। **न मांस चक्षुरभिवीक्षते -** परमपुरुष मांस की आँखों से नहीं देखे जा सकते। **पेरिय तिरुवन्दादि 28 -** इन आँखों से प्रभु का दर्शन कभी नहीं मिल सकता। क्लेशयुक्त मनुष्यों के कल्याण हेतु प्रभु नश्वर मानव शरीर में आते हैं और उनको मांस की दोषयुक्त आँखों से दृष्टिगोचर होते हैं। भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 60 -** प्रभु अपने भक्तों को खोजते फिरते हैं। कोई मेरा दास बने, ऐसा सोंचते वे घूमते हैं।

संसार को सुन्दर घर बनाना - महान् लोग अच्छी वस्तु में दोष आते देख चिन्ताग्रस्त हो बोल उठते हैं - नम्माळवार **तिरुवाशिरियम् 6-** हाय ! हाय ! संसार की रीति ! परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 11.6.6 -** प्रभु को छोड़कर अज्ञात नये देवता के उत्सव में जाते हो, जैसे माँ गाय को छोड़कर शिशु बछड़े को उष्ण जल से नहाते हो। भगवान् सबके पिता, रक्षक तथा परम-सत्य हैं। उनको छोड़कर जीवों को संसार में दुःख-मिश्रित सुख मनाते देखकर वे उदास हो जाते हैं। क्षुद्र देवताओं की पूजा में वे बकरे तथा अपने

पुत्रादि की बली देकर अत्यन्त निषिद्ध कर्म मदिरापानादि में रम जाते हैं। अन्ततः वे कर्मों में बन्धकर शब्दादिविषय सुख (इन्द्रिय सुख) में जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ जाते हैं। लौकिक सुखों में उलझे जीवों को देखकर श्रीमन्नारायण चिन्तित हो जाते हैं। **तिरुविरुत्तम 95 -** जीवात्मा को जन्म-मृत्यु की आवृति में विभिन्न शरीरों से गुजरते देखकर माता-पिता की तरह उदार प्रभु हमारी रक्षा में आते हैं एवं हमें अनावश्यक आशाहीनता की उदासी से बचाते हैं। वासना से बन्धे जीव को भगवान् पकड़ने के लिए उसी तरह की युक्ति लगाते हैं जैसे एक शिकारी मृग-पक्षी को प्रशिक्षित कर अन्य सजातीय मृग-पक्षीगणों को पकड़ता है। लोगों के कल्याण हेतु भगवान् किसी सुयोग्य व्यक्ति के अन्वेषण में लग जाते हैं जो उनके बीच रहकर उनलोगों को भगवान् के श्रीचरणों में लगायें।

त्रिविक्रम स्वरूप में भगवान् के एक पादतले समस्त धरती आ गयी। पूर्ण प्रस्फुटित कमल जैसी आँखों को पूरी तरह खोले हुए भगवान् अपने पादतले अन्वेषण करते रहे। दूसरे चरण से ऊपर के लोकों को आच्छादित करते हुए भगवान् ने उसकी छाया से नीचे अवस्थित लोकों को विश्राम सुख प्रदान किया। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 58 -** एक तलवे से धरती ढ़की, आकाश में विराजते दूसरे तलवे की छाया से नीचे के सभी लोक ढ़क गये। कीचड़ के कमल सदृश सुन्दर कृष्ण जैसा दूसरा नहीं है। भगवान् समय एवं स्थान की सीमा से परे हैं। ज्ञान के आनन्द की ज्योति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर फैल गयी थी। **तिरुविरुत्तम 45 -** भगवान् ने अपनी कमल सी आँखों

से हमलोगों को देखी है। कोई सुयोग्य व्यक्ति न मिलने पर किसी एक को अपना कृपाभाजन बना उसको परमपद प्राप्त होने की सारी योग्यतायें प्रदान कर दी। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरुमोळी 1.10 -** श्रीरंगम् (तिरुवरंगम्) में प्रभु दक्षिण दिशा में देखते हुए लेटे हुए हैं। वे सस्नेह दक्षिण में विभीषण जी को देख रहे हैं। और, दक्षिण के एक नीचे स्थल पर नम्माळवार को देखा। **तिरुविरुत्तम 95 -** जीवात्मा को जन्म-मृत्यु की आवृति में विभिन्न शरीरों से गुजरते देखकर माता-पिता की तरह उदार प्रभु हमारी रक्षा में आते हैं एवं हमें अनावश्यक आशाहीनता की उदासी से बचाते हैं। **तिरुवायमोळी 3.2.1 -** प्रभु ! आपने यह शरीर दिया है वह यातनाग्रस्त होकर समय काट रहा है। **तिरुवायमोळी 3.2.2 -** कर्म के अनुसार अनेकों जन्मों से अनेक शरीर में घूम रहा हूँ। **तिरुवायमोळी 5.1.9 -** जन्म के सागर में काँपते हुए खड़ा होकर पुकारा। विना जाति - वर्ण का विचार किए करुणावश आप हमारे पास आये और हमारे साथ एक हो गये। यद्यपि लक्ष्मी जी ने अपने स्तन-मण्डल-सुशोभित वक्षस्थल से आपका गाढ़ा आलिंगन किया तद्यपि आपका चितवन किसी अन्य पर न जाकर आळवार पर ही टिका रहा। **तिरुविरुत्तम 45 -** अपनी कमल सी आँख से आपने हमें देखी। **तिरुवायमोळी 2.6.2 -** विना इधर-उधर देखे हुए क्षण भर में आप हममें प्रवेश कर गये। **पाञ्चरात्र** में कहा है **- नासौ पुरुषकारेण न चाप्यन्येन हेतुना । केवलं स्वेच्छयैवाहं प्रेक्षे कंचित् कदाचन ।।1।।** लक्ष्मी जी के पुरुषकार (अनुशंसा) विना भी कभी-कभी मैं स्वेच्छा से अकारण कृपा करता हूँ। **निर्हेतुककटाक्षेण मदीयेन महामते।**

आचार्य्यविषयीकारात् प्राप्नुवन्ति परां गतिम्।।2।। मेरी निर्हेतुक कृपा से आचार्य का अनुमोदन और उनकी कृपा होती है, जिससे सद्गति मिलती है। मुख्यतया भगवान् का स्वातन्त्र्य गुण ही कारण है और आळवार की महानता भगवान् की अकारण करुणा से ही है।

चूर्णिका 95 -

भगवान् की कृपा-दृष्टि की महत्ता

मूल सूत्र 95 - सं. - श्रमणी विदुरऋषिपत्नीः पूतीकृतपुण्डरीकाक्ष-दीर्घकटाक्षः शापो निवृत्त इति कुर्यात् खलु ।

सामान्य अर्थ - भगवान् की कृपा-दृष्टि दोषों का निवारण करती है। भगवान् की दृष्टि पड़ते ही शबरी, विदुर तथा ऋषि-पत्नियों के दोष मिट गये।

विशेषार्थ – वा. रा. 1.1.57- श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति - कबन्ध ने भगवान् राम को धर्मपरायणा संन्यासिनी शबरी के आश्रम पर जाने को कहा। **वा.रा. 1.1.57 - सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीम् ।** तेजपूर्ण भगवान् राम व्याधस्त्री शबरी के आश्रम पर पहुँचे।

वा.रा. 3.74.13 - चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि रघुनन्दन। पादमूलं गमिष्यामि यानहं पर्यचारिषम्। शबरी कहती है - हे रघुनन्दन! आपके शान्त चितवन से मैं मोक्ष प्रतिबन्धक सभी दोषों से निवृत्त होकर पवित्र हो गयी। मैं अब आपके लोक जाऊँगी जहाँ जाने पर कोई संसार में नहीं

लौटता। इस तरह से अपने सौम्य चितवन से कृपा की वर्षा करते हुए भगवान् स्वयं भक्त को खोजते उसके पास पहुँचे।

जल प्रवाह ऊँचे स्थान से नीचे की ओर होता है। **महाभारत उद्योग.प. 89.34 - निवेसाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः।** ठहरने के लिए भगवान् कृष्ण विदुर जी के घर गये। विनम्रता तथा सद्गुणों से सम्पन्न विदुर जी का घर ऊँची जाति के बड़े लोगों के घर जैसा सुसज्जित नहीं था। **महाभारत उद्योग.प. 89.41- विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च।** भगवान् श्रीकृष्णने विदुरजीके पवित्र एवं गुणकारक अन्न-पान ग्रहण किये। सेवा भाव से समर्पित भोजन को भगवान् ने स्वीकार किया। गालीयुक्त वचनों से दुर्योधन ने विदुर जी को अपमानित किया। दुर्योधन ने कहा - **महाभारत उद्योग.प. - भीष्मद्रोणावतिक्रम्य मां चैव मधुसूदन। किमर्थं पुण्डरीकाक्ष भुक्तं वृषलभोजनम्।।** कमलनयन मधुसूदन ! आपने भीष्म, द्रोण तथा मेरे घर को छोड़कर आपने नीच विदुर के घर भोजन क्यों किया। यहाँ कमलनयन का भाव है कि भगवान् ने अपने कृपा चितवन से विदुर को सभी दोषों से मुक्तकर परमपद योग्य बना दिया।

ऋषि-पत्नियों के प्रसंग में आण्डाल - **नाच्चियार तिरुमोळी 12.6 -** मुझे भक्तविलोचनम् के पास ले चलो जहाँ वे भूखे, थके तथा किसी ऋषि-पत्नि द्वारा खिलाये जाने की प्रतीक्षा में बैठे हैं। **भागवत 10.23.34 - तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथा श्रुतम्। हृदयोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम्।।**

भगवान् कृष्ण को भूखे सुनकर ऋषि-पत्नियाँ भगवान् के अनोखे सौंदर्य का स्मरण करते हुए सुस्वादु भोजन लेकर चलीं। एक ऋषि-पत्नि को उसके पति ने जाने से रोक दिया। भगवान् के स्वरूप को हृदयस्थ करके उसने कर्मबन्धन से प्राप्त शरीर का परित्याग कर दिया। वह परमपद चली गयी। अन्य ऋषि-पत्नियों को भगवत् कृपा-चितवन से बाद में परमपद मिला।

आण्डाल **तिरुप्पावै 22 -** अपनी सखियों संग आण्डाल भगवान् कृष्ण को प्रातः जगाने के क्रम में कहती हैं - आप कमल जैसी आँखों से थोड़ा सा हमलोगों को भी देखें। कृपया जागें और सूर्य-चन्द्रमा जैसी आँखों से हमें देखें जिससे कि आपकी प्राप्ति में प्रतिबन्धक रूप शाप से हम मुक्त हो सकें। भगवत् कृपा-कटाक्ष से पाप का क्षय होगा और हम शुद्ध हो जायेंगे।

तिरुवायमोळी 1.9.9 - कमलनयन भगवान् मेरी आँखों के विषय हुए, उन्हें देख रहा हूँ। कृपाकटाक्ष से आप दोषमुक्त करते हैं।

चूर्णिका 96 -

भगवत् कृपाकटाक्ष के फल से आळवार ने अन्यों में सुधार किया।

मूल सूत्र 96 - सं. - गोवृद्धये गोक्षुरं तृणसमृद्धं कृतवति जगद्हितार्थं मय्येव समीचीन कृपा इत्युक्तियोग्य सर्वसौहार्दमसादमेक विषयं कृत्वा अमुं स्वात्मकतया कृतवति लोकं सर्वं स्वात्मवत्कर्त्तुं योग्यतया ख्यातः।

सामान्य अर्थ - कंटीले वन को भगवान् ने गायों का चारागाह बना दिया। संसार के कल्याण हेतु उन्होंने आळवार को अपने समान बना दिया। फलस्वरूप आळवार ने संसारियों को अपने समान बनाया।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 10.3.10 - गाय चराना आपको वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। **श्रीविष्णु पुराण 5.6.28 - वृन्दावनं भगवता कृष्णेन अक्लिष्ट कर्मणा। शुभेन मनसा ध्यातं गवां वृद्धिमभीप्सता।।** लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण ने गौओं की अभिवृद्धि की इच्छा से नित्य-वृन्दावन धाम का चिन्तन किया। **श्रीविष्णु पुराण 5.6.37 - उत्पन्नवशष्पाढ्या -** वहाँ नवीन दूर्वा उत्पन्न हुए। गौओं के हित में नवीन घास से वृन्दावन की धरती ढ़क गयी। भक्तों के प्रेम के वश में भगवान् ने संकल्प मात्र से ही ऐसे कृत्य किये। कहा है - **नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्हिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।** संसार, गाय तथा ब्राह्मणों के हित करनेवाले भगवान् गोविन्द को बार-बार नमस्कार है। **तिरुवायमोळी 2.7.6 -** त्रिविक्रम भगवान् के आशीर्वाद स्वरूप अनेक जन्मों में आपने दर्शन देने की दया की। **तिरुवायमोळी 8.6.1 -** आपने कृपा तथा अन्य सबकुछ दिया। अपनी सर्वज्ञता से सबके दोष तथा अज्ञानता को जानते हुए सब पर पर कृपा की आपने वर्षा की। **गीता 5.29 - सुहृदं सर्वभूतानाम्।** आप सबके मित्र हैं। भगवान् ने आळवार की अज्ञानता तथा दक्षहीनता से अवगत रहते हुए उनको अपने समान बनाया। **तिरुवायमोळी 7.9.1 -** प्रतिदिन आप हमें अपनाते हैं और तमिल में गाथा गाते हैं। **तिरुवायमोळी**

6.7.2 - परांकुश नायकी के स्वरूप में आळवार ने ग्राम तथा देशवासियों को भगवद् नाम एवं माला के बारे में बोलने के लिए सिखाया। स्पष्ट है कि अन्यों को अपने समान भगवद्परायण बनाने में आळवार समर्थ हुए।

चूर्णिका 97 -

नम्माळवार ने सबको अपने समान बनाया - इसको स्पष्ट करना।

मूल - सूत्र 97 - सं. - तच्चाज्ञाननिवृत्तिमत्यानन्द प्रसादनमिति।

अर्थ - सूत्र 96 में कहा गया कि आळवार ने सबको अपने समान बनाया। इसका तात्पर्य है कि उन्होंने उदारतापूर्वक भक्ति का ज्ञान प्रदान किया जिससे अज्ञानता का नाश हो गया।

चूर्णिका 98 -

भक्तिरूपापन्न ज्ञान को समझाना

सूत्र 98 - अनुवाद सं. - अन्धकारमोहभ्रान्तिप्रच्युतित्युक्तानुदय-संशय-विपर्यय- विस्मृति- निवृत्तिं प्राप्य विकसदुपर्युद्भव -ज्ञानस्य प्रेमप्रावण्याभिनिवेशाऽऽशा इति संगकामानुरागस्नेहद्यवस्थानामभिः सह परमभक्तिदशाप्रापणम्।

सामान्य अर्थ - अज्ञान के बोधक अंधकार, मोह, भ्रान्ति और प्रच्युति के पर्यायवाची हैं - अनुदय, संशय, विपर्यय, विस्मृति। परमभक्ति की दशायें

- उद्भव, प्रेमप्रावण्य, अभिनिवेश और आशा के पर्यायवाची हैं - संग, काम, अनुराग और स्नेह।

विशेषार्थ - 1. ज्ञान अनुदय - तिरुवायमोळी 10.6.1 - यह संसार ज्ञाननाशक तमोभूमि है। **पेरिय तिरुमोळी 11.4.8 -** संसार से अंधकार दूर करते हुए सबको प्रसन्न कर दिया।

2. संशय - **तिरुवायमोळी 1.9.6 -** किसी को (अभक्तों को) संशय या विपरीत ज्ञान देनेवाले। **स्थाणुर्वा पुरुषो वा -** खम्भा है या व्यक्ति है - यह शंका हो जाती है।

3. विपर्यय - विपरीत बुद्धि के कारण रस्सी को सर्प या जल से प्राप्त सितुहा / सीप को चाँदी समझ लेना।

4. विस्मृति - स्मरण-हीनता - **तिरुवायमोळी 1.10.10 -** क्या स्मरण रखना है या क्या भूल जाना है। ऐसा न कि मैं भूल जाऊँ कि आप हमारे हृदय में प्रवेश कर गये। किसी वस्तु को जानते हुए अनुभव की कमी से उसे भूल जाने की प्रवृति रहती है। यह पूर्व के संस्कार के कारण होता है। संकुचित बुद्धि से उत्पन्न ये चारों दोष अज्ञानावस्था के बोधक हैं।

परिपक्व ज्ञान - सर्वेसर्वा प्रभु से चित्त की शुद्धि - **तिरुवायमोळी 1.1.2 -** आप हृदय को शुद्ध कर इसे विकसित करते हैं।सरोयोगी आळवार **मुदल् तिरुवन्दादि 67 -** कमलनिवासिनी लक्ष्मी जी के नाथ नारायण ही साक्षात्कार के एक मात्र लक्ष्य हैं। परम-ज्ञेय भगवान् की भक्ति ज्ञान की

परिपक्वता है। **भगवद् संग प्रेम** - नम्माळवार **तिरुवन्दादि 59 -** नायकी कहती है - युग की तरह लम्बी रात के समान मधुसूदन की तुलसी के लिए हमारी चाह बढ़ रही है। नम्माळवार **तिरुवाशिरियम् 2 -** प्रेमासिक्त हृदय एवं गौरवगाथा के आनन्दामृत का प्रवाह। भूतद् आळवार **इरण्डाम् तिरुवन्दादि 56 -** सागर सी उमड़नेवाली प्रभु दर्शन की चाह। **तिरुवायमोळी 5.5.10 -** नायकी के आवेश में आळवार कहते हैं - हमारी माँ यह कहते हुए किसी को हमसे नहीं मिलने देती - "यह दिनानुदिन कामुक होती जा रही है।" **तिरुवायमोळी 5.3.4 -** मेरी इच्छा समुद्र की तरह बढ़ रही है। **तिरुवायमोळी 7.3.6 -** हमारा प्रेम सागर की तरह उमड़ रहा है। परांकुश नायकी का प्रेम कितना बढ़ रहा है - **तिरुवायमोळी 7.3.8 -** यह धरा एवं आकाश की सीमा को पार कर जायेगा। **तिरुवायमोळी 6.8.2 -** नायकी तोता को दूत के रूप में भेजते हुए कहती है - "मैं तुम्हें अपने हाथ से मक्खन मिश्रित खीर खिलाऊँगी। तुम चक्रधारी भगवान् को खोजो और मेरे प्रेम के बारे में उन्हें बताकर शीघ्र आओ।" किसी वस्तु को पहली बार ही देखते उससे जो प्रेम हो जाता है उसे दिव्य प्रबन्धम् में "संगम या संग" अर्थात् लगाव कहते हैं। इस संग या लगाव से ही स्नेह (आत्मीयता) की उत्पत्ति होती है।

नम्माळवार ने भक्ति को इच्छा या काम या कामना कहा है। **तिरुविरुत्तम 2 -** प्रेम का हार। **तिरुवाशिरियम् 2 -** प्रेम से आनन्द की प्राप्ति। **पेरिय तिरुवन्दादि 8 -** आप इतने सूक्ष्म हैं कि पापी आँखों से आपको देख नहीं

सकती, फिर भी आपके लिए हमारा प्रेम उद्वेलित हो रहा है। **तिरुवायमोळी 6.10.2 -** प्रेमपरिपूरित दास। **गीता 2.62 - सङ्गात् सञ्जायते कामः -** संग से काम उत्पन्न होता है अर्थात् लगाव से कामना / इच्छा उत्पन्न होती है। भक्ति में लगने से भगवान् के लिए इच्छा बढ़ती है। तब विषय-राग से विच्छेद होता है और उनके लिए क्षुधा की तरह अनुराग बढ़ता है। **तिरुवायमोळी 2.1.10-** प्रज्वलित प्रेमोन्माद की अग्नि। **तिरुवायमोळी 9.6.1 -** उनके सारे विस्मयपूर्ण कार्यों को याद करने पर हमारा प्रेमोन्माद उमड़ पड़ता है। **तिरुवायमोळी 10.3.2 -** आनन्द हमारे अन्तःमन में प्रवेश कर गया है। इच्छा से अनुराग और इससे स्नेह बढ़ता है। **तिरुविरुत्तम 64 -** इच्छा से प्रगति । **तिरुविरुत्तम 84 -** दिव्य चक्र एवं धवल शंख के साथ दर्शन चाहती हूँ। **तिरुविरुत्तम 2 -** प्रेम का हार युगल चरणों पर अर्पित। **तिरुवायमोळी 10.10.10 -** विस्तृत होते-होते आप हममें मिल गये। अज्ञानावस्था के दोषों से मुक्त प्रेम, भक्ति, अनुराग और उससे स्नेह की उत्तरोत्तर वृद्धि से प्रेमभूमि की सीमा पर परमभक्ति की दशा मिलती है। तब भगवान् के चरणारविन्द की प्राप्ति होती है। विभिन्न प्रबन्धों में संग, इच्छा, अनुराग की क्षुधा तथा स्नेह की अवस्थाओं में आळवार को देखा गया है जो सब अन्ततः उनकी परमभक्ति को प्रदर्शित करते हैं। सूत्र 92 से इस सूत्र 98 तक नम्माळवार की महानता के प्रति विभिन्न तरह के संशयों का निवारण करते हुए उनपर भगवान् की अकारण कृपा को स्पष्ट किया गया है। लोकहितार्थ अज्ञान-निवृत्ति करना तथा परमभक्ति का

आनन्द प्रदान करने का आळवार का मूल स्वभाव भगवद् कृपाकटाक्ष से इनको मिला है।

चूर्णिका 99 -

साधन भक्ति को समझाया गया है।

सूत्र 99 - सं. जन्मान्तरसहस्रश्रेष्ठ तपोभिः ख्यातकुलेषु जनित्वा लिखित्वा पठित्वा तत्त्वज्ञो भूत्वा स्नात्वा अधीत्य गायत्रीजप सन्ध्यावन्दन पञ्च महायज्ञ षट्कर्मभिरतिशयितो भूत्वा शरीरं म्लानं यथा स्यात्तथा पर्वतमध्ये स्वयं परिक्लिश्य दुःखहेतुपापानि विसृज्य विवेकशमादिन् वर्द्धयित्वा अष्टौ समर्प्य साष्टाङ्गप्रणामं कृत्वा पुष्पचन्दनैः देवकार्य्यं कृत्वा शुद्धमनस्काः भोग्यं संकोच्य क्षुद्रविषयप्रवणानि इन्द्रियाणि निवार्यान्तर्निरुध्य क्लेश - पञ्चकसंचारं विगमय्य क्रमेण दीपं दृष्टवा योगनीत्या आसाद्य धर्मोज्जवल वैदिकहृदयान्तः आदृत्य नित्यं वसद्दुर्लभमहातेजो नेत्रे रक्ते इत्युक्तप्रकारेण मनोऽन्तः स्थापयित्वा निरन्तरं विस्मृतिं विना विच्छेदरहित स्मृतिरूपतया स्वप्नादतिशयित दर्शनसमतया हृदयपरिष्वङ्गोऽपि यथात्यर्थप्रियः स्यात्तथा भूत्वा सर्वकालं लाभं परित्यज्यान्तरङ्ग कैंकर्य्यापेक्षां विना अनन्यप्रयोजनतया वेदनोपासनसेवा ध्यानादि शब्दवाच्येयं भक्तिः साध्य - साधनभक्तित्वेन शास्त्रसिद्धा ।

सामान्य अर्थ - अनेकों जन्मों के पुण्य कर्म से किसी विख्यात भागवत के घर में जन्म होता है। पिछले जन्मों में नियमित रूप से स्नान, अध्ययन, भगवद् चिन्तन, पञ्चयज्ञ (देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ,

ब्रह्मयज्ञ), षट्कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह) आदि के अभ्यास से कृशकाय होकर भी यातना देने वाले दोषों से निवृत्त हो जाता है। **विवेक तथा शम** (अन्तःइन्द्रियों का संयम) की अभिवृद्धि के लिए आठ से विमुख होकर अष्टाङ्ग प्रणाम करे। पवित्र हृदय से भगवद् निमित्त पुष्पचयन करे एवं चन्दन-लेप तैयार करे। शास्त्र के अनुकूल अभ्यास से ज्ञानदीप जलाये, इन्द्रियों पर संयम रखे तथा आत्म-स्वरूप को जाने। योगाभ्यास से **आत्मतत्त्व** को समझे। धर्म-नीति के अनुशरण करने वाले (ब्राह्मण) के चित्त में **सर्वेश्वर की ज्योति** रहती है। योगियों के हृदय में **अरुणाभ-नयन भगवान्** सदा विराजते हैं। निरन्तर भक्ति से उनका स्मरण करते हुए **आळवार** को स्वप्न की तरह स्पष्ट रूप से भगवद् दर्शन की झाँकी मिलती है। भगवान् भी निरन्तर **आळवार** से स्नेह बनाये रहते हैं। इस सम्बन्ध के कारण परमपद की उपेक्षा करते हुए आळवार **ज्ञानियों** से भी कोई अपेक्षा नहीं करते। यहाँ तक कि वे **कैंकर्य** से भी विरत रहते हैं। इस भक्ति को **वेदना, उपासना तथा ध्यान** कहते हैं, जिसका अभ्यास शास्त्रों में वर्णित साध्य-**साधन-भक्ति** की रीति से करते हैं।

विशेषार्थ - इस सूत्र में भागवत के गुण तथा दैनिक नियम का वर्णन है। इस सूत्र के तीन मुख्य अंश हैं। (क) *आत्म-तत्त्व को समझने* तक का अंश - इसका तात्पर्य है जीवात्मा की स्थिति से अवगत होना। (ख) *अरुणाभ-नयन का सदा विराजने* तक का अंश - श्रीमन्नारायण का भक्तों से

सम्बन्ध का स्वरूप। (ग) बाकी अंश - भगवान् में सदा लीन आळवार का स्वरूप।

1. कर्म-विश्लेषण से परमज्ञान की प्राप्ति - जन्मान्तरसहस्रेषु तपो-ज्ञान-समाधिभिः। नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।। मनुष्य के हजारों जन्मों के पाप, जब कर्म-ज्ञान-भक्ति से नष्ट होते हैं, तब उनमें भगवान् कृष्ण की भक्ति उत्पन्न होती है। भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्द विरुत्तम 75 -** बार-बार मन को उनपर लगाकर हृदय को स्थिर करो। **गीता 6.41/42 - शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।।** योग से स्खलित व्यक्ति पुण्य कर्म से प्राप्त लोक में दीर्घ समय तक रहकर पुनः श्रीमानों के घर में जन्म लेता है अथवा ज्ञानी योगियों के कुल में आता है। यामुनाचार्य स्वामी **स्तोत्ररत्न 61- जनित्वाऽहं वंशे महति जगति ख्यातयशसां, शुचीनां युक्तानां गुणपुरुष-तत्त्व-स्थितिविदाम्।।** गुण-प्रकृति-पुरुष तत्त्वों के ज्ञाता विश्वविदित यशवाले अति पवित्र, सर्वदा भगवान् से युक्तों के घर में मेरा जन्म हुआ है। 26 तत्त्व माने गये हैं - प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार, पांच महाभूत (मिट्टी-जल-अग्नि-वायु-आकाश), पांच तन्मात्रा (पांच महाभूतों के गुण गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द), ग्यारह इन्द्रियाँ (पांच ज्ञानेन्द्रियाँ - आँख-नाक-कान-जीभ-त्वचा, पांच कर्मेन्द्रियाँ - मुँह से वाणी-हाथ-पैर-गुदा-जनेन्द्रिय, मन), जीव एवं भगवान्। सच्चे भक्तों का जन्म प्रायः भगवान् में सदा लीन योगियों, ज्ञानियों तथा धार्मिक महापुरुषों के कुल में होता है। भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन्**

तिरुवन्दादि-63 - यह मुझे लिखित-मौखिक श्रद्धा, सेवा एवं प्रार्थना से मिला। भगवान् को सदा स्मरण करने, उनके बारे लिखने, सुनने तथा शास्त्र-अनुरूप क्रियाशीलता से उनके बारे में सच्चा ज्ञान मिलता है।

2. नित्य (प्रतिदिन) तथा नैमित्तिक (विशेष अवसर पर) धार्मिक कृत्य - भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 25 -** पुजारी का अधिकार खो चुका हूँ। हर दिन तीन बार आहुति देने का काम भी नहीं रहा। स्नान से शरीर शुद्ध करके भगवान् की पूजा करते हैं। सरोयोगी **मुदल तिरुवन्दादि- 33-** प्रभु के नाम पर प्रेम से ध्यान किये बिना अगर गिनती के लिए नाम-जप करता है, तो किस काम का ? भागवतजन गायत्री मन्त्र का ध्यान कर गायत्री जपते हैं। पाँच यज्ञ करते हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 3.8.4 -** वैदिक ऋषिगण तीन अग्नि, चार वेद, पाँच यज्ञ, छः आगम तथा सात स्वर की साधना करते हैं। देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, ब्रह्मयज्ञ पाँच यज्ञ हैं। षट्कर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह को कहते हैं। भागवतों के ये नित्य कर्म हैं। इस तरह के कृत्य से कृश-काय हो जाते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 3.2.1 -** शरीर को सुखाने वाली तपस्या का कोई लाभ नहीं। महद् योगी आळवार **मुन्-राम् तिरुवन्दादि 76 -** गर्मी में पर्वत शिखर पर खड़ा होना तथा पञ्चाग्नि से घिरना, शीतकाल में पानी में गलेतक डूबकर रहने जैसी तपस्या की आवश्यकता नहीं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमडल् 12 -** गिरे हुए फल एवं सूखे पत्ते खाकर शरीर सुखाते हैं। उपर्युक्त क्रियायों से भागवतगण कृशकाय बनते हैं। **तिरुवायमोळी 3.2.8**

- न तो हमने अपने अधम कर्मों को रोका। इस सूत्र 99 में पापदोष से निवृत्त होने का उल्लेख है। तिल में उसके तेल की तरह यह शरीर में मिला रहता है। **तैत्तिरीय उपनिषद् - धर्मेण पापमपनुदति ।** धार्मिक कृत्यों से पाप कटता है।

3. आध्यात्मिक गुणों की वृद्धि - विवेक एवं शम से हृदय शुद्ध होकर आध्यात्मिक गुणों की अभिवृद्धि करता है। कहा है - **शमदमनियतात्मा सर्वभूतानुकम्पी ।** शम-दम से नियन्त्रित इन्द्रियाँ सभी प्राणियों पर दया करती हैं। आन्तरिक इन्द्रियों का संयम शम है तथा बाह्य इन्द्रियों का संयम दम है। विवेक के सात अंग हैं - विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद, अनुद्धर्ष।

(वि1) विवेक - बोधायन वृत्ति के अनुसार विवेक - **जात्याश्रय निमित्तादुष्टात् अन्नात् कायशुद्धिः विवेकः।** अन्न की जाति, आश्रय तथा निमित्त के दोषों से मुक्त आहार से बना शरीर शुद्ध होता है। प्याज, कुक्कुरछत्ता आदि अन्न की जाति का दोष है। अन्न के स्रोत का स्वामी अभिशस्त, पतित चाण्डालादि हो, यह आश्रय दोष है। उच्छिष्ट तथा बाल आदि से युक्त को निमित्त दोष कहते हैं। आहार शुद्धि का निर्णय करने वाली बुद्धि ही विवेक है। राजसिक एवं तामसिक आहार को त्याग कर सात्विक आहार कायशुद्धि देता है। इससे बुद्धि शुद्ध होती है जिससे शरीर और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान होता है। यह सात्विक बुद्धि ही विवेक है। इसे ही अन्तःकरण की शुद्धि कहते हैं। **छान्दोग्य उपनिषद् 7.26.2 - आहारशुद्धौ**

सत्त्वशुद्धिः। अन्तःकरण या चित्त शुद्धि सत्त्वशुद्धि है। सत्त्व अन्तःकरण को कहा है। **गीता 16.1 - अभयं सत्त्वसंशुद्धिः।** सत्त्व की शुद्धि से निर्भयता आती है। **गीता 17.3 - सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।** हे अर्जुन! अन्तःकरण के अनुरूप ही भगवान् में श्रद्धा होती है। भाष्यकार स्वामी ने अन्तःकरण शुद्धि का उल्लेख किया है। आच्चनपिल्लै वचन - आहार शुद्धि से अन्तःकरण शुद्ध होता है।

(वि2) विमोक - बोधायन वृत्ति में कहा है - **विमोकः कामानभिष्वङ्ग।** विकार रहित इच्छा को अनभिष्वङ्ग कहते हैं। सांसारिक विषय-वासना को भोगने की कामना विकार है। कामुकता, भोग-विलास, क्रोध, लोभ, इर्ष्या, मोह, अहंकारादि विकार के रूप हैं। **गीता 2.62 - कामात्क्रोधोऽभिजायते।** इच्छा से क्रोध होता है। अतः विकार रहित रहें।

(वि3) अभ्यास - बोधायन वृत्ति - आरंभणसंशीलनं पुनः पुनः अभ्यासः। आरंभण का अर्थ आलम्बन या आश्रय है। यहाँ ध्यान की वस्तु आलम्बन है जिसपर लम्बी अवधि तक ध्यान करें।

(वि4) क्रिया - बोधायन वृत्ति में कहा है - **पञ्चमहायज्ञादि अनुष्ठानं शक्तितः क्रिया।** पांच यज्ञों को यथाशक्ति नियमित रूप से नित्य करना ही क्रिया है।

(वि5) कल्याण - बोधायन वृत्ति - सत्यार्जवदयादानाहिंसाऽनभिद्याः। सत्य-आर्जव-दया-दान-अहिंसा-अनभिद्य कल्याण के बोधक हैं। परहित सत्य है। मन-वचन-शरीर की एकरूपता आर्जव है। निःस्वार्थ भाव से दूसरे का दुःख

सहना दया है। लोभरहित होकर किसी को कोई वस्तु देना दान है। किसी को किसी तरह से पीड़ित नहीं करना अहिंसा है। दूसरे के अपकार की उपेक्षा अनभिद्य है।

(वि6) अनवसाद - बोधायन वृत्ति - देशकालवैगुण्यात् शोक-वस्तु-आदि-अनुस्मृतेश्च तज्जन्यं दैन्यम् अभास्वरत्वं मनसोऽवसादः। समय या स्थान के कारण किसी वस्तु के स्मरण से मन में भय या शोक होना अवसाद है। जैसे पुत्रमरणादि। दैन्य का अर्थ दीनता या दरिद्रता है। संशयग्रस्त रहना अभास्वर है, जो दैन्य का विशेषण है। संशयग्रस्त रहने के कारण किसी कार्य के लिए पर्याप्त प्रयत्न न कर सकना विचार की दरिद्रता या मन का अभास्वर-दैन्य है। मानसिक शोक-भय-संशय ग्रस्त स्थिति का अभाव ही **अनवसाद** है।

(वि7) अनुद्धर्ष - बोधायन वृत्ति - तद्विपर्यजा तुष्टिः उद्धर्ष - उद्धर्ष की अनुपस्थिति अनुद्धर्ष है। देश-काल तथा काम-क्रोधादि छः विकारों के कारण प्रिय वस्तु या परिस्थिति के स्मरण से मन का तुष्ट/हर्षित होना उद्धर्ष है। इस तरह के हर्ष से मन को हटाये रखना **अनुद्धर्ष** है।

3.1 शम-दम - अन्तःकरण नियमन शम है तथा बाह्यकरण नियमन दम है। कहा है - **शमश्चित्तप्रशान्तिः स्याद् दम इन्द्रियनिग्रहः -** चित्त पर नियन्त्रण शम है और इन्द्रियों पर नियन्त्रण दम है। **गीता 10.4 - "क्षमा सत्यं दमः शमः"** भाष्यकार रामानुज स्वामी ने गीताभाष्य में इसकी व्याख्या में **"दमः बाह्यकरणानाम् अनर्थविषयेभ्यो नियमनम्"** बाह्य

इन्द्रियों को अनर्थकारी विषयों से रोकने को दम कहा है। **"शमः अन्तःकरणस्य तथा नियमनम्"** - उसीतरह अन्तःकरण को वश में रखने को शम कहा है। ये सब आत्मा के गुण हैं। **बृहदारण्यक उपनिषद् 6.4.23 - शान्तो दान्त उपरतः तितुक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मन्येव आत्मानं पश्येत्।** पूर्णतया सचेत रहते हुए, जो प्रत्येक वस्तुओं से रागरहित होकर अन्तः एवं बाह्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है, वह आत्मा में परमात्मा का दर्शन करता है। श्रुति में भक्ति योग के उपासकों लिए शम तथा दम पर संयमन महत्वपूर्ण बताया है।

3.2 आठ हीन प्रवृत्तियों का त्याग - भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 114 -** अगर अविद्यादि के बन्धन काटना चाहते हो। अविद्या, कर्म, वासना, रुचि एवं प्रकृति सम्बन्ध - ये पांच बन्धन के अतिरिक्त ताप-त्रय (दैहिक, दैविक तथा भौतिक), सब मिलाकर ये आठ आत्मा के लिए हानिकर हैं। ये पूर्व जन्मों के अच्छे - बुरे कर्मों से उत्पन्न होते हैं और ज्ञान प्राप्ति के विरोधि हैं। वैकल्पिक रूप में काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर-अज्ञान-असूया, नामक आठ विकार आत्मा को हीन बनानेवाले हैं। अपेक्षित पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा **काम** है। काम में अवरोध से कोप होना **क्रोध** है। किसी पदार्थ को देखकर उसे प्राप्त करने की प्रबल इच्छा **लोभ** है। कृत्य - अकृत्य का निर्णय न कर पाना **मोह** है। अर्थादि लाभ से अति प्रसन्नता वश गर्व होना **मद** है। दूसरे की समृद्धि देखकर उसे प्राप्त

करने की इच्छा **मात्सर्य** है। उपर्युक्त छः विकारों से होनेवाले अनर्थों का अनुमान न करना **अज्ञान** है। किसी के गुण में दोष देखना **असूया** है।

3.3 आठ प्राप्तव्य - पेरिय तिरुमोळी 1.2.7 - फूलों से पूजा। **पेरिय तिरुमोळी 3.5.6 -** आठों दिशाओं से लाये गये फूल से पूजा। अष्टाक्षर मूल मन्त्र के आठों अक्षर सुगंधित फूल हैं जो श्रीमन्नारायण को अतिप्रिय हैं। मन्त्रानुसन्धान भगवान् पर चित्त टिकाकर करे। **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 77 -** भगवान् के चरणकमल पर अष्टाक्षर मन्त्र के साथ साष्टांग करनेवाले परमपद के स्वामी बनते हैं। **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 78 -** खड़े होकर अष्टाक्षर मन्त्र बोलनेवाले की सुरक्षा करते हुए भगवान् उन्हें वैकुण्ठ में रखते हैं। कहा है कि आठों अक्षर-पुष्पों में इस तरह के भाव हैं - **अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदयापुष्पं क्षमापुष्पं विशेषतः।।1।। ज्ञानपुष्पं तपःपुष्पं ध्यानपुष्पं तथैव च। सत्यमष्टविधं पुष्पं विष्णोः प्रीतिकरं भवेत्।।2।।** किसी को पीड़ा नहीं देना पहला फूल है। इन्द्रिय नियन्त्रण दूसरा, दया तीसरा, क्षमा चौथा, भगवद् ज्ञान पांचवां, तपस्या छठा, भगवद् ध्यान सातवां और सत्य आठवां फूल है। ये आठ तरह के फूल भगवान् विष्णु को प्रिय हैं। पूर्वोक्त विवेक-शमादि और इन भोग्य-भोग्यत्व आठ फूलों के अनुसंधान से अनुष्ठान में कोई विरोध नहीं है। ये भगवद् कृपा दिलाते हैं। **साष्टांग प्रणाम -** भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 77** में साष्टांग प्रणाम करने का उल्लेख है। कहा है - **मनोबुद्ध्यभिमानेन सह न्यस्य धरातले, कूर्मवत चतुरः पादान् शिरस्तत्रैव पञ्चमम्।** कछुए के चारों

पैर और सिर की तरह अपने दोंनो पैर तथा हाथ को सिर को भूमि पर टिकाकर भगवान् के समक्ष भग्न-अहंकारवत हो समर्पित मन-बुद्धि से साष्टांग प्रणाम करके पुष्प-चन्दन से साथ उनका पूजन करे। **तिरुवायमोळी 5.2.9 -** भक्तजन खिले फूल, सुगंधित धूप-चन्दन-जल, दीप तथा मन्त्रों से पूजा करते हैं। **तिरुवायमोळी 10.2.10 -** चन्दन-लेप, दीपक, अगरबत्ती एवं नूतन कमल-पुष्पपंखुड़ियों से पूजा करने वाले चिरन्तन गौरव प्राप्त करते हैं। पूजा कार्य में तृण-केशादि रहित फल चढ़ाये। **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.4.1 -** मन्दिर सेवा कार्य में लगनशील। **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 75 -** बार-बार उनके दिव्य गुणों का स्मरण करते हुए शुद्ध हृदय से तीन परित्याग पूर्वक (फल-काम-कर्तृत्वाभिमान त्याग) नित्यकर्मानुष्ठान सहित भगवद् आराधन करे। कहा है - **कषाये कर्मभिः पक्वे ततः ज्ञानं प्रवर्तते।** कर्म से दोष निवारण होने पर ज्ञान विकसित होता है। परितुष्ट परिशुद्ध अन्तःकरण के लिए कहा है - **प्रकीर्णे विषयारण्ये प्रधावन्तं प्रमाथिनम्। ज्ञानांकुशेन गृह्णीयात् अवश्यमिन्द्रियदन्तिनम्।।** विस्तृत विषय-वासनाओं के जंगल में दौड़ते इन्द्रियों के प्रतीक मतवाले हाथी के समक्ष आनेवाला मारा जाता है। कृत्याकृत्य का निर्णय करनेवाले विवेक के अंकुश से मतवाला हाथी वश में आता है। सरोयोगी **मुदल् तिरुवन्दादि 47 -** प्रभु ने आपदाग्रस्त गजराज की रक्षा की। इन्द्रियों रूपी हाथी के नियन्त्रित रखने से प्रभु के चरण मिलते हैं। हाथी के मस्तक से मद का जल बहता है। इस जल में कमी आने से मद घटता है और हाथी संयमित रहता है।

स्वेच्छाचारी पञ्चेन्द्रियों का जल लौकिक सुख-भोग है। इससे लगाव (संग) संयमित रखने से इन्द्रियाँ नियन्त्रित रहती हैं।

4. ज्ञान एवं ध्यान से इन्द्रिय-निग्रह - भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्दविरुत्तम् 76 -** पिघलते लाह से सूक्ष्म छिद्रों को बन्द करने जैसा इन्द्रियों के बाहरी क्षुद्रविषयों की ओर बहकने के मार्ग को बन्द किये जाने पर खुले ह्रदय में सम्यकज्ञान का दीप जलाओ। परकाल स्वामी **तिरुवेळुकूट्रिरुक्कै -** इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर उन्हें नियन्त्रित रखो। ह्रदय के ज्ञान प्रकाश में विषय-वासना विमुख अन्तर्मुखी इन्द्रियों को भगवान् का दर्शन होगा। **तिरुक्कुरुन्दाण्डगम् 18 -** थकावट एवं घवराहट से रहित होकर स्थिर पूर्वक बैठकर आँखों के ऊपर के पलकों को नीचे के पलकों के पास लाओ। पांचो इन्द्रियों का शमन करते हुए ह्रदय को मात्र प्रभु के प्रेम से भर दो। प्रभु से सम्बन्धित सारे विचारों का स्वच्छन्द प्रवाह होने दो। तब प्रकाशमय प्रभु के ज्योतिर्स्वरूप का दर्शन करोगे। जो ऐसा दखते हैं वे निश्चितरूप से सत्य का साक्षात्कार करते हैं।

योगसूत्रम् में कहा है - **अविद्या-अस्मित-राग-द्वेष-अभिनिवेशाः पञ्चक्लेषाः -** अज्ञान, अहंकार, इच्छा, शत्रुता एवं भ्रम - ये पांच लौकिक-कष्ट देने वाले हैं। भगवद् भक्तों को इनसे मुक्त रहना चाहिये। **गीता 6.11 - स्थिरमासनमात्मानः नात्युच्छ्रितं नातिनीचं।** भक्त स्थिर आसन पर बैठे, जो न तो बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा हो। **गीता 6.13 - संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।** अन्य दिशाओं न देखता हुआ अपनी

नाक के आगेवाले हिस्से को देखे। ज्ञानेन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर भगवद्विषय का अनुरागपूर्वक अविचल चिन्तन करे। शास्त्रीयरीति के अनुसार अत्यन्त प्रकाशयुक्त ज्ञान से प्रकाशस्वरूप अपनी आत्मा पर मन टिकाकर भगवान् के दिव्यगुणों का स्मरण करे। सत्कर्म के अनुष्ठान से क्षीण-पाप होकर निर्मल अन्तःकरण से योग से प्राप्त ज्ञान के द्वारा पहले अपने आत्मस्वरूप को जाने। तब भगवान् के परत्व का साक्षात्कार करे। पूर्वाचार्यों ने भगवान् के साक्षात्कार हेतु मार्ग बताये हैं, तब भी नायनार ने आत्मस्वरूप को पहले जानकर भगवद् साक्षात्कार करने को स्पष्ट किया है। पूर्व के सूत्र 23 में लेखक ने इस सम्बन्ध (पारतन्त्र्य-भोग्यता तथा शेषत्व-भोक्तृत्व) में विवेचन किया है परन्तु यहाँ पूर्वोक्त विधि से हटकर योग से प्राप्त ज्ञान को महत्व दिया है। भक्तिसार **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 63 -** योगमार्ग के अवलम्ब लेनेवालों सबों के मन में आप बसते हैं। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरुमोळी 1.7 -** दया से भरे हृदय तथा दृढ़विश्वास से सनातन धर्म के पालन करनेवाले भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं। लोभ को त्यागकर, दुर्गुणों को हृदय से साफकर, इन्द्रियों को संयमित रखते हुए ये भक्तगण प्रतिदिन पांच बार अर्चना करते हैं, और अपने कर्मों के बोझ से निवृत्त होते हैं। श्रीवैष्णवों के आप एकमात्र आश्रय हैं, जो क्रोध तथा अन्य क्रूर कर्मों को प्रकाशयुक्त मन से वासना के साथ निकाल देते हैं। मिथ्या तथा दुःसंगति को त्यागकर नित्य प्रातः, दोपहर तथा सन्ध्या भगवद् दिव्य-यशगान से पूजा करते हुए अपने दोषों से निवृत्त होते हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 7.3.7 -** वैदिक ऋषियों तथा नित्यसूरिगणों

के ह्दय में बसनेवाले प्रभु। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 2.1.1 -** प्रभु साधनारत संतों के ह्रदय में रहते हैं। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरुमोळी 2.7 -** सौम्य तेज, मुक्तामय हास, मूँगावत अरुणाभ होंठ एवं मालासे विभूषित वक्षस्थल वाले श्रीरंगम् के प्रभु! भक्तगण सजल नयनों के साथ आपकी अलौकिक झाँकी के लिए प्रतीक्षारत रहते हैं। **तिरुवायमोळी 8.8.1-** कोई हमारे साथ लाल बड़ी आँख, लाल मूँगावत होंठ, मोतीवत श्वेत दाँत, कान में जगमग मकराकृत कुण्डल वाला खड़ा है। श्याम मेघ समान वदन, तेजोमय मुकुट, चार भुजाओं पर सुन्दर धनुष, चक्र, शंख एवं गदा धारण किये हैं। इसमें अवयव, आभरण, आयुध आदि की विशिष्ट शोभा का वर्णन है। दिव्यमंगल विग्रह को विद्वान संतगण अपने ह्रदय में स्थापित करते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 7.3.1 -** लाल आँखवाले, धनुर्धारी प्रभु को विद्वान एवं ज्ञानी लोग अपने ह्रदय में धारण करते हुए पूजा करते हैं। भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 101 -** शाश्वत पूज्य चरणकमल। **पेरिय तिरुमोळी 3.5.4 -** चरणारविंद में, विना भूले, मन को प्रभु ने टिका दिया है। भक्तों के ह्रदय में प्रभु शाश्वत रूप से विराजते हैं।

5. साधन एवं साध्य भक्ति न होकर नम्माळवार की भक्ति प्रभु की प्रसन्नता के लिए है - विस्मृति विना निरन्तर मन भगवान् पर टिकाना - **तिरुच्चन्दविरुत्तम् 78 -** चरणकमल में स्थिर प्रेम से ह्रदय सदा भरा रहता है। लौकिक सुखों से रहित आळवार, प्रभु के संयोग-वियोग के आनन्द में डूबे रहते हैं। **छान्दोग्य उपनिषद् 7.26.2 - सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।** शुद्ध

अन्तःकरण से ध्येय वस्तु पर विच्छेदरहित स्मृति। स्वप्न से भी स्पष्ट एवं टिकाऊ दर्शन - भूताळवार **इरण्डाम् तिरुवन्दादि 81 -** पहले स्वप्न में साक्षात्कार मिला, पुनः सच्चाई में देखा। मानसिक अनुभूति से उनका सुन्दर दर्शन मिलता है। कहा है - **सा च स्मृतिर्दर्शन- समानाकार।** स्मृति में प्रत्यक्ष की तरह दर्शन मिलता है। आळवार को स्मृति में ही खुली आँखों जैसी झाँकी मिलती है। इनपर, विना विच्छेद के भगवान् स्नेह वर्षाते हैं। **तिरुवायमोळी 10.4.6 -** शेषशायी भगवान् का ध्यान करनेवाले प्रभु के कृपापात्र बनते हैं। **मुदल् तिरुवन्दादि 32 -** प्रभु को अपने ह्रदय में प्रेम से रखनेवाला उनको प्राप्त करता है। **तिरुवायमोळी 1.2.4 -** प्रभु हैं या नहीं हैं, इसके परे हैं। **मुदल् तिरुवन्दादि 50 -** प्रेम से पुष्प सेवा करनेवाले को प्रभु के चरणारविन्द का दर्शन होता है। **गीता 7.17 - प्रियो हि ज्ञानिनो-अत्यर्थं-अहं स च मम प्रियः।** ज्ञानियों को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे प्रिय है। प्रेमिका प्रेमी के लिए अत्यन्त प्रिय होती है। इस ज्ञानाभाव से आळवार प्रभु को स्मरण करते हुए उनके प्रियभाजन बनते हैं।

ज्ञानियों से आळवार को कोई अपेक्षा नहीं है। वे कैंकर्य का भी परित्याग करते हैं। वे वैकुण्ठ को भी प्रिय नहीं मानते। नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 53 -** प्रभु वैकुण्ठ का अनुभव जो आप बताते हैं, वह आपके गाथा-गान के आनन्द से मृदुतर नहीं हो सकता है। नम्माळवार **तिरुवाशिरियम् 2 -** आपके गौरवगाथा के आनन्दामृत के प्रवाह में डूबे रहने वाले कभी कमलवासिनी लक्ष्मीयुक्त या तीनों लोक के राज के साथ परमपद की कभी

इच्छा करेंगे क्या ? जो ऐसा परमपद चाहें उन्हें चाहने दो। भक्त संग एवं काम अर्थात् लगाव से इच्छा आदि अवस्थाओं को पार करते हुए ज्ञानियों से अच्छे-बुरे कर्मों को समझता है। सामान्यतया एक भक्त का चरम लक्ष्य परमपद है जहाँ उसे भगवान् के साक्षात् रूप से कैंकर्य का अवसर मिलता है। नम्माळवार इस तरह के अवसर की भी उपेक्षा करते हैं।नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 58 -** प्रभु! आप अपना तेजोमय स्वरूप हमारे हृदय से पुनः कभी नहीं हटाइयेगा। मधुर दूध सदृश आपकी गौरव-गाथा से प्रेमासिक्त होने के लिए हमारी बढ़ती अवस्था हमें प्राप्त हुई है। एक भक्त भगवान् के साथ अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध को परमपद के दिव्य अनुभव से अधिक पसन्द करता है। भक्ति को *वेदन, उपासना, सेवा तथा ध्यानादि* भी कहते हैं। शास्त्रों में इसे मोक्ष-प्राप्ति (साध्य) का साधन (उपाय) भी कहते हैं। **आत्म सिद्धि** में कहा है - **उभय परिकर्मित स्वान्तस्य ।** कर्म योग तथा ज्ञान योग से भक्ति का उद्भव बताया है। इतिहास-पुराण से वेद-शास्त्र का व्यवहारिक ज्ञान मिलता है जो यह बताते हैं कि भगवान् की निर्हेतुक कृपा प्राप्त करने हेतु भक्ति ही साधन बनती है। नम्माळवार की साधन-भक्ति इसी का ज्वलन्त उदाहरण है।

चूर्णिका 100 -

सिद्धोपाय भक्ति फलरूपी कैंकर्य की प्राप्ति है।

सूत्र 100 - सं- स्वीकृतसिद्धसाधनानाम् इमाम् साध्यतया प्रार्थयमानानां प्राप्तेः प्राक् सिद्धेत्।

सामान्य अर्थ - सिद्धोपाय के अभ्यासी प्रपन्न की भक्ति देहावसान के बाद भगवद् कैंकर्य देनेवाली है।

विशेषार्थ - यामुनाचार्य स्वामी **स्तोत्र रत्न 22 - त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये।** भगवान् के दिव्यचरणों का आश्रय ग्रहण करता हूँ। भाष्यकार रामानुज स्वामी **शरणागति गद्य 5 - त्वत्पादारविन्दयुगलं शरणमहं प्रपद्ये।** दिव्य दोनों चरणकमल की शरण लेता हूँ। भक्ति को कैंकर्य मानकर प्रपन्नजन प्रार्थना करते हैं - **स्तोत्र रत्न 54 - भगवन् भक्तिमपि प्रयच्छ मे।** हे भगवान् ! आप अपनीही अनन्य भक्ति मुझे दें। **शरणागति गद्य 16, 17 - इति स्थानत्रयोदित परभक्ति युक्तं मां कुरुष्व।** पूर्व के तीन स्थानों पर कहे गये मुझे परभक्ति प्रदान करें। **परभक्ति-परज्ञान-परमभक्तैक-स्वभावं मां कुरुष्व।** परभक्ति (गीता 8.22, 11.54, 18.54), परज्ञान (गीता 7.17, 7.18, 7.19) एवं परमभक्ति जिस भक्तका स्वभाव हो जाय ऐसा मुझे बनाइये। परभक्ति दर्शन की कामना है। परज्ञान संयोग (मिलन) की इच्छा है। परमभक्ति वियोग को सहन न करने की अवस्था है।

क्षुधाग्रस्त के लिए जैसे भोजन है, वैसे ही सिद्धोपाय साधक के लिए कैंकर्य की प्राप्ति है। **शरणागति गद्य 22 - इमां प्रकृतिं स्थूलसूक्ष्मरूपां विसृज्य तदानीमेव -** मृत्यु के समय जीर्णवस्त्र के समान पञ्च-महाभूत वाले स्थूल शरीर तथा मन-बुद्धि-अहंकार-गुणादि वाली सूक्ष्म प्रकृति को

त्यागकर अकारण दया से मेरे चरणारविन्द को प्राप्त करोगे। मृत्यु-पश्चात् ही नहीं, पहले भी सिद्धोपाय (भगवद्-कैंकर्य) प्राप्त हो जाता है।

चूर्णिका 101 -

नम्माळवार की भक्ति का फल।

सूत्र 101 - सं. इयमुभयविलक्षणतयाऽज्ञानकालं समं जनित्वा संश्लिष्य स्थित्वा कष्टं व्याधिरिति वक्तुं योग्यतया शोषयित्वा पतित्वा व्याकुलीभाव-मापाद्य त्यागस्वीकारनिष्ठा हानिरुत्पाद्य सत्ताभोगवृत्त्युपकरणभूता एका।

सामान्य अर्थ - वचपन के अज्ञानावस्था में उत्पन्न भक्ति व्याकुल करते हुए हृदय को शुष्क बनाता है, आत्मा को अन्तर्मुखी करता है और अनेकों पीड़ा देता है। अन्य निरर्थक उपायों को भक्त त्यागकर भगवान् की दिव्यलीला पर ध्यान करने को सच्चा उपाय मानता है। यह आत्मज्ञान कराते हुए संसार के आवागमन से मुक्त करता है।

विशेषार्थ - नम्माळवार की भक्ति ऐसी साधन भक्ति नहीं है जिसमें साध्य भगवान् होते हैं। और यह साध्य भक्ति भी नहीं है जिसमें साध्य रूप भगवान् को मिल जाने के बाद भक्त उनकी दिव्य-लीलाओं का आनन्द लेता है। इनकी साध्य भक्ति ऐसी है, जो उपाय तथा उपेय (साध्य या लक्ष्य) दोनों है। रामानुज स्वामी के परवर्ती काल में प्रचलित प्रपत्ति से यह भिन्न है। इस सूत्र 101 के सन्दर्भ में सूत्र 97 भी द्रष्टव्य है।

तिरुवायमोळी 2.3.3 - हमारी अज्ञानता की अवधि माया के भ्रम में पड़ी हुई थी। आप हमारे हृदय में प्रवेश कर गये एवं भक्ति के लिए प्रेम का अंकुरारोपण किया। **वा.रा. 1.18.28 - बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।** श्री-ऐश्वर्य की वृद्धि करनेवाले लक्ष्मण जी, वचपन से भगवान् राम से हृदय से जुड़े हुए थे। वचपन की अज्ञानता रहते हुए सेवा-भक्ति से ओतप्रोत लक्ष्मण जी की तरह एवं तुलसी की सुगंध के सदृश आळवार में वचपन से भक्ति बढ़ती गयी। **तिरुवायमोळी 4.7.11 -** भगवान् कृष्ण को आलिंगन करनेवाले प्रेम से सरोबोर हृदय। परांकुश नायकी भाव में **तिरुवायमोळी 7.2.4 -** यह प्रेमी वेदना है, और अचेत हो जाती है। **तिरुवायमोळी 9.6.7 -** उनकी पूजा से मेरा प्रेम-रोग बढ़ता है, मेरी आत्मा दिन व दिन सूख रही है। भूखे में भोजन नहीं किया जाता तथा व्याधिकाल की पीड़ा असहृय होती है, उसी तरह भक्ति से प्रेम की विकलता का भान नहीं होता। **तिरुवायमोळी 2.1.10 -** रात-दिन की अनवरत प्रज्वलित प्रेमोन्माद की अग्नि से मेरी क्षीण आत्मा का अन्तःभाग दग्ध हो चुका है। पूरी तरह डूबा हुआ हृदय- **तिरुवायमोळी 5.7.2 -** आपके दर्शन की इच्छा में डूबा हुआ, किनारा पहुँचने में असमर्थ हूँ। न तो मैं सांसारिकों की तरह हूँ, और न किसी उपासनानिष्ठों में से एक हूँ। आपकी भक्ति ने मेरी आत्मा को अन्तःभाग में डूबा रखी है। भक्ति वेदना जैसी छटपटाहट भी देनेवाली है। **तिरुवायमोळी 5.8.4 -** आपके दर्शन की इच्छा से, आपको न आते देख, आकाशोन्मुखी हो प्रलाप करता हूँ। अन्य उपाय निरर्थक हैं। आपकी दिव्य-लीला पर मन टिकाना सच्चा उपाय है। **तिरुवायमोळी 5.8.3**

- आपके अतिरिक्त अन्य से रक्षा की पुकार नहीं करती। **तिरुवायमोळी 5.3.9 -** नारियल वृक्षके सूखे हुए धड़ को घोड़े की तरह सवारी करके मडल कर लूँगी। स्वयं प्रेमिका द्वारा सार्वजनिक रूप से प्रेमी की निष्ठुरता के बारे में गली-गली में प्रचार करने को मडल कहते हैं। **तिरुवायमोळी 5.3.10 -** मडल द्वारा नारी की गरिमा का त्याग करने पर प्रेमी का लोकापवाद होता है। परांकुशनायकी अपनी सखियों को कहती हैं कि तब हमलोग चक्रधारी प्रभु की तुलसी माला पहनकर अपने को शांत करुँगी। आळवार की भक्ति प्रपत्ति की तरह एकनिष्ठावाली है जिसमें कैंकर्य की प्राथमिकता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। **तिरुवायमोळी 5.7.10 -** आपने अपना चरण एक मात्र आश्रय के रूप मुझे दिया है। **5.8.11 -** आलवार कृष्ण के चरणाश्रित हैं। **5.9.11 -** भगवान् आळवार को ज्ञानवान एवं समझदार कहते हैं। **5.10.11 -** शेषशायी प्रभु के चरणारविन्द ही एकमात्र आश्रय हैं। **6.10.10 -** आपके चरण पर गिरकर यह आश्रयविहीन जीव अपना आश्रय पा गया है। **5.7.1 -** मैंने तपस्या नहीं की है। **लक्ष्मीतन्त्रम् - सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नरम् ।** शास्त्रों में कहा है कि एकबार भी प्रपत्ति करनेवाला पुनर्जन्मवाले संसार में नहीं आता। **वा.रा. 6.18.33 - सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम्।।** "मैं आपका हूँ" - ऐसा कहनेवाला अगर एकबार भी प्रपत्ति लेता है तब उसे मैं सबोंसे निर्भय बना देता हूँ। ऐसा भगवान् का संकल्प है। परन्तु आळवार की भक्ति में विना किसी अवकाश के निरन्तर भगवद्विषयस्मृति में लगे रहने पर बल दिया है। ऐसा करने से ही भगवान् की सत्ता का अनुभव

होता है। नम्माळवार की प्रपत्ति में निरन्तर स्मृति बनाये रखना है। **तिरुवायमोळी 6.7.1 -** हमारा भोजन, पेय तथा पान जो हम चबाते हैं, सभी भगवान् कृष्ण हैं। इस तरह का भाव मिलन का हर्षातिरेक देता है। आळवार की भक्ति में इच्छा तथा हर्षातिरेक एकाकार हो जाते हैं। **तिरुवायमोळी 3.3.1 -** प्रत्येक समय पार्श्व में रहकर पूजा करनी है। यह भक्ति उनके चरणों के कैंकर्य का उपाय है। कहा है - **नाकिञ्चत् कुर्वतः शेषत्वम्।** जो कैंकर्य नहीं करता है उसमें शेषत्व (दासत्व) का भाव भी नहीं रहता है। आळवार की सत्ता शेषत्व से ही है और यह उनकी अनोखी भक्ति के कारण है। **तिरुवायमोळी 2.9.4 -** हमारे हृदय में प्रभु यह कहते हुए स्थित हैं - सर्वदा हमारी सेवा करो। सच में सौभाग्यपूर्ण है कि आपने मुझे अपना बना लिया। **10.3.9. -** जब-जब आप गोपियों के मधुर मिलन का आनन्द लेकर अपने विषाद का अन्त करते हैं, हमारे भीतर का नारीपन अनियंत्रित हो उठता है और हमलोग ज्यादा ही आनन्द लेते हैं। यामुनाचार्य स्वामी **स्तोत्र रत्न 46 - कदा प्रहर्षयिष्यामि।** सदा प्रभु को अपनी सेवा से प्रसन्न रखूँगा। आळवार की भक्ति में कैंकर्य के अतिरिक्त कोई अन्य प्रयोजन (इच्छा) नहीं है। साध्य भक्ति प्रभु को प्रसन्न रखने का कारण और उनके कैंकर्य का उपकरण भी है। आळवार के हृदय में उनकी भक्ति उससे उत्पन्न हर्ष से ऐसी घुल-मिल गयी है कि दोनों एक हो गये हैं।

चूर्णिका 102 -

नम्माळवार की भक्ति वर्त्तमान या पूर्व जन्म के कर्म, ज्ञान तथा भक्ति से उत्पन्न नहीं हैं।

सूत्र 102 - सं. दातुं न शक्नोमि, तपोज्ञानशून्योऽस्मि, कुर्याम् न कुर्यामिति न स्थितोऽस्मि प्राक् कालेषु इत्युक्त्वा साधनत्रयपूर्वाभ्यासजा न।

सामान्य अर्थ - अच्छी कार्यों की साख या तपस्या से भक्ति परिपक्व नहीं होती है। इस जन्म के कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के अभ्यास, कृत्य - अकृत्य के ज्ञान, और पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण भी नहीं होती।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 4.7.9 - मेरे पास मेरी अच्छी करनी की न तो साख (थाती) है, न धन है, न इन्द्रियों पर नियन्त्रण है, और न आपको फूल से पूजा करने के लिए स्थिर मन है। आळवार को आश्चर्य होता है कि न हमने कभी भूखे को भोजन दिया, न प्यासे को पानी पिलाया और न किसी असहाय की सहायता की। **गीता 18.5 - यज्ञदानतपःकर्म ।** यज्ञ दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। ये पूर्व जन्म के कल्मषों से मुक्त करने वाले हैं। आळवार सोंचते हैं कि हम कभी इसतरह के कर्मयोग में प्रवृत्त नहीं हुए। इन्द्रिय-निग्रह से ज्ञानयोग भी नहीं किया। शास्त्रों में कहे गये भक्तियोग की रीति से पुष्पादि अर्पित कर भगवान् की स्तुति आदि भी नहीं की। **तिरुवायमोळी 5.7.1 -** तपस्या नहीं की, अर्थात् अनुष्ठान पूर्वक कर्मयोग में रत नहीं हुए। जीवात्मा-परमात्मा विषयक सूक्ष्म ज्ञानयोग से भी विरहित हूँ। वर्त्तमान जन्म में भी कर्म, ज्ञान तथा भक्तियोग के तीन साधनों को नहीं अपनाया। कृत्य-अकृत्य कार्यों के ज्ञान

से भी अनभिज्ञ हूँ। **तिरुवायमोळी 3.2.6 -** अनादि काल से सत्कार्य करने की और कुकर्म न करने की रुचि नहीं रखता। क्षुद्र भौतिक सुख में लगे रहे। कुर्यात् (करने योग्य) और अकुर्यात् (निषिद्ध कार्य) के ज्ञानाभाव से मैं एक महापापी बन गया हूँ। आळवार व्यर्थ बीते दिनों पर पछताते हैं। नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 82 -** अँगूठी धारण किये प्रभु ने कपट से मृग का रूप धारण किये हुए असुर का पीछा कर उसका वध किया। सच्चाई से अनभिज्ञ रहते हुए सदा हमने प्रभु की प्रशस्ति गाने का जो अवसर खो दिया, वे दिन व्यर्थ बीते। नम्माळवार की भक्ति पूर्व जन्म या वर्तमान काल के सुकृत्यों पर आधारित नहीं हैं।

चूर्णिका 103 -

नम्माळवार की भक्ति की विशेषता

सूत्र 103 - सं. अस्मिन्नेव जन्मनि अल्पकाल इत्युक्त्योभयमपि निवर्त्तते।

सामान्य अर्थ - तप और ज्ञान के विना, इस बार, जन्म के अल्पकाल में ही भक्ति मिल गयी।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 2.3.8 - युगों तक इन्द्रियों को संयमित रखते हुए जो तपस्या से प्राप्त होता है, हम बच्चों के खेल की तरह कुछ ही दिनों में पा गये। अष्टांग योग के यम, नियमादि का पालन करते हुए वेदन, ध्यान तथा उपासनादि के विशेष ज्ञान के साथ भक्ति-योग की अनेक कल्पों में निरन्तर स्मरण की साधना करनी पड़ती है। आळवार

कहते हैं कि पूर्व जन्मों के अनवरत अभ्यास तथा साधन-त्रय के अनुष्ठान के विना असीम भगवद्-कृपा से इस जन्म में सहसा ही मुझे भक्ति मिली। सूत्र 102 का वर्त्तमान के विशेष अनुष्ठान का उल्लेख भी निरर्थक है।

चूर्णिका 104 -

भगवद् कृपा से आळवार को भक्ति मिली।

सूत्र 104 - सं. अपरिच्छेद्य प्रकृतौ क्षेत्रज्ञस्य महाकेदारे कलिनियमनं प्राप्य स्वाधीनकरण समर्थबलिष्ठ पुरुषाः दृढ़मधिष्ठाय प्रधानमनःसु एषां तात्पर्ये कृत्वा अवगाह्यानुभूयमाने भोगे तृप्तिं विना सहनायोग्यं भोगाय रक्षां कृत्वा मर्दयित्वा भ्रमयित्वा बाधित्वा खादित्वा छित्वा ऋणिनमिव बाधित्वा वर्त्तमान दशायाम् व्यर्थ गते सति स्वस्मिन् मनःप्रवेशार्थं यथा नश्येत्तथा अधिष्ठाय तीक्ष्णखड्गं निष्काश्य पापनिकुञ्जानि समूलं छित्वा अग्निना दग्ध्वा अपवादं क्षारं विकीर्य अमृतनदीरुन्मस्तकमास्राव्य आर्द्रीभावं प्राप्ते संगधान्यं निःक्षिप्योत्पद्यमानबाधकतृणं समूलं विनाश्य चोरवृषभगर्वं निवर्त्य उपर्यपहारं विना रक्षां कृत्वा समुद्रसदृशं जनित्वा शिरो नम्रदशायां प्रतिदिनं कंचिदवशेषं यथा तथा स्थितानां ज्ञानाविषयं मुक्तिं गते तृप्तिं विना भुक्त्वा कालविलम्बेन भुवि यथा न पतेत् तथा संगं निवर्त्य दण्डेन ता आसारं निवर्त्य संश्लिष्टचर्म निवर्त्य सूक्ष्मशरीरं जले क्षालयित्वा अन्यपात्रे संस्थाप्य स्पृहणीयहस्ताभरणयुक्तस्त्रीभिः षड्गुणरसान्नं कारयित्वा परमपदस्थानाम् अतृप्तामृतभूतदशायां सर्वं भोक्तुं पूर्वमेव मनोरथं कृत्वा कर्षणार्थमेकहलं गृहीत्वा अत्यन्तयत्नविशिष्टभक्तिकर्षकस्य कृषिफलं खलु।

सामान्य अर्थ - कलिकाल के प्रभाव से पाँचों इन्द्रियाँ जीव को अध्यात्म-मार्ग से विमुख कर उसे लौकिक सुख में लगा देती है। एक शिकारी की तरह उसकी बुद्धि का अपहरण कर लेती है। लौकिक वासना का कभी अन्त नहीं होता। कैदी की तरह डाँट सुनता हुआ गड्ढे में पड़ा रहता है। इन्द्रियाँ निरन्तर उससे वासनात्मक कर वसूलती हैं। एक कृषक की तरह इन्द्रियाँ फसल काटती रहती हैं। करुणामय प्रभु उसके उद्धार के लिए अनेकों उपाय करते हैं। दया की तलवार से भगवान् उसके कर्म-बन्धनों को काट देते हैं, कर्म एवं अहंकार की कँटीली झाड़ियों को जड़ से जला देते हैं। उसमें भक्ति की कुण्डलनी को जगाकर ब्रह्मरन्ध्र पर ले जाते हैं। करुणा की वर्षा करते हुए धान के बीज से पौधे की तरह भक्ति को बढ़ाते हैं। नम्रता रूपी अन्न के भार से उसे झुकाये रखते हैं। चेतन भगवान् से मिलन का आनन्द लेना चाहता है, परन्तु भक्ति की परिपक्वता के अभाव में उसकी वासनात्मक प्रवृत्ति बनी रहती है। धान के अन्न को ढ़कने वाले छिलके (भूसी) की तरह भगवान् उसकी वासनात्मक कर्म को हटा देते हैं। स्थूल देह से मुक्त करते हुए विरजा के जल से नहाकर उसे निर्मल सूक्ष्म शरीर देते हैं। भगवान् को प्रसन्न करने हेतु वैकुण्ठलोक की देवियाँ उसे अलंकृत करती हैं। सुस्वादु छः रसों से पूर्ण भोजन की तरह मुक्त चेतन से नित्यसूरीगण मधुर अमृत जैसा आनन्द लेते हैं। एक कुसल कृषक की भाँति भगवान् चेतनों की खेती से भक्ति का मधुर फल उत्पन्न करते हैं।

विशेषार्थ - 1. कृषि-भूमि मन - जीव खेती की भूमि है और भक्ति फसल है। **तिरुवायमोळी 10.10.10 -** सीमातीत रूप से यह विस्तृत है। जीव मोक्ष

का खेत है। यह शाश्वत है। इस खेत को नापा नहीं जा सकता और इससे सासांरिक सुख भी प्राप्त होता है। **तिरुवायमोळी 5.3.4 -** इसमें प्रभु ने प्रेम का बीज बोया, मेरी माँ सींचती हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 1.6.8 -** कलि ने पाँच इन्द्रियों को हमें यातना देने को कहा। हमारी इन्द्रियाँ दोषग्रस्त हो गई। नम्माळवार इन शत्रुओं से भयग्रस्त हो गये। नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 51 -** हृदय पर शासन करनेवाले पाँच दुष्ट इन्द्रियों के कोप को दबाना है। आळवार ने विनोद में इन्हें मन का अपहरण करनेवाला शिकारी कहा। **पेरिय तिरुमोळी 7.7.9 -** पाँच दमनकारी राजाओं ने आक्रमण कर मुझे अपने वश में ले लिया है। **1.1.8 -** मेरी इन्द्रियों ने मेरे ऊपर शासन किया और मैं सर्वत्र घूमता फिरा।

2. पञ्चेन्द्रिय यातना - पेरिय तिरुमोळी 1.6.2 - इन्द्रियों के क्षणिक सुख से खीचकर मैंने अपना समय व्यर्थ गँवा दिया। **तिरुवायमोळी 5.8.6 -** कब तक बिना पेंदी के गडढ़े को भरें। **पेरिय तिरुमोळी 7.7.7 -** पाँचों इन्द्रियों के असहनीय कहर से हम डरे हुए हैं। **7.7.8 -** पाँचों इन्द्रियों से रक्षित कैद से हम भाग निकले हैं। इन्द्रियाँ कर वसूलती हैं। **7.7.9 -** पाँच राजाओं ने मुझपर आक्रमण कर वस्त्र एवं भोजन का दायित्व दे रखा है। **तिरुवायमोळी 7.1.5 -** एक विशाल गोल चक्कर लगाने वाले झूले पर घुमाकर इन्द्रियों ने रोगग्रस्त कर दिया है। **तिरुवायमोळी 7.1.9 -** पाँच इन्द्रियाँ देवों को भी पाप के गडढ़े में डाल देती हैं। **तिरुवायमोळी 7.1.10 -** ये पाँच हमें घोर तूफान की ओर खींचकर बहुत प्रताड़ित करती हैं। **पेरिय**

तिरुमोळी 7.7.1 - एक को सन्तुष्ट करना कठिन है, यहाँ तो पाँच घर चढ़ बैठे हैं। **पेरिय तिरुमोळी 7.7.7 -** पाँचों के असहनीय कहर से डरे हुए हैं। **पेरिय तिरुमोळी 6.2.1 -** इन्द्रियों को भौतिक वस्तुओं एवं सुख से खुश रखने के चक्कर में बहुत अपमानित होना पड़ा है। नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 84 -** स्वयं के विनाश में उद्धत मेरा हृदय ! करबद्ध होकर प्रभु के चरणारविन्द में सिर नवाकर पूजा करते हुए उनकी प्रशस्तिगान कर, परन्तु तू ऐसा कभी नहीं करेगा।

3. कर्म-बन्धन कटने का जीव को लाभ - भगवान् भक्ति का बीजारोपन करते हैं। **तिरुवायमोळी 1.5.10 -** प्रभु ने कर्मों को हटाकर मायाबन्धन को काट दिया। तब हमारे हृदय को विश्वासपूर्वक अपने ऊपर दृढ़ कर दिया। **तिरुवायमोळी 8.7.2 -** सब समय खड़े होकर इस अधम को आप देखते हुए पाँचों नीच का नाश कर दिया जो हमारे हृदय पर अधिकार किये हुए थे। अकारण करुणा वश, प्रभु एक शिकारी की तरह पाँचों इन्द्रियों का अपहरण कर चेतन को क्षुद्र लौकिक सुख से विमुख कर देते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 6.2.4 -** आपने जो कृपा की कटार हमें दी है उससे इन्द्रियों के अनाचार को काटकर आपके चरणों में आकर पड़ा हूँ। **गीता 18.66 - मामेकं शरणं व्रज -** भगवान् कहते हैं - केवल मेरे आश्रय को पकड़ो। कृतज्ञतावश भक्त कहता है - **गीता 18.73 - स्थितोऽस्मि गतसंदेहः।** मेरे सारे संदेह दूर हो गये। भगवान् भी द्रवित होकर कहते हैं - **गीता 18.66 - सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि -** सारे पापों से तुम्हें मुक्त कर दूँगा। चेतन

कर्मों को भोगते हुए भगवान् की दया से सभी वासनात्मक दुःख से मुक्त रहता है। तब चेतन का मन उपजाउ खेत की तरह भक्ति के पौधे को विकसित करता है। **तिरुवायमोळी 3.2.9 -** खड़े होकर कर्म के गडढ़े से आपको पुकारता हूँ परन्तु क्षुद्र मार्ग में फंस जाता हूँ। मुख्य पौधा को हानि करने वाले अवांछित काँटे-घास आदि को निर्मूल करते हैं। **तिरुवायमोळी 3.2.1-** कर्म को समूल काट सकूँगा। **3.2.2 -** अन्तहीन कर्म जो हमारा पीछा नहीं छोड़ता कब इसे काट सकूँगा। पिल्लै लोकाचार्य **मुमुक्षुपडी (चरम मन्त्र) 78 - णिच्चाले नानुम् वेण्डा, नीयुम् वेण्डा अवै तन्ननैयेविट्टुपोङ्गा नेनिगरान्। गीता 18.66** के **"इष्यामि"** से यह बोध होता है कि मुझे भी यत्न करने की आवश्यकता नहीं है, और तुमको भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं ही संसार से दूर हो जायेगा। वे पाप स्वयं ही छोड़कर दूर हो जायेंगे। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.4.2** - कर्म के दोषरूपी बेड़ी अब प्रज्वलित अग्नि में जल रहे हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् 5.24.3 - यथेषिकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयते। एवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते। जिस प्रकार सींक का अग्रभाग अग्नि में घुसा देने से तत्काल जल जाता है उसी प्रकार मुमुक्षु चेतन के समस्त पाप भस्म हो जाते हैं। भगवान् के शरणागत चेतन के आत्मनाशक कर्म भस्म हो जाते हैं।

4. भक्तिरूपी पौधा की रक्षा - तिरुवायमोळी 5.3.4 - प्रभु ने प्रेम का बीज बोया। लोकापवाद ने उर्वरक का काम किया। कहते हैं - **भगवति**

आभिमुख्योत्पन्ने असौ भागवत आसीत् - भगवान् की कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रार्थना करते ही वे भागवत हो जाते हैं।

कुण्डलिनी का अमृत ब्रह्मरन्ध्र तक जाता है। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.4.2 -** ज्ञानामृत की नदी सिर के ऊपर से बह रही है। **तिरुवायमोळी 6.7.9 -** अच्छी वस्तुयें अपने भगवान् कृष्ण के लिए रखती थी। **6.7.8 -** उबलते हृदय के साथ कष्ट से कदमों को खीचती है। धान का बीज बोना जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन बताता है जो भक्ति की परिपक्वता की स्थिति का उदाहरण है। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.7.9 -** धान के बीज का पौधा बढ़कर पुनः स्थान्तरित होकर खेत में रोपने योग्य हो गया है। भगवान् के समीप होकर उसके पारतन्त्र्य गुण के कारण जीव का यह भगवान् के अतिमधुर होने की स्थिति है। **तिरुवायमोळी 1.2.3 -** तुम एवं तुम्हारे का मूलोच्छेदन करके भगवान् से मिल जाने से बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है। कर्त्तृत्व-भोक्तृत्व की बुद्धि अहंकार का कारण है। यही भक्ति के पौधे को घेरे हुए अवांछित झाड़ी-कांटें हैं जिनका समूल नाश भगवद्-कृपा से होती है।

5. भगवद्-प्रेम की वर्षा - अहंकार के झाड़ी-कांटे तथा पशुओं से भक्ति रूपी पौधे की रक्षा भगवान् करते हैं। अहंकार से मुक्त कर दिव्य-गुणों का आनन्द लेने की प्रवृति को जगाते हैं। भौतिक सुख पाने की इच्छा से विमुख करते हैं। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.2.3 -** पेट की चिन्ता से मुक्त कर मरणशीलता के बन्धन से मुक्त कर दिया। पौधे

विकसित होकर जब अन्न देने योग्य होते हैं तब रात्रि में चोर आदि से उनकी रक्षा करनी होती है। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.4.8** - राक्षसगण भी इनके धान की फसल को क्षति नहीं पहुँचाते। **तिरुवायमोळी 5.2.5** - संशय छोड़ दो, अगर तुम्हारे बीच असुरगण होंगे तो वे बच नहीं सकेंगे। अभक्तजन राक्षस-असुर हैं जो भक्तों से मैत्री कर उनके मन को विचलित करते हैं। तब भगवान् भक्तों की रक्षा करते हैं। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.2.9** - पक्षीराज गरुड़, सावधान होकर प्रभु के शयनकक्ष की रक्षा कीजिये। चेतन की रक्षा भगवान् अपनी कृपा की वर्षा से करते हैं। **तिरुवायमोळी 5.3.4** - मेरी इच्छा समुद्र की तरह बढ़ रही है। उर्वरक तथा सिंचाई को अपर्याप्त समझकर भगवान् अपने कालमेघ-सदृश श्यामविग्रह-सौंदर्य की वर्षा से भक्ति-स्वरुपी पौधे का पोषण करते हैं। इससे उनकी भक्ति सुदृढ़ होकर समुद्र की तरह बढ़ती है। अन्न के परिक्व होने पर धान का पौधा बालियों से झुक जाता है। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.9.8** - धान के पौधे अपने सुनहले बालियों से झुककर अभिवादन करते हैं। भक्ति में डूबे हुए चेतन भी भगवद् मिलन की उत्कण्ठा में श्रीमन्नारायण के दिव्य-चरणों पर विनयावनत रहते हैं।

6. कैवल्यमोक्ष झाड़ी का निर्मूलन - भक्ति-पथ पर बढ़ते हुए चेतन को आत्म-तुष्टि होने लगती है। **तिरुवायमोळी 9.6.8** - प्रभु प्रतिदिन हमारी आत्मा का कण-कण खा रहे हैं। चेतन की परिपक्वता अपने प्रयत्न से नहीं है। भगवान् अपनी प्रसन्नता हेतु चेतन में निरन्तर परिवर्तन करते

हैं। उसका मन एकबार के आनन्द से अतृप्त रहकर उनसे मिलने की उत्कणठा में व्यग्र होने लगता है। **तिरुवायमोळी 9.6.7 -** मेरा प्रेमरोग नित्य बढ़ रहा है और मेरी आत्मा दिनानुदिन सूख रही है। **तिरुवायमोळी 10.7.1 -** आप हमारे हृदय एवं आत्मा में मुग्धकारी कवि की तरह प्रवेश किये। सब खा गये, स्वयं वही हो गये, बिना मेरी जानकारी के मुझमें पूरी तरह भर गये। चेतन जैसी अनुभूति लक्ष्मी-गरुड़-अनन्तशेष भी प्राप्त करने में असमर्थ हैं। अत्यन्त क्षुधाग्रस्त व्यक्ति धान कटने, चावल बनाने तथा उसे पकाकर खाने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। वह तो खेत में गिरे धान को चुनकर वहीं खाने लगता है। मुक्तात्मा भगवान् से मिलन की प्रतीक्षा न करके उनमें ही लीन होना चाहता है। **तिरुवायमोळी 10.10.6 -** मेरे प्रिय प्रभु, मेरे जीवन, मेरी आत्मा ! आपने हमें अतृप्त की तरह पिया है। अब हमें पीते रहें। भक्त चेतन अपने शरीर में रहते हुए पुनः पुनः भगवान् के दिव्य गुणों का आनन्द चाहता है। **तिरुवायमोळी 2.9.2 -** चरणारविन्द को सदा पकड़े रहने के लिए सम्यक ज्ञान दीजिये। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमडल् 89 -** पथरीले वन के फूल जैसे खिलकर विखर जाते हैं वैसे ही हमारा किशारीपन हमारी आँखों के सामने व्यर्थ होता जा रहा है। भक्ति की परिपक्वास्था में आनेपर भी जीव पुनः लौकिक सुख में न पड़ जाये, भगवान् दया करके समय पर उसके कर्म बन्धनों को काट देते हैं। **पेरिय तिरुमोळी 11.4.9 -** अनेकों तरह से प्रभु हमें कर्मों से मुक्त करते हैं।

7. भगवद् साधन - स्थूल शरीर परित्याग - अन्न के बाहरी छिलके की तरह भगवान् कर्म विकोरों को हटाते हैं। नम्मळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 26** - प्रभु ! जगत के घोर अंधकार ने हमें आपकी कृपा रूपी डंडा दिया है। इसके सहारे अपने हृदय के साथ मिलकर हम अपने दुष्कर्मों को जंगल एवं पहाड़ों में खदेड़ देना चाहते हैं। छिलका हटाने पर ही अन्न मिलता है। **तिरुवायमोळी 7.5.10 -** माया जनित कष्ट, जन्म, रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु से छुटकारा दिलाकर आप हमसबों को अपने चरणारविन्द में शरण देते हैं। जन्म-जन्मान्तर से आधिव्याधि (मन तथा शरीर के रोग), जन्म, वृद्धि, ह्रास आदि विकार स्थूल शरीर से लगे रहते हैं। विकारादि को हटाने पर ही जीव के अन्तःस्वरूप का ज्ञान होता है। चावल के साथ के भूसी को जल से धोकर दूर करते हैं। स्थूल शरीर से आत्मा को हटाया जा सकता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर साथ रहता है। सूक्ष्म शरीर जन्म का कारण है और भगवान् के दिव्यगुणों के आनन्द प्राप्ति में वाधक है। विरजा नदी तक पहुँचने में यही कारण बनता है। कहा है - **तत् तोय स्पर्शमात्रेण -** विरजा के जल के स्पर्श से ही कर्म-वासनादि धुल जाते हैं। आचार्यों के अनुग्रह से ईश्वरेच्छा के फलस्वरूप वासनादि की धूल के साथ का सूक्ष्म प्रकृति वाले शरीर से निवृत्ति मिल जाती है। इस आचार्य-हृदय के लेखक के भाई पिल्लै लोकाचार्य के अठारह रहस्य ग्रन्थों में से **अर्चिरादिगति** नामक एक पुस्तक है। उसमें इसका उल्लेख है कि विरजा के पास पहुँचते ही कर्म एवं वासना की धूल धुल जाती है।

परकाल स्वामी **शिरिय तिरुमडल् 30 -** यशोदा मथानी लेकर दिनभर दही मथकर थककर चूर हो गयी और पूरे मक्खन से एक घड़े को भर ली। विरजा पार अमानव (भगवान् के अतिवाहक स्वागतकर्ता) लोगों के स्पर्श से जीव स्थूल तथा सूक्ष्म से भिन्न, अन्य पात्र में स्थापित मक्खन की तरह, अप्राकृत शरीर वाला हो गया और उसको परमपद के प्रवेशद्वार तक पहुँचा दिया गया। वहाँ जीव को एक नूतन दिव्यशरीर मिला। भगवान् को प्रसन्न करने हेतु दिव्य वरांगनाओं ने इसे विशेषरूप से अलंकृत किया। **तिरुवायमोळी 10.2.11 -** अमरलोक में सुघड़ बाँस जैसी बाँह वाली आभूषित नारियाँ। **कौषीतकी उपनिषद् 1.4 - तं पञ्चशतान्याप्सरसां प्रतियन्ति शतं माल्यहस्ताः शतमाञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फलहस्ताः। तं ब्रह्म्-अलङ्कारेण-अलङ्कुर्वन्ति ।** पाँच सौ वरांगनाओं ने मुक्तात्मा का स्वागत किया। इसमें एक सौ माला, एक सौ सुगंधित तेल, एक सौ सुगंधित चूर्ण, एक सौ वस्त्र और एक सौ फल के साथ थीं। इन वरांगनाओं ने ब्रह्म् को प्रसन्न करने हेतु उसे ब्रह्म् की तरह अलङ्कृत किया। **छान्दोग्य उपनिषद् 8.12.3 - स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते।** मुक्तात्मा ने अपने मौलिक स्वरूप के छिपे हुए दिव्यगुणों को पुनः प्राप्त कर लिया। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज एवं वीर्य छः गुणों से विभूषित हो गया। **तैत्तिरीय उपनिषद् 3.10 - अहम् अन्नम् ।** छः रसों से युक्त मैं भगवान् का भोग्य वस्तु हूँ।

नित्यसूरियों के लिए चेतन मधुर अमृतवत प्रिय हो जाता है। **तिरुवायमोळी 5.7.11 -** सदा अमृत समान प्रिय बने रहेंगे। **तिरुवायमोळी 10.9.9 -** भक्त के प्रवेश-द्वार पर आते ही चारणजन आनन्दमग्न हो गये। **10.9.10 -** वेदप्रतिपाद्य नित्यसूरिजन कहते हैं - हमारे भाग्य से ये अब दिव्यधाम पधारे हैं। **10.9.10 -** भक्त के चरण धोने में नित्यसूरिजन अपना सौभाग्य मानते हैं। **10.7.3 -** हमारे भीतर वे सर्वत्र विराज गये।

भगवान् ने पहले ही मुक्तात्मा को अपना लिया। **तिरुवायमोळी 9.6.10 -** मैंने सोचा कि जब कभी भी हम उनको देखेंगे निगल जायेंगे, लेकिन इसके पहले शीघ्रता से उन्होंने हमारा सबकुछ चूस लिया।

8. भगवान् ही कृषक - भगवान् भक्त के मन को अत्यन्तयत्न से जोतकर विशिष्ट भक्ति के योग्य बनाते हैं। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.7.5 -** प्रभु हल, गदा, धनुष, तेजोमय चक्र, शंख, कुल्हाड़ी एवं खड्ग धारण करते हैं। परकाल स्वामी **पेरियतिरुमोळी 8.8.8 -** एक कान में कुण्डल तथा दूसरे में हल धारण करते हैं। कृषियोग्य साधन करनेवाले प्रभु, अपने दुर्लभ चरण को सुलभ बना देते हैं। भूतद् आळवार **इराण्डाम् तिरुवन्दादि 22 -** बलपूर्वक ठीक रास्ते पर लानेवाले तथा प्रेमपूर्वक स्वीकार करनेवाले प्रभु का जब आश्रय ग्रहण किया जाता है तब असंभव भी संभव हो जाता है। भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 23 -** प्रभु भक्ति की खेती कराते हैं। भगवान् भक्त की हृदय-भूमि में खेती करके भक्ति उपजाते

हैं। नम्माळवार की भक्ति भगवान् के द्वारा की गयी खेती का ही फल है।

चूर्णिका 105 -

अवध एवं गोकुल के चर-अचर पर भगवान् की अकारण करुणा

सूत्र 105 - सं. कोसल-गोकुल-चराचरैः क्रियमाणैक-गुण-अभावेऽपि अद्भुतम्-इति वचनम् अपश्यामः।

सामान्य अर्थ - अवध के भगवान् राम एवं गोकुल के भगवान् कृष्ण की निर्हेतुक-कृपा से उनके संयोग में जड़-चेतन ने उनके दिव्य गुणों का आनन्द लिया और वियोग की अवधि में विरहातुर भी रहे।

विशेषार्थ - कुरेश स्वामी **वरदराज स्तव 69 -**

त्वामामनन्ति कवयः करुणामृताब्धे। ज्ञानक्रियाभजनलभ्यमलभ्यमन्यैः।।

एतेषु केन वरदोत्तरकोसलस्थाः। पूर्वं सदूर्वमभजन्त हि जन्तवस्त्वाम्।।

हे करुणामृतसागर! वरदाता! पंडित लोग कहते हैं कि आप ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से प्राप्त नहीं होते हैं। अयोध्या के प्राणी तथा तृणादि किस उपाय से आपके स्नेहभाजन बने ? **तिरुवायमोळी 7.5.1 -** ब्रह्मा की सृष्टि के नीच से नीच तृण या कीड़े-मकोड़े को भी गौरवशाली अयोध्या में सभी जड़-चेतन प्राणी के साथ ऊँचा स्थान मिला। **वा.रा. 6.128.102 - रामो रामो राम इति प्रजानामभवन्**

कथाः। रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति।। भगवान् राम के शासनकाल में प्रजा एकमात्र राम, राम, राम की ही चर्चा करती। समस्त जगत् राममय हो गया। रामजी के वियोगकाल की स्थिति - **वा.रा. 2.59.4-5 -**

विषये ते महाराज महाव्यसनकर्शिताः। अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पाङ्कुरकोरकाः।4। उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च।

परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च।5। महाराज! आपके राज्य में वृक्ष भी इस महान् संकट में क्षीणकाय हो गये हैं, फूल, अंकुर और कलियों सहित मुरझा गये हैं। नदियों, छोटे तथा बड़े सरोवरों के जल गरम हो गये हैं। वन-उपवन में पत्ते सूख गये हैं।

रामजी के संयोगकाल की स्थिति - **वा.रा. 6.124.19 -** अयोध्या के मार्ग में समय न होने पर भी वृक्षसब फलने लगें और वे सब-के-सब मधु की धारा टपकाने लगें। गोकुल में संश्लेष की स्थिति - विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.6.10 -** भगवान् कृष्ण ने जब मुरली बजाई तब मुग्ध वृक्षों ने मधु की अमृतधार एवं फूलों की झड़ी लगा दी। समर्पण में वृक्षों ने टहनियों को प्रभु की दिशा में झुका दिये। **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.6.9 -** भगवान् ने जब मुरली बजायी तो हिरन ने घास चरना छोड़ दिया। घास का चरा हुआ ग्रास उनके मुँह से गिर गया। बिना हिले वे सब दीवाल पर चित्र की तरह खड़े रहे। **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.6.8 -** गोविन्द की मुरली सुन पक्षीगण घोसला छोड़ वृक्ष की डालियों की तरह झुण्ड-के-झुण्ड उनकी चारों ओर गिरने लगे। गायें कान को बिना हिलाये सिर को नीचा

किये हुए पैरों को फैलाकर शांत खड़ी हो गयीं। **3.6.1 -** जब प्रभु ने होंठ पर बाँसुरी बजाई तो छोटी गोपियों के कोमल उरोज उठने लगे, उनके हृदय की धड़कन बढ़ गयी। घर की सामा लाँघ वे सब इनकी चारों ओर कुतूहलवश शर्म से सिर झुकाये माला की तरह खड़ी हो गयीं। नितान्त ज्ञानहीन वृक्ष, कुछ-कुछ बोध वाले तिर्यक, ज्ञान संपन्न मनुष्यलोग तथा बिना कारण छोटी गोपियाँ भगवान् के प्रेम-पाश से बन्धी दिखी। विष्णुचित्त स्वामी भगवान् कृष्ण की पूजा करते थे - **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.6.1 -** जम्बु महादेश की नारियाँ ! इस चमत्कार को सुनो। स्पष्ट है कि भगवान् अकारण जीवों को स्वीकार करते हैं। नम्माळवार की भक्ति भगवान् की क्रियाशीलता ही से है।

चूर्णिका 106 -

भगवान् ने नम्माळवार को अपनाया। भगवान् की स्वतन्त्रता पर संदेह का प्रश्न नहीं उठता। इसे लोक-दृष्टान्त से समझाया है।

सूत्र 106 - सं. पट्टार्हगजराजव्यापारी अविचारणीयौ ।

सामान्य अर्थ - हाथी ने राजा को और राजा ने राजकुमार को क्यों चुना, ऐसा कोई क्यों पूछेगा ?

विशेषार्थ - कुरेश स्वामी **श्रीवैकुण्ठ स्तव 55 - स्वातन्त्र्यम् ऐश्वरम् अपर्यनुयोज्यमाहुः।** पंडितलोग कहते हैं कि ईश्वर की स्वतन्त्रता किसी प्रयोजन या कारण पर आधारित नहीं होता। इस सन्दर्भ में लोक-दृष्टान्त

का प्रचलित उद्धरण है कि किसी देश में कोई राजा नहीं रहने पर अगर किसी हाथी को स्वतन्त्रता दी जाय, और तब वह जिस व्यक्ति को चुन लेता है वही राजा बना दिया जाता है। इस पर कोई प्रश्न नहीं कर सकता। इसी तरह एक दूसरा उदाहरण है कि राजा किसी नारी को अगर अपनी भार्या बना ले तो कोई राजा की इच्छा पर प्रश्न नहीं उठा सकता कि क्यों अमुक को ही, क्यों नहीं दूसरी नारी को। पराशर भट्ट **श्रीरङ्गराजस्तव उ. 88 - भवमोक्षणयोस्त्वयैव जन्तुः क्रियते।** किसी प्राणी का बन्धन-मोक्ष भगवान् की स्वेच्छा पर है। यह उनकी अपनी स्वाधीनता है। इसी तरह किसी अन्य को न चुनकर उन्होंने नम्माळवार को ही अकारण अपना स्नेहभाजन बनाया। इस पर कभी सन्देह नहीं प्रकट किया जा सकता।

चूर्णिका 107 -

नम्माळवार को याद्दच्छिक और प्रासंगिक कार्यों के लाभ मिले क्या ?

सूत्र 107 - सं त्रिविधजलं सुखविशिष्टाः धारणार्हाणि बिंबं चक्रम् इत्यादि-प्रकारेण साक्षात्कृतस्व परवृत्तान्तस्य याद्दच्छिकानि सन्ति चेत्प्रकाशेयुः।

सामान्य अर्थ - याद्दक्षिक और **प्रासंगिक** कार्यों से लाभ को स्पष्ट करना। ये दोनों अप्रत्यक्ष सुकृत्य के कारण होते हैं। याद्दक्षिक कार्य प्रत्यक्ष रूप से लौकिक लाभ हेतु करते हैं। जैसे - कोई अपने घर से सटे मित्रादि के बैठने के लिए वरामदा बनाता है। संयोग से वर्षाकाल में उसमें सन्तजन वर्षा से भींगने से बचने हेतु विराम कर लेते हैं, तब इस तरह के निर्माण का कार्य

सुकृत्य का फल देनेवाला हो जाता है। इसे **यादृक्षिक** कार्य कहते हैं। **प्रासंगिक** कार्य का उदाहरण देखें। कोई चोर चोरी के अन्न को श्रीरंगम् का अन्न कह कर बेचता है, तब पुण्यस्थल श्रीरंगम् का नाम लेते रहने से वह सुकृत्य के फल का भागी बन जाता है।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 3.2.1 - मेघ समान श्यामल प्रभु ! आपने सागर एवं धरा बनाया। **विष्णु तत्त्व - विचित्रा देह सम्पत्तिः ईश्वराय निवेदितुम्, पूर्वमेव कृता ब्राह्मण हस्तापादादि सम्युता।** सर्वेश्वर को समादृत करने हेतु पुराकाल में ही हमलोगों को हाथ-पाँव मिले। जीवों को भगवान् के चरणकमल को प्राप्त करने हेतु उपकरण स्वरूप शरीर मिला। जगत् की सृष्टि जीवों को मोक्ष देने हेतु हुई। भगवान् से मिली देह को लौकिक सुख प्रदान करने के क्रम में चेतन जन्म-मरण के भँवर में पड़ गया। **तिरुवायमोळी 4.1.6 -** जो सुख का जीवन बिताये वे झरने के जल के बुदबुदे की तरह थे। जो सर्वदा के लिए जीवित रहे वे शून्य हो गये। अगर तुम ठीक से जीवित रहते हुए अपनी स्थिति बनाये रहना चाहते हो तब सागरशायी प्रभु की सेवा करो। स्पष्ट है कि सदा के लिए कोई जीवित नहीं रह सकता। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम् 21 -** आकाश के प्रभु ! अमरों ने नूतन माला एवं सुगन्धित धूप से आपकी पूजा की। जादू की तरह आप क्षण में धरा पर पधारकर मक्खन नहीं चुराये, नप्पिनाय के लिए सात बैलों के सींग पर आपने क्या नृत्य नहीं किया? परमपदधाम में नित्यसूरि आपकी गौरव-गाथा गाते हैं। परन्तु अपनी इच्छा से गोकुल में नवनीत

चुरानेवाले कृष्ण बने। **तिरुवायमोळी 4.3.1 -** मूँगा जैसी होंठ वाली नप्पिनाय के लिए सात बैलों से युद्ध किया। लंकेश का वध अपने वाणों से तथा हाथी का वध उसके ही दाँतों से किया। हमने सुगंधित जल-पुष्प से आपकी पूजा नहीं की, परन्तु सुमन से आपके मुखारविन्द के लिए हमारा हृदय चन्दन का लेप है। युद्ध काल में भगवान् को विश्राम नहीं मिला, और आळवार उनके लिए कुछ कर नहीं पाने की अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए उनके दिव्यगुणों को स्मरण कर अपनी देह के उपकरणों के आनन्द से प्रफुल्लित होते हैं। भगवद् संश्लेष से उनका हृदय द्रवित हो रहा है। **तिरुवायमोळी 7.4.1 -** धरा को मापते समय उनका चक्र फैल गया, उनके शंख एवं धनुष भी फैल गये। तीन पग से विश्व को मापना, समुद्र को मथना, धरा को जल से उपर लाना, विश्व को निगल जाना, भारत युद्ध करना, हिरण्यकशिपु तथा रावण वध करना, सृष्टि करना, गोवर्धन उठाना आदि ईश्वर-कृत्यों के वृत्तान्त का निर्विघ्न साक्षात्कार आळवार एक योगी की तरह करते हैं।

अपने सभी प्रबन्धों में आळवार अपने मनोभाव को स्पष्ट रूप से निःसंकोच प्रकट करते हैं। भगवान् की कृपापात्र बने रहने के कारण में आळवार ने अपने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (यादृक्षिक - प्रासंगिक) सुकृत्यों का भी कहीं उल्लेख नहीं किया है। इससे स्पष्ट होता है कि वे भगवान् के निर्हेतुक-कृपा के ही पात्र हुए हैं।

चूर्णिका 108 -

प्रभु की कृपा अद्वेष, अभिमुख्य और सत्कर्म से नहीं मिले हैं।

सूत्र - 108 (22) - सं. कृतसुकृतमन्विष्य अदृष्ट्वा निवर्त्तितवान् असि दत्तवानसि इति अद्वेषाभिमुख्ये सत्कर्मणा न।

सामान्य अर्थ - अद्वेष तथा अभिमुख्य पर विचार करते हुए सत्कर्म का निर्धारण कठिन है। "हमें जन्मादि के कष्ट से उवारें", "हमारा हृदय आपकी सेवा एवं पूजा में लग गया है" - ये प्रवृत्तियाँ सत्कर्म के कारण नहीं हैं। **अद्वेष** का अर्थ है - हृदय से कुटिलता / वैरभावादि का नाश। प्रभु के चरणकमल की पूजा में प्रेम की प्रवृत्ति को **अभिमुख्य** कहते हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 10.6.8 - मैं यह नहीं समझ पाता कि आपका कृपापात्र बनने के लिए मैंने क्या किया है ! **अद्वेष** का उदाहरण - **तिरुवायमोळी 2.7.8 -** हमारे हृदय को निर्मल कर आपने हमें जन्म की यातना से मुक्त की। **अभिमुख्य** का उदाहरण - **तिरुवायमोळी 2.7.7 -** अनेकों जन्मों से अपने चरणारविन्द की सेवा के लिए प्रभुने हमारे हृदय को उत्प्रेरित किया। इसका निष्कर्ष है कि नम्माळवार को इन दोनों गुणों की प्राप्ति किसी सत्कर्म के कारण नहीं हुई है।

चूर्णिका 109 -

आलवार ने प्रभु की कृपा के बारे में कभी सोंचा भी नहीं।

सूत्र 109 (23) - सं. गणनायामपि आगच्छेत् गणानायै गणनापि नास्ति।

सामान्य अर्थ - मात्र सोंचना ही कारण नहीं हो सकता। इस पर कभी विचार कर बोला ही नहीं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 1.10.2 - जब भी मैं प्रेम से पूजा करता हूँ, आप हमारी आँखों में प्रवेश कर हृदय को भर देते हैं। अन्तर्निहित भाव है कि भगवान् के दिव्यगुणों की महिमा पर सोंचने का अवकाश कहाँ है। यह तो मन और हृदय से स्वतः स्फूर्त है। **1.10.5 -** बिना चिंता किये या विचारे भी कार्य सिद्ध हो जाते हैं, हमारे कृत्य अब फल देने लगे हैं। आळवार की क्रियाशीलता बिना किसी पूर्व विचारित परिगणना से होती है।

चूर्णिका 110 -

प्रभु को अपनी हृदयगुफा में स्थापित कर लिया है (**तिरुवायमोळी 8.7.10)।** हम अपने हृदय से मिले हुए हैं (**पेरियतिरुवन्दादि 26)।** भगवान् के बारे में जो कुछ सोंचता हूँ, वह उनकी इच्छा तथा अनुमति से अनुगृहीत है।

सूत्र 110 (24) - सं. मत्यांगीचक्रावहे इत्यनुमतीच्छे स्थापयामीत्युक्ति-रहितं मामनुमान्यतो मदनुमतेस्ते।

सामान्य अर्थ - हमारे हृदय में रहते हैं, हमसे घुलमिल गये हैं - आळवार की अनुमति से ऐसा नहीं है, मात्र प्रभु की क्रियाशीलता से अनुगृहीत है।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 1.7.7 - अपने हृदय में आपको रोकना नहीं चाहते हैं। आप स्वयं आये और हममें पूरी तरह विराज गये। भगवान् को आळवार की ओर से उनके हृदय में बसने की कोई अनुमति नहीं थी। **तिरुवायमोळी**

5.8.9 - प्यार से अपने चरणों में बान्धनेवाले प्रभु। आळवार से बलात् भगवान् ने अपने आप को स्वीकार कराया। **1.7.4 -** हम अपने पूज्य प्रभु को कैसे छोड़ सकते हैं। आळवार की अनुमति नहीं भी मिलने पर प्रभु उनके हृदय में घर कर गये हैं। उनके हृदय में भगवान् ने अपने लिए चाह उत्पन्न कर दी है। इसी चाहत के कारण आळवार उनकी गौरव-गाथा का स्मरण करते हैं। आळवार की भगवद्विषयक सभी चाहत भगवान् द्वारा ही पूर्वनिर्धारित हैं।

चूर्णिका 111 -

माधव एवं मलै (तिरुमालिरुञ्जोलै - सुन्दरबाहु भगवान् का पहाड़ी दिव्यदेश स्थल) की महिमा। मदुरै के पास आळगर कोईल ही तिरुमालिरुंशोलै है।

सूत्र 111 (25) - सं. माधवः पर्वतः जलं छाया इत्यारोपणं व्यावृत्युक्तिः अन्यार्थम् अबुद्धिपूर्वकम् अविहितम् फलविसदृशम् फलान्तरहेतुः।

सामान्य अर्थ - माधव एवं तिरुमालिरुञ्जोलैमलै बोलना व्यावृत्युक्ति है। अन्यार्थ से आश्रय, जल आदि देनेवाले के अज्ञात फल को बताया है। अबुद्धिपूर्वक, अविहित, फलविसदृश तथा फलान्तरहेतु थोड़े फलवाले हैं।

विशेषार्थ - तिरुवरङ्गत्त अन्त्यादि में कहा है - कोई भक्तिविहीन व्यक्ति अनायास अनजानें में श्रीरंगम् से गुजरता है। श्रीरङ्गनाथ स्वामी मात्र इतने से ही उस व्यक्ति पर द्रवित होकर उसे पापमुक्त करते हुए मोक्ष देते हैं। कोई कीड़ा कीचड़ के ऊपर इस तरह रेंगता है कि उससे भगवद्विषय के

कोई अक्षर की आकृति अंकित हो जाती है। वृक्ष, पत्ते या पुस्तक आदि पर किसी कीड़े के कारण अक्षर की आकृति अंकित होने को **घुनाक्षर न्याय** कहते हैं जिसके कारण उस कीड़े को सद्गति मिल जाती है।

तिरुवायमोळी 2.7.3 - मेरे अमृत! मेरे नाथ! माधव मात्र कहने से आप हमारे भीतर प्रवेश कर गये और कहा कि अब से सदा के लिए यहीं रहकर आप हमारी रक्षा करेंगे। नम्माळवार ने अनायास माधव बोला और भगवान् ने उन्हें अपना लिया। भगवान् के अन्य नाम और माधव के अर्थ में क्या अन्तर है, इसे आळवार ने समझने का भी प्रयास नहीं किया। **तिरुवायमोळी 10.8.1 -** जैसे ही हमने तिरुमालिरुञ्जोलै बोला हमारे हृदय में प्रभु ने प्रवेश कर इसे भर दिया। यह **यादृच्छिक** का उदाहरण है कि दिव्यदेश के नाम बोलते दयालु प्रभु अपनी दिव्य-महिषि के साथ आळवार के हृदय में निवास बनाकर उन्हें गौरवान्वित किये। इसे **व्यावृत्युक्ति** कहा जा सकता है कि प्रभु आळवार के हृदय में वसते हैं। भगवान् के किसी एक नाम और दूसरे नाम में अन्तर, तथा कोई एक दिव्यदेश दूसरे दिव्यदेश से कैसे भिन्न है, इस पर विना ध्यान दिये किसी एक का नाम बोलना ही **व्यावृत्युक्ति** है। परन्तु भगवान् ने सोचा होगा कि आळवार ने तिरुमालिरुञ्जोलै की महिमा से अवगत होकर उसका नाम बोला है, इसलिए प्रसन्न होकर वे उनके हृदय में जा वसे।

अन्यार्थ से "किसी प्यासे को जल तथा किसी को ठहरने का स्थान" के भाव को दृष्टान्त से स्पष्ट किया है। कोई व्यक्ति खेती के लिए खड्डा

खोदकर उसमें जल संग्रहित करता है। यह जल भगवान् के किसी भक्त को कभी प्यास बुझाने में सहायक बनता है, इसी को **अन्यार्थ** कहा गया है। घर से बाहर निजी हित साधन के लिए बनाया हुआ वरामदा किसी भक्त के लिए कभी बैठकर विश्राम करने में सहायक बना, आश्रय देने का **अन्यार्थ** कहा गया है। जल तथा वरामदा दोनों अज्ञात रूप से भगवान् के भक्त के लिए उपयोगी हुआ।

अबुद्धिपूर्वक - भगवान् के भक्त को अनजाने में सहायता करनेवाले से प्रसन्न होकर भगवान् उसके हृदय में घर वसा लेते हैं।

अविहित - शास्त्र में ऐसा प्रावधान नहीं है कि उपरोक्त दोनों काम भगवान् की कृपा दिलाने वाला बनेगा।

फलविसदृश - दोनों काम से ऐसी आशा नहीं की गयी थी कि भगवान् की कृपा जैसे महान् फल के ये दाता होंगे।

फलान्तरहेतु - दोनों काम अज्ञातरूप से भक्तों के हितकारक बने, तो इनसे कोई अन्य फल मिल सकता था। भगवान् की कृपा दिलाने वाले काम जैसा तो कदापि नहीं होगा।

इस सूत्र तथा सूत्र 107 से ज्ञात होता है कि भक्तों के हितकारी होने से भगवद्-कृपा प्राप्त होती है। यादृच्छिक के अनेकों उदाहरण हो सकते हैं। कुछ बड़े काम से बड़े फल की प्राप्ति होती है, छोटे काम से छोटा ही फल मिलता है। परन्तु उपरोक्त व्याख्या से समझा जा सकता है कि दोनों

काम छोटा होते हुए बड़े फल के दाता बने। सामान्य समझ के विपरीत भगवान् ने दोनों की न्यूनता पर कभी विचार ही नहीं किया।

चूर्णिका 112 -

भगवान् से नम्माळवार को अपनाये जाने के कारण।

सूत्र 112 (26) - सं. असौ मध्ये आगत्य दास इत्युक्ते अलिखित प्रमाणं पक्षपाती साक्षी क्रूर चौर्यानुभव विशिष्टस्य इन्द्जालं प्रदर्शय स्वीकुर्यात् तथा निवारक अभावाद् विधिरावृणोत् ।

सामान्य अर्थ - भगवान् कहते हैं, "तुम मेरे दास हो" और वेद का उल्लेख करते हैं। भक्त अस्वीकार करते हुए कहता है, "यह अलिखित प्रमाण है, ताल-पत्र पर नहीं है"। भगवान् कहते हैं, "तुम केवल मेरे हो"। भक्त कहता है, "साक्षी कौन है"। उत्तर में भगवान् महान् सन्तों को साक्षी कहते हैं। भक्त इनलोगों पर पक्षपात करने का आरोप लगाता है। प्रमाण और साक्ष्य प्रदर्शन के साथ भगवान् इन्द्रजाल प्रदर्शन की विशिष्टता भी प्रदर्शित करते हैं। कुटिलतावश भक्त अपने को अपनी सम्पति मानता है परन्तु भगवान् अकारण-करुणावश उसे अपना लेते हैं।

विशेषार्थ - पूर्व के सूत्र से ज्ञात होता है कि भक्त की गतिविधि को देखकर भगवान् उसे अपनाते हैं। **तिरुवायमोळी 1.7.5 -** प्रभु आप हमारी आत्मा एवं ज्योति हैं। सर्वनियन्ता श्रीमन्नारायण अकारण करुणावश आळवार में

विराजते हैं। **तिरुवायमोळी 9.4.10 -** भगवान् ने हमें अपना सेवक बनाया है। पराशर भट्टर **रङ्गनाथ तिरुमञ्जन कट्टियन 25 -**

त्वं मेऽहं मे कुतस्तत् तदपि कुत इदं वेदमूलप्रमाणात्,

एतच्चानादिसिद्धात् अनुभवविभवात् तर्हि साक्रोश एव।

क्वाक्रोशः कस्य गीतादिषु मम विदितः कोऽत्र साक्षी सुधीः स्यात्,

हन्त त्वत्पक्षपाति स इति नृकलहे मृग्यमध्यस्थवत् त्वम्।।

परमात्मा - त्वं मे - मैं तेरा स्वामी हूँ, तू मेरा है।

जीवात्मा - अहं मे - मैं स्वयं अपना स्वामी हूँ।

परमात्मा - कुतस्तत् - तुम कैसे कहते हो।

जीवात्मा - तदपि कुत - आप कैसे कहते हैं।

परमात्मा - इदं वेदमूलप्रमाणात् - यह वेद से प्रमाणित है।

जीवात्मा - एतच्चानादिसिद्धात् अनुभवविभवात् - यह हमारे आदिकाल से अनुभव पर आधारित है।

परमात्मा - तर्हि साक्रोश एव - इसे तथ्यहीन कहा है।

जीवात्मा - क्वाक्रोशः कस्य - ऐसा किसने और कब कहा ?

परमात्मा - गीतादिषु मम विदितः - गीता में हमने कहा है।

जीवात्मा - कोऽत्र साक्षी - साक्षी कौन है?

परमात्मा - सुधीः स्यात् - ज्ञानी लोग।

जीवात्मा - हन्त त्वत्पक्षपाति - वे सब आपके पक्षधर हैं।

स इति नृकलहे - भगवान् ने तब रोषभरे शब्दों में शपथ पूर्वक जीवात्मा को स्थाई रूप से अपना शेष (सेवक) कहा। इसतरह परमात्मा एवं जीवात्मा के बीच वार्ता चली।

मृग्यमध्यस्थवत् त्वम् - तिरुमञ्जन के अन्त में भींगे वस्त्र एवं तुलसी धारण किये रङ्गनाथ भगवान के भींगे मुखारविन्द को जब पराशर भट्ट पोछते हैं तब भगवान् से अपने दासत्व के स्थाई सम्बन्ध को बताते हैं और जीवात्मा को परमात्मा के शेष होने की उद्घोषणा करते हैं।

पुरुष सूक्त - पतिं विश्वस्य - विश्वभर के स्वामी भगवान् हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.16 - प्रधानक्षेत्रज्ञपतिगुणेशः - वह गुणेश्वर (भगवान्), प्रधान (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (पुरुष) दोनों का स्वामी है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् 1.10 - क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः - प्रधान (प्रकृति) तो क्षर है, हर (जीवात्मा) अमृत एवं अक्षर है, क्षर (जड़प्रकृति) और आत्मा (जीव), इन दोनों पर, वह एक देव परमेश्वर शासन करता है। भगवान् का संकेत है कि जड़-चेतन उनके सेवक हैं और उनकी आज्ञा के पालनकर्त्ता हैं। भक्तों को विश्वास दिलाने के लिए वे वेद को प्रमाणमूलक कहते हैं। भगवान् द्वारा ऋषियों को साक्षी कहने पर ऋषियों के ऊपर दृष्टिदोष करने का आरोप लगता है।

तिरुवायमोळी 5.1.4 - आपको छोड़कर दूसरे क्षुद्र विषयों की कामना नहीं करता। परन्तु मैं प्रबल चोर अपने मन को उन क्षुद्र विषयों से हटा भी नहीं सकता। विषयलाभ से वंचित होने के दुःख को सह नहीं सकता, मन को आपके विषय में लगा भी नहीं सकता। तब भी भगवान् उसे अपनाते हैं। जीव जन्मान्तर से अपने आप को ही अपना स्वामी कहते हुए प्रभु की आज्ञा की कुटिलतापूर्ण अवहेलना करता है। प्रभु के धन को अपना कहना चोरी है। **तिरुवायमोळी 9.5.5 -** श्रीपति ने तब इन्द्रजाल दिखाने वाले मायावी जादूगर वाली युक्ति से सातों लोक को छल से ले लिया। मायावी की तरह युक्तिपूर्वक अपने सौंदर्य से वे भक्त की आँखों तथा हृदय को भर देते हैं। प्रभु के सौंदर्य को देखकर भी वह न सोंच पाता है, न बोल पाता है कि मैं आपका हूँ। समस्तविश्व प्रभु का धन है। महाबली ने आसुरी प्रकृतिवश विश्व को अपने अधिकार में ले लिया। तब उदारप्रभु ने उसे अपना अद्भुद् रूप दिखाकर उससे सब अपने को समर्पित करा लिया।

तिरुवायमोली 5.1.1 - हमारा क्या सौभाग्य है ! इसे कौन रोक सकता है! आशा के विपरीत प्रभु भक्तों पर कृपा दर्शाते हैं। **पारतन्त्र्य** भावावेष्टित आळवार की प्रभु स्वयं या लक्ष्मी जी से रक्षा कराते हैं। स्वभाव से बन्धनमुक्त रहनेवाले जीव पर भी कृपा दर्शाते हैं। **तिरुवायमोळी 2.7.6 -** सभी युगों के अनेक जन्मों में आपने दयावश (अवतार लेकर) हमें दर्शन दिया। त्रिविक्रम स्वरूप से आपने महाबली के सिर पर अपना चरण रखा। अपनी सुशीलता से सभी जीवों के सिर को आपने चरण-स्पर्श कराया।

चूर्णिका 113 -

भगवद्-कृपा के सौभाग्य को समझाना।

सूत्र 113 (27) - सं. आगन्तुक मार्गो न निर्हेतुकमिति निश्च्यानन्तरं वृद्धिकारण-मिति सुकृतं विना कल्पनयोग्यं न।

सामान्य अर्थ - भगवान् के अपनाने का पूर्व का कोई इतिहास नहीं है। मात्र सुकृत के निर्हेतुक कृपा का कोई कारण है क्या ?

विशेषार्थ - पेरिय तिरुवन्दादि 56 - अब लौटना नहीं। अहो ! यह नया जीवन मधुर है। भगवान् की महानता एवं कृपा का फल आळवार को मधुर आनन्द दे रहा है। **तिरुवायमोळी 8.7.8 -** आप जिसे पसन्द करते हैं उससे बदले में विना कुछ चाहते हुए उसपर कृपा करते हैं। **तिरुवायमोळी 2.3.5 -** आप मेरी आत्मा के भी आत्मा हैं, जीवन स्रोत हैं। आळवार सोचते हैं कि संसार में वे अलग-थलग हैं और उनके सुकृत के कारण ही भगवद् अनुभव का फल उन्हें मिला है। उनके सुकृत का कारण भगवान् की सर्वोपरि कृपा है। **सूत्र 107 के यादृच्छिक** की तरह उनका कोई अज्ञात सुकृत नहीं दिखता। प्रश्न है कि तब क्या भगवान् की कृपा ही कारण है ? पूर्व में आळवार भगवद् कृपापात्र नहीं हुए। अनेकों जीवों के रहते भगवान् ने इन्हें ही क्यों चुना ? **सूत्र 108 से** यहाँ तक के विचारों की पृष्ठभूमि में इसे स्पष्ट किया गया है।

आलवार ने पूर्व में कहा - (1) "*मैं समझ नहीं पाता कि मैंने क्या किया कि उनका कृपापात्र बना*।" अगर **अद्वेष** और **अभिमुख्य** कारण बना है तब वह भी भक्त के कारण न होकर भगवान् के ही कारण है। (2) *"जब भी प्रेम से उनकी पूजा की, आँखों से प्रवेश कर उन्होंने मेरे हृदय को भर दिया*।" मेरे कृत्य के कारण ऐसा नहीं है। यह भी प्रभु के कारण है। (3) "*मैंने उन्हें अपनी हृदय गुफा में स्थापित कर दिया*।" *"मैं और मेरा हृदय सहमत हुए*।" ये भी भक्त की स्वीकृति या इच्छा से नहीं हुए, ये सब भगवान् ने स्वयं किया। (4) "*मात्र माधवन् बोलते ही मुझमें घर कर गये"*। "*तिरुमालिरुञ्जोलैमलै कहा नहीं के वे मेरे हृदय में प्रवेश कर उसे भर दिया"*। ये सब भगवद् कृपा के कदापि कारण नहीं हो सकते। ये सब उनसे जुड़े विशेष शब्द-मात्र हैं। (5) एकबार वे प्रकट हुए और प्रमाणों से हमें अपना दास घोषित किया। परन्तु ये भी सटीक कारण नहीं हो सकते। (6) प्रभु ने अद्भुद् सौंदर्य का दर्शन कराते हुए अपनी उदारता से मुझे अपना बनाकर असीम कृपा प्रदान की। (7) मेरे आस-पास चक्कर लगाते हुए अन्य विकल्प के अभाव में मुझे अपना धन बना लिया। उनकी कृपा के पीछे और कोई कारण नहीं दिखता। (8) *"अब लौटना नहीं"* *"बदले में विना कुछ चाहते हुए कृपा करते हैं"*। (9) "*आप मेरी आत्मा के भी आत्मा हैं, जीवन स्रोत हैं"*। (10) *"मेरे सुकृत के कारण भगवान् की सर्वोपरि कृपा है"*। ये सब प्रभु की महानता के स्वतः प्रमाण हैं। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की प्रचलित परंपरा से आळवार की भक्ति सर्वथा भिन्न है।

चूर्णिका 114 -

नम्माळवार के साधन मात्र भगवद् कृपा है।

सूत्र 114 (28) - सं. आनन्दं दत्तवान् किमाश्चर्य्यम् इत्यामूलचूडं कृपया दार्ढ्यं गतस्य प्रेम्णः हेतुः स एव पादप्राप्तः साधनम् ।

सामान्य अर्थ - प्रारम्भ से अन्त तक भगवान् की दिव्य कृपा पर ही आळवार जीवन निर्वाह करते हैं और इसी कारण भगवान् के श्रीचरण पाये।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 1.1.1 - सभी शंका का निवारण कर शुद्ध ज्ञान देते हैं। तिरुवायमोळी के शुभारम्भ में आळवार ने कहा कि भगवान् की अकारण कृपा से उन्हें भगवद् ज्ञान का बोध हुआ है। **तिरुवायमोळी 10.7.4 -** ओह! कैसी विलक्षण है मेरे नाथ की यह कृपा ! प्रारम्भ से मिले शुद्ध ज्ञान से लेकर अन्त के उद्धार तक आळवार को भगवान् की एक समान कृपा मिलती रही। **तिरुवायमोळी 1.5.11 -** भगवान् की कृपा से मिलनेवाले श्रीशठकोप सूरि की यह कृति। **तिरुवायमोळी 6.10.2 -** कृपा कीजिए जिससे प्रेमपूरित यह दास आपके चरणारविन्द को पहुँच सके। बदले में विना कोई अपेक्षा के मिलनेवाली निर्हेतुक कृपा से ही आळवार सदा क्रियाशील रहे। भोजन से आसक्त व्यक्ति प्रत्येक कौर में घी के स्वाद से आनन्दित रहता है, उसी तरह आळवार को भगवद् कृपा का निरन्तर आनन्द मिलते रहा। भगवान् के चरण प्राप्ति में उनके लिए यही साधन बना।

चूर्णिका 115 -

आळवार भगवान् के (परांकुश) नायकी हैं। इन्हें उनका संयोग - वियोग मिलते रहा। जब आळवार ने परमपद की इच्छा प्रकट की तब भगवान् ने इसकी उपेक्षा की। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 1 -** हम पुनः अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति, दुष्टतापूर्ण कार्य एवं गंदगी से भरे शरीर को न प्राप्त करें, कृपापूर्वक इसकी स्वीकृति प्रदान करें। उनकी इच्छा की पूर्ति न करके भगवान् ने संयोग में ज्ञान और वियोग में भक्ति को दृढ़तर किया।

सूत्र 115 (29) - सं. प्रतिसंश्लेषमिति संश्लिष्य विश्लिष्य ज्ञानभक्तिवर्धनं घनाऽभरणधारणयोग्यं कर्णवृद्धिवत् मासोपवासि-भोजनोपरिलेपनवत् सहन-योग्यमहाभोगार्थं श्रमकरणस्य ।

सामान्य अर्थ - संश्लेष (संयोग) में ज्ञान और विश्लेष (वियोग) में भक्ति बढ़ती है। आभूषण के भार को सहने योग्य बनाने हेतु कान के छेद से धागे के साथ मिट्टी का कुण्डल लटकाते हैं। महीनेभर उपवास करनेवाली माँ को पहले छेंवक लगाया हुआ भात का माँड़ दिया जाता है। भगवान् से आनन्द लेनेवाले नित्यसूरि की तरह, विश्लेष के समय भगवद् कृपा की अनुपस्थिति के सहने के अभ्यास से संश्लेष में मिलने वाली असीम कृपा को आत्मसात् करने की क्षमता बढ़ती है।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 10.3.2 - आपने जब हमारे उरोज का आलिंगन किया तब आनन्द उमड़कर आकाश को भर दिया। फिर आपने हमें ऐसे छोड़ दिया कि सबकुछ सपने जैसा लगने लगा। हाय ! हमारी सहन शक्ति से ज्यादा रोम-रोम में हमारी चाह घुस गयी है। जीव का भगवान् से मिलन

मोक्ष का असीम आनन्द देता है। जीव को संसार तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान होता है। वियोग होने पर सूखी नदी की पैर जलानेवाली गरम तलहटी और टूटे हुए विखरते स्वप्न जैसी उसकी स्थिति होती है। तब भगवान् के लिए उसका प्रेम उमड़ने लगता है। मिलन से ज्ञान और वियोग से भक्ति का बोध होता है। कान में स्वर्ण आभूषण पहनाने के पूर्व मिट्टी का कुण्डल धागे से लटकाते हैं, ताड़ के पत्ते को गोल करके कुण्डल के छेद से पार कराते हैं। उपवास के बाद पूर्ण भोजन न देकर, पहले शरीर पर चावल का लेप, तब माँड़ पिलाकर, थोड़ी-थोड़ी मात्रा में नियमित भोजन शनैः-शनैः दिया जाता है। भक्त को भगवान् से वियोग सहने का अभ्यास नहीं रहता है। **तिरुवायमोळी 4.5.5 -** प्रभु सबका अर्थ स्वयं बताते हैं, सुगम रास्तों को दिखाते हैं। वियोग की असहनीय स्थिति की वेदना को नियंत्रित करने हेतु भगवान् अपने दिव्यगुणों की झाँकी के साथ दर्शन देकर उसे अपनाते हैं। **तिरुवायमोळी 2.9.1 -** परम विलक्षण मोक्ष भी नहीं माँगता। **तिरुवायमोळी 6.6.11 -** भक्तजन अति श्रेष्ठ नित्यसूरियों के दिव्य भोग भोगेंगे। सभी स्थितियों के अनुभव वाले नित्यसूरि असीम ज्ञान के भण्डार होते हैं। भगवान् यह जानते हैं कि सहसा मिले दिव्य आनन्द को भक्त नहीं सह सकता। इसीलिए संयोग और वियोग के सहारे वे उसे पूर्ण दिव्य आनन्द से लाभान्वित कराते हैं। संयोग और वियोग मुक्ति रूपी फल प्राप्त कराने के लिए नहीं हैं। बल्कि यह तो भक्त को प्रशिक्षित करने हेतु दिया जाता है। तब वह भगवत् प्रदत्त पूर्ण आनन्द को प्राप्त कर पाता है। चावल लेप, माँड़ देना आदि उपलक्षण हैं जो भोजनधारण करने की क्षमता प्राप्त

कराने के लिए दिये जाते हैं। उपरोक्त सभी दृष्टान्त भगवद्विषय के ज्ञान की गहराई को स्पष्ट करने हेतु दिये गये हैं।

चूर्णिका 116 -

तिरुवायमोळी 10.10.1 में ब्रह्मा को चारण कहा गया। इसमें आळवार ने अपने हृदय एवं मन के अनुभव को बखाना है। उनको आँखों से देखे गये अनुभव का अभाव है। इसी पृष्ठभूमि में, संयोग और वियोग में निहित तथ्य को समझाया गया है।

सूत्र 116 (30) - सं. दर्शनसमानसानुसन्धानं च दृढ़ग्रहणालब्धमनः शैथिल्यं च।

सामान्य अर्थ - संयोग मानसिक अनुभव है। भगवान् सुलभ, दिखाई नहीं देनेवाले तथा समझ के बाहर हैं। आँख से नहीं देखने के कारण जो अनुभूति होती है उसका स्मृति ह्रास होता है और मन में भ्रम होता है।

विशेषार्थ - भगवान् सुलभ हैं। **तिरुवायमोळी 3.6.11 -** यह अदृश्यमान प्रभु की प्रशस्ति है जो हृदय के प्रिय हैं। **तिरुवायमोळी 7.3.6 -** मेघवर्ण के प्रभु हमारे सामने प्रकट हुए हैं परन्तु हमारी पकड़ के बाहर हैं। भगवान् के साथ संयोग आळवार का मानसिक अनुभव है। स्मृति ह्रास एवं भ्रम को वियोग कहा गया। **तिरुवायमोळी 5.10.7 -** मात्र एक दिन पधारिये जिससे कि हमारी आँखें आप को देखकर तृप्त हों तथा मैं उसे अपने भीतर जी

भरकर भर सकूँ। भगवान् को आँख से देखना दुर्लभ होने से आळवार का संयोग-वियोग मानसिक अनुसन्धान है।

चूर्णिका 117 -

संयोग एवं वियोग के कारण

सूत्र 117 (31) - सं. पुण्यं पापं संश्लेषो विश्लेषच ताभ्यां निवृत्तस्य प्रियहितपरः स्वयं चाञ्चल्यरहितं सर्वत्र सुखं यथा भवेत् तथा प्रवर्त्तयेत्।

सामान्य अर्थ - सामान्य जनों का संयोग शुभकर्म से तथा वियोग बुरे कर्म से होता है। अच्छे एवं बुरे कर्मों से रहित होने के कारण भगवान् बहुत प्रेम से आळवार के भीतर विराजते हैं। आळवार में संयोग-वियोग, दोनों का साम्राज्य, एक के बाद दूसरा, निरन्तर विकसित होते हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 6.3.4 - अच्छे-बुरे कर्म, मिलन-विछुड़न, स्मृति-विस्मृति, सच्चाई-भ्रम - आप ये सब हैं भी और नहीं भी हैं। **तिरुवायमोळी 1.5.10 -** हमारे युगल कर्मों को भगाते हुए आपने माया-बन्धन काट दिया। **श्रीरङ्ग गद्य 2 - तिलतैलवत् - दारुवह्निवत् -** तिल में तेल तथा लकड़ी में आग की तरह जीवात्मा से उसके अच्छे तथा बुरे कर्म जुड़े रहते हैं। बड़ी दीवार रूपी इन दोनों कर्मों को आळवार ने निपुणता से एक तरफ गिरा दिया है। भगवान् ने उदारतापूर्वक इन्हें ज्ञान एवं भक्ति से समन्वित कर दिया है। **तिरुवायमोळी 2.6.2 -** हमारे भीतर प्रवेश कर गये हैं। प्रदीप्त ज्ञान के स्थिर प्रकाश शिखा, आप हमारे भीतर बन्द, हमारे अमृत हैं।

विना प्रयास के सृष्टि की रक्षा करनेवाले प्रभु दया वर्षाते हैं। विना वियोग के अत्यन्त रुचिपूर्वक आनन्द से आळवार के हृदय में विराजते हैं और उन्हें परम सत्य का ज्ञान कराते हैं। **वा.रा. 1.1.85 - अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्। कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह।।** राक्षसराज विभीषण को लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त करके राम जी कृतार्थ हो गये। उस समय निश्चिन्त होने के कारण उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। आळवार से अतिप्रीति करने वाले भगवान् लक्ष्मी जी से वियोग को भूलते हुए मात्र आळवार के बारे में ही सोंचते हैं। रक्तिम आँख के साथ वे आळवार के साथ अपने मिलन को दृढ़ करते हैं। **तिरुवायमोली 9.5.10** - वियोग के दुःख में आळवार का आभूषणों से युक्त शरीर क्षीण हो रहा है। कहते हैं - मात्र मेरा शरीर यहाँ है और मैं तो परमपद के आनन्द में हूँ। सर्वत्र आनन्द का पदार्पण हो तथा उसका साम्राज्य हो। भगवान् के वियोग में मैंने कितना दुःख पाया। किसी को ऐसा दुःख न हो, सब सुखी रहें। अमृतमय भगवान् के साथ आळवार के मिलन-विछुड़न का क्रम निरन्तर चलते रहता है, दोनों का साम्राज्य बना रहता है।

चूर्णिका 118 -

नम्माळवार की विभिन्न वाणियाँ

सूत्र 118 (32) - सं. ज्ञाने स्ववाक्यम् प्रेम्णि स्त्रीवाक्यम्।

सामान्य अर्थ - ज्ञानावस्था में आळवार की वाणी, प्रेमावस्था में नारी वाणी।

विशेषार्थ - ज्ञान की दशा में अपने मूल स्वभाववश बोलते हैं। प्रेम की दशा में नारी स्वभावश बोलते हैं।

चूर्णिका 119 -

विभिन्न वाणी होने पर भी विषय वस्तु समान है।

सूत्र 119 (33) - सं. प्रसीदति मुह्यतीति प्रसादे च मोहे च स्वरूपं न नश्येत्।

सामान्य अर्थ - सामान्य अवस्था, अचेतावस्था या विरहावस्था में मानसिक स्थिति पृथक रहने पर भी मूल स्वभाव नहीं बदलता।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 7.2.5 - सोचते हुए अचेत होती है, पुनः होश में आती है। **तिरुवायमोळी 2.4.4 -** कलुषित बुद्धिवाली हो हाथ जोड़कर पुकारती है। हृदय से आळवार भगवान् का सम्मान करते हैं। **तिरुवायमोळी 4.4.7 -** प्रभु के बारे में भावग्रस्त होकर उन्मादपूर्ण बात सोचती है। होश की दशा में या अचेत दशा में लक्ष्मीतुल्य नायिका भगवत्प्रवणा ही रहती है। अन्य विषयों पर इसकी वाणी में भ्रम हो सकता है, परन्तु उन्मत्त दशा में भी भगवद्विषय पर कभी भ्रम नहीं होता, भगवत्प्रावण्य कभी घटता नहीं। भगवत्प्रावण्य के निमित्त होनेवाला भ्रम प्रावण्य का नाशक कैसे हो सकता है ? अतएव भगवत्प्रेम में नायिका लक्ष्मीतुल्य बताई गई । अचेत से होश की दशा या कलुषदशा में शेषत्व भाव नहीं बदलता। जैसे टूटे मिट्टी के घड़े या मिट्टी के खिलौने में मूल वस्तु मिट्टी वर्तमान रहती

है, उसी तरह बदलते मानसिक दशा में शेषत्वभाव का लोप नहीं होता। दोनों दशा, ज्ञानदशा या प्रेमदशा, में शेषत्वस्वरूप की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है, इसका कभी लोप नहीं होता है।

चूर्णिका 120 -

आळवार विभिन्न मानसिक दशाओं में अन्यों से कैसे भिन्न हैं।

सूत्र 120 (34) - सं. दासभूता अनुसृत्य विच्छेदं विना अन्तरङ्गकैंकर्याणि दास्यश्चरणाधः अन्तरङ्गकैंकर्याणि एवम् अवस्थान्तरम् ।

सामान्य अर्थ - भगवान् का दास कहना, निरन्तर सेवा रत रहना, नतमस्तक रहना, लम्बी अवधि से भूले रहने के लिए पश्चात्ताप, इनमें कोई अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 9.2.9 - हम भक्तजन आँखों से लगातार आँसू बहाते हुए। **9.2.3 -** निरन्तर सेवारत हम बंधुआ सेवक का आवेदन सुन लीजिए। **10.3.6 -** हम दासियों के अवनत सिर पर अपना श्रीहस्त रखिये। **1.4.2** - हे कोयल ! ओह ! हमारे पूर्व के कुकर्म के कारण लम्बी अवधि से उनका स्मरण नहीं किया। यह स्वरूप के अनुरूप प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है। यही प्रवृत्ति नम्माळवार को अन्य आळवार से अलग करती है। दासत्व का मूल स्वभाव एवं दासी-कैंकर्य के लिए उत्कण्ठा में कोई अन्तर नहीं है। नायिकाके वाक्य लक्ष्मीभाव की अभिव्यक्ति है। नायिका पुत्री,

सखी तथा मातृ भावना से नारीवाणी में बात करती है। तीनों तरह के भाव श्री, भू एवं नीला के एकीकृत लक्ष्मीभाव कहे गये।

चूर्णिका 121 -

नम्माळवार की नारीवाणी स्वाभाविक है।

सूत्र 121 (35) - सं. विद्यां मातृत्वेन जनयित्वा क्षीराऽमृतवत् स्थितश्री-नाम्ना लक्ष्मीवत् वर्द्धयन् रक्षकः पिता अन्येषां वाक्यप्रवेशं विना विश्वपतिः लोकभर्त्रेति जामातरं चतुर्द्वयतन्तुत्रिसूत्रविशिष्ट-ब्रह्मसूत्रबन्धेन वरयित्वा वर्त्तमानदशायां परमपुरुष-पाणिग्रहणानन्तरं चतुर्थ्यन्तः प्रविश्य प्रतिबन्धक-त्वेन मध्ये वर्त्तमानदिनान्यतिक्रम्य जन्मभूमिं विसृज्य विश्लिष्य व्याप्ताकाशे इत्यादि प्रकारेण सह गत्वा अवगाह्य स्नात्वा दिव्यमाला-मञ्जनभस्म-दिव्यचूर्णं पीताम्बरमनेकाभरणानि गृहीत्वा दृष्टवा अलंकृत्य मंगलाशासनं कृत्वा चामरैर्वीज्यमानस्य पूर्णकुम्भमङ्गलदीपानि धृत्वा बाल-स्त्रीषु आभिमुख्येन आगतासु वैकुण्ठं प्रविश्य स्थित्वा आस्यं योजयित्वा महानन्देन साकं नित्यसूरिभोगं भुक्त्वा अतिशय-दन्तपादयुक्त-पर्यङ्के पाद-संमर्दमारुह्य भरताक्रूर-मारुति-परिष्वङ्ग योग्यमण्यतिशय योग्यवक्षसि कौस्तुभसदृश संश्लिष्टस्य वस्तुनो मणिवल्लिवाक्यं हि आगन्तुकं न ।

सामान्य अर्थ - विद्या आत्मा की माँ है। मधुर-अमृत जैसा मूल मन्त्र इसका लक्ष्मीजी की तरह पालन करता है। आठ अक्षर से युक्त तीन पदवाला मूलमन्त्र मंगलसूत्र के ऐंठे हुए तीन तने हैं। यह जगत् के पिता

एवं भर्ता की तरह अन्त की चौथी विभक्ति से स्वीकार करता है। यह आत्मा अन्य किसी के लिए न होकर मात्र भगवान् के लिए है। शरीर आत्मा की यात्रा की रोक है। जन्म स्थान से सम्बन्ध तोड़कर चार दिन की यात्रा से **अर्चि** के रास्ते चलकर **विरजा** नदी में नहाती है। दिव्य गुणों से युक्त हो तुलसी धारण करती है, दिव्यवस्त्र-आभूषणादि से अलंकृत आँखों में अंजन से विभूषित होती है। वैकुण्ठ के नवयुवतियों का समूह **मुक्त** का स्वागत करती हैं और दिव्य कल्याणप्रद मंगलाशासन करती हैं। मंगल-द्रव्य से भरे घट एवं दीप के साथ आमन्त्रण करती है। समस्त स्वागत-समूह के साथ वैकुण्ठ पहुँच कर **नित्यसूरियों** को प्राप्त दिव्यानन्द से आनन्दित होती है। भर्ता के चरण की ओर से दिव्य पर्यंक पर जा विराजती है। प्रभु के हृदय से आलिंगन पाते भरत-अक्रूर-मारुति आभायुक्त **कौस्तुभ** सदृश हैं जो दुलहिन रूप में उनके वक्षस्थल की शोभा है।

विशेषार्थ - 1. मूलमन्त्र से आवेशित आत्मा लक्ष्मीजी की तरह भगवान् से अपनाई जाती है - आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.16 - स हि विद्यातः तं जनयति - आचार्य की शिक्षा से महान् जन्म मिलता है। मूलमन्त्र के ज्ञान से आचार्य शिष्य को आत्मा के मूल स्वभाव से अवगत कराते हैं। माँ की तरह यह विद्या आत्मा को जन्म देती है। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 6.10.6 -** आप दूध, मधु तथा अमृत की तरह हमारे हृदय के लिए मधुर हैं। भक्तगण हमारे साथ **"नमो नारायणमे"** दुहरायें। यह मूलमन्त्र है। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.8.4 -** वह हमारी एकलौती बेटी

थी और उसका लालन-पालन हमने धन की देवी लक्ष्मी की तरह किया था। यह आत्मा किसी अन्य का न होकर लक्ष्मीजी की तरह भगवान् की सेवा के लिए है। भगवान् ही इसके जनक होकर इसे रहस्य ज्ञान कराते हैं। **वा.रा. 5.38.32 - स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः। त्रीँल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः।।** पिता इन्द्र तथा महान् ऋषियों से परित्यक्त होकर जयन्त तीनों लोकों में घूमता हुआ रामजी की शरण में आया। भगवान् सबके पिता एवं मोक्ष दाता हैं। **विष्णुसहस्रनाम 10 - भूतानां योऽव्ययः पिता।** पराशर भट्ट **श्रीरङ्गराजस्तव उ. 88 - भवमोक्षणयोस्त्वयैव जन्तुः क्रियते।** किसी प्राणी को जन्म या मोक्ष देनेवाले केवल आप ही हैं। सदा उसके साथ रहकर उसे कल्याण का मार्ग बताते हैं। आप ही आचार्य एवं पिता की तरह उसे जन्म-मृत्यु चक्र के आपद् से रक्षा करते हुए परमपद धाम देते हैं।

विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.4.5 -** अन्य किसको अब हम समर्पित होंगे, यानी किसी अन्य के हम नहीं हैं। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 1.5 -** किसी मरणशील से मेरा विबाह होने पर जीवन रखना संभव नहीं होगा। भगवान् पिता की तरह जीव की रक्षा स्वयं उसे अपनाने के लिए करते हैं। **नारायणसूक्त** - **पतिं विश्वस्य** - जगत्-पिता / जगत्-पति हैं। **वा.रा. 5.38.53 - कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी -** कौसल्या ने जगत्-पति को जन्म दिया है। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 10.6 -** दुलहाराजा सतत फनवाले नागशय्या पर सोते हैं। पिल्लै लोकाचार्य

स्वामी - **मुमुक्षुपडि 113 -** आठ धागों से युक्त तीन सूत्रोंवाला जो मंगल-सूत्र होता है उसीप्रकार आठ अक्षरों से युक्त तीनपद वाला मूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) है। जिस प्रकार पत्नी के गले का मंगल-सूत्र भर्त्ता को छोड़कर किसी दूसरे से सम्बन्ध नहीं बताता है, अनन्यार्हता बताता है, उसी प्रकार पत्नीरूपी यह आत्मा सर्वेश्वर के लिए ही है और यह किसी अन्य से सम्बन्ध नहीं जोड़ सकती। श्रीमन्नारायण स्वयं मूलमन्त्र के रूप में हैं। **वा.रा. 1.73.27 - प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।** तुम्हारा कल्याण हो रघुनन्दन! सीताको स्वीकार करो और इसका हाथ अपने हाथ में लो। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 5.4.2 -** जबसे आपने हमें अपनी सेवा में स्वीकार लिया है तब से पुनर्जन्म का सागर सूखकर पवित्रस्थल हो गया। भगवान् सभी आत्मा को पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। पाणि ग्रहण के बाद पत्नी को चार दिन (चौठारी) तक नियम पूर्वक संयम से रहना होता है। मूलमन्त्र के ॐ (प्रणव) में व्यक्त अनन्यार्ह तथा शेषत्वभाव के लोप विना सतत रहने वाले नम्माळवार को भगवान् स्वीकार करते हैं। परन्तु आळवार की मनःशान्ति इस बात की वेदना से भंग है कि वे भगवान् के अत्यन्त समीप से सेवा करने का संयोग नहीं प्राप्त कर रहे हैं। मन्त्र के **नारायणाय** पद की चतुर्थ विभक्ति "**आय**" से आळवार की ऐसी स्थिति का भान होता है कि वे पूर्ण एकाग्रचित्त होकर भगवद् कैंकर्य का आनन्द लेते हैं।

2. विवाह के चौथे दिन भगवद्-मिलन का आनन्द -

पर्यंक पर पति-पत्नी का साथ रहने पर भी स्पर्श के प्रतिबन्धक के रूप में बीच में चार दिनों तक चन्द्र वर्त्तमान रहते हैं। इसी तरह मुक्त जीव का शेषत्व का ज्ञान तथा कैंकर्य के लिए विनयवत रहने पर भी उसके तथा भगवान् के मध्य प्रतिबन्ध वर्त्तमान रहता है। **तिरुवायमोळी 5.1.5 -** आपके समीप आजाने पर भी आपको प्राप्त करने में कर्म की मजबूत रस्सी से बन्धा एक शरीर प्रतिबन्धक बना हुआ है। आत्मा एवं परमात्मा के मिलन में मानव शरीर प्रतिबन्धक बना रहता है। आळवार को भी चार दिनों तक इस तरह के प्रतिबन्धक का अनुभव हुआ। **तिरुवायमोळी 1.6.7 -** श्रीचरणों में सिर नवाकर अथाह समय-सागर को तैरकर पार करो। जन्म-स्थान से सम्बन्ध विच्छेद - परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 3.7.8 -** पंखा, सुग्गा, गेंद, झूला, पिंजरे में वार्ता करती मैंना सबों को छोड़कर चली गयी। जन्म-भूमि तथा संसार के सभी जुड़े वस्तुओं को छोड़कर जाना अशक्य है। भगवान् से मिलन की आतुरता में आळवार अपने मूल स्वभाव के कारण लौकिक सभी सम्बन्धों - लगावों को नष्ट कर देते हैं। भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्दविरुत्तम् 64 -** उस समय तक मेरी सृष्टि हुई नहीं थी। आचार्यरूप श्रीमन्नारायण ने मूलमन्त्र से हमारा जन्म दिया। वर्तमान जन्म के पूर्व अतिऊत्तम स्थिति के कारण आळवार को जन्म नहीं लेना था। परन्तु भगवद् दिव्यगुणों के गान का आनन्द लेने हेतु सुग्गे-मैना आदि के साथ लौकिक जगत् में उन्होंने जन्म लिया। उनकी जीवन-शैली दिव्य मूलमन्त्र के अनुरूप रही। परमपद ससुराल में दुलहेराजा भगवान् से मिलने जन्म स्थान छोड़कर नई नवेली दुलहिन के अर्चिमार्ग से जाने का दिव्य मानसिक

अनुभव का अनोखा वर्णन करते हैं। **तिरुवायमोळी 10.9.1 -** विस्तृत आकाश में दुलहिन रूपी भक्त के स्वागत की मनोहर दृश्यमालिका है। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 6.10 -** दोनों को हाथी पर बैठाकर नगर-भ्रमण में ले गये हैं। वराह भगवान् चरम मन्त्र - **...मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्।** अपने भक्त को परमधाम ले जाता हूँ।

अर्चिमार्ग में विरजा स्नान - गोदा जी **तिरुप्पावै 13 -** शीतल जल की डुबकी। दुलहे के घर पहुँचने के पहले मार्ग की मलिनता से निवृत्त होने के लिए दुलहे के गाँव की सीमा पर की नदी में दुलहिन स्नान करती है और संगी कुटुम्बगण उसका सौंदर्यीकरण करती है। मह्याळवार **मुन्-राम् तिरुवन्दादि 69 -** चोटी में भगवान् की तुलसी बान्धती है। परकाल स्वामी **शीरिय तिरुमडल 10 -** आँख में काजल लगाती है। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 1.4.9 -** सुगन्धित इत्र, हल्दी चूर्ण। विष्णुचित्त स्वामी **तिरुप्पलाण्डु 9 -** पीताम्वर धारण। गोदा जी **तिरुप्पावै 27 -** मन को प्रसन्न करनेवाले आभूषण पहनना। इसी तरह मुक्तात्मा परमपद के रास्ते विरजा नदी में नहाती है। मुक्तात्मा रूपी दुलहिन को दिव्यमाल्य-दिव्यअञ्जन-दिव्यचूर्ण-दिव्यवस्त्र-दिव्याभरण से अलंकृत किया जाता है।

3. दुलहिन रूपी मुक्तात्मा का दुलहेराजा भगवान् के गृह वैकुण्ठ में प्रवेश - कौषीतकि उपनिषद् 1.4 - तं पञ्चशतानि अप्सरसः प्रधावन्ति, शतं मालाहस्ताः, शतमञ्जनहस्ताः, शतं चूर्णहस्ताः, शतं वासोहस्ताः, शतं भूषणहस्ताः। पाँच सौ रूप-यौवन सम्पन्न अप्सरायें दर्शन की लालसा से

आगे आकर स्वागत करती हैं, उनमें सौ हाथ में माला लिए हैं, सौ सुगन्ध-अञ्जनादि, सौ हल्दी-केसर चूर्ण, सौ वस्त्र तथा सौ आभूषण लिए हैं। **तिरुवायमोळी 5.8.11** - (अप्सरायें) मृगनयनी किशोरियाँ। **कौषीतकि उपनिषद् 1.4 - तं ब्रह्मालङ्कारेण अलङ्कुर्वन्ति** - भगवान् के भोक्तृ-भूतेश्वर-भोग्य स्वीकार योग्य सौंदर्यसाधनों से मुक्तात्मा का सौंदर्यीकरण करती हैं। **तिरुवायमोळी 7.6.11 -** दिव्य अप्सराओं के सादर स्वागत पँखा-चँवर सेवादि के पात्र। दिव्य अप्सराओं से आगे लिये आते हुए मंगलाशासन प्राप्त मुक्तात्मा के स्वागत-सत्कार में भगवान् की सुन्दर पर्यंक-सेविकायें पूर्णकुम्भ-मङ्गल दीप के साथ आगे आती हैं। **तिरुवायमोळी 10.9.10 -** चन्द्रमुखी मुग्धाङ्गनायें श्रीपादुका, सुगन्धचूर्ण, पूर्ण कुम्भ, मङ्गल दीप तथा केशरयुक्त जल से मुक्तात्मा के स्वागत में तल्लीन थीं। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 3.10 -** वैकुण्ठ पहुँचकर माधव के साथ रहते हैं। दिव्य अप्सराओं का समूह मुक्तात्मा के साथ श्रियपति श्रीमन्नारायण के परमपद धाम में प्रवेशकर नित्यसूरियों के साथ इस अवसर का आनन्द लेती हैं। **तिरुवायमोळी 2.3.10 -** कब हम आपके भक्तों की पङ्कति में बैठेंगे ? दुलहिन (मुक्तात्मा) दुलहेराजा (भगवान्) के घर (वैकुण्ठ) आ गई है। इसतरह के अवसर पर सभी कुटुम्बगण आनन्द मनाते हैं, उसीतरह नित्यसूरि तथा अन्य मुक्तात्मायें आनन्दमग्न हैं। दुलहिनरूपी मुक्तात्मा दुलहा स्वरूप भगवान् श्रीमन्नारायण के साथ आनन्द विभोर हो रही है। **तिरुवायमोळी 2.3.9 -** आपके भलेपन के सागर में गहरे डुबकी लगाकर हमने छककर पिया तथा आनन्द मनाया। **तिरुवायमोळी 6.6.11 -**

अतिश्रेष्ठ नित्यसूरियों के दिव्य भोग भोगेंगे। नित्यसूरिगण सतत भगवान् के साथ दिव्य आनन्द का लाभ उठाते हैं। इसीतरह दुलहिन रूपी जीव दिव्य आनन्द में डूबा है। **तैत्तिरीय उपनिषद् 2.1 - सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।** वह परमात्मा (श्रीमन्नारायण) के साथ समस्त उनके दिव्यगुणों के आनन्द का अनुभव करता है। परमपद में नित्यसूरिगण तथा मुक्तात्माओं की मुख्य गतिविधियों के केन्द्र भगवान् ही हैं।

धराधाम पर दुलहिन दुलहे के साथ भौतिक-दैहिक सुख की कामना करती है। **तिरुप्पावै 23 -** भगवान् कृष्ण नप्पिनाय के साथ अतिशय सुन्दर सिंहासन पर विराजते हैं। **तिरुप्पावै 19 -** कोमल गद्दा युक्त हाथी दाँत के बने पलंग। उभयविभूति में चिद् एवं अचिद् अपने गुणों के अनुसार क्रियाशील रहते हैं। भगवद् - शरणागति दिव्य पर्यंक पर चढ़ने के समरूप है। **कौषीतकि उपनिषद् 1.5 - तमेवंवित् पादेन अध्यारोहति -** पर्यंक पर ब्रह्म विराजते हैं। ऐसा जानकर जीव अपने पैर के सहारे उस पर्यंक पर चढ़ता है।

इतिहास-पुराण बताता है कि भरत, अक्रूर एवं मारुति को हृदय से लगानेवाले प्रभु के वक्षस्थल को सतत कौस्तुभ अलंकृत एवं प्रकाशित किये रहता है। भरत जी के प्रसंग में, **वा.रा. 6.127.41 - तं समुत्थाय काकुत्स्थः चिरस्य-अक्षिपथं गतम्। अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे।।** बहुत समय बाद भरत जी को देखकर रामजी ने उन्हें गोद में बैठाकर हृदय से लगा लिया। अक्रूर के प्रसंग में, **वि.पु. 5.18.2 - सोऽप्येनं ध्वज-वज्राब्ज-कृत चिह्नेन**

पाणिना। संस्पृश्याकृष्य च प्रीत्या सुगाढं परिषस्वजे।। भगवान् कृष्ण ने अक्रूर को अपने ध्वज-वज्र-कमलांकित करकमलों से स्पर्शकर, प्रीतिपूर्वक अपनी ओर खींचकर गाढ़ा आलिंगन किया। हनुमान जी के सन्दर्भ में, **वा.रा. 6.1.13 - एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः। मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः।।** रामजी ने कहा - इस समय मेरे सर्वस्व महात्मा हनुमान् को मैं अपना प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करता हूँ। **तिरुवायमोळी 10.3.5 -** कौस्तुभ मणि से सुशोभित आपके वक्षस्थल का मल्लिका पुष्प की सुगंध मेरे स्तनों को सुवासित करे। दुलहिन रूपी मुक्तात्मा दुलहेराजा के कौस्तुभ से सुशोभित वक्षस्थल के आलिंगन के लिए लालायित है जिससे भरत-अक्रूर-मारुति का भगवान् ने आलिंगन किया। कौस्तुभ के सदृश उनके वक्षस्थल से आश्लिष्ट रहना चाहती है।

4. नारीभाव में रहने पर भी नम्माळवार का मूल-स्वभाव नहीं बदला

विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 1.3.10 -** मणि से चमकते प्रभु का जाज्वल्यमान वक्षस्थल। कौस्तुभ अमृत सदृश प्रिय जीव (दुलहिन रूपी नम्माळवार) का प्रतीक है जिसे भगवान् गौरव से धारण किये रहते हैं। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम् 9 -** चक्रधारी वैकुण्ठनाथ के शौर्य के सदृश लता के सुगंधित पुष्प है यह कुमारी। जैसे अतिसुन्दर आभूषण को सुशोभित करने हेतु अन्य अलंकार की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही नम्माळवार स्वयं सुशोभित हैं। स्वाभाविक रूप से लता को फैलने हेतु एक सहारा चाहिए और लाह जिसतरह गरम होकर किसी वस्तु से चिपक जाता है

उसी तरह नम्माळवार का नारीभाव स्वाभाविक रूप से उनका अभिन्न स्वरूप है। आळवार के दुलहिन-भाव की वाणी दुलहे के वक्षस्थल से आश्लिष्ट कौस्तुभ के सदृश है। जिसतरह जीव का भगवान् से संश्लिष्ट रहना स्वाभाविक है, उसी तरह आळवार का नारीभाव स्वाभाविक है।

चूर्णिका 122 -

नम्माळवार और लक्ष्मी जी में सदृशता

सूत्र 122 (36) - सं. स्नेहप्रेम्णोः प्रथमपतनं च पल्लवविकासश्च परिमल-महापद्मांगतया वर्त्तमानस्यास्य साम्यषट्केण।

सामान्य अर्थ - आळवार का आनन्द एवं प्रेम की उत्कण्ठा लक्ष्मी जी के छः आनन्दप्रदायी गुणों के सदृश हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 4.5.8 - भूवासियों एवं परमपदवासी नित्यसूरियों के नाथ जितना पद्मासनस्थ लक्ष्मी जी के प्रिय हैं उतने ही हमलोगों को भी हैं। प्रभु भक्त, मुक्त और नित्यसूरियों को अतिशय प्रिय हैं। प्रभु के निकटस्थ लक्ष्मीजी उनके दिव्यगुण एवं रूप के अनुरूप रूप एवं गुणवाली हैं। आळवार के इस जन्म के पूर्व से ही भगवान् उनके साथ रहते हैं। लक्ष्मी से अधिक भगवान् ने इन्हें प्राथमिकता दी है। प्रभु के ये श्रेष्ठतम प्रियपात्र हैं। **तिरुवायमोळी 10.10.7 -** हे मेरे स्नेह ! आप पद्मनिवासिनी लक्ष्मी जी के स्नेह हैं। लक्ष्मी के द्वारा स्नेह पानेवाले प्रभु आळवार के स्नेह-स्वरूप हैं। लक्ष्मी जी से प्रेमवत् रहनेवाले आळवार से भी प्रेमवत्

रहते हैं। इस तरहसे लक्ष्मी जी के प्रति आळवार ने प्रेम-प्रदर्शित किया है। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी - 3.7.9 -** मेरी सरसिजनयना बेटी सरसिजा-लक्ष्मी थी। सरसिज-उत्पन्ना लक्ष्मी जी से तुलना आळवार को लक्ष्मी जी की सदृशता प्रदान करती है।

लक्ष्मी जी से सदृशता प्रदर्शित करने वाले छः आनन्दप्रद दिव्य गुण हैं - **अनन्यार्हशेषत्व, अनन्यशरणत्व, अनन्यभोग्यत्व, संश्लेष धारण, विश्लेष असह्य और तदेकनिर्वाह्यत्व**। भगवान् अपने भक्तों के साथ स्नेहासिक्त प्रेमवत् व्यवहार करते हैं। भगवान् के स्नेहासिक्त प्रेम से उद्भासित दिव्यगुणों की अनुभूति होने पर जीव स्नेहासिक्त प्रेम से उनमें विलीन होकर सायुज्य की स्थिति को प्राप्त करना चाहता है। जीव लक्ष्मी जी के सदृश है। स्वरूप प्रतिबन्धक निवृत्ति मुक्ति है। अहंकार से निवृत्त होने पर उक्त छः गुण लक्ष्मी जी तरह जीव में भी उद्भासित होने लगते हैं। फलस्वरूप, जीव भगवद्-भक्ति से ओत-प्रोत हो जाता है। लक्ष्मी जी जुड़े अन्य छः महत्वपूर्ण गुण, जिनका जीवात्मा एवं मुक्तात्मा दोंनो में अभाव पाये जाते हैं - 1. **निरूपकत्व -** किसी कार्य के लिए बाहृय कारण का अभाव, 2. **अनुरूपत्व -** भगवान् के समतुल्य, **3. अभिमतत्व -** भगवान् को प्रसन्न रखनेवाला, **4. शेषत्व सम्बन्धद्वारभाव -** भगवान् के सेवक बनने का साधन, **5. पुरुषकारत्व -** भगवान् से जोड़नेवाला, **6. प्राप्य पूरकत्व** - भगवान् को प्राप्त करानेवाली सेवा।

चूर्णिका 123 -

श्रीदेवी, भूदेवी एवं नीलादेवी से नम्माळवार की साम्यता।

सूत्र 123 (37) - सं. अभुक्त्वा शयित्वा अद्वितीयमायया इति वैलक्षण्ययुक्त किरीटोपयुक्ताभिः सह इयं लक्ष्मीः भूसदृशश्रेष्ठमुखीति नीला किम् इति साम्यम् दक्षिणभागे दीर्घप्राकारक्रूरधनुः बाणाग्निना भोजयित्वा भस्मोद्गमनं ज्वलयित्वा अपरिच्छिन्नाविर्भावम् काकुत्स्थ आदिसुन्दरकाले मृद्व्याप्तस्पृहणीयस्त्रीधूलिवतः ऋषभसप्तकसंश्लिष्टो मालिन्यविशिष्टः इत्येतेषु प्रकाशेत्।

सामान्य अर्थ - भू देवी स्वरूपिणी सीता जी के वियोग में रामजी को न भूख लगी, न नींद आयी। सीता जी एवं राम जी के दुःख "दक्षिण भाग", "दीर्घ प्राकार", "दाहपूर्ण धनुष", "अग्नि बाण", "भस्मीभूत", "ऊँची दीवार", "निपुण सुन्दर नायक", "पति में ध्यानिष्ठ" से अभिव्यक्त होते हैं। भूदेवी के रूप जैसे रूपवान् सर्वेश्वर के सदृश किरीट की अधिकारिणी भूदेवी। "सृष्टि आदिकाल", "पृथ्वी के उद्धारक", "श्री एवं भूदेवी नायक", "धूल धूसरित" से अभिव्यक्त। चमत्कार की तरह परमपद से गोपकुल में जन्म लेकर नप्पिनाय के समक्ष विराजे, अनेकों विशेषताओं से युक्त "सात साढ़ों को साधनेवाले", "उनकी चाह के विना"।

विशेषार्थ - गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 11.7 -** अपनी पत्नी के लिए भोजन और नींद त्यागकर सागर को नियंत्रित किया। जनकपुत्री सुन्दरी सीता के वियोग में भूख भूलकर, कँटीली लताओं से बेपरवाह जीवन को तुच्छ समझते हुए समय बिताने वाले रामजी के बारे में निम्नांकित प्रमाण

हैं। **गम्भीरः सत्य सम्पन्नः कृपावान् अविकत्तनः प्रज्ञगुणग्राही धीरोदात्तेति निगद्यते।** पीठ नहीं दिखानेवाले धीर, साहसी, सत्यवान्, कृपावान्, ज्ञानी, गुणज्ञादि अनेक विशेषताओं से युक्त होकर भी अन्यों की प्रशंसा को भूलकर शीघ्र सम्राट् बने। **वा.रा. 5.36.41- न मांसं राघवो भुङ्क्ते -** रघुवंशी कभी मांस नहीं खाते। **वा.रा. 5.36.44 - अनिद्रः सततं रामः -** रामजी को आपकी चिन्ता में नींद नहीं आती। **वा.रा. 5.36.42 - नैव दंशन् न मसकान् -** आपकी सोंच में अपने शरीर पर चढ़े हुए डाँस तथा मच्छर आदि को हटाने की भी उन्हें सुधि नहीं रहती। राजधानी में रहने पर राम जी के सदृश सभी विलक्षणताओं में समर्थ सीता जी किरीट धारण करने के योग्य हैं। **तिरुवायमोळी 4.4.7 -** प्रभु के बारे में भावग्रस्त होकर मेरी बेटी उन्मादपूर्ण बातें करती है। **वा.रा. 5.21.15 - अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा -** सूर्य की किरणें जिसतरह सूर्य से अलग नहीं की जा सकती, उसीतरह मुझे रामजी से अलग नहीं किया जा सकता। श्रीमन्नारायण की महानता को समझते हुए उनसे सतत जुड़ी हुई लक्ष्मी जी उनकी इच्छा के अनुरूप सारे कार्य करने में लगी रहती है। लक्ष्मी जी के सदृश आळवार भी उनकी सभी योग्यताओं से युक्त हैं।

रामजी के विरह-दुःख को व्यक्त करने वाला **"दक्षिण भाग"** का भाव है कि दक्षिण लंका को रामजी ने ध्वस्त किया। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 77 -** हाय ! दक्षिण लंका नगर के नाश करनेवाले राम प्रभु अपनी सुगंधित तुलसी का हार से हमलोगों की कुशलता को नष्ट करने आये हैं। चक्रवर्ति

श्रीकुमार होकर भी सीतापति रामजी को कितना कष्ट झेलना पड़ा। **"दक्षिण भाग"** आदि वाक्यांश सब उनकी इन्ही परिस्थितियों से जुड़े हैं। **"दीर्घ प्राकार"** का तात्पर्य है कि लम्बी किलाबन्दी वाले लंका को नष्ट करनेवाले रामजी। **तिरुविरुत्तम 36 -** किला से संरक्षित लंका का नाश करनेवाले प्रभु अपनी शीतल तुलसी-हार नहीं देते। क्या आपका हृदय दया से द्रवित होकर नहीं कहता - "यह किशोरी वेदनाग्रस्त है। यह स्थान इसके लायक नहीं है"। सीता जी आश्चर्य करती हैं कि असुरों पर भी दया दिखानेवाले हमारे प्रति प्रभु दयाहीन क्यों हो गये ! "**दाहपूर्ण धनुष**" का सन्दर्भ **तिरुवायमोळी 5.4.3 -** दाहपूर्ण धनुष चलाने वाले काकुत्स्थ प्रभु आते नहीं। सीता जी की विरहातुर वाणी रामजी के कुल की मर्यादा तथा उनके शौर्य का उलाहना देती है जो उनकी निन्दा न होकर अपने हृदय के अचल प्रेम को प्रदर्शित करती है। "**अग्नि बाण**" का सन्दर्भ - **तिरुवायमोळी 4.2.8 -** मेरी बेटी उस प्रभु के चरणों की सुगंध बिखेरती तुलसीदल की माला के लिए उत्कट है जिन्होंने अपनी प्रेयसी सीता के प्रेमवश बाणों से लंका को जला दिया। आळवार नायकी की माँ सखियों से उसकी करुण रुदन में सहायक होने की असमर्थता बताती हैं। "**भस्मीभूत**" का सन्दर्भ नायकी (आळवार) सखियों से पूछती है - **तिरुवायमोळी 2.1.3 -** दक्षिण लंका को जलाकर भस्मीभूत करनेवाले के चरण चाहती हूँ, क्या तुम्हें भी मेरी तरह वेदना है? "**ऊँची दीवार**" के सन्दर्भ से, नायकी मधुमक्खी से संदेश भेजती है - **तिरुवायमोळी 6.1.10 -** ऊँची दीवार वाले लंका को जलाकर भस्म बनाने वाले प्रभु यहाँ रहते हैं। विनती है, मेरे बारे में उनसे बताओ कि मैं भी जीवित हूँ। नायकी

की विरहाग्नि से रक्षा हेतु यह मानसिक संदेश वैसे ही है, जैसे अजेय रावण के लंका को नष्ट करने वाले प्रभु से सीता जी का कैद में बन्द अपनी रक्षा का है। **तिरुवायमोळी 4.8.5 -** पूर्णता के प्रतीक प्रभु सुगंधित तुलसी का मुकुट धारण करते हैं। मृदुभाषिणी सुन्दर सीता को रोके रखने के कारण समुद्र से घिरे भयानक असुर रावण के नगर को जला दिया। अगर आप मेरे मन की चाह नहीं रखते हैं तब मेरी कोई क्षति नहीं होगी। आळवार उस ज्ञान को महत्वहीन कहते हैं जिसके द्वारा किये गये कार्य रामजी को पसन्द नहीं। सभी ऐश्वर्य से श्रेष्ठ सीता जी के लिए लंका का नाश करके विभीषण को राजा बनाया। रामजी स्वयं श्रीमन्नारायण हैं, और आळवार के लिए वैसे सभी कार्य अनादरणीय हैं जिससे उनकी कृपा प्राप्त न हो। "**निपुण सुन्दर नायक**" का तात्पर्य - **तिरुवायमोळी 6.6.9 -** तेजामय पर्वत सदृश दिव्य विग्रहवाले सबके दर्शनीय रामजी पर आसक्त हृदयवाली मेरी बेटी ने अपना सौंदर्य खोया है। सौंदर्य खोने का तात्पर्य है विरहाग्नि में जलना। आळवार भी सीता जी की तरह विरहाग्नि में जल रहे हैं। सीता जी का चित्त राम जी में लगा रहता है - **तिरुवायमोळी 9.5.6 -** मूर्ख तोता ! अपनी मृदु भाषा का प्रयोग मत करो। तुम्हारे चोंच एवं पंख हमें राम प्रभु का स्मरण कराते हैं। उन्होंने तब हमारे साथ मिलन का आनन्द लिया और फिर छोड़ कर चले गये। चक्रवर्तीपुत्र से वियोग को सहन नहीं करनेवाली सीता जी कहती हैं कि वे हमारे प्राण हैं। पहले मिलकर अब विछुड़ गये हैं। आळवार भी सीता जी की तरह विरह में हैं। नायकी के भाव में सुग्गे से अपनी वेदना कहते हैं। सर्वेश्वर की तरह भूदेवी भी

सम्मानीय हैं। स्वतन्त्र सर्वेश्वर हर अवस्था का लाभ लेते हैं। **तिरुवायमोळी 2.8.7 -** शयन, बैठे एवं खड़े अवस्थावाले प्रभु सूकर रूप में आये। गहरे जल में पैठकर वे भूदेवी को सुरक्षित अपने कन्धे पर ले आये। सर्वज्ञ एवं आप्तकाम होते हुए भी भगवान् आळवार के साथ हर तरह से आनन्द लेते हैं। केवल मिलन के आनन्द से सन्तुष्ट नहीं होकर विरह का उन्माद भी देते हैं। भगवान् के साथ बराबरी का सम्मान पानेवाली लक्ष्मी जी की तरह भूदेवी को भी सम्मान प्राप्त है।

समरूपता का सन्दर्भ - नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 49 -** पूर्व में भी प्रभु के श्यामल रंग के बारे में सुने थे। "**सृष्टि आदिकाल**", "**पृथ्वी के उद्धारक**", "**श्री एवं भूदेवी नायक**", "**धूल धूसरित**" का तात्पर्य - **तिरुवायमोळी 4.2.6 -** सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु ने सूकर के रूप में धरा देवी को प्रलय जल से बाहर निकाला। उस प्रभु के चरण के सुनहले तुलसीदल की माला की चाह को बार-बार दुहराते हुए मेरी बेटी विक्षिप्त हो गई है। धरती को उसके तलहटी के भाग को पकड़कर प्रभु ने उसे ऊपर उठाया। प्रभु के दिव्य चरणों पर तुलसी चढ़ाने के लिए मेरी बेटी पागल हो रही है। **तिरुवायमोळी 6.6.5 -** नित्य मार्गदर्शक वेद के प्रदाता, पृथ्वी का उद्धार करनेवाले महावराह स्वरूपी प्रभु में आसक्त मन वाली मेरी बेटी ने अपना विवेक खो दिया है। **तिरुविरुत्तम 40 -** क्या हम अपनी घुंघराली लटों में भूदेवी एवं श्रीदेवी के पति की शीतल तुलसीदल की माला धारण कर सकूँगी? हाय! कब हमारी माँ हमें इस तरह से देख सकेंगी ? परांकुश नायकी की वेदना

इसी चाह के कारण है कि कब हमारी माँ उभय-देवी के नायक की शीतल तुलसीपुष्प की माला लाकर हमारे केशपाश को सुशोभित करेगी ? और तब प्रभु से मुझे संरक्षित होने का संतोष होगा। **तिरुविरुत्तम 55 -** प्रभु ने सूकर के रूप में धरती की धूल का आनन्द लिया। उनके वैकुण्ठ की तरह यह किशोरी भी प्रिय है जिसके जूड़े के फूल मन-मादक सुगंध विखेरती है। क्या ऐसा सौंदर्य अन्यत्र कहीं देखा है? वराह प्रभु ने धरादेवी का सौंदर्य देखकर उसकी धूल से अपने को अभिषिक्त कर लिया। वराह प्रभु के इस सौंदर्य के चक्षुलाभ से धरादेवी अतिशय आनन्दित हुई। धरादेवी के इस आनन्द से लीलाविभूति तथा नित्यविभूति दोनों आप्लावित हो उठे। आळवार के इस तरह के विलक्षण पदों से आनन्दित होकर महान् सन्तगण इन पदों की महानता का आदरपूर्वक बखान करने से कभी तृप्ति नहीं पाते हैं। भगवान् से मिलन के आनन्द को उभयविभूति में कहीं ऐसा आनन्द नहीं प्राप्त होने की आळवार घोषणा करते हैं।

चमत्कारिक रूप से गोपकुल में आना - **तिरुविरुत्तम 21 -** जादू की तरह क्षणभर में क्या आप यहाँ आकर मक्खन नहीं चुराये एवं सात वृषभों की सींग पर गोपकिशोरी नप्पिनाय के लिए नृत्य नहीं किया ? नित्यसूरिगण श्रीमन्नारायण का यशगान, पूजा तथा मंगलानुशासन करते हैं परन्तु गोपकुल में आपने नित्यसूरि के पूर्वोक्त कृत्यों जैसे कार्यकलापों में कोई अभिरुचि नहीं दिखाई। विना अपनी भगवत्ता के प्रदर्शन के, सामान्यजनों को आप दीपशिखा के मध्य थिरकते काली रेखओं जैसे दिखते रहे। परांकुश

नायकी की भाव-भंगिमाओं को माँ की वाणी में - **तिरुवायमोळी 6.5.10 -** क्या यह किशोरी नप्पिनाय (नीलादेवी) है, या भूदेवी है, या लक्ष्मी है? **तिरुवायमोळी 4.2.5 -** मेरी बेटी, अपने अनुरूप सुन्दरी नीलादेवी (नप्पिनाय) से मिलने के लिए सात वृषभों को दमन करनेवाले और दक्ष घटनर्त्तक गोपालकृष्ण के पादों के अलंकार, सुशीतल व सुन्दर तुलसी का ही नाम लेती हुई प्रतिदिन शिथिल हृदया हो रही है। भगवान् कृष्ण के पाद की तुलसी के लिए आळवार लालायित हैं। नायकी कहती है - **तिरुवायमोळी 4.8.4 -** अगर आप हमारी गुलाबी-गाल की चाह नहीं रखना चाहते हैं तो हमारी कोई क्षति नहीं होगी। "क्षति नहीं होगी" का तात्पर्य प्रणय-कलह है, जिससे नायकी भी उनके वनवासी स्वरूप की उपेक्षा की उलाहना देती है। वन के फलों के रस के दाग से भरे वस्त्र, गायों के पीछे चलने से धूल-धूसरित वदन, हाथ में गायों के दूहने के बाँस के पात्र तथा चरवाही के डंडे वाले स्वरूप की उपेक्षा की उलाहना से आळवार इस विलक्षण स्वरुप के दर्शन की आन्तरिक लालसा प्रकट करते हैं।

उपर्युक्त रामावतार (सीतादेवी), वराहावतार (भूदेवी) तथा कृष्णावतार (नीलादेवी) के दृष्टान्तों से यह स्पष्ट है कि आळवार के नायकीभाव का असाधारण प्रेम, श्रीदेवी-भूदेवी-नीलादेवी के भगवान् के प्रति तथा भगवान् का दिव्यमहिषियों के प्रति परस्पर दिव्य प्रेम से साम्य रखते हैं।

चूर्णिका 124 -

नरकासुर के कैद से मुक्त द्वारका लाये गये नारियों एवं मथुरा की नारियों के कृष्ण-प्रेम से नम्माळवार के कृष्ण-प्रेम की सदृशता।

सूत्र 124 (38) - सं. आसु अन्विष्य वर्त्तमानासु सरः सैकतस्थलं मल्लिका-वलयम् अङ्गणं हर्म्यगृहमित्यादि तेषु तेषु प्रविश्य गृहीत्वा पातयित्वा अपहृत्य छित्वा स्वातन्त्र्यं शाठ्यं च कृत्वा आघोषं जनयित्वा आदरविषय-सन्तोषाश्रयश्रेष्ठाः अवगाह्यके इति माधुर्य्यवाक्येन गोकुलं विस्मारयन्त्यः नगरस्त्रियः नरकं हत्वा स्वीकृतषोडशानेकसहस्त्रसंख्यातीताः तासां भावः समुद्रभूमिः विद्युन्मध्यमल्लिकावंशसदृशपूतनास्तनं कुपित्वा मल्लयुद्ध - बलेन कंशं नश्येच्छतं उच्चलन् निवर्त्तकान् इति दशकस्थपाशुरेषु प्रकाशेत्।

सामान्य अर्थ - प्रतीक्षारत दिव्य-उभय महिषी (श्रीदेवी-भूदेवी) को भूलकर, भगवान् कृष्ण ने सरोवरों, पहाड़ियों, मल्लिका लताओं के प्रांगण से जाते हुए महलों की छत, वरामदा आदि पर विराजमान गोप-नारियों के मन को आकर्षित किया। मनोविनोद हेतु खेलते हुओं का खेल बिगाड़ा, चिकोटी काटी, वस्त्र फाड़े। इस तरह से गोपनारियों के आकर्षण के केन्द्र बने। "मैं ही धरा व सागर हूँ", "कृश-कटि नारियाँ", "मल्लिका फूल की सुगंध भरी वायु के झोंके", "सुघड़ बाँस सदृश", "राक्षसी का स्तन पान", "सकटासुर का नाश"। मथुरा की नारियों के चित्त चुराकर गोकुल भूले। "पहलवानों के सदृश भुजायें", "शक्तिशाली कंस"। नरकासुर को मारकर उसके कैद में बन्द सोलह हजार नारियों का चित्त चुराया। "सौ कौरवों का वध", "फुदकते", "चिकित्सक कहाँ पायें"।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 10.8.9 -** जबकि कमल समान लक्ष्मी तथा भूदेवी प्रतीक्षारत थीं, आप गोप किशोरियों के साथ झूमते नृत्यरत थे। **उनकी मनोवृत्ति तथा स्थान का सन्दर्भ** - गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 3.2 -** आप यहाँ कैसे आये ! ओह ! आपको इस सरोवर का कैसे पता चला ? विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 1.10.8 -** हमारे प्रभु बालु के टील्हे पर चढ़कर नृत्य करते। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरुमोळी 6.8 -** मुल्लै पुष्प वाटिका की छाँह में आने को कहकर आप किसी और किशोरी के प्रेम में लग गये। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 2.9 -** आप हमारे प्रांगण में आये हैं। हमारे बालु के घरौंदों को तोड़ते हुए हमारा हृदय भी तोड़ेंगे क्या ? विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 2.7.3 -** वरामदे तथा छत पर चढ़कर आप नारियों के कक्षों में प्रवेश कर जाते हैं **3.2.5 -** देवाधिदेव एक जगह से दूसरी जगह घूमते हुए चुपके से गोपियों को अपने लाल होंठ से चूमकर उन्हें मीठी बातों में व्यस्त रखते हैं। इस तरह से भगवान् कृष्ण पूर्वोक्त विभिन्न स्थानों में जाकर सखियों से मिलते, खेलते तथा प्रस्थान कर जाते। **खेल के साधनों को छीनकर, स्थानों को छिन्न-भिन्न करते, कपड़े चुराते आदि का सन्दर्भ** - परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 3.8.8 -** काली लटोंवाली सुन्दर किशोरियों के वस्त्र चुराकर उनके बालु के घरौंदें तोड़ दिये। **पेरिय तिरुमोळी 10.7.5 -** मेरी फूलगुँथे जूड़ेवाली बेटी स्वयं खेल रही थी। नटखट नंदकुमार वहाँ गया, गेंद छीन लिया आर कपड़े फाड़ दिया। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 2.7.3 -** उनके रेशमी घंघरों को बान्ध देता है। **तिरुवायमोळी 6.2.6 -** आपके कृत्य से

हम अवगत हैं। हम इसके योग्य हैं नहीं। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 12.3 -** नन्दपुत्र उनलोगों की प्रतिष्ठा को धूमिल करते हुए उनसे खेलते रहते हैं। विना किसी के कहे हुए ये स्वयं उदण्डतापूर्ण कार्यों को करते हैं। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 13.10 -** वह अपने कृत्यों से वेदना देता है। **नाच्चियार तिरुमोळी 13.4 -** श्यामल वृषभ कृष्ण, मतवाला होकर आयपाडी (गोकुल) में चौकड़ी दे रहे हैं। भगवान् कृष्ण को प्रिय हरकतों को वृन्दावन की गोपियाँ भी चाहती है। **तिरुवायमोळी 10.3.8 -** विनती है, मत जाइये। अन्य गोपकिशोरियों के साथ मधुर मिलन का आनन्द लीजिये। आळवार भी गोपियों की तरह भगवान् कृष्ण को चाहते हैं। उनका विरह गोपियों के लिए असहनीय होता है और वे उनका लीलागान करने लगती हैं। **वि.पु. 5.13.27 - दुष्टकालिय तिष्ठात्र कृष्णोऽहमिति चापरा। बाहुमास्फोट्य कृष्णस्य लीलया सर्वमाददे।।** कोई अन्य गोपी भुजायें ठोककर बोल उठती, "अरे दुष्ट कालिय ! मैं कृष्ण हूँ, तनिक ठहर जा।" ऐसा कहकर कृष्ण के सारे चरित्रों का लीलापूर्वक अनुकरण करने लगती। **वि.पु. 5.13.26 - कृष्णोऽहमेष ललितं व्रजाम्यालोक्यतां गतिः। अन्या ब्रवीति कृष्णस्य मम गीतिर्निशम्यताम्।।** एक कहती - "मैं ही कृष्ण हूँ, देखो कैसी सुन्दर चाल से चलता हूँ, तनिक मेरी गति तो देखो।" दूसरी कहती - "कृष्ण तो मैं हूँ, अहा ! मेरा गाना तो सुनो।"

"**मैं ही धरा व सागर हूँ**", का प्रसंग - नम्माळवार भी विरह को सह नहीं पाते हैं। गोपियों की तरह सरल हृदय से अपनी विरहवास्था की भक्ति में

उनकी लीला का अनुकरण करते हुए **तिरुवायमोळी 5.6.1** में नायकी की माँ की वाणी में कहते हैं - मेरी बेटी कहती है - "मैं ही धरा एवं सागर हूँ। धरा को सागर से ऊपर उठाया और फिर धरा को निगल भी लिया।"

"**कृश-कटि नारियों**" का प्रसंग - भगवान् कृष्ण के देर से आने पर गोपियाँ जैसे अपने प्रणय-कोप को प्रदर्शित करती हैं, वैसे ही नम्माळवार प्रणय-कोप को प्रकट करते हैं। **तिरुवायमोळी 6.2.1-** किला को ध्वस्त करने वाले प्रभु ! पतली कमर की किशोरियाँ आपकी कृपा के लिए लालायित रहती हैं। हमें आपकी युक्ति ज्ञात हैं। हमारा गेंद, डंडा वापस कर चले जायें। "**मल्लिका फूल की सुगंध भरी वायु के झोंके**" का प्रसंग - एक बार वन से लौटते कृष्ण गायों के पीछे-पीछे चल रहे थें। गायों के आगे न देख गोपियाँ अधीर होकर विरह वेदना में जड़ वस्तुओं से भी अपनी दुखड़ा सुनाती हैं। इसीतरह नम्माळवार भी अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करते हुए कहते हैं - **तिरुवायमोळी 9.9.1 -** हाय! चमेली की गंध विखेरती हवा, याल पर चढ़े सुन्दर कुरुंजी फूल, अस्त होता सूर्य, क्षितिज के लाल बादल, ये सब मेरे प्राण लेनेवाले हैं।

"**सुघड़ बाँस सदृश**" का प्रसंग- संध्या में वन से लौटने पर गोपियों का भगवान् कृष्ण से मिलन होता, परन्तु प्रातः पुनः वन जाते सब विरहाग्नि से दग्ध होने लगते। भगवान् को सब अपनी स्थिति भी बताते। नम्माळवार भी इसीतरह विरहातुर रहते। **तिरुवायमोळी 10.3.1 -** प्रेम-पक्षी कोयल की आवाज सुन हमारे सुघड़ बाँस की तरह बाहें दुबले-पतले हो रहे हैं। हमारे

अकेलेपन का तिरस्कार करके मोर समूह-नृत्य करते हैं। आप गाय चराने चले गये, कितने हृदयहीन हैं आप। **"राक्षसी का स्तन पान", "सकटासुर का नाश"** के प्रसंग - गोपजनों के कल्याण हेतु प्रभु ने पूतना, सकटासुर तथा अर्जुन के जोड़े वृक्ष का नाश किया। भक्तों के कारण वे सबकुछ करने को उत्सुक रहते हैं। भगवान् से मानसिक मिलन के क्षणों को याद करके नम्माळवार उनके उदार दिव्यगुणों का अपने विरह के पदों में व्यक्त करते हैं। **तिरुवायमोळी 5.3.8, 7.3.5 -** प्रभु ने राक्षसी का स्तनपान किया। हमने अपने सहज नारी के गुण कृष्ण को गँवा दिया जिन्होंने दुष्ट गाड़ी को तोड़ा। **"मथुरा की नारियों के कारण गोकुल भूले"** का प्रसंग - प्रभु ने मालाकार की माला एवं त्रिवक्रा का चन्दन धारण किया। मथुरा के रा.जमार्ग पर मस्त गति से चलकर कुवलयापीड हाथी का वध किया। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 2.8.7, 3.3.7 -** आपकी शीतल तुलसीदल की माला पर गुंजती मधुमक्खियाँ एवं मुखमंडल पर चन्दन का लेप - कैसे बताऊँ। आपने विशाल काले पहाड़ सदृश हाथी का अन्त किया। ये सब देख मथुरा की नारियाँ सुध-बुध खोकर अपना हृदय आपको समर्पित कर दी। आपस में बात करती है - **वि.पु. 5.20.54 - सख्यः पश्यत कृष्णस्य मुखम्-इति -अरुणेक्षणम्। गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बु-कणिकाचितम्।।** सखियों ! लाल आँखोंवाले श्रीकृष्णचन्द्र का मुख तो देख, जिसपर कुवलयापीड के साथ युद्ध के कारण पसीने के कण कैसी शोभा पा रहे हैं। **तिरुवायमोळी 6.2.5** - मृदुभाषिणी उत्सुक किशोरियाँ। **वि.पु. 5.18.14 - मथुरां प्राप्य गोविन्दः कथं गोकुलमेष्यति। नगरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति।।** अक्रूर के साथ

मथुरा गमन के समय विरहातुर गोपियाँ कहती हैं - मथुरा जाकर श्रीकृष्ण जी गोकुल क्यों आयेंगे, वहाँ तो अपने कानों से नगरनारियों की मधुरवाणी के मधु का पान करेंगे। स्पष्ट है कि नगरनारियों से चित्त चुराये जाने के कारण प्रभु गोकुल भूल जायेंगे। **तिरुवायमोळी 6.6.10 -** मल्ल योद्धाओं को पराभव देनेवाले ऊँचे मुकुट पर खिले हुए तुलसी धारण किये प्रभु को मेधावी तीक्ष्ण बुद्धि वाली हमारी बेटी ने अपना सबकुछ गँवा दिया है। मथुरानगर की नारियों की तरह सहज नारी स्वभाववाले आळवार प्रभु को समर्पित है। **"पहलवानों के सदृश भुजायें", "शक्तिशाली कंस"** का प्रसंग - पहलवानों को परास्त करने पर भगवान् कृष्ण की भुजाओं पर कोई खरोंच भी नहीं आये। ऐसा देख नायकी आळवार की माँ प्रभु पर सब तरह से समर्पित होने पर अपनी बेटी को मेधावी तीक्ष्ण बुद्धिवाली कहती है। **तिरुवायमोळी 2.4.8 -** छलिया कहते हुए हाथ जोड़, गरम उसांसे लेकर शक्तिशाली कंस का नाशक कहकर पुकारती है। प्रभु को देखने के लिए कितनी वेदनाग्रस्त है ! मथुरा की नारियों की तरह आळवार भी कृष्णचन्द्र के अचम्भाभरे कार्यकलापों से मोहित हो उनके मनोहर रूप के दर्शन के लिए लालायित हो उठते हैं। आळवार के मधुस्रावी पद उनके अन्तर्भावों को बड़ी निपुणता से प्रकट करते हैं।

नरकासुर से मुक्त भगवान् कृष्ण पर मुग्ध नारियों के अन्तर्भाव को आलवार उनके सदृश अपने सहज नारी-स्वभाव से बखानते हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 10.9.4 -** आपने आत्मविश्वास से खाली हाथ

नरकासुर का अन्त किया। विष्णुचित्त स्वामी **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.3.3 -** सागर सा सलोने प्रभु ने पूर्वनियोजित विधि से नरकासुर के गले में फंदा डालकर उसका वध कर दिया। तत्पश्चात् सोलह हजार एक सौ रानियों को कैदमुक्त किया। मुक्त रानियों ने प्रभु के लिए अपनी चाह दिखाई। नम्माळवार ने भी कैदमुक्त रानियों की तरह अपने भाव दिखाये हैं। **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.9.4 -** द्वारका के मनोरम दूलहा सोलह हजार रानियों के नाथ हैं। **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.1.6 -** बहुतों ने सागर की लहरों से थपेड़े खाते द्वारका में उन्हें सोलह हजार रानियों से घिरकर राजतिलक के अवसर पर सिंहासनारुढ़ होते देखा है। **पेरियाळवार तिरुमोळी 4.2.10 -** अगनित समूह में आठों दिशाओं सुन्दर बालायें आकर तिरुमालिरुन्सओलै पर्वत में जमाव करती हैं। भाव है कि एक-दो हजार नहीं वल्कि अनेकों हजार सुन्दर नारियाँ प्रभु के पराक्रम से आकर्षित हुई हैं। **वि.पु. 5.31.18 - षोडशस्त्रीसहस्राणि शतमेकं ततोऽधिकम्। तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान् मधुसूदनः।।** सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं। पाणिग्रहण होते समय भगवान् मधुसूदन ने उतने ही रूप बना लिए। इन रानियों के समान नम्माळवार के भी भगवान् के लिए प्रेम है।

"सौ कौरवों का वध", "फुदकते", "चिकित्सक कहाँ पायें" के प्रसंग - **तिरुवायमोळी 7.3.10 -** आप मकराकृत कुण्डल धारण किये ***मकर-नेडु-कुलै-कादन*** हैं। चक्रधारी प्रभु ने संकल्प मात्र से कौरवों का नाश किया। आपने बहुत समय पूर्व ही मेरे मन का अपहरण किया। कुरुक्षेत्र में कृष्ण

जी के गौरवशाली पदार्पण से दुर्योधन समेत सौ कौरवों का नाश हुआ। उस समय उनके वियोग में द्वारका की रानियाँ विलाप करती हैं। **भागवत 10.90.15 - कुररि विलपसि त्वां वीतनिद्रा न शेषे, स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः। वयमिव सखि कच्चिद् गाढनिर्भिन्नचेता, नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन।।** रानियों के मुग्ध मन सदा कृष्ण भगवान् में ही लीन रहते थे। मुग्धावस्था में शिथिल रानियाँ कुररी, चक्रवाक, कोयल, हंस आदि पक्षियों, चन्द्रमा, समुद्र, बादल, वायु आदि से भावोन्माद में कहती थीं, लगता है कि सबके उद्धार करनेवाले कमलनयन भगवान् के मनमोहक हास, चितवन से आप सब भी मुग्ध-शिथिल हो गये हैं। लगता है अपने खोये हुए श्वेत रंग को प्राप्त करने हेतु सारस आदि रात्रि में विलाप कर रहे हैं। नायकी रूप आळवार के विरह-विलाप में पक्षियाँ भी सम्मिलित दिखती हैं। नायकी की वाणी में **तिरुवायमोळी 2.1.1 -** सागर की तरंगों से वेपरवाह, उसके जल पर मछली हेतु फुदकते सारस-बकी ! मेरी माँ एवं देवगणादि रात में सो रहे हैं परन्तु तुम जाग रही हो। क्या लक्ष्मी के दूलहा प्रभु से मेरी तरह तिरस्कृत होकर तुम भी वेदनाग्रस्त एवं मुर्झाने के लिए छोड़ दी गई हो ? नायकी की माँ की वाणी में **तिरुवायमोळी 4.6.1 -** नारियों ! इस आभापूर्ण ललाट वाली किशोरी के रोग को हमलोगों ने ठीक से परख लिया है। इसका हृदय रथवाहे की चाह में है जिन्होंने महाभारत युद्ध का संचालन कर पाण्डवों को विजय दिलाई थी। कैसे इसकी औषधि व चिकित्सक का पता करें ? **तिरुवायमोळी 4.6.10 -** यह किशोरी कृष्णजी को छोड़कर अन्य का आदर नहीं करेगी। वेद से सम्मानित

द्वारकाधीश की प्रशस्ति गाओ। (राजमन्नारगुडी के राजगोपाल प्रभु को श्री वरवर मुनि स्वामी ने दक्षिण द्वारकाधीश कहा है जबकि यह दिव्यदेश की सूची में नहीं है)। यह किशोरी स्वस्थ होकर प्रेम से अर्चना में नृत्य करेगी।

चूर्णिका 125 -

सूत्र 123, 124 में यह दर्शाया गया है कि नायकीरूपी आळवार प्रभु के दिव्य-महिषियों के अतिरिक्त उनकी अन्य प्रियाओं व पत्नियों के भी सदृश हैं। इस सूत्र 125 में सीता जी के साथ उनकी सदृशता दर्शायी गयी है।

सूत्र 125 (39) - सं. न तिष्ठेदित्युच्यते चेत् न चेति संश्लिष्टपश्चाद् अनुसृत्य वर्त्तमानक्रूरकारागारे च विदित उपायः जीवितादिभिः न्यूनता नास्तित्युपेक्ष्य मरणप्रकारं विषशस्त्राण्यन्विष्य धनुर्वलयुक्तहा इति दया नास्तीति क्रौर्याणि शंकित्वा मामपि जीवन्तीमिति दूतान्प्रेष्य कान्तीमाश्रित्य विश्लेष्टुमशक्ततया पूर्णोपमा महालक्ष्म्या सह।

सामान्य अर्थ - रावण के अतिसुरक्षित कैद में बन्द सीताजी अपने एकमात्र हृदयस्थ प्रियतम रामजी के आगमन की आशा न देख और अपने को उनकी सहानुभूति का पात्र न समझ आत्महत्या का सोचती हैं। कैद में रहते हुए सीताजी रावण को रामजी से वैरभाव छोड़ने का परामर्श देती है क्योंकि रामजी ही सबके प्राप्य परमगति हैं। रामजी के साक्षात् दर्शन के अभाव में सीताजी अपनी देह व आत्मा से घृणा करती हैं। अपनी रक्षा व

किसी दूत का आगमन न देख सीताजी के मन में शंका होती है कि रामजी की करुणा सूर्य की प्रभा की तरह उनके साथ है या नहीं।

विशेषार्थ - वा.रा.2.53.31 - न च सीता त्वयाहीना न चाहमपि राघव। मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याव्-इव-उद्धृतौ।। लक्ष्मण जी कहते हैं - हे राघव! जल से निकाली गयी मछली की तरह आपके बिना न तो मैं और न सीता जी दो घड़ी भी जीवित रह सकते हैं। **वा.रा. 1.77.25 - मनस्वी तद्गतमनास्तस्या ह्रदि समर्पितः। प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति।।** सीताजी के ह्रदयमन्दिर में रामजी सदा विराजमान रहते थे। मनस्वी रामजी का मन भी सीताजी में लगा रहता था। किसी द्रव्य का जातिगुण उस द्रव्य का भी गुण होता है। चक्रवर्ती पुत्र रामजी और सीताजी दोनों की एकात्मता वैसे ही है जैसे जल में मिला जल का रहता है। गोदाजी **नाच्चियार तिरुमोळी 11.7 -** ऊँची दीवारों वाले सम्मान के स्वाभिमानी अरंगम (श्रीरंगम्) के प्रभु ने अपनी पत्नी के लिए भोजन और नींद त्यागकर सागर को नियंत्रित किया। वे ऊँचे किलाबन्द के प्रवेश द्वार रावण के लंका तक पहुँचे। **तिरुवायमोळी 4.8.5 -** कैद में बन्द मृदुभाषिणी सीता। रावण के कैद में बन्द देवों की पत्नियों को मुक्त कराने हेतु सीता जी कैदी बनीं। **तिरुवायमोळी 1.7.6 -** क्या ही आश्चर्य कि आपने एक ही बाण से सात पेड़ों को बेध दिया ! अपने मुकुट पर तुलसीदल की माला धारण करनेवाले प्रभु हमारे ह्रदय में बस गये हैं। क्या कभी भी आपको ह्रदय छोड़कर जाने देंगे ? उनको अपने अन्तःस्थित रहने के अभाव में सीताजी प्राणधारण

करनें में भी समर्थ नहीं हैं। **तिरुवायमोळी 2.6.9 -** हमारे राजकुमार! आप हममें घुल गये हैं, अब कैसे जायेंगे ?

भगवान् का आगमन नहीं हो रहा - गाय के खुर के समान आसानी से लांघे जाने योग्य विरह व्यथा और विशाल सागर जैसा दुर्लंघ्य विरह व्यथा सब में भगवान् की चाह बनी रहती है। सीता जी का सागर के समान विरह में आकर उनको परमपद प्रदान करने में प्रभु समर्थ हैं। **कैद की भयंकर पहरेदारी - तिरुवायमोळी 1.4.1 -** सारस नर तथा मादा, दोनों को पक्षीराज पर सवारी करनेवाले को संवाद देने के लिए कहते हैं, परन्तु दोनों को प्रभु कैद दे देंगे इसका संदेह भी प्रकट करते हैं। पहले से रावण के कैद में बन्द को मुक्त कराने हेतु सीता जी को उसके भयंकर पहरेदारी वाले कैद में कैदी बनाते हैं। **वा.रा. 5.21.20 - विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः। तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि।।** सीता जी के कैद में आने से रावण को ऐसा अवसर मिला है कि अगर वह सभी धर्मों के ज्ञाता एवं शरण में आये की रक्षा करनेवाले रामजी से मित्रता करता है तो उसके प्राण बच जायेंगे। असुर के कैद में बन्द रहने पर भी सीता जी उसका कल्याण चाहती हैं। आळवार भी ऐसी ही भावना रखते हैं - **तिरुवायमोळी 2.8.1 -** संसार-सागर से पार करने की चाहवाले के लिए प्रभु नाव हैं। रामजी के वियोग में सीताजी को कुछ नहीं चाहिए - **वा.रा. 5.26.5 - नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थेर्न च भूषणैः। वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम्।।** महारथी रामजी के बिना राक्षसियों के बीच रहकर

न तो मुझे जीवन से कोई प्रयोजन है, न धन की आवश्यकता है और न आभूषणों से कोई काम है। नम्माळवार भी ऐसा ही कहते हैं - **तिरुवायमोळी 4.8.1 -** ऐसी अपनी देहकान्ति की मैं भी चाह नहीं रखती जिसका भगवान् आदर नहीं करते। तात्पर्य है कि ऐसी आत्मा को रखने से क्या लाभ जो भगवान् से मिलन का आनन्द न दे पाये। सीताजी की प्राण-त्याग की योजना - **वा.रा. 5.28.16 - विषस्य दाता न तु मे अस्तु कश्चित् शस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य।** मैं तीक्ष्ण शस्त्र या विष से शीघ्र प्राण त्याग दूँगी परन्तु इस राक्षस के यहाँ कोई यह देने वाला नहीं है। मन्द विष की अपेक्षा वे तीक्ष्ण शस्त्र की कामना करती हैं जिससे तत्क्षण प्राण त्यागा जा सके। नम्माळवार प्राण त्यागने का साधन खोजते हैं - **तिरुवायमोळी 5.4.3 -** पापिनी, नारी के रूप में जन्म लेनेवाली ! कैसे अपने जीवन का अन्त करूँ, मुझे पता नहीं। सीताजी संकट की घड़ी में रामजी के साथ अन्यों को भी पुकारती हैं। **वा.रा. 5.28.8 - हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे हा राममातः सह मे जनन्यः। एषा विपद्यामि-अहमल्पभाग्या महार्णवे नौरिव मूढवाता।।** हा राम! ....सागर के बवंडर में पड़ी हुई नाव डूब जाती है, उसी तरह आज मैं मन्दभागिनी सीता प्राणसंकट की दशा में पड़ गई हूँ। नम्माळवार इसी तरह रामजी के पराक्रमों की गुहार लगाते हैं। **तिरुवायमोळी 6.10.5 -** सात वृक्षों को एक बाण से छेदने वाले दक्ष धनुर्धर। सीताजी रामजी में दया का अभाव कहती हैं - **वा.रा. 5.26.11 - ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः। सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात्।।** जगत् प्रसिद्ध ज्ञानी, कृतज्ञ, सदाचारी और परम दयालु रामजी पर सीता जी

संदेह करती हैं कि कहीं मुझे हतभाग्य जान मेरे प्रति निर्दय तो नहीं हो गये। नम्माळवार की माँ के मन में संदेह है - **तिरुवायमोळी 2.4.3 -** सीताजी के लिए लंका जलाने वाले प्रभु! आप के लिए आग के संसर्ग से लाह की तरह पिघलती मेरी बेटी पर आप दया नहीं दिखा रहे। हाय! मैं क्या करूँ? नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 36 -** किलेबन्दी से सुरक्षित लंका का नाश करनेवाले प्रभु अपनी शीतल तुलसीदल की माला नहीं देते। आपका ह्रदय दया से द्रवित होकर यह नहीं कहता, "यह किशोरी वेदनाग्रस्त है, यह स्थान इसके लायक नहीं है।" **तिरुवायमोळी 8.1.7 -** तीनों काल में रहने वाले सभी पदार्थ आपके ही स्वरूप हैं। परन्तु पापी मैं ! इस पर भी संदेह करने लगा हूँ। आळवार प्रभु की कृपा पर भी संदेह करने लगे हैं।

रक्षा के लिए दूत का प्रसंग - वा.रा. 5.39.10 - जीवन्तीं मां यथा रामः सम्भावयति कीर्तमान्। तत् त्वया हनुमन् वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि।। हनुमान् ! तुम ऐसी ही बात जाकर कहो जिससे यशस्वी रामजी मेरे जीते-जी यहाँ आकर मुझसे मिलें और मुझे संभाल सकें। इससे तुम्हें पुण्य मिलेगा। तुम लक्ष्मण सहित सुग्रीव तथा अन्य वयोवृद्ध वानरों से मेरा समाचार बताना। तू रामजी को दूत भेज यह बताओ कि मेरे शरीर में प्राण रहने तक हर हाल में वे आकर मेरी रक्षा करें। मधुमक्खी दूत से नम्माळवार की भी ऐसी ही वाणी है - **तिरुवायमोळी 6.1.10 -** विनती है, मेरे बारे में उनसे बताओ कि मैं भी जीवित हूँ। दूत भेजने का भाव है कि जीवात्मा आपसे मिलने के लिए उत्कट है, रोते-रोते आपका ही ध्यान करता है।

सूर्य की रश्मि का प्रसंग - वा.रा. 5.21.15 - अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा। सीताजी कहती हैं - सूर्य के साथ जैसे उसकी रश्मि जुड़ी रहती है वैसे ही मैं रामजी से जुड़ी हुई हूँ। **तिरुवायमोळी 2.3.6 -** सर्वदा हृदय में विराजमान, क्षुद्रविषय कामना दूर करनेवाले, ज्योति स्वरूप, शूर्पणखा का नाक काटनेवाले आपको हमने अनादि काल से प्राप्त कर लिया है। आळवार का भाव है कि शरीर जैसे शरीरी का है और सेवक स्वामी का है, वैसे ही मैं प्रभु का हूँ। **तिरुवायमोळी 6.10.10 -** आप अपने वक्षस्थल पर कभी भी अलग न होनेवाली कमलनिवासिनी लक्ष्मी को धारण करते हैं। सीताजी अपने को भगवान् से कभी अलग न होने वाली बताती हैं, उसी तरह आळवार (**तिरुवायमोळी 6.10.9)** भगवान् के चरण से क्षणमात्र अलग होने के विरह का सहन नहीं कर सकते। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 4.5.5 -** प्रभु सर्वदा भूदेवी एवं लक्ष्मी के साथ रहते हैं। नम्माळवार सर्वदा संयोग या वियोग की अनुभूति में लीन रहते हैं। वियोग के क्षणों में भी उन्हीं से सम्बन्धित वस्तुयें या विचार प्रवाह में अवगाहन करते रहते हैं।

चूर्णिका 126 -

नम्माळवार का लक्ष्मण जी के साथ साम्यता

सूत्र 126 (40) - सं. विश्लिष्यते चेत् न स्थास्ये इत्युक्तेर्बालस्वामी च तज्जले मत्स्यः खलु।

सामान्य अर्थ - सरोवर के जल की मछली की तरह लक्ष्मणजी रामजी अलग नहीं रह सकते।

विशेषार्थ - अकारण करुणावश ही भगवान् समस्त चराचर जगत् के शेषी (स्वामी) हैं। **तिरुवायमोळी 2.3.7 -** प्रभु के बिना मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। **पेरुमाल तिरुमोळी 9.2 -** सुन्दर आँखोंवाली भूषणाभूषित सीता एवं छोटे भाई लक्ष्मण को पीछे-पीछे लिए नंगे पाँव आप वन को चले गये। जब रामजी ने सीताजी तथा लक्ष्मण को साथ वन न जाने का निदेश दिया तब लक्ष्मणजी ने कहा कि सरोवर के जल से अलग की जाने मछली क्षण मात्र जीवित नहीं रहती वही हाल मेरा होगा। नम्माळवार भी इसीतरह नारायण से अलग होकर क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते।

चूर्णिका 127 -

भगवान् के अन्य सहज भक्तों लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-दशरथ-यशोदा-प्रह्लाद -विभीषण-मारुति-अर्जुन से नम्माळवार की सदृशता।

सूत्र 127 (41) - सं. रोदति प्रणमति स्नेहेन वाष्पानञ्जलिभ्यां सह रुचिर-सानुषु आह्वानकालः। अविच्छिन्नदासस्य चरणमेव शरणम् इति खडगं च धनुश्च स्वीकृत्य बन्धुश्च पिता च स एवेति वचनं च माता किं करिष्यति राज्यं अहमेवेति महदैश्वर्यमनपेक्ष्य पादमेव बहित्वा त्वरया आगमनपर्यन्तं नेत्रजले पंकिलां भुवं स्पृश्य कुलस्थालाभश्च असाररहितदास्यम् अनुकूलं किमित्युक्त इन्द्रियग्रहणनित्यशत्रुविचिन्तनं भ्रातरः तत्तत्काले गत इत्युक्त-

मातापितरौ रक्ताग्निः शीतवायुर्बालसर्प इत्यादीन् विरोधं विना चिन्तयित्वा सर्वत्रास्तीति उक्तः पाठशालाबालकः सर्वं त्यक्त्वा अन्यं नास्तीत्युक्तः धर्मात्मा शरान् वर्षयित्वा निर्गुणविश्वात्मन्येव अन्तःस्थिते अन्नत्वेन वीर-चरितमभ्यस्यन्तः भावोऽन्यत्र न गच्छतीति उक्तो रामदासः अनेकप्रकारान् दृष्टवा धवलशंखधररूपपरः श्वेत इत्यादीनां प्रकारः दृश्येरन्।

सामान्य अर्थ - रामजी से वियोग का दुःख न सहन कर सकने के कारण स्नेहवश आँसूभरे नयनों के साथ लक्ष्मणजी ने उतार-चढ़ाई की रमणीक पहाड़ियों से भरे वन में उनकी आज्ञाके अनुकूल सभी कैंकर्य करने हेतु साथ चलने का निवेदन किया। धनुष-बाण-खड्ग से युक्त उन्होंने अपने को रामजी का सुहृद, कुटुम्ब तथा पिता के समान स्नेही समझा। नम्माळवार भी भगवान् के साथ इसी तरह से जुड़े हैं। माता की स्वार्थपरकता के कारण भरतजी ने उनपर आक्रोश व्यक्त करते हुए राज्य तथा अपार धन का त्याग कर दिया। वन से लौटने की भरतजी की विनती को रामजी ने ठुकरा दिया। उनकी पादुका को अपने माथे पर रखकर भरतजी लौट आये। पादुका के सहारे ही वन से रामजीके अयोध्या वापस आने तक अश्रुपूरित आँखों के साथ राज-काज चलाया और अपने कुल की मर्यादा को अक्षुण्ण रखा। भरतजी के सारे गुण नम्माळवार में पाये जाते हैं। रामजी को निहारते रहने से राजा दशरथ कभी तृप्त नहीं हुए। जमीन पर गिरे हुए यमलार्जुन वृक्षों के बीच से भगवान् कृष्ण को चोटग्रस्त होने की आशंका के भय से गोद में उठाकर यशोदाजी बड़े प्रेम से पुचकारती है।

आळवार में भी इसीतरह माता-पिता का वात्सल्य प्रदर्शित होता है। आळवार प्रह्लादजी जैसे दिखते हैं जिन्होंने भगवान् को सर्वव्याप्त समझ कर शत्रु पर विजय पाई। प्रह्लादजी ने भगवान् को आग की लाल-लपट में, ठंढी हवा में, छोटे सर्पों में, सर्वत्र अप्रकट रूप से विराजमान देखा था। अपना सर्वस्व त्यागकर धर्मात्मा विभीषण की तरह आळवार ने भगवान् को एकमात्र शरण्य माना। भगवान् को अपने ह्रदयस्थ देखते हुए हनुमान् जी सर्वदा उनके ही चरितगान को अपना भोज्य मानते हुए आनन्दित होते रहते हैं। रामजी के अनन्य सेवक हनुमान् जी जैसे सब गुण आळवार में वर्तमान हैं। अर्जुन को भगवान् के विराट स्वरूप की झाँकी के आनन्द जैसा आळवार भी आनन्दित रहते हैं।

विशेषार्थ - 1. लक्ष्मणजी एवं नम्माळवार - बचपन से लक्ष्मण रामजी के अनुरागी थे। **वा.रा. 1.18.28 - बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।** लक्ष्मी की वृद्धि करनेवाले लक्ष्मण बचपन से ही रामजी के प्रति अत्यन्त अनुराग रखते थे। **वा.रा. 2.31.1 - वाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन्।** आँसुओं से भींगे मुखमण्डल वाले लक्ष्मण के लिए भाई के विरह का शोक असह्य हो उठा। **वा.रा. 2.16.26 - लक्ष्मणं द्वारि सोऽपश्यत् प्रह्वञ्जलिपुटं स्थितम्।** द्वार पर विनीतभाव से हाथ जोड़े खड़े लक्ष्मण को देखा। पञ्चवटी में आश्रम निर्माण हेतु लक्ष्मण का अद्भुत् शेषत्वभाव - **वा.रा. 3.15.7 - परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते। स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद।।** हे काकुत्स्थ मैं सैकड़ों वर्षों तक आपकी

आज्ञा के अधीन हूँ। स्वयं ही आप सुन्दर स्थान देखकर मुझे वहाँ आश्रम बनाने की आज्ञा दें। **वा.रा. 2.31.27 - भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते। अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च।।** आप विदेहकुमारी सीता के साथ पर्वतशिखरों पर भ्रमण करेंगे। वहाँ आपके जागते-सोते सब समय हम आपकी सेवा में लगे रहेंगे। चित्रकूट के सुरम्य शिखर या घाटी में आपके भ्रमण करते समय आपके आदेशानुसार सभी तरह के कैंकर्य में हम लगे रहेंगे। **वा.रा. 2.31.24 - कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।** आप मुझे अपना अनुगामी बना लीजिए। इसमें आपको धर्म की कोई हानि नहीं होगी। अनुगामी अर्थात् विना किसी विच्छेद के वे कैंकर्य करते रहना चाहते हैं। **वा.रा. 2.31.2 - स भ्रातुश्चरणौ गाढ़ं निपीड्य रघुनन्दनः। सीतामुवाच-अतियशां। राघवं च महाव्रतम्।।** रघुकुल को आनन्दित करनेवाले लक्ष्मण ने बड़े भाई रामजी के चरण को जोर से पकड़ लिया, और तब अत्यन्त यशस्विनी सीता तथा महान् व्रतधारी रामजी से बोले। पुरुषकारपूर्वक श्रीपादों को पकड़कर सभी आयुधों से युक्त लक्ष्मण ने रामजी का अनुशरण किया। **वा.रा. 3.11.1 - अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना। पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।।** आगे-आगे रामजी, बीच में परम सुन्दरी सीता और उनके पीछे हाथ में धनुष लिये लक्ष्मण चलने लगे। **वा.रा. 2.58.31- भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघव।** रघुकुलनन्दन रामजी ही हमारे भाई, स्वामी, बन्धु-बान्धव तथा पिता हैं। रामजी को ही सर्वे-सर्वा मानकर लक्ष्मणजी अपने दासत्व भाव को स्पष्ट करते हैं।

नम्माळवार की अभिव्यक्ति भी इसी तरह की है। **तिरुवायमोळी 2.3.3 -** हम अज्ञानता की अवधि में माया के भ्रम में पड़े थे। हमारे हृदय में प्रवेश करके आपने भक्ति के प्रेम का अंकुरारोपन किया। स्वभाववश वियोग विरह न सहने के कारण कुमारावस्था से मेरा व्यवहार प्रभु के दास की तरह हो गया। **तिरुवायमोळी 7.2.8 -** नायकी स्नेहवश रोती है तथा प्रणाम करती है। **तिरुवायमोळी 3.3.1 -** हमें जल के झरनों वाले वेंकटम् गिरि के तेजोमय प्रभु के पार्श्व भाग में रहकर प्रत्येक समय निष्ठा से उनकी सेवा अवश्य करनी है। आप हमारे पिता के पिता हैं। **तिरुवायमोळी 3.3.10 -** फणधारी शेषशायी वेंकट प्रभु के चरणारविन्द को पकड़ो। **तिरुवायमोळी 6.10.10 -** हे वेंकट प्रभु ! आप अपने वक्षस्थल पर कभी भी विलग न होनेवाली कमलवासिनी लक्ष्मी को सर्वदा धारण करते हैं। लक्ष्मीजी की उपस्थिति से प्रभु के श्रीपाद पुरुषकारपूर्वक प्राप्त होते हैं। **तिरुवायमोळी 8.5.7 -** धरा को मापने वाले प्रभु के श्रीपाद की सेवा का अवसर मिले। **तिरुवायमोळी 5.8.7 -** अपनी करुणा से आपने हमें अपना बंधुआ दास (किंकर) बना लिया। यह कैंकर्य का भाव शरीर से प्राण के निकलने तक ही न बने रहकर परमपद में भी वर्तमान रहे। **तिरुवायमोळी 5.10.11 -** एकाग्र चित्त से शेषशायी प्रभु के चरणारविंद की एकमात्र आश्रय के रूप में अर्चना करे। सीताजी की पुरुषकारपूर्वक उपस्थिति से लक्ष्मणजी की सेवा स्वीकृत हुई। **तिरुवायमोळी 8.3.3 -** भगवान् अपनी सेवा करनेवाला एक नौकर भी नहीं रखते। शंख-चक्र को स्वयं उठा रहे हैं, तलवार व धनुष लेकर कोई उनके पीछे-पीछे नहीं आता। श्रीचरण व भुजाओं में चित्त लगाकर

प्रेम से हाथ जोड़ने वाला भी नहीं दिखता। इस जगत् में यह दास ही सदा उनके साथ रहना चाहता है। **तिरुवायमोळी 5.1.8 -** आप इस अधम हृदय में आकर बस गये हैं। आज से शेषी सर्वेश्वर हमारे माता, पिता, संतान, संपत्ति, मत्स्य-नयना पत्नी एवं सबकुछ हैं। लक्ष्मण जैसे रामजी के पीछे सब दिव्य आयुधों से युक्त चलने की कामना करते हैं और इन्हें ही अपना माता-पिता आदि सबकुछ मानते हैं, उसी तरह आळवार भी अपने पदों से सदा रामजी के साथ रहने की कामना व्यक्त करते हैं।

2. भरतजी एवं नम्माळवार - माँ के व्यवहार से कुपित भरतजी रामजी को मनाने चित्रकूट जाते हैं। उनके नहीं मानने पर उनकी पादुका लेकर लौटते हैं। वन से उनकी अयोध्या वापसी तक रोते-रोते सब राज-काज चलाते हैं। **वा.रा. 2.78.22 - हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।** इस दुष्ट आचरण करनेवाली पापिनी कैकेयी को मैं मार डालता (परन्तु इस बात का भय है कि रामजी मुझसे घृणा करने लगेंगे)। **वा.रा. 2.82.12 - राज्यं चाहं च रामस्य -** इस राज्य तथा मेरे रामजी स्वामी हैं। दासभाव से भरतजी ने राज चलाया। **वा.रा.1.1.33 - गते तु तस्मिन् भरतो वसिष्ठ-प्रमुखैर्द्विजैः। नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद् राज्यं महाबलः।।** राजा दशरथ के स्वर्गगमन के पश्चात् वसिष्ठ तथा अन्य प्रमुख ब्राह्मणों द्वारा राज्य संचालन के लिए नियुक्त किये जाने पर भी महाबली भरत ने राज्य की कामना नहीं की। **वा.रा. 4.18.6 - इक्षवाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।** पर्वत, वन और काननों से युक्त यह सारी पृथ्वी इक्षवाकुवंशी राजाओं की

है। **वा.रा. 2.101.12 - एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया। भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।।** समस्त मन्त्रियों के साथ आपके चरण में माथा रखकर याचना करता हूँ कि आप राज्य ग्रहण करें। मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ। आप मुझ पर कृपा करें। रामजी की सम्मति न मिलने पर भरतजी पादुका की याचना करते हैं। **वा.रा.1.1.37- पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनः पुनः।** राज्य के चिह्न के रूप में रामजी ने अपनी खड़ाऊँ भरत को देकर बार-बार आग्रह करके लौटा दिया। **वा.रा.2.113.1 - ततः तु शिरसा कृत्वा पादुके भरतस्तदा। आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नेन समन्वितः।।** तब रामजी के दोनों चरणों की पादुकाओं को भरत अपने माथे पर रखकर शत्रुघ्न के साथ प्रसन्नतापूर्वक रथ पर बैठे। लंका का युद्ध समाप्त होने पर रामजी भाई भरत के लिए बहुत चिन्तित थे। विभीषण को शीघ्र पुष्पक लाने को कहते हैं। **वा.रा.6.121.19 - शिरसा याचतस्तस्य वचनं न कृतं मया।** चित्रकूट में भरत ने मेरे चरण पर माथा रखकर निवेदन किया था, परन्तु हमने उसकी बात नहीं मानी थी। **वा.रा. 6.121.6,7 -** उस धर्मात्मा कैकेयीनन्दन भरत को देखे विना स्नान करना, वस्त्र और अलङ्कार धारण करना मुझे अच्छा नहीं लगता। अतएव कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मैं तुरन्त अयोध्यापुरी पहुँच जाऊँ। जिस रास्ते से हमलोग अयोध्या से आये हैं वह रास्ता तो बड़ा दुर्गम है। **न मे स्नानं बहु मतं वस्त्राण्याभरणानि च। तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।6।**

इत एव यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम्। अयोध्यामागतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः।7। रामजी अयोध्या के लिए त्वरित गति से प्रस्थान कर गये। वहाँ भरतजी रामजी के विरह वियोग में अतिविकल थे। **वा.रा. 6.124.4 - पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते।** भरद्वाज मुनि ने कहा - शरीर में धूल लपेटे, जटा बढ़ाये हुए भरत तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बड़े भाई के रहते छोटा भाई राजमुकुट नहीं धारण करता, भरत ने इक्ष्वाकु कुल की इस मर्यादा की रक्षा की है। **वा.रा.1.1.38 - स काममनवाप्यैव -** मनोवांछित रामजी का कैंकर्य करने की भरत की इच्छा पूरी न हुई थी।

भरतजी की तरह नम्माळवार प्रभु के कैंकर्य करने के लिए सुयोग्य पात्र हैं। जब पुत्र को मनोवांछित फल प्राप्त करने में माँ उसे रोकती है तब वह माँ को शत्रुवत् देखता है। भगवद्-संश्लेष में लौकिक विषय-वस्तु प्रतिबन्धक होने के कारण नम्माळवार के लिए माँ की तरह शत्रुवत् हैं। **तिरुवायमोळी 5.3.6 -** माता जो करें, नगरवासी जो कहें, मुझे कोई क्षति नहीं है। भरतजी माँ पर कुपित हो गये। **तिरुवायमोळी 2.9.9 -** अपने वास्तविक स्वरूप को न जानकर मैंने सोचा मैं स्वयं हूँ। परन्तु हम और हमारा सबकुछ आपका है। हम आपके श्रीपाद के बन्धुआ नौकर हैं। **तिरुवायमोळी 4.9.4 -** अपार संपत्ति तृष्णा को प्रज्वलित करती है। अपनी दया से इनचीजों से अलग कर अपने श्रीपाद का उपहार दीजिए। **तिरुवायमोळी 8.2.1 -** मैं वेंकटम् प्रभु का पीछा कर रही थी। भरतजी रामजी से मिलने चित्रकूट गये थे और इसी तरह से आळवार मानसिक संकल्प से वेंकटम् प्रभु से मिलन के

आनन्द का उल्लेख करते हैं। **तिरुवायमोली 4.9.9 -** आप हमारे माथे पर अपना श्रीचरण धारण कराकर हमें भ्रमण करा रहे हैं। भरतजी माथे पर पादुका धारण करते हैं और आळवार माथे पर चरण धारण करते हैं। **तिरुवायमोळी 7.2.1 -** नायकी की माँ की वाणी - रात दिन सोती नहीं, रोती रहती है। चुल्लु भर-भर कर आँसू फेंकती है। भरतजी के धूल-धूसरित शरीर से सदृशता है। आळवार आँसू के पङ्क वाली भूमि पर लोटकर प्रभु से मिलन का आनन्द लेती है। **तिरुवायमोळी 9.2.2 -** प्रपन्न कुल की मर्यादा का पालन करते हुए बन्धुआ सेवक की तरह हम पीढ़ी दर पीढ़ी आपके श्रीचरण की सेवा में रत रहे हैं। भरतजी ने जैसे इक्ष्वाकु कुल की मर्यादा निभाई वैसे ही आळवार प्रपन्न कुल की मर्यादा निभाते हैं। **तिरुवायमोळी 2.1.3 -** नायकी सागर को उलाहना देती है - रात-दिन हृदय विदारक लहरों से पुकारती रहती हो। भरतजी की तरह प्रभु से मिलन हेतु अपनी हर तरह की वेदना का आळवार उल्लेख करते हैं।

3. शत्रुघ्न जी एवं नम्माळवार - भरतजी के कैंकर्य में लगे रहने वाले शत्रुघ्नजी यही समझते थे कि यह रामजी की सेवा है। **वा.रा.2.1.1 - गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः। शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः।।** ननिहाल जाते समय निष्पाप भरतजी बड़े प्रेम से जितेन्द्रिय शत्रुघ्नजी को अपने साथ ले गये। ज्ञानेन्द्रियाँ नित्य शत्रु हैं, इनपर नियंत्रण रखनेवाले, अर्थात् जितेन्द्रिय ही नित्यशत्रुघ्न हुए। भागवत भरतजी को शत्रुघ्नजी बहुत प्रिय थे। भागवत का प्रिय भगवान् का प्रिय

होता है। **वा.रा. 2.3.29 - रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम्।** रूप और उदारता आदि गुणों से रामजी सबकी दृष्टि और मन अपनी ओर खींच लेते थे। कहते हैं पुरुष भी नारी के वेष में रामजी का कैंकर्य करते हुए उनके रूप का आनन्द लेते थे। भरतजी का एकाग्रचित्त से कैंकर्य करने में रामजी के सौंदर्य के प्रति स्वाभाविक आकर्षण को शत्रुघ्न प्रतिबन्धक मानते थे। भागवत भरतजी की सेवा का लक्ष्य रखते हुए वे रामजी का विचिन्तयन् (**वा.रा.2.89.3**) करते थे। भरतजी रामजी का श्रद्धापूर्वक आदर करते थे और शत्रुघ्न भी उसी तरह से रामजी का श्रद्धापूर्ण आदर करते थे। वे ऐसा समझते थे कि रामजी को आदर करने से भरतजी उनपर प्रसन्न रहेंगे। **वा.रा. 2.89.3 - जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्यं विचिन्तयन्।** भैया मैं भी आपकी तरह आदरणीय रामजी का चिन्तन करते हुए सोया नहीं जाग रहा हूँ। इस भाव के सन्दर्भ में नम्माळवार की वाणी - **तिरुवायमोळी 8.10.9 -** आपके भक्तों के सेवकों की मैं एकमात्र सेवा करना चाहता हूँ। यह कोई पहले चरण का उपाय न होकर उनका अन्तःस्वभाव का बोध कराता है। **तिरुवायमोळी 8.10.3 -** अपना दासानुदास बनानेवाले प्रभु के भागवतों के रहते हुए, उनकी सेवा छोड़, हमारे स्वामी कमलनयन वामन भगवान् के सुगन्धयुक्त श्रीपादकमलों को प्राप्त करना, यह क्या हमारे लिए उचित होगा ? भगवान् राम के शरीर एवं सौंदर्य ज्ञानेन्द्रियों को मोह लेते हैं जो भागवतों (उनके भक्तों) के कैंकर्य में शत्रुवत् प्रतिबन्धक हो जाते हैं। **कण्णिनुण् शिरूताम्बु 3 -** नम्माळवार की भक्ति में मधुरकवि आळवार कहते हैं - जहाँ कहीं भी जाता हूँ अपने देवापिरन् (शठकोप स्वामी)

एवं उनके मनोहारी मुखमंडल को ही देखता हूँ। आळवार तिरुनगरी के स्वामी (कुरुगुर के शठकोप स्वामी) की सेवा से मैं उनका कृपापात्र बन गया हूँ। प्रभु के भक्तों की सेवा ही प्रभु का कैंकर्य है। **तिरुवायमोळी 8.10.4 -** भगवान् का मनोहर श्रीविग्रह मेरे ध्यान का लक्ष्य हो, उनके योग्य फूल हस्तगत हों और उनके भागवतों के कैंकर्य में भाग लूँ, अर्थात् भगवान् की कृपा से ये सब पूरे हो जायें, तो परमपद न जाकर अगर संसार में ही रह जाऊँ, तो भी मेरी कौन सी हानि होगी ? नम्माळवार के मन में सदा भागवतों के कैंकर्य का ध्यान रहता है और इसी के सहारे वे भगवान् के ध्यान से लाभान्वित होते हैं। जैसे शत्रुघ्नजी ने भरतजी का कैंकर्य किया, उसीतरह आळवार ने भागवतों का कैंकर्य किया।

4. राजा दशरथ, यशोदाजी एवं नम्माळवार - वा.रा. 2.3.30 - न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः। आते हुए रामजी को एकटक देखते हुए राजा दशरथ को तृप्ति न हुई। वे बार-बार अपनी अतृप्त आँखों से उनको ही निहारते। **तिरुवायमोळी 2.5.4 -** सर्वदा हमें अतृप्त रखनेवाले अमृत, हर क्षण, हर दिन, हर मास, हर वर्ष, हर युग एवं युग-युगान्तर से नूतन फल के ताजे रस की तरह बहते रहते हैं।

यशोदाजी का प्रसंग - वि.पु. 5.6.16 - यमलार्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षणः। माँ को गृह-कार्य में व्यस्त देख कमलनयन कृष्ण भगवान् ऊखल से बन्धे ही उसे खींचते-खींचते यमलार्जुन के बीच में गये। ऊखल से उलझ कर दोनों वृक्ष गिर पड़े। यशोदाजी ने दोंनो वृक्षों को असुर समझ भगवान् को

उठाकर चोट की आशंका से उन्हें पुचकारने लगीं। यशोदाजी को इस घटना में भगवान् कृष्ण की युवास्था की झाँकी मिली। वृक्षों में असुरों की आशंका से उन्होंने वृक्षों को देखा तक नहीं। **तिरुवायमोळी 5.1.2 -** शहद की तरह मधुर हमारे अमृत! आप अर्जुन वृक्षों में घुस गये। अतीतकाल की घटना को वर्तमान की तरह देखते हुए आळवार ने अपने हृदय के ताप को पिता तथा माता की तरह अभिव्यक्त किया है।

5. प्रह्लाद जी एवं नम्माळवार - प्रभु को सर्वत्र विराजमान देखनेवाले प्रह्लादजी की तरह आळवार को अपने शत्रुओं पर विजय मिली है। **वि.पु. 1.19.59 - नाग्निर्दहति नैवायं शस्त्रैश्छिन्नो न चोरगैः। क्षयं नीतो न वातेन न विषेण न कृत्यया।।** हिरण्यकशिपु प्रह्लादजी के बारे में बोलता है - इसे न तो अग्नि ने जलाया, न यह शस्त्रों से कटा, न सर्पों से नष्ट हुआ और न वायु, विष तथा कृत्या (राक्षसी) से ही इसका क्षय हुआ। **वि.पु.1.17.39 - स त्वासक्तमतिः कृष्णे दश्यमानो महौरगैः। न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्लादसुस्थितः।।** किन्तु प्रह्लादजी को तो भगवान् कृष्ण में आसक्तचित्त रहने के कारण उनके स्मरण के परमानन्द में लीन रहने से महासर्पों के काटने पर भी उन्हें अपने शरीर की सुधि नहीं रही। **वि.पु.1.19.37 - सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये। परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः।।** प्रह्लादजी पिता से कहते हैं - तात ! सबके अन्तर्यामि, जगत्-स्थित, जगत् के नाथ, परमात्मा गोविन्द में शत्रु-मित्र की बात ही कहाँ है ? यह जगत् भगवान् का शरीर है। **तिरुवायमोळी**

2.8.9 - किशोर प्रह्लाद ने पिता से कहा - कृष्ण सर्वत्र है। **वि.पु 6.4.29 - उर्व्याम् अस्ति (उर्वीं महांश्च जगतः...)** वे सबमें हैं। **वि.पु.1.2.12 - सर्वत्रास्ति (सर्वात्रासौ समस्तं च .....)** वे सर्वत्र हैं। **तिरुवायमोळी 4.4.3 -** नायकी की माँ की वाणी - "लाल अंगारे" को "**अच्युत**" कह आलिंगन करती है, परन्तु जलती नहीं। "ठंढ़ी हवा" को धीरे से हाथ से चलाकर कहती है, "**मेरे गोविन्द आ गये।**" **तिरुवायमोळी 4.4.5 -** "बाल साँप" का पीछा कर कहती है, "यह रहा गोविन्द की शय्या।" कष्टदायी वस्तुयें, "लाल अंगारा", "ठंढ़ी हवा" और "साँप" का सन्दर्भ नम्माळवार को बाधक न दिखकर भगवद्-आत्मीयता की अनुकूलता को प्रश्रय देनीवाली दिखती है। **तिरुवायमोळी 2.6.6 -** हे छलांग भरते नरसिंह मूर्ते ! आपने दुष्ट-विचार वाले हिरण्य की भारी छाती को चीरकर अलग कर दी। आपकी प्रशस्ति के पदों को गाते हुए हमने सहर्ष नृत्य कर अनादि कालिक कर्मों को समूल नष्ट कर दिया। अब, हमारे लिए कोई असाध्य कार्य होगा क्या? आळवार ने निरन्तर नारायण के दिव्य गुणों का ध्यान किया है। "अप्रकट रूप से विराजमान" का प्रसंग - **तिरुवायमोळी 1.1.10 -** प्रलयकाल में जगत् को निगलने वाले शीतल सागर में शयन करते हैं। सागर-जल की हर बूँद में हैं, अखिल ब्रह्माण्ड में हैं, सम्पूर्ण हैं, पृथ्वी पर हैं, आकाश में हैं, हर अणु - परमाणु में सदा के लिए सब जगह छिपे हैं। प्रह्लादजी का सहज आध्यात्मिक स्वभाव - परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 2.3.8 -** पाठशाला से लौटते नारायण के हजार नामों को गाते सुन हिरण्य उसे अनेकों यातनायें देता है। अतः नम्माळवार एवं प्रह्लाद जी के सहज स्वभाव समान हैं।

6. विभीषण एवं नम्माळवार - घर, परिवार आदि सबका त्याग करके विभीषण जी रामजी की शरण में आते हैं। **वा.रा.6.17.16 - त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः।** स्त्री-पुत्र को छोड़कर रामजी की शरण में आया हूँ। **वा.रा. 6.19.5 - परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च। भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च।।** अपने सभी मित्र, धन और लङ्का को मैं छोड़ आया हूँ। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन है। **तिरुवायमोळी 8.2.11 -** भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द के लिए अपनी सारी कामनाओं का त्याग कर दिया। **तिरुवायमोळी 3.6.8 -** आप दशरथ के पुत्र के रूप में आये और आपके सिवा मेरा कोई आश्रय नहीं है। **वा.रा. 3.17.23 - विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः।** शूर्पणखा तीसरे भाई विभीषण के बारे में कहती है - वह तो धर्मात्मा है और उसके आचार-विचार राक्षस जैसे नहीं हैं। **वा.रा. 3.37.13 - रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।** मारीच रावण से कहता है - रामजी धर्म के मूर्तिमान् स्वरूप हैं और सरल तथा सत्यनिष्ठ हैं। आळवार विभीषण की तरह धर्मात्मा एवं भगवद्-निष्ठ हैं।

7. आञ्जनेय एवं नम्माळवार - नारायण स्वरूपी रामजी के दिव्य गुणों एवं नाम संकीर्तन में निरन्तर लीन रहने के कारण हनुमान् जी के हृदय में परमात्मा सदा विराजमान रहते हैं। प्रमाण के दृष्टान्त - **महाभारत वनपर्व 147.8 - निर्गुणः परमात्मा तु देहं व्याप्यावतिष्ठते।** भीमसेनने हनुमान् जी से कहा– निर्गुण परमात्मा आप में व्याप्त होकर स्थित है।

हनुमान् जी ने भीम के विरोधभाव को निर्मूल किया। **वा.रा.117.13 - भवान् नारायणो देवः।** रामजी से ब्रह्मा ने कहा - आप स्वयं नारायण हैं। **भागवत 8.3.26 - विश्वात्मानम् अजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्।** सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं। जगत् के आत्मभूत श्रीचक्रवर्तीकुमार को आञ्जनेय अपने हृदय में धारण करते हैं। कुरेश स्वामी **अतिमानुषस्तव 32 - सोऽत्रैव हन्त ! हनुमान् परमां विमुक्तिं, बुद्धवाऽवधूय चरितं तव सेवतेऽसौ।।** जानते हुए मोक्ष की उपेक्षा करके हनुमान् रामजी का चरित-गान करते हुए यहीं धरापर विराजते हैं। उनके वीर-चरित की अनुभूति से आनन्दित रहते हैं। **वा.रा.7.40.16 - स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा। भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु।।** महाराज ! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे। वीर ! आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके सिवा और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। नम्माळवार की अनुभूति - **तिरुवायमोळी 8.6.2 -** बाण-वर्षा से युद्धोन्मत्त राक्षसों का अन्त करने वाले महावीर ही दिव्य-देश तिरुक्काडित्तान तथा मेरे हृदय में एक साथ ही विराजते हैं। रामजी का कीर्तिगान - नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 78 -** सदा टंकार करते शारङ्ग-धन्वा प्रभु की गौरव-गाथा से अपनी भूख की तृप्ति करो जो कि अक्षय भोज्य पदार्थ हैं। गाथा-गान के अलावे कोई अन्य विषय नहीं - **तिरुवायमोळी 7.5.1 -** क्या कोई विद्वान् राजा राम को छोड़कर दूसरे के बारे में अध्ययन करेगा? "**पर**" तथा "**अवतार**" स्वरूप में रामजी के समान आनन्ददायी और परोपकारी कोई अन्य नहीं हैं। **तिरुवायमोळी 3.6.8 -** दशरथकुमार के अतिरिक्त मेरा कोई आश्रय नहीं है। यह आलवार के दास

भाव का बोधक है। जैसे - **वा.रा.5.43.9 - दासोहं कोसलेन्द्रस्य ।** आञ्जनेय ने अपने आपको रामजी का दास बताया। प्रमाणित होता है कि आञ्जनेय तथा आळवार के सहज अन्तःस्वभाव में हर तरह से अतिनिकटता है।

7. अर्जुन एवं नम्माळवार - श्वेत घोड़े पर सवारी करनेवाले अर्जुन को श्वेत शंखधारी भगवान् कृष्ण के पवित्र विराट् स्वरूप की झाँकी मिली। **गीता 11.15 - पश्यामि देवांस्तव देव देहे, सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्। ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ- मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।** अर्जुन ने कहा - हे भगवान् कृष्ण! मैं आपके शरीर में सारे देवताओं तथा अन्य विविध जीवों को एकत्र देख रहा हूँ। कमल पर आसीन ब्रह्मा, शिव तथा समस्त ऋषियों एवं दिव्य सर्पों को देख रहा हूँ। अर्जुन को जड़-चेतन के साथ उनके विश्वरूप के दर्शन का व्यक्तिगत आनन्द मिला। तद्नन्तर उनकी स्थिति - **गीता 11.45 - अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा, भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। तदेव मे दर्शय देव रूपं, प्रसीद देवेश जगन्निवास।।** पहले कभी न देखे गये आपके इस विराट रूप का दर्शन करके मैं हर्षित हो रहा हूँ, और मन में भय भी हो रहा है। अतः देव! वही रूप मुझको दिखलाइये। अतः देवेश! जगन्निवास! प्रसन्न होइये। **गीता 11.46 - किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव। तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन, सहस्रवाहो भव विश्वमूर्ते।।** मैं आपको वैसा ही मुकुटधारी, गदाधारी और हाथ में चक्र धारण किये देखना चाहता हूँ। सहस्रवाहो! विश्वमूर्ते! आप उसी पूर्ववत् चतुर्भुज रूप से युक्त हो जाइये। इस विश्वरूप दर्शन के फलस्वरूप अर्जुन

को नारायण प्रभु के दिव्य आयुधों से युक्त उनके चतुर्भुज स्वरूप की अपने-आप अनुभूति होती है।

नम्माळवार की दिव्य अनुभूति - **तिरुवायमोळी 6.3.1 -** हम प्रभु को सर्वत्र देखते हैं। आप अनेकों तरह से प्रकट होते हैं - गरीबी एवं सम्पन्नता, स्वर्ग एवं नरक, शत्रुता एवं मित्रता, विष एवं औषध। आप हमारे नाथ हैं और सम्पन्न लोगों के साथ दिव्यदेश **तिरुविन्नगर** में रहते हैं। आळवार को प्रभु के विश्वरूप सदृश परस्पर विरोधी एवं अनुकूल स्वरूप की अनुभूति होती है। **तिरुवायमोळी 6.9.1 -** हे जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु एवं महाकाश रूप में विराजमान ! हे तेजोमय सूर्य-चन्द्र रूपिन्! हे शिव ब्रह्मा रूपिन्! तीक्ष्ण चक्र व श्वेत शंखराज धारणकर मुझ पापी के लिए एक ही बार क्यों न इधर पधारते हैं जिससे धरती व स्वर्ग दोनों सन्तुष्ट हो उठे। अर्जुन की तरह नम्माळवार भी अन्ततः उनके शंख-चक्रधारी स्वरूप का ही दर्शन करना चाहते हैं। भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 24 -** घृणा के युद्ध में आप संचालक होकर **श्वेत** सात्विकता के प्रतीक अर्जुन को युद्ध के लिए उत्प्रेरित कर क्रोध उत्पन्न किया एवं युद्ध कराया। सूत्र में भी **"श्वेत"** शब्द का प्रयोग हुआ है जो श्वेत-सात्विक आळवार के साथ-साथ अर्जुन के श्वेत घोड़ा का प्रतीक है। **वि.पु. 1.15.156 - उपमानमशेषाणां साधूनां यः सदाभवत्।** जो समस्त साधु व्यक्तियों के लिए दृष्टान्त स्वरूप हुए। विष्णु पुराण का यह वाक्य धर्मप्राण प्रह्लादजी के प्रसंग में है जो यहाँ आळवार के गुणों का बोधक है। लक्ष्मणजी से लेकर

अर्जुन तक के सभी महापुरुषों के भगवद्-स्नेह के सदृश नम्माळवार भी सतत् भगवान् की निकटता के भाव में ही विचारमग्न पाये जाते हैं।

चूर्णिका 128 -

अब तक के सभी उपमानों से नम्माळवार श्रेष्ठ पाये जाते हैं।

सूत्र 128 (42) - सं. वेणौ मनः अपक्षयरहित-रसयुक्तानाममीषां समो न।

सामान्य अर्थ - भगवान् सभी से स्नेह रखते हैं और अन्यों से सर्वथा भिन्न, उन्होंने पूरी सहृदयता से नम्माळवार को प्रेमासिक्त किया है।

विशेषार्थ - नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 3 -** नप्पिनाय, भूदेवी एवं श्रीदेवी को छाया की तरह साथ रखने वाले गोपकुल के वांसुरी वादन करते प्रभु। श्रीमन्नारायण नित्यसूरि एवं दिव्य-महिषियों पर पूरी सहृदयता से प्रेम वर्षाते हैं। **तिरुवायमोळी 1.9.3 -** अनन्त गौरव के निर्मल प्रभु! देवताओं के आदि कारण! मिलन का आनन्द देते आप मुझमें प्रवेश कर गये हैं। दिव्य-महिषियों, नित्यसूरियों - गरुड़ तथा शेषादि सबोंको प्रभु समान रूप से प्रेम करते हैं। इन सबों को सर्वदा साथ रखनेवाले प्रभु नम्माळवार के साथ अविचल संश्लेष (संयोग) बनाये रखना चाहते हैं। अपनी पूरी कृपाके साथ आळवार से मिलन का अतिशय आनन्द बनाये रखना चाहते हैं। पूर्व के सूत्रों के सभी व्यक्तियों एवं सभी अन्यों के समेकित प्रेम-कृपा से अधिक उनका आळवार पर प्रेम है। दशरथ का प्रेम अवतार की आंशिक अवधि तक ही सीमित है। लौकिक लगाव के कारण दशरथ का प्रभु-प्रेम अल्प

कालिक है। उनके विषय-विशेष का वैराग्य और उनका प्रभु-भक्ति से लगाव मध्यम कोटि का होते हुए का किसी विशेष काल-खंड तक ही सीमित है।

प्रभु से लक्ष्मण का लगाव "पर" तथा "अवतार" दोनों अवस्थाओं में समान रूप से है। उन्होंने भक्ति को सर्वोपरि प्राथमिकता दी है। नम्माळवार की भक्ति तथा प्रभु से लगाव के आनन्द की उत्कण्ठा **"पर", "व्यूह", "अवतार", "अन्तर्यामी"** तथा **"अर्चा"** की अवस्थाओं में समान रूप से देखी जाती है। पूर्वोक्त सूत्रों में जबकि आळवार को इन लोगों से साम्यता दिखायी गई है परन्तु यहाँ लेखक ने स्पष्ट रूप से आळवार को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

चूर्णिका 129 -

नम्माळवार का आचार-विचार सीताजी तथा नित्यसूरियों के समान

सूत्र - 129 (43) - सं. सर्वकालं चेति यथा प्रकाशेत तथा जनित्वा अलंकृत्य वीज्यमंगलाशासनं कृत्वा अरण्यस्य प्रथमं निर्गत्य धर्ममुक्त्वा श्रुत्वा शिष्या दासा भक्तानां प्रकारेण गीत्वा संबाह्य अद्यागत्य उक्तवतीश्च गच्छति चेदारोहः निवासदासभेदं धृत्वा वर्त्तमानान् तान् स्वयं भावयति।

सामान्य अर्थ - भगवान् के सतत् कैंकर्य की इच्छा से श्रीदेवी अनेकों जन्म लेती हैं। अलंकृत कर उनका पंखा झलने के साथ वनगमन काल में धर्म के बारे में परामर्श देती है। भक्त की तरह भूदेवी जैसी श्रीपाद सेवा, आज्ञा सुनना, पूजा करना तथा दासी एवं पत्नी की तरह सेवारत रहते हुए अनुग्रह के लिए विनती करती है। यथानुकूल विभिन्न उपकरणों से शेषजी कैंकर्य करते हैं। नाम संकीर्तन करते गरुड़जी कोंकर्यरत रहते हैं। आळवार भी इनसबों की तरह प्रभु की सेवा करते हैं।

विशेषार्थ - भूदेवी के स्वरूप में अवतार लेकर गोदाजी तीनों दिव्य महिषियों की तरह कैंकर्यरत रहती हैं। **तिरुप्पावै 29 -** सात-सात जन्मों अर्थात् अनेकों जन्म-जन्मान्तरों में उनके कुल-परिवार सम्बन्धी बनकर शेष-शेषी भाव से प्रभु की प्रसन्नता हेतु कैंकर्य करना चाहती हैं। **वि.पु. 1.9.145 - देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी। विष्णोर्देहानुरूपां वै करोति एषात्मनः तनुम्।।** भगवान् के देवरूप होनेपर श्रीलक्ष्मीजी दिव्य शरीर धारण करती

हैं और मनुष्य होने पर मानवीरूप से प्रकट होती हैं। जगत्-व्यवस्था हेतु देव या मनुष्य के शरीर में आवश्यकतानुसार विभिन्न वर्ण-धर्म के अनुरूप प्रभु आते हैं। उनकी प्रिय महिषी भी उन्हीं के अनुरूप देह धारण करती हैं। **वि.पु. 1.9.144 - राघवत्वेऽभवत्सीता।** श्रीहरि के राम होने पर ये सीताजी हुईं। वनगमन के पूर्व युवराज के रूप में राज्याभिषेक के अवसर पर ये रामजी को अभिषेक के अनुरूप अलंकृत करती हैं। इनके पार्श्वभाग में बैठकर सीताजी स्वयं चँवर झलती हैं। **वा.रा.2.16.9 - वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगन्धिना। अनुलिप्तं परार्घ्येन चन्दनेन परंतपम्।।** रघुनाथजी के श्रीअङ्गों में सूकर-रक्त की भाँति लाल, पवित्र और सुगंधित उत्तम चन्दन का लेप लगा हुआ है। **वा.रा. 2.16.10 - स्थित्या पार्श्वतश्चापि वालव्यजन-हस्तया। उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा।।** देवी सीता उनके पास से स्वयं चवँर झल रही है। सीता के अत्यन्त समीप बैठे रामजी चित्रा से संयुक्त चन्द्रमा की तरह शोभा पा रहे हैं। **वा.रा. 2.16.21 - पति सम्मानिता सीता भर्तारमसितेक्षण। आ द्वारं अनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी।।** पति रामजी से सम्मानित कजरारे नयनों वाली सीताजी उनका मङ्गल चिन्तन करती साथ-साथ द्वार तक पहुँचाने के लिए जाती हैं॥ **वा.रा.2.16.24 - पूर्वं दिशं वज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः। वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम्।।** आपकी पूर्व दिशामें इन्द्र, दक्षिण दिशा में यमराज , पश्चिम दिशामें वरुण और उत्तर दिशामें कुबेर रक्षा करें।

वन में साथ-साथ चलकर अपनी सेवा बताती हैं- **वा.रा. 2.27.7 - अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ति कुशकण्टकान्।** मैं रास्ते के कुश और काँटों को कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी। अन्ततः वन में साथ जाती हैं और दण्डकारण्य में पहुँचकर धर्मोपदेश की बात करती हैं। **वा.रा. 3.9.13, 14, 15 - नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान् प्रति। कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम।13।** वीर ! मुझे इस समय आपका दण्डकारण्य में जाना अच्छा नहीं लगता है। इसका कारण बता रही हूँ, सुनिये।

त्वं हि बाणधनुष्पाणिभ्रार्त्रा सह वनं गतः। दृष्टवा वनचरान् सर्वान् कच्चित् कुर्याः शरव्ययम्।। आप हाथ में धनुष बाण लेकर अपने भाई के साथ वन में आये हैं। सम्भव है, समस्त वनचारी राक्षसों को देखकर कदाचित् आप उनके प्रति अपने बाण का प्रयोग कर बैठें।

क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च। समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयते भृशम्।। जैस आग के समीप रखे हुए ईंधन उसके तेजरूप बलको और उदीप्त कर दते हैं, उसी प्रकार जहाँ क्षत्रिय के पास धनुष हो तो वह उनके बल और प्रताप को जगा देता है। सीताजी को आशंका है कि हाथ में धनुष-बाण रहने से युद्ध की संभावना रहती है। कहती हैं - **वा.रा.3.9.30 - धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।** धर्म से अर्थ प्राप्त होता है और धर्म से सुखका उदय होता है। धर्म के बारे में इसतरह कहकर वे बताती हैं कि आयुधों को त्याग कर वनवास की अवधि में तपस्वी की तरह रहकर धार्मिक कृत्य करना ही रामजी के लिए उचित होगा।

वराह भगवान् के मुख से सुने हुए परमधर्म के प्रकरण में भूदेवी की उक्ति है - **अहं शिष्या च दासी च भक्ता च त्वयि माधव। मत्कृते सर्वभूतानां लघूपायं वद प्रभो।।** हे माधव! मैं आपकी शिष्या, दासी और भक्त हूँ। जीवों के कल्याण के लिए कोई सुगम उपाय बताइये। **तिरुप्पावै 27 -** प्रभु की आज्ञा के अनुपालन में भूदेवी के रूप में गोदाजी उनकी प्रशंसा के पद गाती हुईं अपने को पूर्णतया अलंकृत होकर भगवान् के दिव्य खीरान्न प्रसाद प्राप्त हो जाने का उल्लेख करती हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 7.8.1 -** कमल सी लक्ष्मी तथा भूदेवी क्षीरसागर में शेषशायी प्रभु की चरणसेवा कर रहीं हैं। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 9.7 -** अगर मेरे नैवेद्य को वे आज स्वीकार कर लेते हैं तो मैं इसे एक सौ गुना हजार बार समर्पित करुँगी। भूदेवी की यह उक्ति उनके दास्यभाव के कैंकर्य का बोधक है।

शेषजी एवं गरुड़जी के कैंकर्य - सरोयोगी **मुदल तिरुवन्दादि 53 -** तिरुमल (प्रभु) के पास एक नाग है। जब आप चलते हैं तो वह छत्र बन जाता है। जब आप बैठते हैं तो वह सुन्दर सिंहासन बन जाता है। जब आप खड़ा होते हैं तो वह पादुका बन जाता है। जब आप गहरे सागर में शयन करते हैं तो वह सुकोमल शय्या बनता है और बाँह को टिकने का आधार (तकिया) प्रदान करता है। उसकी आँखें ज्योति प्रदान करती हैं। यामुनाचार्य स्वामी **स्तोत्र रत्न 40 - निवास-शय्यासन-पादुका-अंशुक, उपधान-वर्षा-आतप-वारणादिभिः। शरीरभेदैस्तव शेषतां गतैः, यथोचितं शेष इतीरिते जनैः।।** शेषजी प्रभु के अद्भुत कैंकर्य शैया, सदन, पादुका, सिंहासन, पीताम्बर,

तकिया, वर्षा तथा गर्मी के ताप से निवृत्ति हेतु छाता आदि बनकर करते हैं। प्रभु के आवश्कतानुसार उसी तरह का शरीर धारण कर (उपकरण बनकर) उनकी सेवा करते हैं। इसीलिए शेष (शेष-शेषी यानि सेवक-स्वामी) कहे जाते हैं। **तिरुवायमोळी 10.2.3 -** विश्व को निगल कर पुनः बनानेवाले प्रभु अपने वाहन गरुड़ से चिह्नित ध्वज के साथ तिरुअनन्तपुर नगर में शयन कर रहे हैं। अगर विश्वासपूर्वक वहाँ जाओगे तो तुम्हारे सारे विषाद मिट जायेंगे। हजार नाम में से किसी एक भी नाम का जप करो। **स्तोत्ररत्न 41 - दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो, यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः। उपस्थितं तेन पुरो गरुत्मता, त्वदङ्घ्रिसम्मर्द किणाङ्कशोभिना।।** ऋक्, यजु, साम वेदों की ध्वनि जिनके पंखों से होती है, ऐसे गरुड़जी आपके दास, सखा, वाहन, सिंहासन, ध्वजा, छत्र, पंखा आदि रूपों में कैंकर्यरत, आपके चरणारविन्द के संघर्षण से उत्पन्न चिह्न से सुशोभित, आपके सामने हाथ जोड़ कर उपस्थित रहते हैं।

नम्माळवार ने अपने आप को इनलोगों के समान समझ कैंकर्य आकांक्षी भाव में पदों की रचना करते हैं। **तिरुवायमोळी 6.5.10 -** नायकी की माँ की वाणी में - क्या यह किशोरी नप्पिनाय है, या भूदेवी है, या लक्ष्मी है। **तिरुवायमोळी 3.3.1 -** प्रभु के पार्श्वभाग में रहकर प्रत्येक समय एवं सर्वदा पूर्णनिष्ठा से उनकी सेवा करनी है। प्रभु की दिव्य महिषियों तथा नित्यसूरि (शेष तथा गरुड़) की तरह आळवार उन्हीं के रूपों में भगवद् कैंकर्य में लगे रहने के दिव्य आनन्द में डूबे रहते हैं।

चूर्णिका 130 -

द्रौपदी एवं कौसल्या का प्रसंग आळवार के प्रसंग से तुच्छ हैं।

सूत्र 130 (44) - सं. भासमानैकविग्रहे नाशयति सति कर्त्तव्याविच्छिन्न-दासस्य पाञ्चालीकृता कौसल्यानुवृत्तिश्च साम्यवचनं स्थूलम्।

सामान्य अर्थ - द्रौपदी का सौंदर्य तथा कौसल्या का सेवा भाव आळवार का भगवान् से तत्सम्बन्धि लगाव की तुलना में तुच्छ हैं।

विशेषार्थ-तिरुवायमोळी 5.5.10 - जबसे हमने देवों से पूजित शाश्वत यशवाले तिरुकुरुंगुडी के प्रभु को देखा है, सौंदर्य के ज्योतिप्रवाह विखेरते उनका वदन हमारे हृदय में प्रकट दिखता है जो दूसरों की समझ से परे है। भगवान् अपने अद्भुत् सौंदर्य की आभा के कारण ही सबों से भिन्न हैं। **वा.रा. 2.3.29 - पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम्।** अपने रूप से लोगों की दृष्टि और मन को आकर्षित कर लेते हैं। पुरुषगण स्त्री बनकर सौंदर्यलाभ लेना चाहते हैं। नम्माळवार भी नायकी भाव में भगवान् के दिव्य सौंदर्य का आनन्द लेते हैं। **द्रौपदी का प्रसंग** - गोविन्दराज भूषण टीका **वा.रा.2.3-27-29** द्रष्टव्य - **पाञ्चाल्याः पद्मपत्राक्ष्याः स्नायन्त्या जघनं घनम्। याः स्त्रियो दृष्टवत्यस्ताः पुंभावं मनसा ययुः।।** द्रौपदी को स्नान करते उसके सुन्दर अंगों को देखकर स्त्रियाँ पुरुषभाव में चली गईं। सांसारिक नारी द्रौपदी के सौंदर्य के प्रति आकर्षण भी सांसारिक काम भावनाओं से जुड़ा है। नम्माळवार का नायकी भाव भगवान् के दिव्य-स्वरूप में लीन रहता है

जो सांसारिक वासनात्मक भाव से रहित है। द्रौपदी के प्रति आकर्षण भगवान् के प्रति आकर्षण से अत्यन्त न्यून कोटि का है। **कौसल्या का प्रसंग - तिरुवायमोळी 3.3.1 -** निरन्तर सेवा का भाव। शेषी भगवान् से आळवार की भक्ति शेषत्व भाव से ओतप्रोत है। **वा .रा. 2.12.68 - यदा यदा च कौसल्या दासीभाव च सखीव च। भार्यावद् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति।।** राजा दशरथ का कैकेयी के प्रति उलाहना - मेरे प्रियतम पुत्र की माँ कौसल्या जब-जब दासी, सखी, पत्नी, बहिन और माता की भाँति मेरा प्रिय करने की इच्छा प्रकट करती, तो तेरे कारण मैं उसकी उपेक्षा करता। कौसल्या का अपने पति के प्रति प्रेम राजा की रुचि एवं स्वभाव के वशीभूत तथा परिस्थिति एवं समय की अनुकूलता पर आधारित है। यह आळवार का भगवान् के प्रति प्रेम से सर्वविध न्यून है। अतः द्रौपदी और कौसल्या, आळवार से हर तरह से निम्न कोटि के हैं।

चूर्णिका 131 -

आळवार का प्रेम सर्वदा उफानों से परिपूर्ण है।

सूत्र 131 (45) - सं. अभिवृद्धा नदी अनेकशिरोभिः समुद्रं यथा गच्छेत् तथा शिथिला परवश चञ्चलं भिदुरं सद् यथा भग्ना भवेत्तथा अभिवृद्धा आशा समुद्रस्थानं स्वीकृत्य वर्तमानसमुद्रं बहुमुखत्वेन अवगाहेत्।

सामान्य अर्थ - बड़ी नदी कई धाराओं में बँटकर समुद्र में मिलती है। नम्माळवार का द्रवीभूत भगवद् प्रेम अपनी सभी धाराओं से दिव्य क्षीर सागर में मिल गई है।

विशेषार्थ - वर्षाती छोटी धरायें बड़ी नदी में मिल जाती है। पहाड़ी तथा विभिन्न क्षेत्रों के भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाहित होकर अन्ततः समुद्र में मिल जाती है। सरोयोगी **मुदल तिरुवन्दादि 67 -** सारी नदियों का सागर ही अन्तिम लक्ष्य है। इसीतरह भक्तों की द्रवीभूत भक्ति सभी भाव-प्रवाहों के साथ भगवान् के श्रीचरणों पर पहुँचकर आश्रय प्राप्त कर लेती है। **तिरुवायमोळी 6.5.2 -** नायकी की माँ की वाणी में - यह भावग्रस्त किशोरी गिरकर पिघल रही है। **तिरुवायमोळी 5.8.1 -** अतृप्त अमृत! प्रथम प्रभु! मेरा शरीर आपके प्रेम में पिघलता है। आपने हमें रुलाकर अशान्त जल की तरह तड़पन की स्थिति में रखा है। हम शिथिल हो रहे हैं - **तिरुवायमोळी 9.6.2 -** हर विचार एवं शब्द से मेरा हृदय शिथल हो रहा है। **तिरुवाय. 9.3.6** - उनके विषय (लक्ष्मीजी के बाहु का आलिंगन, असुरों से घोर युद्ध, अमृत-मंथन) में चिन्तन से मेरा हृदय शिथिल हो रहा है। भाव है कि प्रभु के असंख्य दिव्यगुण वाले स्वरूप की चिन्तन में आळवार का शिथिल हृदय बर्फ की तरह पिघल कर पानी हो रहा है, परन्तु उनके करुणार्द्र हृदय में मिल रहा है। **तिरुवाय. 9.6.1 -** मेरा प्रेम तरंगों जैसा उमड़ रहा है। **तिरुवाय.5.5.10 -** माँ की वाणी में - इस किशोरी का प्रेम प्रतिदिन बढ़ ही रहा है। सभी सीमाओं को लाँघ रहा है। **तिरुवाय.7.2.7 -** काल चक्रधारी,

समुद्रशायी श्रीरंगम के प्रभु! सौंदर्य का एक समुद्र क्षीरसागर के दूसरे समुद्र में अन्य स्वरूपों के श्रम को श्रमहारी-विशिष्ट स्वरूप में शयन कर रहे। मुख्य नायकी, माँ तथा सखी के भाव की सभी भक्ति-धारायें प्रभु-प्रेम के क्षीरसागर में ही अन्ततः समाहित हो रही है।

चूर्णिका 132 -

आळवार की सीमातीत भक्ति

सूत्र 132 (46) - सं. अच्छेद्यमित्युक्तं छेदनार्हं भवति, दहनयोग्यं भवत्यार्द्रं भूत्वा शोषयतीति वचनयोग्यं चित्ते सहायं न भवानीति विश्लेष्ट करणेषु प्रकारं प्राप्तेषु शरीरे आत्मधम गृहीतवति वायुं लवणकुल्यामाश्लिष्य रोदन-योग्यायाः महाभक्तेः शास्त्रोक्तक्रमो नास्ति खलु।

सामान्य अर्थ - आत्मा को टुकड़े-टुकड़े नहीं किया जा सकता। परन्तु इसके टुकड़ो में बँटना, पिघलना, सूखना, चेतन का अचेतन बनना, देह का आत्मावत् व्यवहार, नमक-झील का हवा से सूखना आदि लक्षणों से युक्त आळवार की भक्ति शास्त्रों से समर्थित नहीं है।

विशेषार्थ - गीता 2.24 - अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता, हवा सुखा नहीं सकती एवं यह नित्य (आदि-अन्त रहित), सर्वव्यापी, स्थिरस्वभाव, अचल और सर्वदा एक समान है। **तिरुवाय.9.9.6 -** ब्रह्मा, शिव एवं लक्ष्मी को

साथ रखनेवाले प्रभु ने हमारी आत्मा को शुष्क कर दिया है। भगवान् में सर्वविध लीन आळवार की यह सहज उन्मादपूर्ण स्थिति की वाणी है, न कि भगवान् के दिव्यगुणों पर शास्त्र विरोधि होने का कोई दोषारोपण। **तिरुवाय.10.3.7 -** हमारा हृदय आग में मोम की तरह पिघल रहा है। **तिरुवाय.6.7.9 -** माँ की वाणी में - जितनी अच्छी वस्तुयें हो, वह अपने कृष्ण के लिए रखती है। **तिरुवाय.2.1.10 -** रात-दिन की अनवरत प्रज्वलित प्रेमोन्माद की अग्नि से मेरी क्षीण आत्मा के अन्तः को जला डाला है। **तिरुवाय. 8.2.10 -** मेरा हृदय मुझे छोड़कर चला गया और कह गया, "अबसे तुम्हारा नहीं"। भागवत-प्रावण्य के कारण आळवार की चेतन आत्मा ने उनके जड़ शरीर का त्याग कर दिया है। संन्यास ग्रहण के समय संन्यासी कहता है - **सन्नयस्तं मया -** प्रभु की चिन्ता में ही मेरा त्याग किया है। प्रभु से विश्लेष की स्थिति में आळवार की वेदना प्रकट होती है। **तिरुवाय. 3.8.1 -** देवों से श्रेष्ठ प्रभु! - इस तरह की उक्ति ज्ञान की स्थिति में ही हो सकती है। प्रेमोन्माद में शरीर के सभी अवयव अपने काम के अतिरिक्त दूसरे का भी काम करने को उतारु रहते हैं। **तिरुवाय 5.8.1 -** अतृप्त अमृत! प्रथम प्रभु! मेरा शरीर आपके प्रेम में पिघलता है। आपने हमें रुलाकर अशान्त जल की तरह तड़पन की स्थिति में रखा है। भगवत्-प्रेम के वशीभूत शिथिल आत्मा देह में रहते हुए पिघलती है। गुफा-विशेष में जब स्वर्ण पिघलाया जाता है तब वह गुफा भी पिघलती है। इसी तरह आत्मा के साथ देह भी पिघलती है। **तिरुवाय. 2.1.4 -** सागर, पर्वत एवं आकाश से बहनेवाली शीतल वायु! मेरी तरह, दिन या रात, तुम्हें भी

चैन नहीं। **तिरुवाय. 2.1.8. -** पिघलती हुई अन्धकार की तरह हे सागर के नमकीन जल प्रवाह! तुम्हें भी कभी चैन नहीं। हवा स्वाभाविक रूप से चञ्चल है। सागर किनारे के नमक-झील का जल हवा के साथ चञ्चल रहता है जबकि उसके स्वभाव में चञ्चलता नहीं है। आत्मा शाश्वत है परन्तु अपने स्वभाविक गुण को भूलकर अपने को अज्ञानग्रस्त शरीर तथा अन्य जड़ वस्तुओं की तरह भगवान् के वियोग-विरह में वेदनाग्रस्त हो जाती है। **तिरुवाय. 2.1.7 -** अपने क्षीण हृदय को प्रभु के पास गँवाकर अपने असह्य दुर्भाग्य पर रोती हूँ एवं शोकग्रस्त हूँ। आत्मा तो अविनाशी है परन्तु अपने को शरीर समझ नष्ट होने की कल्पना करती है। **तिरुवाय. 7.3.8 -** तुम सभी एक हो प्रभु से हाथ मिलाकर मुझ पर दोषारोपण करती हो। **तिरुवाय. 4.4.10 -** मेरी बेटी उन्मादपूर्ण प्रेमरोग से ग्रस्त है। चेतन का ज्ञान कृत्य और अकृत्य का निर्णय करता है। तिरुवल्लूवर रचित तमिल-काव्य **तिरुकोलूर 1147 -** काम उद्दीपक मधुर गीत का उर्वरक नारी-वाणी है और माँ के कठोर वचन सींचने का जल है।

कहा है - **अपरिच्छेद्यभक्तेः (अत्यन्त भक्तियुक्तानां) न शास्त्रं नैव चक्रम्-** अनन्य भक्तिवालों के लिए न तो कोई शास्त्र है और न कोई निर्धारित क्रमानुसार नियम है। भक्ति के दिव्य आनन्द के सहारे नम्माळवार को परमपद की अनुभूति हुई है। परकाल स्वामी **तिरुक्कुरुन्दाण्डगम् 10 -** अपने चरणों में भक्तिपूर्वक प्रेम दीजिए। दिव्यात्माओं के सभी कार्यकलाप भगवद्भक्ति से युक्त रहते हैं। ये लौकिक कामनाओं से रहित और शास्त्रिय

नियमों से नियन्त्रित नहीं होते। **बृहदारण्यक उपनिषद् 2.4.5** - **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।** याज्ञवल्क्य जी मैत्रेयी से कहते हैं - हे प्रिय! यह आत्मा ही देखने (जानने) योग्य है, सुनने योग्य है, मनन करने योग्य है तथा निदिध्यासन (ध्यान) करने योग्य है। आळवार की भक्ति किसी वस्तु से बदलकर नहीं मिलनेवाली है। यह हृदय के सहज स्वभाव से आती है और सीमातीत है तथा किसी नियम के परे है। सूत्र 118 से इस सूत्र तक के तथ्यों से स्पष्ट है कि भक्ति से सम्बर्द्धित आळवार भगवान् के दिव्यगुणों से अभिभूत होकर नायकी की वाणी में स्वयं बोलते हैं। छः गुणों से युक्त लक्ष्मी जी (श्रीदेवी) से इनका साम्य होते हुए, ये भूदेवी यशोदाजी तथा अनन्त आदि नित्यसूरि की तरह भगवान् से जुड़े हैं। नायकी के स्वरूप में द्रौपदी एवं कौसल्या से इनकी तुलना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए आळवार को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

चूर्णिका 133 -

आळवार नायकी, सखी तथा माँ के स्वरूप में।

सूत्र 133 (47) - सं. सम्बन्धोपायफलेषु ज्ञानाऽध्यवसायत्वराख्यप्रज्ञावस्था-नाम् सखी माता पुत्रीति नाम।

सामान्य अर्थ - सखी, माँ तथा नायकी क्रमशः प्रज्ञावस्था (ज्ञान, अध्यवसाय या दृढ़ प्रयत्नशील तथा त्वरा), उपाय एवं फल हैं।

विशेषार्थ - प्रज्ञावस्था के तीनों अंग का तात्पर्य है - सम्बन्ध के ज्ञान की समझदारी सखी भाव में, उपाय में दृढ़ विश्वास माँ के भाव में और फल में त्वरा स्वयं नायकी भाव में। श्रीमन्नारायण नायकी के प्रेमी हैं। नायकी स्वयं ही अपनी माँ एवं सखी के भाव में रहती हैं। नायकी एक मात्र अपने प्रेमी श्रीमन्नारायण को समर्पित है। सनातन काल से जीव का भगवान् से सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का ज्ञान प्रज्ञा अवस्था से मिलता है। जीव का चैतन्य नायकी की सखी है जो आळवार स्वयं हैं। माँ जन्म देकर पालती है और सामाजिक रीति-रिवाजों का निर्वाह करती है।

जो भगवान् को ही उपाय मानते हैं शीघ्र ही वे कल्याण को प्राप्त करते हैं। आळवार इसी शीघ्रता (त्वरा) में कोई विलम्ब का सहन नहीं कर पाते हैं और फलस्वरूप विरह-वेदना के शिकार हो जाते हैं। इसी कारण वे प्रचलित प्रथा से हटकर स्वयं अपने प्रेमी दुलहा भगवान् से मिलने घर से (मानसिक रूप से) बाहर निकल जाते हैं। माँ परम्परा का उल्लंघन होते देख बेटी पर रोक लगाने का प्रयास करती है। भक्त के प्रपन्नकुल मर्यादा में शेषी को स्वयं पधारकर शेष को स्वीकार करने का प्रचलन है। इसी कारण माँ बेटी पर निषेध लगाने को प्रयत्नशील रहती है। आळवार का भगवान् से हर-हाल में शीघ्रति-शीघ्र मिलने की त्वरित उत्कण्ठा ही श्रीमन्त्र के "**नमः**" पद का भाव है। इसी को प्राप्त करने हेतु आळवार का अपने उपाय (भगवान्) पर दृढ़ विश्वास है जो माँ का प्रतीक है। जीव ही पुत्री है

और भगवान् से विरह की आळवार की संवेदना वे अपनी माँ की वाणी में अभिव्यक्त करते हैं।

श्रीमन्त्र का "**नारायण**" पद भगवान् के आकर्षक सौंदर्य, स्वरूप, दिव्यगुणों तथा विभूति का प्रतीक है। प्रज्ञावस्था का **फल प्राप्ति में त्वरा** तिरुवायमोळी का अधिकांश भाग है जो नायकी की स्वयं की वाणी है। भगवद्-संश्लेष के फल प्राप्ति में विलम्ब को दूर करने हेतु त्वरित उत्कण्ठा ही पुत्री (नायकी) की वाणी है।

ज्ञानावस्था का प्रयोग न करके इस सूत्र में **प्रज्ञावस्था** कहा जाना अत्यन्त सटीक है। ज्ञानावस्था की सीमा केवल स्वयं का ज्ञान है जबकि प्रज्ञावस्था में सखी, माँ तथा नायकी की प्रेमाभिषिक्त वाणी से आळवार ने समय एवं स्थान की सीमा से अपने को मुक्त रखा है। प्रज्ञावस्था की तीनों अवस्थायें सर्वकालिक हैं जो "**प्रज्ञा त्रैकालिकी मता**" उक्ति से प्रमाणित होता है। जैसे श्रीमन्त्र के तीनों पदों का ज्ञान सर्वकालिक है वैसे ही प्रज्ञावस्थायें त्रैकालिक अर्थात् सर्वकालिक हैं।

चूर्णिका 134 -

नम्माळवार की सखी, माँ तथा पुत्री (नायकी) के रूप में मानसिक अवस्थायें

सूत्र 134 (48) - सं. सखींभ्रान्तिं निवर्त्य आशां छित्वा धर्मेण सह स्थिति-त्रयेषु दशकेषु अनन्यार्हत्वं च प्रमुष्य कृषित्वा भ्रमित्वा आवेशवाक्यमुक्त्वा सर्वं त्यकत्वा विश्लिष्य मरणनिश्चयं साधनं भवति किमिति माताभीतिं

प्राप्य घोषं कृत्वा घोषप्रकाशक-सप्तस्वनध्यवसायश्च पुत्री अनेककालं दूतान् प्रेष्य विश्लेषव्यथाम् उक्त्वा अनादरविषयान् त्यक्त्वा जगत्क्षोभयोग्यं मण्डलं गृहीत्वा नेत्रे आच्छाद्य गत्यन्तरं त्यक्त्वा विग्रहे मनसि प्रकाशमाने प्राप्ति-दिनानि अन्विष्य विलम्बस्य प्रकुप्य सहायं त्यक्त्वा बाधकवर्गे एकमुखेन बाधिते अवरोधमतिक्रम्य मरणे व्यवसायं कृत्वा सायं प्रातः घोषप्रकाशक-सप्तदशसु त्वरा च ज्ञायेत।

सामान्य अर्थ - संयमित व्यग्रता, संयमित उतावलापना और अनन्यता , ये तीनों **अनन्यार्हत्व** के लक्षण **तीन दशकों (4.6, 6.5, 8.9) में हैं जो सखी भाव के बोधक** हैं। **अध्यवसाय** (सतत प्रयत्नशीलता) साधन रूपी माँ के भाव को बताता है। मूर्च्छा, क्षीणकाय, बढ़ता उन्माद, भावावेश भरी उक्ति, व्यामोह, विश्लेष और संश्लेष - ये **सात दशकों (2.4, 4.2, 4.4, 5.6, 6.6, 6.7, 7.2) में माँ के भाव** में होते हैं। प्रभु से मिलन की त्वरा में **पुत्री (नायिका) के सत्रह (17) दशक** में युक्तियों एवं लक्षण - **प्रथम चार दशक (1.4, 6.1., 6.8, 9.7)** की युक्तियों में दूत भेजने की क्रिया है। इसके बाद के तेरह **दशक (2.1, 4.8, 5.3, 5.4, 5.5, 5.9, 6.2, 7.3, 7.7, 8.2, 9.5, 9.9, 10.3)** हैं - 1.अपने दुर्भाग्य पर विषाद, 2.प्रभु की उदासीनता से कोई क्षति नहीं, 3.मडल (सूखे ताड़ वृक्ष की घुड़सवारी से नगर-भ्रमण), 4.उदास आँखों के सामने युग-युगान्तर का घोर अंधकार, 5.हृदय में चमकते स्वरूप का प्रकाश, 6.कब प्रभुके श्रीपाद से मिलेगी, 7.प्रभु का गेंद एवं डंडा लौटाकर लुप्त होना, 8.इस क्षण कौन सहायता

करेगा, 9.सर्वत्र उनके स्वरूप का दर्शन, 10.आज से अब कोई नाता नहीं, 11.क्षीणकाय होने से गहनों का ढ़ीला होकर गिरना, 12.सायं काल पूजा रत हो जाना, 13.प्रातः काल पूजा रत हो जाना।

विशेषार्थ - 1. आळवार सखी रूप में - सखी वाणी **तिरुवायमोळी 4.6, 6.5 तथा 8.9** तीन दसकों में है। **दसक 4.6** की वाणी - मानसिक रूप से पुत्री (नायकी) को **तुलैविल्लीमंगलम्** के खड़े मुद्रा के देवपिरान एवं बैठे मुद्रा के अरविन्दलोचन से **(तिरुवाय. 6-5)** मिलन का आनन्द में मिल चुका है। उनसे वियोग होने पर अचेत हो गयी है। माँ अचेतावस्था का कारण जब स्वयं नहीं समझ पाई तब भविष्यवाणी करनेवाली क्षुद्र देवता के उपासक एक वनवासिनी नर्तकी से सम्पर्क कर उसके क्षुद्र देवता के लिए मांस तथा ताड़ी की व्यवस्था (**तिरुवाय. 4.6**) करने का सोंचती है। तब नायकी की सखी उसकी माँ को ऐसा करने से मना करती है और उचित उपाय बताती है। देवपिरान से नाता हटाकर क्षुद्र देवता की आराधना की तुलना एक किसान एवं गधा से करती है। एक बार एक गधा किसी किसान के खेत के अन्न की क्षति पहुँचा रहा था। किसान जब आया तब वह गधे का अन्न खाते जबड़े के परिचालन देखने में तल्लीन हो गया और फसल की रक्षा भूल गया। इसी तरह माँ भी बेटी की रक्षा हेतु देवपिरान से प्रार्थना न कर वनवासिनी के क्षुद्र प्रयास का भरोसा करती है। नायकी के उपचार में भगवान् ही एक मात्र उपाय हैं और इसके लिए उचित धर्म का पालन करने को कहती है। शुभ कृत्य की महत्ता के सन्दर्भ

में सखी उपनिषद का उद्धरण देती है। **तैत्तिरीय आरण्यक 10.63 तथा महानारायण उपनिषद् अनु. 22 - धर्मेण पापमपनुदति -** शुभ कृत्य से पाप का क्षय होता है। भगवान् अन्तर्यामी स्वरूप में सभी देवों के हृदय में वसते हैं। नायकी पर भगवान् की अकारण कृपा रहती है। अर्चावतार (तुलैविल्लीमंगलम् के देवपिरान) पर स्नेह रखने से वे नायकी को अपना कृपा-पात्र बनाये हुए हैं। लौकिक कृत्यों से इसका उपचार संभव नहीं है। इसकी भगवत्-विरह वेदना के एकमात्र वही स्वयं उपचार हैं। लौकिक उपचारों से उसकी आत्मा के मूल स्वभाव की क्षति होगी। भगवान् से शेष-शेषी सम्बन्ध बनाये रखना ही इसका मूल स्वभाव है। **तिरुवायमोऴी 4.6.1** नायकी की ही उक्ति है जिससे सिद्ध होता है कि अन्य उपचार आत्मा के स्वरूप विरोधि होंगे।

सखी का कहना है कि इसे अकेले छोड़ दीजिए। अपने आप प्रेमी के श्रीपाद को प्राप्त कर लेगी। इसके लिए अर्चावतार देवपिरान सुगम उपाय हैं। उनपर इसे पूर्ण विश्वास है कि उनके असंख्य दिव्यगुणों की इसे अवश्य अनुभूति होगी। त्वरा (अति शीघ्रता) से लक्ष्य-प्राप्ति में विलम्ब होने पर ही दुःख उत्पन्न होता है। नायकी की संश्लेष की त्वरा वियोग-विरह का कारण है। नायकी को आशंका है कि कहीं **साधन उपाय** में वह तत्पर तो नहीं हो जायेगी। इसलिए मन की व्यग्रता को छोड़ना चाहती है। प्रभु के दासत्व का ज्ञान ही उनसे सम्बन्ध स्थापित करता है। भक्ति उपाय में उनसे संश्लेष की त्वरा को छोड़ा नहीं जा सकता। त्वरा की भावना भगवान्

को भी प्रिय है। इसका **साध्य भक्ति** से सम्बन्ध नहीं है। भगवान् से संयोग को यह त्वरित कर देता है और आत्मा के साथ संयोग भगवान् को भी प्रिय है। उनकी महानता की अनुभूति **सिद्धोपाय** से होती है। त्वरा का त्याग करने पर जीवात्मा को स्वातन्त्र्य के अहंकार से उसके सहज स्वभाव का धीरे-धीरे नाश करता है। इससे जीवात्मा का उनपर **आत्यन्तिक पारत्रन्त्य शेषत्व** की अनुभूति का ह्रास होने लगता है।

सखी वाणी **तिरुवायमोळी 6.5** - अर्चा-विग्रह से स्नेह रखने पर भगवान् सुगमता से प्राप्त होते हैं। नायकी का **तुलैविल्लीमंगलम्** के देव से अत्यन्त लगाव हो गया है। उनको याद कर अचेत हो जाती है। **तिरुवायमोळी 4.6** में सखी ने कहा है कि माँ इसका क्षुद्र लौकिक उपचार करना चाहती है। सखी माँ को क्षुद्र उपचार करने से मना करती है। भगवान् में दृढ़ विश्वास से व्यग्रता संयमित हो जाती है। उनसे सम्बन्ध-ज्ञान ही इसमें सहायक होकर दिशा निर्देश करता है - 1. प्रभु के लिए जीव की व्यग्रता उनको भी प्रिय है। व्यग्रता अपना उपक्रम (साधन) नहीं माना जाता। साधन तो सदा भगवान् ही रहते हैं। 2. प्रभु का दिव्य स्वरूप ही व्यग्रता और त्वरा का कारण है। 3. व्यग्रता स्वभाविक है, इसलिए इसे रोका नहीं जा सकता।

सखी वाणी **तिरुवायमोळी 8.9 -** केरल का पुराना नाम कुट्टनाडु या कुट्टनाट्टु है। वहाँ के दिव्यदेश **तिरुप्पुलियूर** के अर्चाविग्रह से नायकी की घनिष्ठता बहुत बढ़ गयी है। उसकी देह की कान्ति, मन, वाणी तथा दैनिक व्यवहार आदि से सखी समझ जाती है कि नायकी **तिरुप्पुलियूर** के प्रभु से

घनिष्ठ हो चुकी है और उनकी प्यारी दुलहिन बनना चाहती है। सखी होने के नाते उसका दायित्व बनता है के अपनी सखी को उसके लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता करे। माता-पिता को अपनी पुत्री के **तिरुप्पुलियूर** प्रभु से घनिष्ठता होने का ज्ञान नहीं है। वे नायकी की अवस्था में परिपक्वता देख उसका विवाह किसी सांसारिक व्यक्ति से करने की तैयारी करते हैं। सखी को जब यह पता चलता है तो उन लोगों को समझाती है। गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 1.5 -** किसी मरणशील से विवाह होने पर मुझे अपना जीवन रखना संभव नहीं होगा। नायकी का दिन-रात **तिरुप्पुलियूर** के प्रभु के नाम, रूप एवं दिव्यगुणों को रटते रहने का संदर्भ देती है। उनलोगों को समझाने के लिए **8.9** के दसक में प्रभु का हर-तरह से यशगान करती है। **तिरुवाय. 8.9.1 -** वे तालों वाले **कुट्टनाट्टु तिरुप्पुलियूर** में मणि पर्वत की तरह खड़े हैं। त्वरा के साथ भगवान् को ही एकमात्र उपाय मानने में नायकी को दृढ़ विश्वास है। यह जीवात्मा के अनन्यार्हत्व तथा शेषत्व को स्पष्ट करता है। सखी ने **तिरुवायमोळी** के उपर्युक्त तीनों दसकों में जीवात्मा का परमात्मा से सम्बन्ध-ज्ञान को स्पष्ट किया है। सखी की वाणी नम्माळवार की स्वयं की वाणी है।

2. आळवार माँ के रूप में - अध्यवसाय (सतत प्रयत्नशीलता) साधन रूपी माँ की वाणी बेटी के लिए मूर्च्छा, क्षीणकाय, बढ़ता उन्माद, भावावेश भरी उक्ति, शिथिलता, विश्लेष और संश्लेष की स्थितियों का उल्लेख करती है - मूर्च्छा **तिरुवाय.2.4.1**- लगातार गाती-नाचती "नरसिंह" बोलती है,

आँसू बहाते मूर्च्छित हो जाती है। भगवान् की दासियों की संगति नहीं मिलने से शाखा से अलग पल्लव जैसी क्षीणकाय हो गयी है। **तिरुवाय.4.2.1-** सातों लोक को निगलकर बटपत्रशायी शिशु कृष्ण के श्रीपाद की तुलसी से अपने स्तन का श्रृंगार करना चाहती है। वांछित वस्तु नहीं मिलने से **उन्मादग्रस्त** हो जाती है। **तिरुवाय.4.4.1-** पृथ्वी पर स्नेह दिखाते हुए कहती है, "यह उनकी पृथ्वी है।" उनकी लीलागुण से जुड़े सभी वस्तुओं की ओर देखकर उन्मादी की तरह दिव्यगुणों को यादकर उन्हें प्राप्त करना चाहती है। **भावावेशित उक्ति** - **तिरुवाय.5.6.1-** हम ही धरा एवं सागर हैं। विश्लेष व्यथा में ईश्वराविष्ट हो जाती है। **व्यामोह में - तिरुवाय. 6.6.1 -** आश्रितव्यमोहवाले प्रभु! समस्तलोकों को नापनेवाले प्रभु को इसने अपने कंगन खो दिये हैं। वियोग-वेदना में क्षीणकाय होने से सबकुछ गँवा बैठती है। माँ का भी त्याग कर देती है। **विश्लेष - तिरुवाय.6.7.1 -** हमारा भोजन, पेय तथा पान सबकुछ कृष्ण हैं। वियोग वेदना में सब त्यागी हुई वस्तुओं को नायकी आश्रय देनेवाली मानती है। संश्लेष हेतु प्रभु के पास जाने का **दृढ़ निश्चय** - **तिरुवाय.7.2.1-** रात-दिन सोती नहीं है। नायकी दृढ़ निश्चय कर प्रभु के पास जाने को तैयार है और उनके समक्ष अपने पूरे अस्तित्व को भगवान् के श्रीचरणों पर समर्पित करने का संकल्प लेती है। भगवान् ही उद्धार के एक मात्र उपायभूत साधन हैं। मूर्च्छा आदि परभक्ति अवस्था के लक्षण हैं। विश्लेष की अवस्था में बेटी की वेदना का माँ उल्लेख करती हैं जो भगवान् की महानता का स्मरण करते मूर्च्छित हो जाती है। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 62 -** दया की याचना करने पर भी नीले सागर

के वर्णवाले के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं दिखता। हाय! शेषशायी प्रभु! क्या यह उचित है? प्रभु की कृपा ही उपाय है। जड़-चेतन की वेदना उनकी कृपा की अनुपस्थिति से होती है। (माँ की वाणी के) उपर्युक्त सात दसक **उपाय** पर माँ के अध्यवसाय और विश्वास के बोधक हैं। माँ के स्वरूप में आळवार स्वयं उपायभूत प्रभु-कृपा पर अपनी आस्था प्रकट करते हैं।

3. नायिका पुत्री - तिरुवायमोळी के चार दसकों में नायिका प्रभु के पास अनेकों प्रकार से दूत भेजती है। **तिरुवाय.1.4.1-** हे सुन्दर पंखोवाले करुण सारस दम्पति!, **तिरुवाय.6.1.1-** रमणीय जलप्रान्त में रहनेवाले आहार ढूढ़ते बकगणों!, **तिरुवाय.6.8.1-** एकत्रित श्रेष्ठ पक्षीगण! तुमलोग सुनहले धरती एवं स्वर्ग पर राज्य करो। **तिरुवाय.9.7.1-** हमारे उपवन की नहर में शिकार खेलनेवाले, लाल पगवाले सुन्दर बक! नायकी कहती है - हे जगत को ढकने वाले घोर अंधकार! अपने क्षीण हृदय को प्रभु को गँवाते हुए दुखग्रस्त मैं अपने दुर्भाग्य पर रो रही हूँ। **तिरुवाय.2.1.1-** खारे जल पर फुदकते श्वेत बक! क्या तुम भी प्रभु से परित्यक्त होने के कारण सबके सोने पर भी रात में जाग रही हो? सभी संसारियों को प्रभु के वियोग से ही दुःख मिलता है और इस तरह से प्रभु वियोग में अत्यन्त दुःखी नायकी घोर विलाप करती है।

तिरुवाय.4.8.1- वृषवाही, चतुर्मुख और लक्ष्मी जी जिसके शरीर पर आश्रय पाये हुए हैं, ऐसे असुरनाशी आयुधधारी दिव्यमंगल विग्रह वाले भगवान्, अगर मेरी कान्ति का निरादर करें तो इसका त्याग ही अपेक्षित है।

तिरुतोलैविल्लीमंगलम् वाले प्रभु से अनादृत सभी वस्तुओं का त्याग करती हूँ। सूखे ताड़-वृक्ष का हर वीथी में अश्वारोहन करती नारी-सहज लाज का त्याग कर तोलैविल्लीमंगलम् प्रभु के लिए अपनी तड़पन को सबको बताउँगी। कहती है - **तिरुवाय. 5.3.1-** बहन! सर्वदा दिव्यतेज विभूषित आदि-कारण प्रभु को मैं खोजी। **तिरुवाय. 5.4.1-** घने अंधकार से ढके रात्रि में संसार सो रहा है। प्रेमव्याधि और कल्पान्तर वाली अंधेरी रात नायकी के लिए समानरूप से पीड़ादायी हैं क्योंकि प्रभु उसके पास आ नहीं रहे हैं। **तिरुवाय. 5.5.10-** तिरुकुरुंगुडी के प्रभु के देखने के उपरान्त देवों से संसेवित असीम तेजःप्रवाह के मध्य प्रकाशमान एक दिव्यरूप मेरे हृदय में विराजमान हैं जो दूसरा कोई समझ नहीं सकता। **तिरुवाय. 5.5.1-** सजनी! हम पर कैसे दोष लगाओगी? लौकिक प्रकृति वाले जनों को लेष मात्र भी उनकी अनुभूति नहीं है, परन्तु नायकी को सहज स्वभाव वश तेज-प्रवाह के मध्य अपने हृदय में प्रभु की प्रेमानुभूति हो रही है। केरल स्थित **तिरुवल्लवाल** के प्रभु की अनुभूति - **तिरुवाय 5.9.1 -** गगनचुम्बी सुपारी वृक्षों, सुगंध विखेरते चमेली के बाग तथा मधु टपकाते फल के बगानों के बीच रहते **तिरुवल्लवाल** के प्रभु के श्रीपाद को कब यह प्राप्त कर सकेगी? मृगनयनी सखियाँ! यह क्षुद्र दिनानु-दिन क्षीण हो रही है। स्पष्टतया पुत्री नायकी उनके संश्लेष के शुभ दिन के लिए प्रभु-कृपा की प्रार्थना में रत है। उसकी प्रार्थना पर वे उसके पास विराजकर संयोग के आनन्द की वृद्धि करते हैं। **गेन्द एवं डंडे का प्रसंग (6.2 का दसक) - तिरुवाय. 6.2.2-** आपकी कमल सी आँख एवं मूँगा जैसे होठ से हम आहत होकर अचेत हो

जाते हैं। **तिरुवाय. 6.2.1-** आपकी युक्ति हमें पता है, अब उन अचेतों का आप क्या करेंगे? महाशय! हमारा गेंद एवं डंडा वापस कर आप यहाँ से चले जाइये। नायकी विरह-वेदना का स्मरण कर उनके आने पर भी बनावटी क्रोध से उन्हें डाँटती है जो प्रभु के प्रति उसके असीम प्रेम का प्रदर्शन है। **तिरुवाय. 7.3.1 -** कमल जैसे सुकोमल शंख-चक्र धारी तिरुप्पेरेयिल के प्रभु गरुड़ पर चले जा रहे हैं। अतिशय प्रेम के कारण प्रभु के असाधारण स्वरूप की झाँकी नायकी को मिल रही है। वह उन्हें समस्त जगत् में व्याप्त देखती है। तात्पर्य है कि लौकिक वस्तुयें प्रभु के ध्यान को वाधित करती हैं। असहाय नायकी को प्रभु के विरह से त्राण दिलाने वाला कोई दिखता नहीं है। कृष्ण का सुन्दर मुखड़ा हमारी जान (**तिरुवाय.7.7.4**) लेनीवाली है। **तिरुवाय. 7.7.1-** नूतन कमलपुष्प की तरह वे सर्वत्र दिखते हैं। ओह! देखो, पापिनी मैं! सखी! सजनी! मैं क्या करूँ? प्रभु के दिव्यगुणों से युक्त जगत् की सभी वस्तुयें नायकी को वेदनाग्रस्त करती हैं। **तिरुवाय. दसक 8.2** में नायकी सखियों को अपने विश्वास से अवगत कराती है - यद्यपि अनेकों वर्ष बीत जायें, पर मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि उनका दर्शन अवश्य करुँगी। **तिरुवाय.8.2.1-** कंगनवाली गोरी सखी! हम अपने धूर्त प्रभु से लज्जित हैं। हमारे कंगन ढ़ीले पड़ गये, रंग फीका पड़ गया, उरोज ढ़ीले पड़ गये, मैं अचेत हो जाती हूँ। हाय! गरुड़गामी वेंकट प्रभु के पीछे गयी थी। तात्पर्य है कि माँ के रोकने पर भी मैं प्रभु से मिलन की मेरी उत्कट इच्छा रुकती नहीं। **तिरुवाय. 9.5** दसक में नायकी अन्य जीवों से प्रेमव्याधि के संवाद में अपने प्रेमी प्रभु की झलक पाती है। **तिरुवाय.9.5.10-** आभरण-

अलंकृत यह शरीर निरस हो गया है। **तिरुवाय. 9.5.1-** मादा कोयल! हमसे क्या शिकायत है? नायकी मिलन हेतु आतुर है।

तिरुवाय. दसक 9.9 प्रसंग - **9.9.1-** हाय चमेली की सुगंध विखेरती हवा, याल पर सुन्दर कुरुंजी, अस्त होता सूर्य एवं क्षितिज पर सुन्दर लाल बादल - सभी मेरे प्राण लेने वाले हैं। प्रसंग है कि संध्याकाल में पशुओं के साथ वन से लौटने में भगवान् कृष्ण सबके आगे नहीं दिख रहे हैं। नायकी विरहातुर हो चतुर्दिक प्राकृतिक सुषमाभरे दृश्य को देखकर अधिक क्लेशग्रस्त हो जाती है। रात्रि भगवान् कृष्ण के साथ बीतती है। **तिरुवाय.10.3** दसक का प्रसंग - प्रातः गायों को चराने वे वन जाते हैं। पुनः दिन के अकेलापन से नायकी विरह-वेदना से पीड़ित हो उठती है। **तिरुवाय.10.3.1 -** प्रेम पक्षी कोयल की कूक सुन बाँस के समान सुघड़ मेरी भुजायें सूख जाती हैं। हमारे अकेलेपन की उपेक्षा कर ये मोर सब नाच रहे हैं। प्रातः में भगवान् कृष्ण के विरह से हृदय सूख जाता है। नायकी का भगवान् से मिलन और पुनः वियोग, वियोग से दुःखी मन, खेल के मनोरंजन के लिए उनके आने पर कृत्रिम रोष भाव प्रदर्शन आदि - उपर्युक्त तिरुवायमोळी के सत्रह दशकों में आळवार ने अपनी वाणी में इन सब मनोभावों को आकर्षक रूप से प्रस्तुत किया है।

चूर्णिका 135 -

सखी एवं माँ को बहुवचन से सम्बोधित करने का तात्पर्य।

सूत्र 135 (49) - सं. सख्यो मातर इत्युक्तम् बहुवचनं रक्षकत्वा-दिबन्ध-वात्सल्यादि-व्यवसायबुद्धिभेदेन।

सामान्य अर्थ - भगवान् के रक्षक आदि गुण को समझने हेतु सखियों का प्रयोग एवं वात्सल्य आदि गुण के कारण माताओं का प्रयोग है।

विशेषार्थ - सखी के बहुवचन का प्रसंग - तिरुवाय. 5.5.9- सजनी बहनें। **तिरुवाय. 5.4.5-** मेरी सखियाँ। **तिरुवाय. 6.2.8-** सखियों की प्रेरणा से। **तिरुवाय. 5.3.6-** हे सखियों! मेरी कौन सी हानि होगी। भगवान् के साथ जीव का सम्बन्ध **रक्षकत्व, शेषित्व, कारणत्व** मूल मन्त्र के **प्रणव** के **अकार** को बताता है। **शरीरत्व** मन्त्र के **नारायण** का बोध कराता है। अनेक रूपों के सम्बन्ध के कारण आळवार ने नायकी भाव में कुछ प्रसंगों में बहुवचन सखियों का प्रयोग किया है।

माँ (माता) के बहुवचन का प्रसंग - तिरुवाय. 5.5.9- माताओं। **तिरुवाय. 5.4.5-** मेरी मातायें। **तिरुवाय. 5.3.8-** नारियों को। **तिरुवाय. 5.5.1 -** नारियों/माताओं अब कैसे। इस प्रसंग में **वात्सल्य, स्वामित्व** और **सौशिल्य** आदि सम्बन्ध को कहा है। **वात्सल्य** भगवान् के वैसे ही गुण हैं जैसे गाय अपने नवजात बच्चे के गन्दे शरीर को जीभ से चाटकर साफ कर देती है। भगवान् भी अपने भक्त के दोष को मधुर गुण मानते हैं। **स्वामित्व** से भगवान् को जगत् के समस्त चर-अचर से श्रेष्ठ होने का बोध कराता है। श्रेष्ठ जन का निम्न स्तर वालों से घुल-मिल जाने को **सौशील्य** कहते हैं।

भगवान् के ये सब गुण **उपाय** हैं, जो अनेकों होने से बहुवचन स्वरूप के हैं। **मुमुक्षुपडी 137,138।**

भक्तों को इन सम्बन्धों का बोध ज्ञानवाची बुद्धि से होता है। **अमरकोष - बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः।** चेतन के अनिष्टों का निवारण और दिये जानेवाले अभीष्टों का प्रत्यक्ष ज्ञान रखना भगवान् के गुण हैं।

चूर्णिका 136 -

नम्माळवार के परांकुश नायकी स्वरूप की सात विशेषतायें।

सूत्र 136 (50) - सं. अभिलाष-चिन्तन-अनुस्मृतिः इच्छा-रुचि-पर-परमभक्तिषु अज्ञानेत्यादिवयः स्वीकुर्यात्।

सामान्य अर्थ- अभिलाषा, चिन्तन, अनुस्मृति, इच्छा, रुचि, परभक्ति एवं परमभक्ति नायकी की ये सात अवस्थायें हैं।

विशेषार्थ - पहली बार देखकर प्राप्त करने की आशा को **अभिलाषा** कहते हैं। देखे हुए को वर्तमान में स्मरण करने को **चिन्तन** कहते हैं। उसका अनवरत स्मरण करना **अनुस्मृति** है। अविस्मरणिय आशा को **इच्छा** कहते हैं। आशा में लगे हुए मन का आनन्द ही **रुचि** है। उसके संश्लेष से सुख और विश्लेष से दुःख **परभक्ति** की अवस्था है। विश्लेष की अवस्था में प्राण परित्याग की स्थिति का हो जाना **परमभक्ति** है। सामान्य नारी के

अज्ञान आदि के सात रूपों की तरह परांकुश नायकी की **अभिलाषा** से **परमभक्ति** तक सात अवस्थायें हैं।

चूर्णिका 137 -

नायकी के अवयवों के तात्पर्य

सूत्र 137 (51) - सं. मयूरचन्द्रकला धनुर्बाणो मौक्तिकम् प्रवालं करण्डकं विद्युद्रथः हंसः देवसुरीं विकासः शुद्धिः दान्तिः, ज्ञान-आनन्दनुराग-भक्तिः अणुत्वभोग्यतागतिभिः विशिष्टान्तः स्वरूपस्य समावेशः।

सामान्य अर्थ - मयूर गर्व-गमन, चाँदनी मुख-कान्ति, धनुष भौंहाकृति, बाण नेत्र-कटाक्ष, मोती मन्दहास, मूँगा अरुण-अधर, सिंगारदान उरोज, विद्युन-प्रभा सूक्ष्मान्वेषण, रथ नितम्ब और हंस गमन-गति। ये सब अन्तःस्वभाव के प्रतीक हैं।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 6.2.2- मोर की तरह अकड़कर चलनेवाली प्यारी युवती-किशोरियाँ। लटकती अलकेंवाली नारी मयूर-सदृश हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमोळी 2.9.9** - चन्द्रमुखी नप्पिनाय। चमकते ललाट वाली। धवल चाँदनी अनन्य-शेषत्व पर आश्रित निर्मल-हृदय है। **तिरुवाय. 6.6.6-** धनुष के समान भौंहे वाली मेरी बेटी। अन्तः तथा बाह्य इन्द्रियों को संयमित रखने का भाव है। **पेरिय तिरुमोळी 6.8.6-** कटारी नयनों वाली यशोदा। भगवत् प्राप्ति का तीक्ष्ण-ज्ञान अमोघ-बाण सदृश है। सरोयोगी **मुदल तिरुवन्दादि 67-** कमल वाली लक्ष्मी के नाथ ही साक्षात्कार के एकमात्र

लक्ष्य हैं। बाण सदृश नेत्र-कटाक्ष ही एक मात्र प्राप्य भगवान् को प्राप्त करने का ज्ञान है। मोती सदृश मन्द-हास **नाच्चियार तिरुमोळी 5.6** गोदा जी - हृषीकेश के कारण मुक्ता जैसी मुस्कान खो गई हूँ। **अमरकोष - मुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः।** लक्ष्य की प्राप्ति पर मुस्कान हर्ष का बोधक है। **पेरिय तिरुमोळी 4.8.1-** मूँगे जैसी होठ वाली मेरी बेटी। भगवान् के लिए अतिशय प्रेम होठ की लालिमा है। **तिरुप्पावै 20-** कुम्भवत् उरोज। उरोज की आकृति सिंगारदान जैसी है। आत्मा की परिपक्व भक्ति उरोज की आकृति है। **पेरिय तिरुमोळी 3.9.5-** कृश-कटि कुमारी सीता के लिए। वर्षाकाल की विजली की तुलना पतली कमर से की गई है। यह आत्मा का तीक्ष्ण ज्ञान जैसा है जो अन्य वस्तुओं से सर्वथा पृथक भगवान् की श्रेष्ठता का बोध कराता है। नितम्ब (कमर) रथ है। नायकी के शरीर का अतिप्रिय भाग कमर है। **पेरियतिरुमोळी 1.4.6-** कृश-कटि नप्पिनाय के लिए। इसका भाव है कि भगवान् को जीवात्मा का आध्यात्मिक रस अतिशय प्रिय है। **तिरुवाय. 4.3.10-** मेरे तथा मेरे साथ सातों लोक और प्रभु के स्वयं गाने पर भी उनकी प्रशस्ति का अन्त नहीं हो सकता। दूध, शहद, शक्कर तथा अमृत के समान वे मधुर हैं। मैं तो आनन्द हेतु ही उनकी प्रशस्ति गाते रहता हूँ। **पेरिय तिरुमोळी 3.7.9-** हंस जैसी सुन्दर चालवाली प्रभु के साथ चली गई। हंस की चाल से जीव तथा भगवान् दोनों की गतिविधियों का बोध होता है। दोनों अपने स्वरूप का अस्तिव अक्षुण्ण रखते हुए एक दूसरे की गतिविधि पर क्रियाशील रहने के साथ-साथ एक दूसरे से घुल मिल जाते हैं। **तिरुवाय. 4.4.2-** माँ की वाणी में - नारियों! मैं अपनी नित्यसूरीयों के

सदृश मृगनयनी बेटी को समझ नहीं पाती हूँ। अवयब के प्रतीकात्मक रूप सब लौकिक लगाव से रहित हैं तथा आत्मा के अन्तःकरण का बोध कराते हैं। नायकी हंस दूत से कहती है - **तिरुवाय. 9.7.10-** मैं कृशकाय हो गयी हूँ। **धर्म** एवं **धर्मी** की विशिष्टता ही अन्तःकरण का स्वभाव है। ये साधु स्वभाव के प्रतीक हैं। नायकी की त्वरा का सूत्र 133 में वर्णन हुआ है। सखी एवं माँ के रूपक से नायकी अपनी मनःस्थिति को स्पष्ट करती है। सबसे महत्वपूर्ण नायकी के संश्लेष फल प्राप्ति की त्वरा है। इस सूत्र में नायकी के अवयवों के माध्यम से उनके अन्तःकरण के स्वरूप को बताया है जो उनके त्वरायुक्त स्वरूप का पर्याय है।

चूर्णिका 138 -

सखी, माँ एवं नायकी की गतिविधियों की विशिष्ता को स्पष्ट करना।

सूत्र 138 (52) - सं. कृत्रिम-व्यापार-विश्लेषितवन्तो यूयम् इत्यपयशो मेलयित्वा कथमित्युपर्युक्त्वा पुरतः स्थिता इमा यूयम् इत्युभयसेनयोः सत्यप्रदर्शनं यूयमेवेति च सम्बन्धः अवकोशो नास्तीति च विधूननं स्थित्वा स्थित्वा गतवतीति गौरवेण उक्त्वा अवस्थात्रयवृत्तिः।

सामान्य अर्थ - सखी, माँ तथा नायकी की गतिविधियाँ हैं- दोषान्वेषण, शरारतपन, छोड़ दिया**;** स्वीकृति व अनुशंसा, बुलाने पर जाना, अब कैसे**;** बहनें, अकेले छोड़ो**;** सहमति, क्या हुआ, खिसकना, नितान्त-पृथक**;** सुखद-क्षण, अरविन्दलोचन पुकारना, तिरुक्कोलूर प्रस्थान।

विशेषार्थ - माँ दोषान्वेषण करती है - **पेरियाळवार तिरुमोळी 3.7.4-** मेरी बेटी मुझसे ही जुड़ी एक सीधी सादी बच्ची थी। मैं किसको बताउँ, उसकी बहुत सारी सखियों ने क्या शरारतपूर्ण काम किया है? उसको अपने साथ ले जाकर उसे **"चक्रधारी"** के गहरे ताल में डाल दिया है। "*कलछी जिसने कढ़ी के नमक का स्वाद नहीं चखा* " जैसी अब सीधी सादी नहीं रही। माँ दोष लगाती हैं कि सखियों के कारण ही इसे भगवान् से विरह-विषाद मिला। सखियाँ माँ पर दोष लगाती हैं - **तिरुवाय.6.5.2-** आप इस मृदु भाषिणी प्रिय किशोरी को उत्सव की आवाज से गूँजते तुलैविल्लीमंगलम् ले गये और इसे विना हृदय का वहीं छोड़ दिया। सखियाँ दोष लगाती हैं कि वहाँ के भगवान् के सौंदर्य से मुग्ध हो यह पागल हो गयी है। माँ नायकी की वाणी के उद्धरण से सखियों पर दोष लगाती है। **तिरुवाय.6.2.8-** हम अपनी इच्छा से नहीं परन्तु सखियों के बुलाने से यहाँ आ गयी। यदि इतने मात्र से तू हमें त्रास देगा तो द्वेषी जन हमारे प्रति क्या कहेंगे? नायकी स्वंय कभी भी सखियों पर दोष नहीं मढ़ती हैं वल्कि सखियों को उसे भगवान् से मिलाने के लिए सहायक मानती है, लेकिन माँ उनलोगों को ही नायकी की विरह-वेदना के लिए दोषी मानती है। आगे नायकी माँ से कहती है - **तिरुवाय. 5.5.1-** तिरुकुरुंगुडी के आकर्षक प्रभु को देखने के बाद हमारा मन उनके शंख, चक्र, कमल जैसी आँखें एवं अद्वितीय मूँगा जैसे लाल होंठ के लिए तरस रहा है। हे सजनी माँ ! अब हमें कैसे दोष लगाओगी? नायकी माँ को आदर देकर उनके मार्गनिर्देशन को स्वीकार करती है कि उनके कारण ही उसे

तुलैविल्लीमंगलम् के प्रभु के दिव्य गुणों की अनुभूति मिली। कहती है कि विरह-विषाद तो है परन्तु उनके दिव्यगुणों के साक्षात्कार का आनन्द भी मिला है। नायकी इस तरह से सखियों तथा माँ के उपकार को स्वीकार करती है। सखियाँ माँ का पक्ष लेती हैं जिसने पुत्री को संयमित रखा परन्तु प्रभु के दर्शन के बाद पुत्री स्वंय अब उनसे मिलने के लिए कदम बढ़ाने लगी। **तिरुवाय. 5.5.10 -** हे सखियों! हे माताओं! यह कहकर आपसब मुझपर कोप करती हैं, "यह सबसे आगे खड़ी रहती हैं।" सखियाँ माँ का पक्ष लेकर नायकी को संयमित रहने को कहती हैं क्योंकि वह प्रभु दर्शन के लिए घर से बाहर आकर सबके आगे खड़ी हो जाती हैं। अब वे सब नायकी के समर्थन में बोलती हैं। **तिरुवाय. 6.5.1-** हे माताओं! इसे यहीं तुलैविल्लीमंगलम् में छोड़ दो, अब इसकी आशा मत करो। सखियाँ माँ तथा नायकी दोनों को यथायोग्य परामर्श देती है। नायकी की वाणी - **तिरुवाय. 5.4.5-** कौन मेरा ध्यान रखेगा? मेरी माँ एवं मेरी सखी विना मुझे बताये सो गयीं हैं। नायकी सोंचती है कि दोनों मेरी विरह-विषाद का ख्याल किये विना सो रही हैं। **तिरुवाय. 8.2.7-** फूलों की जूड़ावाली माताओं एवं सखियाँ! वे मुझे त्यागकर लुप्त हो गये हैं। दोनों नायकी को सहायता का आश्वासन देती हैं परन्तु नायकी कहती है - **तिरुवाय. 8.2.7-** तुमलोग यह समझ सकती हो कि तुम्हारे और हमारे लक्ष्य एक समान नहीं है। नायकी विरह-विषाद में भी प्रभु के दिव्यगुणों का आनन्द लेती हैं। सखियाँ एवं मातायें नायकी के इस भाव से अनभिज्ञ थीं।

हरदिन अरविन्दलोचन पुकारते रहने का उल्लेख सखी करती है और उसके तिरुक्कोलूर गमन के बारे में माँ बताती है। **तिरुवाय. 6.5.8-** जब से यह मृगनयनी तुलैविल्लीमंगलम् में पूजा की हरदिन शान्तभाव से अरविन्दलोचन बोलकर गिर जाती है और रोती है। सखी इसके लिए नायकी की प्रशंसा करती है कि किसतरह उनसे मिलने के लिए यह आतुर रहती है। एक समय तो माँ भी नायकी की प्रभु पर अनन्यता से चिंतित न दिखकर प्रसन्न ही होती है। अब बेपरवाह नायकी घर से अकेले बाहर जाती है। **तिरुवाय. 6.7.9-** माँ कहती हैं - सभी लोकापवाद को सुनते हुए वह तिरुक्कोलूर चली गई है। माँ इसे पुत्री की **परमभक्ति** कहती है। उसे **उपाय** पर दृढ़ विश्वास है और फल प्राप्ति की उसे अनवरत त्वरा रहती है। जीवात्मा का परमात्मा से अटूट लगाव है। जीव को वे अपनी सम्पत्ति मानते हैं। जो भगवद् कैंकर्य नहीं करते उन्हें उनके चरणारविन्द की प्राप्ति नहीं होती। जब जीव को भगवान् से घनिष्ठ नाता होने का ज्ञान होता है तब उसे उनके कैंकर्य में रुचि उत्पन्न होती है। फलतः वह उनके सुन्दर स्वरूप तथा दिव्यगुणों से आनन्दित होने लगता है।

अपने प्रयत्न से भगवान् के चरणारविन्द प्राप्त करने की मनोभावना से **अहंकार** उत्पन्न होता है जो जीव के मौलिक **स्वभाव** के प्रतिकूल है। भगवान् को प्राप्त करने की त्वरा मूल स्वभाव का विरोधी न होकर **उपाय** पर दृढ़ विश्वास का बोध कराता है। **कैंकर्य** से भगवान् प्रसन्न होते हैं। **सिद्धोपाय** से उनको प्राप्त करने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता।

परमात्मा को प्राप्त करने की जीव की तीन अवस्थायें हैं - (1) आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध का ज्ञान, (2) उपाय पर दृढ़ विश्वास और (3) फल प्राप्त करने की त्वरा।

चूर्णिका 139 -

माँ, पुत्री तथा सखी के हितैषी एवं द्वेषी।

सूत्र 139 (53) - सं. माता शत्रवो बन्धव इति च साध्य-सिद्ध-साधन-निष्ठान् पुत्री अस्मच्छत्रवोऽस्मत्सहायभूताः इति च सिद्ध-साधन-साध्यपरान्।

सामान्य अर्थ - माँ के लिए साध्य-साधन-निष्ठा शत्रु हैं और सिद्ध-साधन-निष्ठा हितैषी हैं। पुत्री के लिए सिद्ध-साधनपरान् शत्रु हैं और साध्यपरान् हितैषी है। **साध्य-साधन-निष्ठा** वाले वे हैं जो साधन (उपाय) पर निरन्तर आस्था रखते हैं और कर्म, ज्ञान, भक्ति और प्रपत्ति योग को उपाय मानते हैं। **सिद्ध-साधन-निष्ठा** वाले वे हैं जो योग करते हुए भगवान् को ही मुक्तिदायी साधन मानते हैं। **सिद्ध-साधनपरान्** वाले भगवान् को ही एकमात्र उपाय समझते हैं। **साध्यपरान्** वाले भगवान् को उपाय मानते हुए कर्म-ज्ञान-भक्ति-प्रपत्ति में रत होकर मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।

विशेषार्थ - माँ की वाणी में **उपाय** पर दृढ़ विश्वास झलकता है। **पेरिय तिरुमोळी 2.7.5-** बताइये आप हमारी बेटीका क्या करेंगे ? यह दृढ़ विश्वास

सिद्‌ध-साधन-निष्ठा का प्रतीक है जो हितैषी है। **तिरुवाय. 5.6.7-** संसार के मित्रभाव वाले लोग! मैं क्या हताऊँ? पुत्री के लिए सिद्‌ध-साधनपरान् शत्रु है। **तिरुवाय. 8.2.1-** हम अपने धूर्त प्रभु से लज्जित हैं। फल पाने हेतु अधिक त्वरा वाले आन्तरिक शत्रु समझे जाते हैं। प्रभु के दिव्यगुणों पर चिन्तन करते रहने से प्रभु को अचल उपाय के रूप में मानने वाले की त्वरा नष्ट नहीं होती। हालाँकि त्वरा पारतन्त्र्य को सम्बर्द्‌धित नहीं कर पाती। पारतन्त्र्य से प्रभु के दिव्यगुणों से घुलने-मिलने में सहायता मिलती है। पुत्री के लिए साध्यपरान् हितैषी है। **तिरुवाय. 9.9.5-** हमारे विश्वासी संगी सखी। पुत्री के लिए सखी साध्यपिरान् हितैषी हैं जो **उपेय** पर अपनी अनन्यता बनाये रहती हैं। पुत्री की प्रसन्नता एवं विषाद सखियों के लिए भी प्रसन्नता एवं विषाद हैं। वे उसे भगवान् के श्रीचरण प्राप्त करने में सहायक रहती हैं। नम्माळवार के पदों के अन्तःभाव अन्य आळवारों के पदों में भी समानरूप से पाये जाते हैं।

चूर्णिका 140 -

अन्यापदेश को स्पष्ट करना.

सूत्र 140 (54) - सं. चतुर्विधा दूरस्थाः समीपग्रामस्था उपायचतुष्टय-अन्तर्यामित्वपराः।

सामान्य अर्थ - कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं प्रपत्ति ये चार उपाय हैं। उपाय के साधक इन्हीं चार पर आश्रित हैं। अन्य कुछलोग अन्तर्यामी की साधना करते हैं।

विशेषार्थ - गोदा जी **नाच्चियार तिरुमोळी 12.2 -** सब लोग अब जानते हैं। इसका तात्पर्य है - चारों उपाय वाले उपासक। अर्चावतार की साधना वाले उपाय चतुष्टय वाले हैं। इन्हें दूरस्थ उपासना वाले कहते हैं। भाव है कि अर्चाविग्रह दूर मन्दिरों में या पूजा घर में रहते हैं। अतः दूरस्थ हुए। इससे भिन्न अन्तर्यामी की साधना वाले हैं - **तिरुवाय. 7.3.2-** सुगंधित लटें वाली सखी! हे सजनी! पड़ोस के लोगों! यहाँ समीपस्थ ही पड़ोसवाले कहे गये। समीप अर्थात् अपने पास हृदयस्थ जो अन्तर्यामी हैं। कुछ लोग ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं की उपासना इस भाव से करते हैं कि श्रीमन्नारायण सभी देवों, प्राणियों (चर) तथा वस्तुओं (अचर) के अन्तर्यामी हैं, अतः वे अप्रत्यक्ष रूप से श्रीमन्नारायण की ही उपासना कर रहे हैं। इसे ही अन्यापदेश कहते हैं। अर्थात् सत्य को सीधे न बताकर दूसरी वस्तुओं के उदाहरण से बताते हैं। दिव्यप्रबन्धम् में **स्वापदेश** तथा **अन्यापदेश** दोनों के पद मिलते हैं। अर्चावाले पद स्वापदेश हुए तथा अन्तर्यामी वाले पद अन्यापदेश हुए।

चूर्णिका 141 -

सूत्र 140 के दूरस्थ प्रपत्ति को स्पष्ट करना।

सूत्र 141 (55) - सं. पूर्वमुपरि उत्तरस्थाः बहिस्त्वेन स्वगतस्वीकारोन्तर्बहिः।

सामान्य अर्थ - कर्म, ज्ञान तथा भक्ति योग बाह्य क्रियायें हैं। अपने प्रयास से लगाव अन्तःभाव है और इसे दोषयुक्त कहा जाता है।

विशेषार्थ - स्वगतस्वीकार में हम अपने प्रयास पर भरोसा करके भगवान् से जुड़ते हैं। इसके विपरीत **परगतस्वीकार** है जिसमें भगवान् की कृपा का हमें सहारा रहता है। शास्त्रों में अपने प्रयत्न पर बल दिया है। लेकिन अन्त में उनकी कृपा के विना उद्धार नहीं होता है। भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी **तिरुमालै 38 -** जल से घिरे प्रभु! कुछ ऐसे लोग हैं जो इन्द्रियों को संयमित कर लौकिक लगाव को छोड़कर ईश्वरीय शक्ति पर ध्यान लगाते हुए सत्य की प्राप्ति करते हैं। कुछ दूसरे लोग हैं जो माथा मुड़ाकर आपके द्वार पर आलसी की तरह पड़े रहते हैं। क्या आप दोनों से प्रसन्न नहीं रहते हैं? अतः भगवान् के समक्ष अपने प्रयत्न पर भरोसा छोड़ देना चाहिए। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरु. 6.2 -** एक मीन-नयना किशोरी पूरब तरफ के घर में दही मथ रही थी। यह कर्मयोग है। परकाल स्वामी **पेरिय तिरु. 10.7.2-** हे सजनी! आओ घर को देखो, कैसे दूध-मक्खन के घड़े उसने खाली कर दिया। यह ज्ञानयोग वाचक है। **पेरियाळवार तिरु. 3.1.2-** उत्तर तरफ के घर में जाकर आपने एक सलोनी किशोरी को श्रृंगार विहीन कर दिया। यह भक्तियोग का सूचक है। अतः कर्म, ज्ञान तथा भक्ति बाहरी क्रियायें हैं। अन्तःस्वभाव के कारण जो अपने प्रयत्न से लगाव रखते हैं उसे प्रपत्ति मार्ग में दोषयुक्त माना गया है।

चूर्णिका 142 -

उपाय चतुष्टक भक्तों की विभिन्न श्रेणियाँ।

सूत्र 142 (56)- सं. ग्रामास्थाः देशस्थाः लोकस्थाः केवलैश्वर्यकामस्वतन्त्राः।

सामान्य अर्थ - नगर/ग्राम स्तर वाले **केवल**, देश स्तर वाले **ऐश्वर्य** तथा संसार स्तर वाले **स्वतन्त्र** कहे जाते हैं।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **शिरिय तिरुमडल 77-** लोकापवाद को भूलकर। **तिरुवाय. 5.3.4-** लोकापवाद अच्छा उर्वरक है। नगर/ग्राम वाले कैवल्य मोक्ष कामी हैं जो परमपद में रहते हुए स्वान्तःसुखाय (आत्मानन्द) लीन होकर एकाकी जीवन बिताते हैं। देशस्थ कामना वाले लोक ऐश्वर्य पुत्र, पशु, अन्न आदि की कामना वाले हैं। **तिरुवाय. 10.6.2-** केशव-नाम गान करके हम कर्म के बन्धन को काटते हुए संसार के मोह को त्याग चुके हैं।

लोकस्थ जन - **तिरुवाय. 9.2.8-** श्रीवैकुण्ठम् के प्रभु! सारा संसार आपस में स्पर्द्धा कर आपके श्रीचरणों की पूजा करे। **9.2.7-** मूर्ख संसार साक्षी बने। **6.7.2-** आपके नाम के प्रतीक नगर एवं देश के बारे में बोलते हुए। लोकस्थ लोग अपने प्रयत्न से प्रभु को पाना चाहते हैं और ये स्वर्गादि पारलौकिक ऐश्वर्य के आकांक्षी तथा लोक में प्रधान बनने की कामनावाले **स्वतन्त्र** कहे जाते हैं।

चूर्णिका 143 -

सूत्र 142 के **केवल** का अन्तःभाव

सूत्र 143 (57) - सं. संकोचरूपस्थितेर्मरणं चेन्निवासग्रामः समः खलु।

सामान्य अर्थ - नगरस्थ उपासक का स्वयं तक सीमित कैवल्य मोक्ष।

विशेषार्थ - भगवान् के दिव्य गुणों की अनुभूति सीमारहित सर्वजन हिताय होती है। परन्तु कैवल्य एक जीवात्मा तक ही संकुचित होती है। **तिरुवाय. 4.1.10-** सबकुछ त्याग कर चेतन इन्द्रियों पर ध्यान करने वाले ऋषिगण आत्मा के स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। लेकिन पूर्व की स्मृति बनी रहती है जो उन्हें खींचकर पुनः वासनारत कर देती है और वे मुक्ति विहीन हो जाते हैं। **गीता 7.29- जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।** जो बुढ़ापा और मृत्यु से मुक्त होने के लिए मेरा सहारा लेकर यत्न करते हैं वे प्रकृति-संसर्ग से रहित ब्रह्म तथा समस्त कर्मों को जान लेते हैं। बुढ़ापा-मृत्यु से रहित कैवल्य मोक्षवाले प्रकृति के सर्वोच्च परमाकाश में स्थित होते हैं जिसका उद्भव तथा प्रलय के कारण नाश होता है। **वि.पु. 1.6.38- योगिनाममृतं स्थानं स्वात्मसन्तोषकारिणाम्।** आत्मानुभव से तृप्त राजा जनक और अन्य योगियों को अपने प्रयत्न से अमृततुल्य यह स्थान प्राप्त होता है। **पेरिय तिरु. 10.2.10-** शरीर छोड़ने के बाद वैकुण्ठ में रहोगे। शरीर से सम्बन्ध विछुड़ने पर जीवात्मा परमपद में रहता है। **"केवल"** वाले स्वयं की मुक्ति मिलने पर अपने आत्मानन्द में डूबे रहते हैं। वे परमपद के पास के क्षेत्र में रहते हैं जो सृष्टि की रचना तथा प्रलयकालीन विनाश से प्रभावित रहता है।

चूर्णिका 144 -

भगवान् को प्राप्त करने हेतु **उपकर्म** का अनुशरण।

सूत्र 144 (58) - सं. स्वल्पसम्पत्पूर्णशूर्पः उभयविवेकपरिकरः।

सामान्य अर्थ - शूर्प (सूप) से फटकने पर जैसे बालू से कंकड़ अलग होता है उसीतरह उपकर्म आत्मा को शरीर से अलग कर देता है।

विशेषार्थ - गोदा जी **नाच्चियार तिरु. 2.8-** हमलोग बालू में छोटे मुँह के गोल पात्रों तथा छोटी तश्तरियों से खेल रहे थे। जैसे बालू से कंकड़ को शूर्प अलग करता है वैसे ही ज्ञान आत्मा को शरीर से अलग कर देता है। परकाल स्वामी **शिरिय तिरुमडल 21 -** कुछ अन्न शूर्प पर डालकर उसे हिलाते हुए शपथ खाकर चारों तरफ घूमी और शांत हो गयी। अपनी तलहथी सूँघकर बोली, "यह हजार नाम वाला है।" अर्थात् कोई देवता न होकर नारायण स्वंय हैं। नायकी जीवात्मा को परमात्मा से पृथक समझती है। उपकर्म तीक्ष्ण बुद्धि है जो करने योग्य उपाय को नहीं करने योग्य उपाय से अलग करती है। नायकी जीव समुदाय का प्रतीक है। शूर्प बड़े बालू कणों को छोटे कणों से पृथक करता है, बुद्धि रूपी उपकर्म कृत्य उपाय से अकृत्य उपाय को अलग करते हैं।

चूर्णिका 145 -

सायंकाल, रात्रि, प्रातः तथा दिन के उदाहरण से गुणों को समझना।

सूत्र 145 (59) - सं. सायंकालो रात्रिः प्रातः कालोऽहः रजस्तमः सत्त्वशुद्धसत्त्वज्ञानानि।

सामान्य अर्थ - सायंकाल राजसिक, रात्रिकाल तामसिक, प्रातःकाल सात्त्विक तथा दिन शुद्ध सात्त्विक ज्ञान के प्रतीक हैं।

विशेषार्थ - नम्माळवार **तिरुविरुत्तम 77-** गोधूलि वेलाका सूर्य पश्चिम के रक्तिम युद्ध क्षेत्र में । **तिरुवाय. 9.9.1-** प्राणलेवा अस्त होता सूर्य। सायंकाल में कोई भी वस्तु ठीक से नहीं दिखाई पड़ती। इसीतरह राजसिक ज्ञान से सच्चाई उचित रूप से नहीं समझा जा सकता है। रात्रिकालिक अंधकार- **तिरुविरुत्तम 72 -** अंधकार का भयावह दृश्य । **तिरुवाय. 5.4.10-** हमारी तरह रात भी पिघलकर काली बूँदे बिखेर रहा है। **पेरिय तिरु. 9.5.3-** रात की हर घड़ी विनाशकारी। भाव है कि रात्रि के अंधकार में सामने की वस्तु नहीं दिखाई पड़ती और जो किसी तरह दिखती भी है तो उसका सही स्वरूप नहीं दिखता। इसी तरह की स्थिति तामसिक ज्ञान की है।

सात्त्विकज्ञान प्रातः काल - नाच्चियार तिरु. 9.8- जैसे ही प्रातःकाल जागी, पक्षी प्रभु के बारे में बोलने लगे। **तिरुविरुत्तम 93 -** ज्ञानसरोवर प्रातःकाल। ब्रह्म मुहूर्त युक्त प्रातःकाल के सात्त्विक ज्ञान से वस्तुओं के यथा-रूप स्पष्ट होते हैं। सत्त्वगुण ही सात्त्विक ज्ञान है। **दिन का शुद्ध सत्त्व ज्ञान**- भूतद आळवार **इरण्डाम तिरुवन्दादि 81-** हमने दिन का प्रकाश देखा। समस्त गुण-विग्रह-विभूति युक्त नारायण का दर्शन मिला। आप चक्रधारी हैं, आपके अरुणाभ पादारविन्द हैं तथा आकाश से उज्जवल हैं। दिन के प्रकाश में वस्तु का सच्चा स्वरूप दिखता है जो शुद्ध सात्त्विक ज्ञान है।

चूर्णिका 146 -

चान्दनी रात के प्रांगण का अन्तः भाव।

सूत्र 146 (60) - सं. ज्योत्सनांगणं प्रज्ञाप्रासाद इति चरमावधिस्थानम्।

सामान्य अर्थ - चाँदनीभरा प्रांगण उच्च स्तरीय ज्ञान की भूमि है।

विशेषार्थ - पेरिय तिरु. 8.2.2- चाँदनी भरी छत पर खड़ा क्षितिज का सर्वेक्षण कर उधर दिखाते हुए बोली, "देखो कन्नपुरम्"। इससे चेतन के जीवन के लक्ष्य का पुरुषार्थज्ञान प्राप्त होने का बोध होता है। **महाभारत शांति पर्व 17.20 - प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचकान् जनान् । भूमिस्थान् इव शैलस्थो ह्यज्ञान् प्राज्ञः प्रपश्यति।। (जगतीस्थानिवाद्रिस्थो मन्द-बुद्धीन-वेक्षते) ।।** जैसे पर्वत की चोटीपर चढ़ा हुआ मनुष्य धरती-पर खड़े हुए प्राणियोंको केवल देखता है उनकी परिस्थिति से प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार बुद्धि की अट्टालिका पर चढ़ा हुआ मनुष्य उन शोक करनेवाले मन्दबुद्धि लोगों को देखता है, किन्तु स्वयं उनकी भाँति दुखी नहीं होता।

चूर्णिका 147 -

अहंकार-ममकार का दुष्प्रभाव ।

सूत्र 147 (61) - सं. वस्त्रं वलयः अहंकारममकारौ।

सामान्य अर्थ - कमरबन्द एवं कंगन अहंकार-ममकार के प्रतीक हैं।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 22 -** मेरे कंगन ढ़ीले पड़ गये एवं मेरा कमरबन्द गिर गया। भगवद् अनुभूति प्राप्ति में अहंकार-ममकार बाधक हैं। मूल-मन्त्र के "**नमः**" पद से अहंकार-ममकार से रहित समर्पण का बोध होता है। "**नारायणाय**" पद से अहंकार-ममकार से रहित भगवद्-अनुभूति को अक्षुण्ण रखना है। **तिरुवाय. 5.9.9-** कब हम आपकी पूजा करके अपने कंगन को फिर से पहन सकेंगे? **तिरुवाय. 8.2.2 -** कैसे मैं अपना खोया हुआ कंगन एवं वदन का मोहक रंग प्राप्त कर सकूँगी? **तिरुवाय. 9.7.6-** नायकी दूत भेजकर उसे प्रभु के पास अपने शब्दों को दुहराने कहती है - "मेरे प्रदीप्त गहने एवं रेशमी वस्त्र।" इससे मैं-मेरा का अहंकार अवश्य झलकता है परन्तु भगवान् के प्रति नायकी के मन में अविचल अनुराग को बताता है। **शेषोऽहम् -** मैं भगवान् का दास हूँ। **पेरियाळवार तिरु. 4.9.2 -** क्या कोई श्रीरंगम् के प्रभु को छोड़कर किसी अन्य की शरण लेगा? मैं-मेरा से लगाव रहते हुए भी स्वापदेश में तनिक भी विरोध नहीं है।

चूर्णिका 148 -

आत्मा के आभूषणों का अन्तःभाव।

सूत्र 148 (62) - सं. पट्टाख्याभरणं च हस्ताभरणं नाम परावरगुरुधार्ये आत्मभूषणे।

सामान्य अर्थ - आचार्य ही संस्कार से पूर्व तथा बाद में आत्मा को अलंकृत करते हैं। आचार्य से पञ्चसंस्कार के पूर्व और उसके बाद की स्थिति को सूत्र के **परावर** शब्द से बताया है। पञ्चसंस्कार श्रीवैष्णव दीक्षा की विधि है। आचार्य द्वारा सम्पादित किये जानेवाली इसमें पाँच क्रियायें हैं - पद्मपुराण **तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्र यागश्च पञ्चमः।** 1. शंख-चक्र को हवन की अग्नि में तप्त कर शंख को बायें तथा चक्र को दाहिने बाहुमूल में अंकित करना ताप है। 2. ललाट पर उर्ध्वपुण्ड्र या द्वादश तिलक लगाना। 3. भगवत् नाम से दास-उपाधि (केशव रामानुजदास आदि) सहित नाम-करण करना। 4. मूलमन्त्र, द्वय मन्त्र, चरम मन्त्र तथा आचरणीय नियमों का उपदेश। 5. याग देव-पूजन है। भगवान् के अर्चाविग्रह या चित्रपट की नित्य पूजा की विधि बताना।

विशेषार्थ - पेरियाळवार तिरु. 3.7.6- घुंघराले बालवाली नारियाँ! जो कुछ भी वह मांगी मैंने दिया - ललाट का झूलन, स्वर्ण कर्णवाली, पाजेव एवं नूपुर। प्रेम से मैंने उसको पोसा है। **तिरुप्पावै 27-** कंगन, बाजूबन्द, कनबाली, पाजेब एवं अन्य सुन्दर गहने जिन्हें पहने से प्रसन्नता होती है।

कृष्णांघ्रितुलसीमौलिः पदं कृष्णाभिवन्दनम्। कुण्डले कृष्णचरितं श्रवणं कङ्कणोऽञ्जलिः।। कृष्ण भगवान् के चरणों की तुलसीदल माथे का मुकुट है, शेषत्व ही रेशमी वस्त्र है, उनकी लीला कथा कानों का कुण्डल है और उनके सामने आदर से अञ्जलीबद्ध होना ही हाथ का कंगन है। पञ्चसंस्कार के बाद आचार्य द्वारा दिया गया नाम, रूप एवं श्रद्धा से

भगवद्-वन्दनादि ही वैभव है। आचार्य से प्राप्त शेषत्व का ज्ञान ही आत्मा का अलंकार है।

चूर्णिका 149 -

क्रीड़ा के उपकरणों का अन्तःभाव।

सूत्र 149 (63)- सं. कन्दुकं कुबेराक्षिः सालभञ्जिका दारुपाञ्चालिका वीणा दक्षिणानिलश्चन्द्रः अन्नं चन्दनम् अगरुसूक्ष्मगृहम् सूक्ष्मान्नपात्रम् इत्यादीनि गुणत्रयविचित्रकर्मसूत्रेण बध्वा लीलार्थं प्रेरयति सति पतित्वा उपरि गत्वा भ्रमित्वा गमनागमनं गत्वा चाल्पसारभूताः मदीयमित्युक्तेत्यक्त्वा दूरगमनं यथा भवेत्तथा तदीयज्ञाने उपादेयत्वेन च कुपित्वा अस्मिन् काले एतदिति वक्तुं योग्य उच्चलच्छब्दादि विषयाणीति गाथोक्तभोग्यतादि-समूहः।

सामान्य अर्थ - गेंद, कुबेराक्षि, शिलाबालिका, कठपुतली, वीणा, दक्षिणी हवा, मध्याह्न, उबला-चावल, शान्त, गहना, चन्दन, मड़इ, छोटा बर्तन आदि शरीर के प्रतीक हैं। वाद्य यन्त्र पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हृदयस्थ प्रभु शरीर तथा तीनों गुणों का संचालन करते हैं। कर्मों से बन्धा शरीर विघ्नों से जूझते हुए जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ा रहता है। शरीर का अपना कुछ भी नहीं है और कोई भी वस्तु उसको आनन्द देने वाला नहीं है। शरीर को अगर शरीर अपना लगने लगे तब इसका त्याग कर देना चाहिए। और अगर शरीर को भगवान् का समझे तब इसे रखना चाहिए। भगवान् को

छोड़कर अन्य सभी वस्तुयें शत्रु हैं। परन्तु भगवान् के साथ जुड़े रहने से ये वस्तुयें आनन्द देनी वाली हो जाती हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. 6.2.1- महाशय! हमारा गेन्द एवं डंडा वापस कर आप यहाँ से चले जाइये। **तिरुवाय. 6.2.7-** हमारी गुड़िया न छीनें। **तिरुवाय. 6.2.6-** अनेकों गोरी किशोरियाँ रानी बनने योग्य है। **तिरुवाय. 9.9.7-** याळ (वीणा) वाद्य यन्त्र पर पञ्चम् के साथ। **तिरुवाय. 5.4.8-** बसंत की शीतल हवा आग की तरह लग रही है। **तिरुवाय. 9.9.4-** ठंढ़ी हवा अब गर्म बहती है और हमारे पापी हृदय को जलाती है। **नाच्चियार तिरु. 5.5-** कोयल! दूध एवं मीठे पदार्थों पर पलने वाले सुग्गे से तुम्हारी मित्रता करा देंगे। **पेरिय तिरु. 2.7.3-** चंदन को लेप एवं ठंठा मोती तपते सूर्य की तरह हैं। **तिरुवाय. 9.9.7-** अगरबत्ती की सुगंध। **तिरुवाय. 6.2.9-** बालू के महलों-घरौंदों को तोड़कर। **नाच्चियार तिरु. 2.8-** गोल मुँह के छोटे पात्रों। इसी तरह अन्य दिव्यप्रबन्धों में उल्लिखित हैं। **तैत्तिरीय उप.- अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णम्।** लाल, श्वेत और काला तीन रंगों के तन्तुओं से बने सूत्र प्रकृति को लपेटे हुए है। यह सत्त्व, रज एवं तम तीन गुणों का बोधक है। ये सब बन्धनरूप कर्म के सूत्र हैं। **विष्णु धर्म- हरे विहरसि क्रीडाकन्दुकैरिव जन्तुभिः। न्यञ्शतभीरुदञ्शतभिः कर्म-सूत्रोपपादितैः।** कर्म के सूत्रों से बन्धी आत्मा को गेंद के समान भगवान् खेलते हैं । **महाभारत शान्ति प.12.36- अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मानः सुखदःखयो। ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा स्वभ्रमेव वा।।** ज्ञान की कमी रहने से आत्मा अच्छे एवं

बुरे कर्मों का निर्णय नहीं ले पाती है। भगवान् से प्रेरित वह कर्मों के वशीभूत स्वर्ग व नरक का भ्रमण करती है। कर्म का बन्धन भगवान् के **स्वातन्त्र्य** तथा **संकल्प** से होता है। **विष्णुधर्म** में कहा है**- त्वं न्यञ्शतभीरुदञ्शतभिः।** कर्मबन्धन से जीव का अनेकों बार पतन और अनेकों बार उत्थान होता है। **अहिर्बुधन्य संहिता** में कहा है - **एवं संसृति चक्रस्थे भ्राम्य-माणे स्वकर्मभिः।** कर्म के वशीभूत जीव जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहता है। कहा है - **यमालयमहाशूले मातुर्जठरतोऽल्पतः। यातायात सहस्राणां मुने जीवस्य साधनम्।।** माँ के गर्भ तथा यमराज के त्रिशूल के बीच जीव गेंद की तरह आते-जाते रहता है। देह के प्रति मोह के कारण जीव जन्म-मृत्यु के चक्र में फँस जाता है।

कर्मबन्धन को तोड़ना - **पेरिय तिरु. 10.7.5-** नन्दकुमार ने उसके गेंद छीन लिए। भाव है कि कर्म-कन्दुक से खेलते जीव को भगवान् अपनी कृपा एवं संकल्प से उसको कर्म-बन्धन से मुक्त कर देते हैं। **परगतस्वीकार** के कारण अपने भोग्य जीव को मुक्त करके भगवान् उसके साथ निर्वाध आनन्द लेते हैं। **तिरुवाय. 3.2.6-** सम्यक चयन करने की बुद्धि से रहित हम क्षुद्र भौतिक सुख में लगे रहे। जब शरीर से ही लगाव बढ़ा रहे तो इसका त्याग कर देना चाहिए। परकाल स्वामी **पेरिय तिरु. 3.7.8-** पंखा, सुग्गा, गेंद, झूला तथा पिंजरे में बात करती मैना सबों को छोड़कर चली गयी। भाव है कि जीव को शरीर से मोह तोड़ कर इसका त्याग कर देना चाहिए। शरीर को भगवान् का भोग्य वस्तु समझना - **तिरुवाय. 3.4.1-**

अपने कृष्ण को हम कैसे सम्बोधित करें- पूजा के सुयोग्य पात्र; अद्‌वितीय धरती या विस्तृत शीतल सागर; अग्नि, हवा या फैला हुआ प्रकाश; सूर्य, चान्द या सर्वव्याप्त सार्वभौम? सांसारिक वस्तु प्रभु-प्रेम के शत्रु हैं, उन्हें त्याग दो। **पेरिय तिरु. 11.2.5-** माँ के क्रोध की वाणी......अन्‌-रिल पक्षी की हृदय-बेधी पुकार- यह सब तब शुरु हुआ जब हम प्रभु के साथ क्रीड़ा में अभिरुचि लेने लगे। भाव है कि भगवत्‌ प्रेम में बाधा डालने वाली लौकिक वस्तुयें शत्रुवत्‌ लगने लगीं। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम्‌ 5-** शीतल सुगंधित तुलसीदल चाहने वाली किशोरी की बड़ी-बड़ी आँखों अश्रु वर्षाती है। स्वाभाविकरूप से शीतल वायु ठंढ करनेवाली है परन्तु समय, स्थान एवं अपने महत्त्व को भुलाकर गर्म होकर बह रही है। प्रभु को छोड़कर बाकी सब लौकिक वस्तुयें तुच्छ लगती हैं परन्तु प्रभु से मिलन होने पर सब आनन्ददायी हो जाती हैं। **तिरुविरुत्तम 27-** "*राजा का कृपापात्र बनने से शत्रु भी मित्र हो जाते हैं*" - यह कहावत चरितार्थ हो रही है। युगों से आग उगलने वाली शीतल हवा, प्रभु के तुलसीदल का हार मिलने पर अब शीतल एवं सुखदायी हो गई है। इस सूत्र में जीव का शरीर से सम्बन्ध ही मुख्य विषय है। सामान्यतया एक शरीर छूटने पर भी जीव जन्म-मरण के चक्र में घूमते ही रहता है। यह शरीर इन्द्रियाँरूपी लौकिक सुखदायी वाद्‌ययन्त्र एवं अन्य क्रीड़ा-उपकरणों का संग्रह है। **तिरुवाय.10.7.10-**तिरुमालिरुञ्जोलै के प्रभु, हमारे संरक्षक, हमारी आत्मा! पाँच ज्ञान-इन्द्रियों के क्षेत्र, पाँच कर्म-इन्द्रियों के अवयव, पाँच संचालक विषयादि (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), पाँच तत्त्व (मिट्‌टी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) एवं आत्मा के

चार आवरण (मूलप्रकृति, मन, बुद्धि, अहंकार) सब आपकी दिव्यलीला के अंग हैं। विनती है, इनका अन्त होनें दें।

कन्दुक की तरह जीव का शरीर लाल, श्वेत तथा नीले तन्तुओं से बना है। कुबेराक्षि (मनी-प्लान्ट की तरह झाड़ीदार लतिका) भाव रूप से पाँच ज्ञानेन्द्रियों का प्रतीक है जो लौकिक सुख में रत रहता है। शिलाबालिका, कठपुतली आदि खेल के उपकरण हैं जो ज्ञानेन्द्रियों को सुख देते हैं।

वीणा, दक्षिणी हवा, मध्याह्न, उबला-चावल, शान्त, गहना आदि इन्द्रियों के शब्दादि-विषयों के भोग्यभूत हैं। गहने तथा चन्दन के छोटे-बड़े रूप एवं गन्ध की विभिन्नता शब्दादि-विषयों के (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) आपसी विभिन्नताओं के प्रतीक हैं। मड़इ निवास के साथ-साथ संग्रह का स्थान है; इसका भाव है कि स्थान जहाँ विषय-भोग का सुख लिया जा सकता है। छोटा बर्तन अन्नादि खाद्य पदार्थों के संग्रह में काम आता है। यह ज्ञानेन्द्रियों के विषयादि भोग-सुख के क्रीड़ा कन्दुकादि उपकरणों से भिन्न उनके **उपलक्षण** का प्रतीक है। क्रीड़ा-क्रियायें तत्क्षण पञ्चेन्द्रियों को लौकिक सुख-भोग देतीं हैं। आळवारों की उपर्युक्त गाथाओं के सन्दर्भ के भोग्यादि-समूह इस सूत्र 149 में समाहित भाव के समर्थन में हैं।

****** आचार्य हृदय का दूसरा प्रकरण पूरा हुआ ******

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद्वरवरमुनये नमः

तीसरा प्रकरण

तीसरे प्रकरण में 150 से 218 तक कुल 69 सूत्र हैं।

चूर्णिका 150 -

नम्माळवार का भगवान् के पास पक्षी को दूत के रूप में भेजना

सूत्र - 150 (1) - सं. घटकान् पक्षिणः कृत्वा ज्ञानकर्मणी पक्षाविती गुरुः स ब्रह्मचारी पुत्रः शिष्यस्थानेन वदेत्।

सामान्य अर्थ - भगवान् के पास भेजे जानेवाले पक्षी के ज्ञान एवं कर्म दो पंख हैं। गुरु, सहपाठी, पुत्र एवं शिष्य को पक्षी के रूप में कहा है।

विशेषार्थ - गुरु, सहपाठी, पुत्र एवं शिष्य को उच्च, मध्यम् तथा निम्न स्तर के हैं। भगवान् की भक्ति में लीन ***मुमुक्षु*** को ये सब दिशाबोध भी कराते हैं। ज्ञान एवं कर्म के पंख वाले पक्षी को इतनी क्षमता है कि वे भगवान् के पास जाकर ***मुमुक्षु*** की दशा का वर्णन करते हैं।

गुरु का प्रसंग- तिरुविरुत्तम 54- हे भ्रमरगण! तेरे पंख सरलता से तुम्हें वैकुण्ठ तक ले जानेवाले हैं। **तिरुवाय. 1.4.1-** हे सुन्दर पंखोंवाले दयालु क्षीणकाय सारस दम्पति! हम पर तरस खाते हुए, क्या हमारा सम्वाद भगवान् तक पहुँचा सकते हो? कहा है - **उभाभ्यामेव पक्षाभ्यामाकाशे पक्षिणां गतिः। तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते पुरुषोत्तमः।।** दोनों पंखों के सहारे

पक्षी आकाश में भ्रमण करता है। ज्ञान एवं कर्म रूपी उसके दोनों पंख भगवान् को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। **तिरुवाय. 1.4.6-** हे चतुर मधुमक्खी! अगर मेरे प्रभु को देखो तब उन्हें बताओ। **तिरुवाय 6.1.1-** हे बकगणों! भगवान् से हाथ जोड़कर मुझ पापिन का अगाध प्रेम निवेदित करो। **तिरुवाय. 6.1.5-** हे हंस की जोड़ी! करबद्ध होकर उनका दर्शन करो और मेरे बारे में भी विनती करो। **तिरुवाय. 6.8.1-** समूहबद्ध श्रेष्ठ पक्षीगण! विनती है, जाकर उनको मेरी दयनीय स्थिति बताओ। इसी तरह गुरुरूपी पक्षी अपने भक्त-शिष्य के बारे में भगवान् को बताते हैं।

सहपाठी का प्रसंग- तिरुवाय. 6.8.4- हे भौंरेगण! हमारे बाग के मुल्लै फूल का अगर अमृत पीना चाहते हो तो जाकर प्रभु को खोजो जिन्होंने हमारे साथ छल किया और मेरा त्याग कर दिया। **तिरुवाय. 9.7.1-** हमारे बाग से कीड़ा चुनने वाले पक्षी! **तिरुमूळिक्कळम** के प्रभु के पास मेरा दूत बनकर जाओ और लौटकर आने पर परिवार सहित सब अपने चरण मेरे सिर पर रखो। **तिरुवाय. 9.7.3-** हमारे तालाब से कीड़ा चुनते बकगणों! जाकर उनसे पूछो कि हम उनके संगियों जैसे हैं या नहीं? ये सब सहपाठी की तरह हैं।

पुत्र एवं शिष्य के प्रसंग - तिरुवाय. 1.4.7- हे हमारी पालतू सुग्गा! तुम अपनी बातों से हमें पीड़ा पँहुचाती हो। जाकर मेरे जिद्दी प्रभु से पूछो जो केवल हमारे दोष ही देखते हैं। **तिरुवाय. 1.4.8-** हे मेरी छोटी मैना! मेरे दूरस्थ प्रभु से जाकर मेरे दुःसाध्य रोग के बारे में बताओ। **तिरुवाय. 6.8.5-** हे तोतागण! मैंने तुमलोगों को पला-पोसा। जाकर प्रभु को जहाँ कहीं भी

हों खोजो और उनको बताओ। **तिरुवाय. 6.8.6-** हे छोटी मैंना! इस अभागे ने तुझे पाला-पोसा। हमने जो तुम्हें सिखाया उसे रास्ते भर दुहराते जाओ और उनको सुनाओ। ये सब उद्‌धृत पद पुत्र एवं शिष्य के समान पक्षियों के बोधक हैं।

चूर्णिका 151-

दूत के रूप में हंस पक्षी के अन्तःभाव।

सूत्र 151(2)- सं. विवेकमुखाश्शास्त्राण्युपदिश्य कर्दमे रतिं विना दिव्यस्त्री-गमनमनुसृत्य पश्चाद् गत्वा छत्रच्छायायां चामरेषु वीज्यमानेषु शंखेषु ध्वनत्सु रेखावद्भ्रमरेषु गीयमानेषु मानसपद्मासने उपविश्य विधिना दुःखं विना विच्छेदं विनाऽऽनंदं यथाऽभिवृद्धं भवेत्तथा गार्हस्थ्यधर्मे वा संगं त्यक्त्वा परमहंसदूताः नयाचलः सत्यजिह्वः नाथयामुनवद्वर्त्तमानान् हंस इति वदेत्।

सामान्य अर्थ - अच्छे-बुरे का विवेक, शास्त्रोपदेश, लौकिक लगाव का अभाव, नारियों से लगाव, छाता के नीचे पंखा झलना, शंख ध्वनि, भौंरों की ध्वनि, कमलस्थ मन का ध्यान; आपदाओं में धैर्य एवं शान्त चित्त से अनन्य भगवद्-प्रेम; वैराग्य धारण; ***आचार्य*** स्वरूप न्यायकर्ता शेल्वनम्बी, सत्यवादी विष्णुचित्त स्वामी, नाथमुनि एवं यामुनाचार्य, पूर्वजों की गौरव रक्षा, भगवद्चिन्तन रत एवं सुखी गृहस्थ जीवन; सब हंस के लक्षण हैं।

विशेषार्थ - कहा है - **हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रम्।** जल मिश्रित दूध से हंस दूध को अलग कर देता है। इसी तरह ***आचार्य*** सारग्राही विवेकवाले

होते हैं। परकाल स्वामी **पेरिय तिरु.11.4.8-** प्रभु ने हंस रूप में पावनु शास्त्रों को प्रकट किया। आचार्य शास्त्रों का उपदेश करते हैं। कहा है - **न बन्धाति रतिं हंसः कदाचित् कर्दमाम्भसि।** हंस कभी भी कीचड़ घुले जल में नहीं रहता है। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम् 100-** जो इसे कंठस्थ कर लेंगे वे यातनापूर्ण जन्म के लौकिक कीचड़ में नहीं पड़ेंगे। आचार्य लौकिक कीचड़ में नहीं पड़ते हैं। **पेरिय तिरु. 6.5.5-** प्रभु नरैयूर में रहते हैं, जहाँ हंसों की जोड़ी, कंगनवाली किशोरियों की चाल का अनुकरण करते हुए उनके पीछे-पीछे चलती है। किशोरियाँ भी हंस की चाल का अनुकरण करती हैं; उदाहरणार्थ- परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमडल 7 -** हंसगमनी कमलनयनी। तात्पर्य है कि लक्ष्मी जी का अनन्यार्ह-शेषत्व का गुण पुरुषकार भाव का अनुगामी होता है। **पेरिय तिरु. 9.1.5-** पत्तों की छतरी के नीचे मन्द प्रवाहित जल के ऊपर कमल फूल के कोमल गद्दे पर सुन्दर हंस बैठे हैं। पके धान की बालियाँ हवा में चँवर की तरह झूलती हैं। **पेरिय तिरु.7.8.2-** शंख हवा से स्वयं ही मंगल ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं। हंसों की जोड़ी कमल फूल की शय्या पर विश्राम में हैं। **पेरिय तिरु.7.5.9-** कमल फूल से भरे सरोवर में भौंरे मदमत्त हो गीत गाते हैं तथा हंस की जोड़ियाँ साथ में नृत्य करती हैं। इससे ज्ञात होता है कि कमल के ऊँचे उठे पत्ते कमल फूल पर छतरी की तरह हैं, धान की पकी बालियाँ चँवर की तरह झूल रही हैं, शंख-ध्वनि विजय सूचक है और भौंरों की गूँज वाद्य-यन्त्रों के धुन हैं। कमलस्थ मन का ध्यान - **पेरिय तिरु. 5.1.6-** पानी भरे खेत में कमल खिले हैं। यहाँ खेत का कीचड़ मन है और कीचड़ से उगे कमल पर फूल

खिले हैं जो आसन की तरह हैं। **तिरुवाय. 9.7.3-** प्रभु का वदन कमल फूल जैसा तथा वर्ण कमल के पत्ते जैसे हैं। लौकिक यातनाओं से मुक्त ***ज्ञानीजन*** भगवान् की कृपा-छाया में विश्राम करते हैं। भगवान् का ***श्यामला*** रंग नीले रंग में मिश्रित कमल-पत्ते की हरियाली है। भगवान् के भोग्य ज्ञानीजन मधुर अन्न हैं। **तैत्तिरीय उप. 3.10- अहम् अन्नम्।** परिपक्व ज्ञानीजन भगवान् के निष्ठावान् एवं आज्ञाकारी भक्त हैं। शुद्ध सत्त्व स्वभाव वाले ज्ञानी प्रभु की विनती में रत हैं। ये सारग्राही महान् जन का ***सामगान*** है। **गुरुपादाम्बुजं ध्यायेत् -** आचार्य के चरणकमल पर ध्यान करते हैं जो उनके मन को कमलासन प्रदान करता है। अर्थात् शिष्य के मन में गुरु विराजते हैं। **पेरियाळवार तिरु. 5.2.8-** हमारा हृदय कमल आपका निवास है। गुरु शिष्य के मन को अपना गौरवशाली स्थान बनाकर वहाँ सुख पूर्वक निवास करते हैं।

आपदाओं में धैर्य एवं शान्त चित्त से अनन्य भगवद्प्रेम- **तिरुवाय.1.4.3-** हे गौरवशाली! हंस प्रिया के साथ रहना सौभाग्य है। **तिरुवाय.6.1.4-** सदा साथ स्नान करने वाले हंस की जोड़ी। **तिरुवाय.6.8.10-** जल के कमल मे क्रीड़ा करते सुन्दर हंस। **तिरुवाय. 9.7.10-** हमारे सरोवर में भोजन करते मृदु चाल की हंस की जोड़ी। तुम सुखद कामी संगति से आनन्दित हो। ये सब आळवार के शब्द हैं। संसार के सभी दुरितों को झेलते हुए शान्तभाव से आचार्य भगवान् में मन लगाये रहते हैं। ज्ञान एवं कर्म के सहारे दैनिक जीवन निर्वाह करते हुए भगवान् में उनकी अभिरुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही

जाती है। उनकी जीवन शैली ***उपेय*** स्वरूप भगवान् को प्राप्त करने में सपरिवार सहायक होती है।

गौरवशाली पूर्वज - **तिरुविरुत्तम 29 -** हम इसी तरह प्रभु के बारे में बोलते रहे। हे हंस! तुम अपने अच्छे कुल के कारण अवांछित वस्तु से ग्रहण करने योग्य वस्तु को अलग कर लेते हो। हमारे शब्दों को तू अपने मधुर शब्दों में प्रभु को सुनाना। कभी ऐसा हुआ है कि हंस कभी हंसिनी का संवाद नहीं पहुँचाये। **पेरियाळवार तिरु. 4.4.8-** तिरुकोट्टियूर में सरल हृदय सेल्वनम्बी की सेवा प्रभु स्वीकार हुए हैं। **पेरियाळवार तिरु. 4.9.11-** सच्चे भक्त विष्णुचित्त। **पेरुमाल तिरु.1.4-** मुक्त जीव। भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्द विरुत्तम् 52-** सात्त्विक, समर्पित एवं कामनाहीन त्रिदंडधारी महात्मागण। ये सब **परमहंसों** के गुण हैं। नाथमुनि तथा यामुनाचार्य गौरवशाली महान आचार्यों की परम्परा में हैं। इसतरह से आचार्यों को हंस स्वरूप में यहाँ सुन्दर तरह से गौरवान्वित किया गया है।

चूर्णिका 152-

दूत के रूप में भौंरा, मधुमक्खी एवं भृंग (भृंग की अन्य प्रजाति बिढ़नी आदि) के अन्तःभाव के रूप में नारद, मुनिवाहन स्वामी एवं अरैयर जैसे महापुरुषों से सम्बन्ध जोड़ना।

सूत्र 152(3)- सं. किं लब्धवानित्ययुक्तभ्रममप्राप्य ममांत उत्पन्नमधुव्रत-परिशुद्धमध्वास्यैः अलकभारस्थकुलस्य सारं गृहीत्वा तेनातेनेति स्वरेण

गीत्वा प्रातःकाले सायंकाले कुरुं जीमरुलित्यादिगानविशेषानुन्मस्तकं गायन् संमर्द कृत्वोद्घाट्य प्रविश्य प्रतिबन्धकं विना प्रविश्य भ्रमरसदृशस्निग्धाल-केषु शंकां विना संमेल्य कृपाकरः वयमिति धावनेनागत्य गंधमेवध्मात्वा भ्रमरेव साक्षित्वेन देवभ्रमरेण घटितुं समर्थान् क्षेमविशिष्टो नारदः मुनिवाह-नस्तं विरानाख्य एतादृशान् भ्रमर इति भ्रमरविशेष इति।

सामान्य अर्थ - किसे छोड़ना है इसमें भौंरों को भ्रम नहीं है। ह्रदय से मधु का आनन्द लेने हेतु सदा प्रयत्नशील रहते हैं। अपने वर्तुलाकार मुख से ***वकुल*** फूल का सार एकत्र करते हैं। प्रातःकाल में वे ***तेतन*** के सुखद स्वर में ***कुरुन्ची, कामरम*** तथा ***कान्तारम*** की धुन पर गाते हैं। द्वार खोलने के लिए सामूहिक यत्न करते हुए काले घुँघुराले बाल के मधुमक्खियों के साथ हो जाते हैं। भगवान् का यशगान करते सुगंध विखेरते भ्रमणशील रहते हैं। प्रसन्नचित्त ***नारद, मुनिवाहन स्वामी*** तथा ***अरैयरगण*** दिव्य भौंरे एवं मधुमक्खियों के समान हैं।

विशेषार्थ - परकाल स्वामी **पेरियतिरु. 8.4.5-** सुन्दर सभी फूलों पर मँड़राने से क्या लाभ? तिरुकन्नपुरम् प्रभु की तुलसी की सुगंध लाकर मुझपर विखेरो। भ्रमवश त्याज्य के संग में रहने से उसको छोड़ना कठिन होता है। **पेरियतिरु. 4.3.9-** प्रभु की पूजा करते हुए जो अपने ह्रदय में द्रवित होता है उसके ह्रदय में वे अमृत की भाँति बस जाते हैं। भौंरा जैसे फूल का रस अपने मुँह से ह्रदय में भरता है वही भक्त की स्थिति है। भगवान् के सौंदर्य एवं उदारता आदि दिव्यगुणों पर मन लगाये हुए परिपक्व भक्ति

से हृदयस्थ प्रभु उसके हृदय में मधु जैसे मीठे हो जाते हैं। भक्त को अमृतमय प्रभु का मधु पीने का अवसर मिल जाता है। **स्तोत्ररत्न 27- तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति। स्थिते-ऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे मधुव्रतो नेक्षुरसं हि वीक्षते।।** अमृतवर्षी आपके चरणकमलों में जो दत्तचित्त है वह किसी और पदार्थ की इच्छा कैसे कर सकता है। मधु से भरे कमल के होते हुए भ्रमर ईख के रस अथवा तुच्छ इक्षुगन्धा (तालमखाने के गन्धहीन पुष्प) की ओर नहीं देखता है। भक्त को विशेष प्रयत्न से भगवान् के दिव्य मधुमय गुणों का स्वाद लेते रहने का अभ्यासी बनना पड़ता है। **तिरुवाय. 6.8.3-** हे मधुमक्खीवृन्द! जाओ, प्रभु से धारण किये गये तुलसीदल के फूल से मधु सेवन करो। शीघ्र लौटकर हमारे जूड़े के फूल पर उनका सुगंध विखेरो। **तिरुविरुत्तम 55-** हे भ्रमरगण! उनके वैकुण्ठ की तरह यह किशोरी भी मृदु है जिसके जूड़े के फूल अमृतमयी सुगंध विखेरते हैं। क्या ऐसा सौंदर्य अन्य कहीं देखा है? तात्पर्य है कि सुगंधित पुष्प से आनन्दित रहनेवाले प्रभु नम्माळवार के जूड़े के ***वकुला*** की सुगंध से अतिशय आनन्दित होते हैं। भगवान् सोंचते हैं कि परत्व भाव से अधिक आनन्द ***वकुला*** की सुगंध में है। इस तरह से वे आळवार के ***पारतन्त्र्य एवं शेषत्व*** को आनन्ददायी बना रहे हैं।

तिरुवाय. 4.10.11- यह प्रेमपूर्ण रचना चक्रधारी तथा ***वकुला*** फूलवाले की गौरवमयी गाथा है। भगवान् के शिर के बाल से अधिक सुगंध उनके शिर के ***वकुला*** पुष्प में है। आळवार ***वकुला*** इसीलिए धारण करते हैं कि उनको

भगवान् की याद सदा बनी रहे। **पेरियाळवार तिरु.4.8.6-** फलों एवं फूलों से लदे वृक्षों पर घर्षण से पराग से लिपटे भौंरों की झंकार से वीणा धुन उत्पन्न हो रहे हैं जैसे लगता है श्रीरंगम् प्रभु का असुरों पर विजयोत्सव (***अलत्ति***) का गान हो रहा है। ***भगवान् एवं भागवत*** के माधुर्य का आनन्द लेने से उत्पन्न ***अहंकार*** का भक्तगण भगवान् की दिव्यगाथा के गायन से कर रहे हैं। प्रभु की प्रेरणा (***अरुळिसेयल***) से आळवार प्रबन्धम् गाये हैं। **भौंरों के प्रातः एवं सन्धया कालीन गीत** - **तिरुवाय. 3.5.1-** श्यामवदन प्रभु का यशगान, **3.5.2-** गले की ऊँची आवाज में प्रभु का यशगान, **3.5.5-** वेद के प्रभु का यशगान। **पेरियाळवार तिरु. 4.2.8-** प्रातःकाल में तिरुमालिरुन्जोलै में छः पैरवाले भौंरे प्रभु के हजार नामों का संगीतमय स्वर से गायन करते हैं। **पेरियाळवार तिरु. 4.8.8-** संध्याकाल में श्रीरंगम् में दो पाँख वाले भृंगीगण चमेली जैसे श्वेत शंखों की ध्वनि करते हैं। **पेरियतिरु. 2.1.2-** वेंकटम में वनवासी नारियाँ मधुमक्खी के समूह गान में ***कुरिंज पन्न*** पर प्रेम का गीत गाती हैं। **पेरुमाल तिरु. 8.4-** भौंरों के गूँजते गीत। **पेरियतिरु. 3.8.1-** मधुमक्खियाँ देवगांधारी राग में आठों दिशाओं से नांगुर में निवास करनेवाले प्रभु का यशगान करती हैं। मधुमक्खियाँ ऋतु विशेष में ही दिखती हैं। प्रभु के पराक्रम का यशगान करके भक्तगण आनन्दित रहते हैं। प्रभु के गर्भगृह तक मधुमक्खियाँ समूह में निर्वाध प्रवेश कर सकती हैं, जबकि भक्त गोपुर से ही प्रवेश कर सकता है और तब अन्य श्रीवैष्णवों से मिल सकता है। **पेरुमाल तिरु. 4.3-** वेंकटम प्रभु अपने गर्भगृह में चक्र धारण करते हैं। मोक्ष प्राप्ति हेतु जटाजूटधारी

शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्र वहाँ प्रवेश के लिए प्रतियोगिता में रहते हैं। भक्तांघ्रिरेणु स्वामी **तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि 7-** श्रीरंगम् प्रभु के मन्दिर में देवों, ऋषि मुनियों के समूह का भारी जमाव है। विद्याधर तथा सुन्दरजनों की भीड़ से खड़े होने की भी जगह नहीं है। ***स्वर्ग वाशल*** (प्रवेश द्वार) पर शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्र प्रवेश पाने हेतु खड़े हैं। सभी समूह में श्रीमन्नारायण के यशगान कर रहे हैं। **तिरुप्पावै 16 -** द्वारपाल से प्रवेश के लिए दरवाजा खोलने का अनुरोध कर रहे हैं। **पेरियतिरुमडल् 73-** जब पर्वत समान सुवर्ण दरवाजा खुला तो हमारे प्रभु का हमें दर्शन मिला। जो विना किसी शर्त्त के भगवान् के दिव्यगुणों से घुल-मिल जाना चाहता है उसे परमपद में प्रवेश मिल जाता है और वह श्रीमन्नारायण के पास पहुँच जाता है।

पेरियाळवार तिरु. 2.5.7- प्रभु का काला केश भौंरे जैसा है। परकाल स्वामी **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 26-** प्रेयसी के साथ फूल का अमृत-रस पीनेवाले छः पैरों का भौंरा! विना किसी भय के प्रभु को जाकर बताओ कि एक किशोरी आप से प्रेम करती है। **तिरुवाय. 1.4.6-** चतुर मधुमक्खी! प्रभु को देखो तो बताओ कि आप अन्यायी हैं। उसका जीवन नष्ट होने से पहले गरुड़ को उसकी गली में जाने का आदेश दें। **तिरुवाय. 6.8.4-** हे भौंरावृन्द! उन्हें बताओ कि प्रेमी से ऐसा व्यवहार नहीं करते। भक्त प्रभु को अपनी वेदना बता रहा है। **तिरुवाय. 6.8.3-** हे मधुमक्खीवृन्द! जाओ, प्रभु से धारण किये गये तुलसीदल के फूल से मधु सेवन करो। शीघ्र लौटकर हमारे जूड़े के फूल पर उनका सुगंध विखेरो। **पेरियतिरु. 11.1.9-** अगर भौंरा तुलसीदल

की माला की सुगंध हम पर वर्षायेगा। भक्त प्रभु के साथ व्यतीत किये गये अपने पूर्व के आनन्द को याद कर हर्षित हो रहा है। अन्य ***भागवत्*** भी प्रभु के साथ भक्तों के मिलन के बारे में सुनकर जीवन धारण हेतु अपनी आत्मा को अपने शरीर के साथ मिला देता है।

पेरियतिरु. 9.3.4- मधु पीते मधुमक्खी उनके आगमन के साक्षी हैं। तात्पर्य है कि प्रभु स्वयं मधु पीते काले मधुमक्खी हैं। ***पारतन्त्रय शेषत्व*** भाव वाले ***श्रीवैष्णवों*** को प्रभु स्वीकार करते हैं। लक्ष्मी जी के ***पुरुषकार*** के माध्यम से प्रभु अपनी कृपा-वर्षा करते हैं। ***षटपदनिष्टं*** वे हैं जो भक्त द्वयमन्त्र के छः पदों "***श्री मत् नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये***" से प्रभु के पावन श्रीचरणों की वन्दना करता है। वे ***ज्ञान*** एवं ***अनुष्ठान*** के दो पंखों के सहारे सर्वत्र निर्वाध भ्रमण करते हैं। **तिरुवाय. 9.9.4-** हाय! गरुड़ के पंखों पर एक बहुत बड़ा बिढ़नी आया। वेद के सार जानने वाले भक्त द्वयमन्त्र से ज्ञान एवं कर्म के सहारे श्रीमन्नारायण को जान लेते हैं। यही वेदान्त में भी वर्णित है। गरुड़ की सवारी करने वाले भगवान् भी जीवात्मा के ***पारतन्त्रय शेषत्व*** को देखते रहते हैं। **पेरियाळवार तिरु. 4.9.5-** नारद ने एकबार गंगा में स्नान कर कछुए की प्रशंसा की। कछुआ ने गंगा की, गंगा ने सागर की, सागर ने पृथ्वी की, पृथ्वी ने पर्वत की, पर्वत ने ब्रह्मा की, ब्रह्मा ने वेद की, वेद ने यज्ञाग्नि की और यज्ञाग्नि ने प्रभु की श्रद्धापूर्ण अर्चना एवं स्नेहभरी दक्षिणा की प्रशंसा की। देवर्षि नारद सर्वदा मन से प्रभु के दिव्यगुणों में आनन्द लेते हैं। वे उनके नाम संकीर्तन करते और

प्रसन्नचित्त हो नाचते रहते हैं। भगवत् प्रेरणा से लोकसारंग मुनि के कंधे पर तिरुप्पाण आळवार प्रभु के दर्शन के लिए लाये जाने के कारण मुनिवाहन कहे गये। वे वीणावादन से भगवद् गुणगान में लीन रहते हुए अपने को प्रभु का भोग्य मानते हैं। अरैयरगण सहस्रगीति (तिरुवायमोळी) के संगीतमय गान से भगवान् के दिव्यगुणों की आनन्दानुभूति में रत रहते हैं। ये सन्तगण भौंरा, मधुमक्खी एवं भृंगी आदि के भगवान् से लगाव के गुणों से परिपूर्ण हैं। **तिरुवाय. 9.7.8-** बड़े बगानों में मधु ढूँढ़ते भौंरे एवं बिढ़नी (beetles)! हमारे प्रभु से जाकर मेरा पक्ष रखते हुए बोलो, "आपकी वाणी बहुत प्रिय लगती है।" आळवार ने भ्रमर आदि की उपमा इनके भगवान् के अन्वेषण एवं अनुसंधान की प्रवीणता से सम्पन्न होने के भाव से की है।

चूर्णिका 153 -

सुग्गा, मैना, कोयल एवं मयूर के अन्तःभाव तथा मधुरकवि आळवार, भक्तांघ्रिरेणु आळवार एवं रामानुज स्वामी से इनकी सदृशता।

सूत्र 153 (4) - सं. नेत्रजालके अपतित्वा जालके पतित्वा वर्द्धयित्वोद्धर्तृणां करे उपविश्य दधिघृतविशिष्टक्षीरामृतं भुक्त्वैककंठाः स्तोत्रं कृत्वा एकप्रकारेण दाढर्यं प्रार्थ्यानुक्तेरांत्रछेदकं त्वं न भवसि श्रेष्ठसंपदं निष्कासयामीति च तेषां च संतुष्य वाक्यमुद्धृत्य च्यवनं प्राप्ते अभ्यसितवाक्यमंजलिं कृत्वा प्रणमते गीत्वा प्रीत्याऽऽहूयमाने पराभिमाने वर्त्तमानाः पूर्णस्य प्रीतिविषयाः

मस्तोकपरि पादधूलिविशिष्टा उभयविभूतिनाथावलंबकाः एतत्सदृशान् शुक-शारिकाकोकिलमयूरा इति।

सामान्य अर्थ- मत्स्यनयना के जाल तथा बालू के महल में नहीं फँस जाने वाले, विकासोन्मुखी, दही-दूध-खीर का भोजन करने वाले, आचार्य कृपा पर अनुसन्धान करने वाले, संवादरहित अवसर की प्रशंसा एवं पुरस्कार प्राप्ति से कामनाहीन, गौरव गाथा करना तथा इसे सीखने का उपदेश करना, करबद्ध संकीर्तन, मधुरकवि आळवार की तरह प्रशंसागान तथा सम्मान करने में समय बिताना, भक्तांघ्रिरेणु (तोंडराडिप्पोडि) आळवार एवं रामानुज स्वामी (उडैवर) के शिष्यों की तरह बड़े जनों का स्नेहभाजन बनना और अन्य भक्तों का आज्ञाकारी रहना। ये सब सुग्गा, मैना, कोयल और मयूर के सदृश हैं।

विशेषार्थ - सुग्गा जैसे जाल में फँसता है उसीतरह भक्त भगवान् की कृपा-चितवन की जाल में पकड़ा जाता है। भक्तांघ्रिरेणु आळवार **तिरुमालै 16-** मैं मत्स्यनयना सुन्दरियों के फंदे में पड़ गया। रंगनाथ भगवान् हमारे हृदय में प्रवेश कर बोले, "मेरे पास आओ।" सुन्दरी के फंदे में पड़ने पर भी भक्त का ह्रास नहीं होता। **तिरुवाय.6.2.9-** सच्चा प्रेम के कारण मेरा हृदय पिघल कर पानी-पानी हो रहा है। अब आपने मुझे अपने नयनारविन्द के जाल में फँसाकर मेरे बालू के घर पर पादप्रहार कर दिया। भगवान् की मीन-नयनी कृपा दृष्टि का जाल समस्त चराचर को उपलब्ध है। भगवद् भक्त किसी मीननयनी की दृष्टि जाल में तो नहीं फँसता परन्तु वह प्रभु

की कृपादृष्टि के क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। इसका एक और तात्पर्य है कि जहाँ सुग्गा अपने स्वामी के संरक्षण में पलता है वहीं भक्तगण आचार्य से संरक्षित रहते हैं। परकाल स्वामी **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 14-** अपने सुग्गे को बोलते सुनती है, "तीनों लोकों से ऊपर अरंगम के नाथ" तब हाथ जोड़ बोलती है, मेरा श्रम पुरस्कृत हुआ। गोदा जी **नाच्चियार तिरु. 5.5-** कोयल! धरा मापने वाले प्रभु को बुला लाओ, दूध एवं मीठे भोजन पर पलनेवाले अपने सुग्गे से हम तुम्हारी मित्रता करा देंगे। परांकुश नायकी की वाणी **तिरुवाय.6.8.2-** हमारे तोतागण! इन मीननयनियों के समक्ष प्रतिज्ञा करती हूँ कि अपने हाथ से मक्खन मिश्रित खीर तुम्हें खिलाउँगी। आत्मिक स्तर पर प्रभु से मिलाने वाले अपने सहायकों का नायकी पूरा ध्यान देती है और उनका सम्मान करती है। ये सहायकगण भी प्रभु एवं नायकी के परस्पर प्रेम की प्रशंसा करते हैं। सुग्गे को दूध एवं खीर अपने हाथ से खिलाने का भाव भगवान् के प्रिय विषयों का आचार्य द्वारा भक्त के ज्ञानवर्द्धन हेतु उपदेश करना है। **तिरुवाय. 9.5.8-** कोयल ! तुम्हें दहीभात एवं खीर खिलाकर बोलने के लिए सिखाया। जीवन में अनेकों बाधाओं का सामना करते हुए भक्तगण अपना उज्जीवन करते हैं। **गीता 4.34- तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व-दर्शिनः।।** तत्त्वदर्शी ज्ञानी दण्डवत्-प्रणाम करने से, जिज्ञासुभाव से, प्रश्न करने से तुझे उसका उपदेश करेंगे। भगवान् के दिव्यगुणों के आनन्द में सर्वदा लीन रहनेवाले आचार्यगण इसे भोजन की तरह भक्तों को स्वयं खिलाते हैं। सुग्गे को बोलना सिखाने का तात्पर्य है कि भक्तगण आचार्य

से सीखे भगवद्-विषय के ज्ञान को ही बोलते हैं। **तिरुवाय.6.1.6-** पुन्नै वृक्ष पर वास करनेवाले कोयल! तुमसे निवेदन कर भीख माँगती हूँ। **तिरुवाय.6.1.7-** सुन्दर सुग्गा! शीघ्र जाकर तिरुवण्वण्डूर में रहनेवाले प्रभु से अपने मीठे शब्दों से बोलो। **तिरुवाय 6.1.8-** हे सुन्दर बालसारिके! तिरुवण्वण्डूर में रहनेवाले प्रभु के पास जाओ और लौटकर उनके दिव्यगुणों को सुन्दरवाणी में सुनाओ। नायकी अपने दूतों की प्रशंसा करती हुई भेजती है। नायकी अपनी विकलता को सुग्गे से प्रभु को जाकर सुनाने को कहती है परन्तु वह संवाद नहीं दे पाता है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं प्रभु के पास जाती है। यह प्रभु से नायकी के प्रेम की दूसरी अवस्था है। **तिरुवाय. 1.4.8-** हे बालसारिके! अत्यधिक भक्त-व्यामोह वाले भगवान् के पास जाकर मेरे विरह-रोग को सुनाओ। तुम मेरी बात न मानकर चुप रह गये। **तिरुवाय. 1.4.7-** हे प्रिय सुग्गा! तू अपनी बातों से हमें पीड़ा पहुँचाती हो। क्या तू हमसे नहीं पाले गये हो? जाकर उनसे पूछो, "कौन सा अपराध उसने किया है कि आप उस पर अपनी करुणा नहीं दिखा रहे?" **तिरुवाय. 9.5.8-** मूर्ख कोयल ! कृष्ण का नाम नहीं लेने के लिए तुमसे निवेदन किया है। विरहग्रस्त नायकी के कहने पर भी नहीं जाने वाले वहाँ भगवान् का नाम बोल रहे थे। भक्त नायकी नाम लेने से मना करती है। यह प्रभु से नायकी के प्रेम की तीसरी अवस्था है। **नाच्चियार तिरु. 5.10-** जिस प्रभु से हम प्रेम करते हैं उन्होंने हमें सेवा से वंचित कर दिया है। यहाँ रहकर दर्द बढ़ाने वाले कोयल! अगर हमारे नारायण को अभी नहीं बुलाती हो तो तुम्हें सदा के लिए यहाँ से बाहर भगा देंगे। पहले की तीन अवस्थायें

भगवान् के दिव्यगुणों से जुड़े हैं जबकि अब प्रेम और तिरस्कार की अवस्था भगवद्-चिन्तन की है। आचार्य भी भक्त के साथ प्रेम एवं तिरस्कार का प्रदर्शन करते हैं। **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 13-** प्रेयसी सुग्गे को एक-एक शब्द बोलने के लिए सिखाती है और तब अपने कड़े उरोजों पर रोती है। **तिरुवाय. 6.8.6-** हे छोटी मैंना! इस अभागे ने तुझे पाला-पोसा। हमने जो तुम्हें सिखाया उसे रास्ते भर दुहराते जाओ और उनको सुनाओ। इस क्रम में प्रेयसी प्रभु के अनेक नामों का स्मरण करती है। पूर्व के अभ्यास के कारण अतिशय विरहावस्था में भी वह भगवद् नाम बोल पाती है। परकाल स्वामी **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 14-** अपने सुग्गे को बोलते सुनती है, "तीनों लोकों से ऊपर अरंगम के नाथ" तब हाथ जोड़ बोलती है, मेरा श्रम पुरस्कृत हुआ। भक्त आचार्य को इसी तरह सम्मान देता है जिन्होंने उसे भगवद् नामों का बार-बार उच्चारण करना सिखाया। **पेरुमाल तिरु. 3.2-** अपने मधुर प्रभु के साथ उन्मत्त की भाँति प्रेम कर हम गाते, नाचते तथा अरंगा (रंगनाथ) पुकारते। कोयल को "***परप्रतम***" भी कहते हैं जिसका अर्थ है - जो अन्य लोग की देख-रेख में रहे। भक्त भी इसी तरह आचार्य एवं संगी भक्तों की देख-रेख में रहता है। जैसे मोर बादल देख कर नाचता है वैसे ही भक्त भी श्याम प्रभु को देखकर नाचता है।

मधुरकवि आळवार **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु 2-** किसी और देवता को हम जानते नहीं। **कण्णि. शिरु. 11-** कुरुगूर नंबी (नम्माळवार) के श्रीचरण ही वैकुण्ठ हैं। मधुरकवि आळवार ने गुरु (आचार्य) को ही सर्वोपरि माना है।

चार हजार पदों के दिव्य प्रबन्धम् में इनका ग्यारह पदों का एक मात्र प्रबन्ध **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु** नम्माळवार का प्रशस्ति-गान है।

भक्तांघ्रिरेणु आळवार भगवान् के भक्तों के अतिशय अनुरागी थे। भक्तों की चरण-धूल को सिर पर धारण करते रहना इनके नाम का अर्थ है। भक्तों के प्रति इनके ***पारतन्त्र्य शेषत्व*** का बोध होता है। **तिरुमालै 1 -** आदि प्रभु! आपके नाम के प्रभाव से इन्द्रियों से मुक्त हो निराशा से ऊपर उठकर हम यमदूतों के सिर पर पैर रख विजय की खुशी में हैं।

रामानुज स्वामी के प्रधान शिष्यों - कूरेश (कूरत्त आळवान्), दाशरथि (मुदली आन्डान), गोविन्द (एम्बार), देवराज मुनि (अरुलालपेरुमाल एम्पेरुमानार या यज्ञमूर्ति) का रामानुज स्वामी के प्रति ही ***पारतन्त्र्य शेषत्व*** है। श्रीवैष्णवगण सुग्गा, मैना, कोयल, मयूर के सदृश गुण वाले हैं। यद्यपि नम्माळवार ने मयूर को कभी दूत नहीं बनाया परन्तु अन्यों के साथ रहने का ही यहाँ इस सूत्र में भाव है। **तिरुवाय. 8.2.8-** हमारे प्रिय मैना, तोता, मेरे कोयल एवं मेरे मोर। इस पद से उपर्युक्त भाव की पुष्टि होती है।

चूर्णिका 154 -

बगुला, सारस आदि के अन्तःभाव में ये ***आचार्य*** एवं ***आळवार*** के सदृश हैं। कुलशेखर आळवार विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

सूत्र 154 (5) - सं. कलंकरहितपक्ष इति बाह्यांतरशुद्धया सह तरंगोच्चल-द्वसन् व्यथां निवर्त्यं मातृवक्त्रेण भोजनयोग्यस्य शिशोराहारमन्विष्य सर्वदा

चरित्वा युष्मत्पादौ स्पृहणीयानूपमिति ब्रह्मरथं कृत्वा दीयमानान् स्वीकृत्य श्रेष्ठपदं च न कांक्षे इति अद्वितीयमहाभ्रान्तः अस्मत्कूटस्थाः इव वर्त्तमानान्नारदबकसारसा इति।

सामान्य अर्थ - लौकिक लगाव के कारण दुःख एवं वेदना से रहित शुद्ध मन एवं शरीर वाले, अपनी संतान को भोजन देनेवाले, संगियों के साथ भ्रमणशील, सादा जीवन एवं सिर पर गौरवशाली भगवद् संस्पर्श सुख धारण करना, भगवद्-अनुभूति से उन्मादित विलासिता रहित जीवन वाले आचार्य सदृश कुलशेखर आळवार बक एवं सारस आदि के समान हैं।

विशेषार्थ - भक्तजन बगुला के पंख तथा शरीर की तरह अपनी देह एवं हृदय से निर्मल होते हैं। **तिरुवाय.6.8.8-** हे निर्मल निष्कलंक पंखवाले श्वेत बगुला! **यः स्मरेत पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचि -** अरुणकमल भगवान् पर ध्यान करनेवाले अन्तर्मन तथा बाहर से निर्मल होते हैं। भगवान् के चरण कमल पर ध्यान करनेवाले भक्तजन त्रिविध (दैहिक, दैविक, भौतिक ताप) लौकिक ताप से ग्रस्त रहने पर भी चिन्तामुक्त रहते हैं। **तिरुवाय. 2.1.1-** खारे जल पर फुदकने वाले श्वेत बगुले! वर्षा एवं गर्मी की चिन्ता न करते हुए बक अपने लक्ष्यवेध पर एकाग्रचित्त लगा रहता है। **भागवत 10.20.15- गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः। अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः।।** भगवान् में दत्तचित्त भक्त लौकिक व्यवधानों से ग्रस्त होने परभी उसी तरह शान्तचित्त रहता है जिसतरह घोर वर्षा के प्रहार से पर्वत अडिग रहता है।

अपनी सन्तान को भोजन देने का प्रसंग- भगवद्-विषय तथा शास्त्रों के उपदेश से आचार्य अपने शिष्य को उनके ग्रहण करने की क्षमता के अनुरूप उचित मार्ग बताते हैं। **पेरिय तिरु. 9.6.1-** नीचे की टहनी पर बैठे शिशु बक ऊपर की टहनी पर बैठी अपनी माँ के मुँह से मछली खाता है। **पेरिय तिरु.5.1.2-** पक्षीगण जल में उछलते मछलियों पर आक्रमण कर उन्हें उठाकर अपने बच्चों को खिलाने हेतु ले जाते हैं।

संगियों के साथ भ्रमणशील - तिरुवाय.6.1.1- समूह में आकर हमारे नमीपूर्ण बाग से कीड़ा चुननेवाले बकगण! **6.1.2-** अपनी प्यारी स्त्री के साथ अपने आहार ढूँढ़ने में रत सुन्दर वर्णवाले बक! आचार्य अपने शिष्यों के साथ दिव्यदेश का भ्रमण कर साथ-साथ प्रभु के दिव्यगुणों का आनन्द लेते हैं। **सादा जीवन एवं सिर पर गौरवशाली भगवद् संस्पर्श सुख धारण करना - तिरुवाय. 9.7.1-** नमीपूर्ण हमारे बाग में कीड़ा चुनते लाल चंगुलवाले सारसगण! सुगंधित तुलसीदल की माला धारण किए घट-नर्तक प्रभु के पास ***तिरुमूळिक्कळम*** दूत बनकर जाओ। वहाँ से लौटकर आने पर अपने समस्त परिवार के साथ सभी जन हमारे माथे पर अपने चरण रखो। **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 27-** अपनी इच्छानुसार तू यहाँ मछली पकड़ और अपनी प्रेयसी के साथ तू यहीं रह। इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। दूत पक्षी आचार्य सदृश हैं। उनके श्रीचरण सिर पर मिलने से शिष्य (नायकी) आचार्य को अपना शरीर एवं प्राण सर्वस्व समर्पित करता है। कहा है- **शरीरमर्थं**

प्राणं च सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्। साधक शिष्य से निवेदित सबकुछ आचार्य सहर्ष स्वीकार करते हैं।

कुलशेखर आळवार का प्रसंग - तिरुवाय. 8.10.11- सहस्रगीति गाने वाले का पारिवारिक जीवन सुखमय रहेगा। अपने संगी भक्तों को सबकुछ समर्पित करने वाले कुलशेखर आळवार का गार्हस्थ जीवन सुखमय था। वे लौकिक सुख के जाल में फंस जाने के भय से सर्वदा इससे दूर रहा करते। **पेरुमाल तिरु. 4.5-** मैं छतरीवाले हाथी के ऊँचे आसन पर बैठकर राजा के रूप में साम्राज्य-सुख नहीं चाहता हूँ। **पेरुमाल तिरु. 3.9-** राजा कुलशेखर ने इस मधुर गीत को चक्रधारी तिरुवरंग (श्रारंगम् के रंगनाथ) प्रभु के लिए अतिउन्मत्त भाव से गाकर उनके श्रीचरणों पर समर्पित किया है। प्रभु के अतिश्रेष्ठ भक्त होनें के कारण ये आचार्य सदृश हैं क्योंकि आचार्य भी प्रभु के अतिश्रेष्ठ भक्तों की श्रेणी का होता है।

तिरुवाय. 1.4.4- हे महाक्रौंच! तुम प्रभु को जाकर कहो कि वे अगर मुझ पर दयान्वित न होंगे तो अब से मैं जीवित न रह सकूँगी। इस पक्षी के गुण बक एवं सारस के सदृश ही हैं। इसे दूत के रूप में भेजना नायकी की स्वापदेश-उक्ति है।

चूर्णिका 155 -

दूत के रूप में मेघ का अन्तःभाव। यह अचर दूत है जो चर पक्षियों से भिन्न है। मुदल आळवार (सरोयोगी, भूतयोगी तथा मह्ययोगी), भक्तिसार स्वामी, परकाल स्वामी तथा रामानुज स्वामी से सदृशता है।

सूत्र 155 (6) - सं. अवगाहनदिनानि कल्याणसमुद्रमंतर्द्धत्वा दिव्यविग्रह-श्रेष्ठकान्त्या समानं भूत्वा आत्मरक्षणार्थं तीर्थकराः सर्वत्र च संचरित्वा ज्ञान-हृदं पूर्यानर्थं विनोज्जीवनयोग्यं निधिं वर्षित्वा दत्तमनालोच्य लज्जां प्राप्य वैवर्ण्यं प्राप्यप्रछन्नं वीक्ष्य संतोषं प्राप्य परसमृद्धिमेव लाभत्वेन वर्तमानाः प्रेमातिशयितदासाः कोशेऽस्थापितवन्तः मेघहस्ताः कृपामेघ इति गुणोज्जवल -मेघसदृशान् मेघ इति च।

सामान्य अर्थ - पवित्र वर्षाकाल में समुद्र से जल पीना, भगवान् के वर्ण सदृश स्वरूप, जीवन निर्वाह हेतु वर्षा में सरोवरों को भरना, विना भेदभाव के जल बरसना, आचार्य संकोच, वर्णहीन होना तथा छिपना, भक्तों की तरह दूसरों का स्नेहवश सहायक होना, भक्तिसार स्वामी की तरह तलवार को म्यान में नहीं रखना, परकाल स्वामी की तरह सबों के प्रति कृपालु रहना तथा दया आदि गुणों से अभिभूत रामानुज स्वामी का मेघ से सदृशता।

विशेषार्थ - महृययोगी **मुन्-राम् तिरुवन्दादि 69-**उपवास के दिनों में चोटी में तुलसी बान्धे भक्तगण स्नान के लिए "केवल वेंकट ही पर्वत है" गाते हुए जाते हैं। स्नान की डुबकी से उन्हें शक्तिशाली भुजाओं वाले प्रभु के शयन करने वाले सागर में स्नान का आनन्द आता है। नम्माळवार **पेरिय तिरुवन्दादि 69-** कल्याण के सागर शक्तिशाली तिरुमल हमारे हृदय में प्रवेश कर गये हैं। **पेरिय तिरु. 7.3.6-** हमारी जिह्वा गहरे सागर को पसंद करने वाले प्रभु के दिव्यगुणों की प्रशस्ति गाती है। नम्माळवार **तिरुविरुत्तम**

32 - हे बादल! बताओ, तुम तिरुमल प्रभु के श्याम रंग कैसे पाये? **पेरिय तिरुवन्दादि 85-** घने मेघ ने प्रभु का रंग प्राप्त कर लिया है। **तिरुविरुत्तम 32-** जीवन प्रदान करने वाले जल लेकर यत्र-तत्र घूमते हो। लौकिक प्रपंच तथा आवागमन के भँवर में पड़े जीव को श्रेष्ठ संतगण ही उज्जीवन (नया जीवन) देते हैं। भूतद आळवार **ईरण्डाम तिरुव. 14-** प्रभु का नाम लेते हुए भ्रमण करो और प्रभु का पावन जन बनो। **पेरुमाल तिरु. 2.6-** भटके हुए लोगों को सच्चे रास्ते पर लाने के लिए भक्तगण घूमकर उनके हृदय में प्रभु के प्रति प्रेम जगोते हैं। ज्ञान सरोवर के जल सदृश है। मेघ सरोवर को भरता है। कहा है- **ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे यस्स्नाति मानस-तीर्थे स याति परमां गतिम्।** ज्ञान-जल से भरा मन के सरोवर में राग-द्वेष की गन्दगी को धोते हुए स्नान करनेवाले अपना कल्याणप्रद श्रेयस प्राप्त करते हैं। ***आचार्य*** का मन-सरोवर प्रभु के दिव्यगुणों के जल से भरा रहता है। **तिरुप्पावै 3 -** बाणों जैसी बौछार की वर्षा से भूमि उपजाउ बनती है। **नाच्चियार तिरु. 8.2-** बेकटम् के पर्वतों पर मोती बरसाने वाले बादल। प्रभु के मोती जैसे कृपा-जल से ही सांसारिक जन निर्मल बनते हैं। ***आचार्य*** ज्ञान-जल बरसा कर भी संकोच में रहते हैं कि अभी और कुछ करना शेष तो नहीं रह गया है। जल नहीं बरसाने वाले बादल रंगहीन होकर आकाश में लुप्त हो जाते हैं। भाव है कि शिष्यों को उपदेश देने के बाद आचार्य एकान्त में आत्मानन्द में रहते हैं। जैसे बादल दूसरों के लिए ही बरसता है उसी तरह आचार्य शिष्यों के उज्जीवन में ही लगे रहते हैं।

पेरिय तिरु. 2.10.4 - अश्रुपूरित आँखों से अर्चना करने वाले भक्तों के आप अमृत हैं। यह पद तीनों ***प्रथम (मुदल -सर, भूत तथा महृय)*** आळवारों के प्रति है। नाथमुनि ने ***भक्तिसार*** आळवार को म्यान से बाहर की तलवार से तुलना की है। विजय प्राप्त करने हेतु तलवार को सदा म्यान से बाहर रखकर सचेत रहने की आवश्यकता रहती है। आळवार अपने प्रबन्धों के आदि, मध्य तथा अन्त में सर्वत्र भगवद् गुणगान ही करते रहते हैं। **परकाल स्वामी** ने सर्वदा दया ही बरसायी है। **पेरिय तिरु. 3.2.10-** सागर से घिरे धरती की भलाई हेतु घने मेघ जैसे बाहों वाले कलिकन्-रि (कलियन या परकाल स्वामी) ने ये पद भक्तों की प्रसन्नता हेतु रचे हैं। **3.4.10-** उदार वर्षा अर्थात् कलियन। आत्मगुणों से परिपूर्ण एवं उज्वल **रामानुज स्वामी** मेघ सदृश हैं। तिरुवरंगत्तमुदनार **रामानुज नुट्रन्दादि 60-** परमोदार काले मेघ के समान रामानुज।

चूर्णिका 156 -

नम्माळवार ने दूतों से प्रभु को चार तरह के संवाद भेजे हैं।

सूत्र 156 (7) - सं. अस्मदपराधपुष्कलसंपत् सृष्टिव्याप्तिदाससहवासैर्वि-स्मारितक्षमादीक्षासारस्य सौंदर्यज्ञापकस्य व्यूहविभवपरत्वाद्यार्चाः दूत्यच-तुष्टयस्य विषयाः।

सामान्य अर्थ- ***व्यूह*** स्वरूप को भेजे गये संवाद में अपने दोष की अप्रतिरोधि स्वीकृति है। ***विभव*** स्वरूप में प्रभु को सिद्धान्त स्मरण कराना है कि कैसे

वे अपनी बड़ी सम्पत्ति को भूले हुए हैं। भोग्य जीवों के आनन्द में रची हुई बाह्य सृष्टि को भूले रहना ***पर*** स्वरूप का विषय है। जीवों से आनन्द लेने में प्रभु को अपने भूले हुए सौंदर्य का स्मरण कराना ***अर्चा*** स्वरुप के संवाद का विषय है।

विशेषार्थ - (1) किसको संवाद भेजा - परम सत्य श्रीमन्नारायण के पाँचों - **पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी** एवं **अर्चा** स्वरूप को। (2) संवाद के कारण - स्वामी श्रीमन्नारायण को अपने सेवक पर ध्यान न देना। (3) प्रभु का संवाद को महत्त्व न देने के कारण - (क) धर्म की रीति के उल्लंघन करने की जीव की प्रवृत्ति, (ख) प्रभु का अपने द्वारा सृष्ट, वास-स्थान, समस्त जगत् के अवलोकन में मग्नचित्त रहना, (ग) विस्तृत जगत् की सृष्टि एवं संरक्षण का दायित्व, (घ) भगवान् के दिव्य गुणों में आनन्दित रहने वाले भक्तों का मधुर मिलन, (च) भगवान् के सौंदर्य एवं दिव्यगुणों का उल्लेख करना, जैसे - कृपा रूपी **क्षमा**, **दीक्षा** की रीति, स्नेह बन्धन **सारस्य**, शारीरिक लावण्य **सौंदर्य**। (4) दोषपूर्ण जीव के संवाद को परम स्वतन्त्र प्रभु को स्वीकार करना उनकी इच्छा पर निर्भर है। (5) संवाद की उपयोगिता प्रभु की कृपा को प्राप्त करने में है। (6) संवाद की उक्ति का प्रमाण तिरुवायमोळी के पद हैं - (क) भगवान् के चार स्वरुप को सम्बोधित, (ख) जीव के स्वरुप पर भगवान् विचार नहीं करते, (ग) विचार नहीं करने के कारण, (घ) संवाद के माध्यम से भगवान् के दिव्यगुणों को उद्भासित करते हुए जीव अपने दोष का निवारण करता है, (च) नायकी की अपनी

वाणी में संवाद के कुल सत्तरह दशक हैं, उसमें ये चार दशक - 1.4 (व्यूह), 6.1 (विभव), 6.8 (पर व अन्तर्यामी), 9.7 (अर्चा) में दूत भेजे गये हैं। अपनी वाणी के अतिरिक्त मातृ वाणी के सात और सखी वाणी के तीन दशक हैं।

व्यूह स्वरूप को संदेश - **तिरुवाय. 1.4.1 -** कारुणिक क्षीणकाय सारस। **तिरुवाय 1.4.7 -** जिद्दी कठोर प्रभु जो केवल मेरा दोष देखते हैं। भगवान् स्वतन्त्र हैं और भक्त जीव के कर्म पर भी विचार करते हैं। भक्त उनकी कृपा का आकांक्षी रहता है। वह सर्वदा उनसे मिलन के क्षण की आतुरता में रहता है। भगवान् भी भक्त से मिलने को उत्साहित रहते हैं। **तिरुवाय. 1.4.10-** हे मेरा गम्भीर मन! चक्रवत् फिरनेवाला यह संसार और इससे मुक्ति, इन दोनों को अपनी इच्छानुसार चलानेवाले, दुःखियों का दुःख दूर करने हेतु क्षीरसागर में शयन करनेवाले, भक्त विरोधियों को निवारण करने में समर्थ चक्रराज को धारण करने वाले प्रभु को संदेश दो कि इष्ट सिद्धि होने तक इस पापी का परित्याग न करें। प्रलय काल उपरान्त क्षीर-सागरशायी (व्यूह स्वरुप) प्रभु जीवों के सभी दोषों को भूलकर उनको सृष्टि से प्रकट करते हैं। **विष्णु धर्मोत्तर पु. - विचित्रादेहसंपत्तिरीश्वराय निवेदितुम्।** प्रभु पर ध्यान करने तथा श्रीचरणों की वन्दना करने से हाथ-पैर से युक्त आश्चर्यपूर्ण शरीर प्रदान करते हैं। अपनी रक्षा तथा कल्याण के लिए नायकी प्रभु के श्रीचरणों पर समर्पण की आवश्यकता के साथ संदेश भेजती है।

विभव स्वरूप को संदेश - तिरुवाय. 6.1.1- रमणीय जल प्रान्तों में रहनेवाले बकगणों। **तिरुवाय 6.1.3-** ऐश्वर्यपूर्ण तिरुवण्वण्डूर में विराजते प्रभु। इस दिव्यदेश के ऐश्वर्य से मोहित होकर प्रभु भक्त की रक्षा तथा उद्धार करने के गुणों को भूल जाते हैं। नायकी उन्हें दूत भेजकर स्मरण कराती है। **तिरुवाय 6.1.5-** मुकुट पर ताजा तुलसीदल की माला धारण करने वाले प्रभु। रक्षा प्रदान करने के दायित्व का विनीत भाव से प्रभु को दूत से स्मरण कराती है। **तिरुवाय. 6.1.10-** हे मधुमक्खीगण! ऊँची दीवारों वाले लंका को जलाकर भस्म करनेवाले प्रभु यहाँ तिरुवण्वण्डूर में रहते हैं। उनको बताओ कि मैं भी जीवित हूँ। जबकि यह दशक अर्चा स्वरूप से युक्त दिव्यदेश के सन्दर्भ में वर्णित है परन्तु इसमें भगवान् कृष्ण एवं राम जी की लीला का उल्लेख है। अतः इसे विद्वान संतगण विभवावतार को दूत से संवाद भेजने वाला मानते हैं।

पर व अन्तर्यामी स्वरूप को संदेश - सृष्ट बाह्य जगत् को भूलकर जीवात्माओं के आनन्द में मग्नचित्त होना **पर स्वरूप** को संवाद भेजने का विषय है। **तिरुवाय. 6.8.1-** हे सद्गुण सम्पन्न पक्षियों! नित्य विभूति के साथ सारी लीला विभूति का भी राज्य करो। नायकी दूत को सम्मानित करती है। **तिरुवाय. 6.8.6-** हे छोटी मैना! हमारे तेजोमय वक्षस्थल वाले श्यामकृष्ण अपने दिव्य चरणारविन्द की तुलसी से तुम्हें वंचित नहीं रखेंगे। **तिरुवाय. 6.8.4-** हे भौंरागण! अगर हमारे मुल्लै फूल का अमृत पीना चाहते हो तो हमारे साथ छल कर हमारा त्याग करने वाले प्रभु को खोजो।

इसमें **परत्वम्** को संदेश है। **तिरुवाय. 6.8.5-** हे तोतागण! प्रभु को जहाँ भी हों खोजो और बताओ- "यही उचित मार्ग है।" इसमें **अन्तर्यामी** को संदेश है। **परत्वम्** एवं **अन्तर्यामी** दोनों आँखों से दिखने वाले नहीं हैं, अतः नायकी दूत को उन्हें खोजने कहती है।

अर्चा स्वरूप को संदेश - प्रभु भक्त जीवों से मिलकर आनन्द मग्न रहने के कारण उनका संग छोड़ नायकी के पास नहीं आ रहे। तब नायकी उनको अपने सौंदर्य का स्मरण कराती है। **तिरुवाय. 9.7.1 -** हमारे उपवन में शिकार खेलते लाल पगवाले सुन्दर बक! **9.7.2 -** प्रिया एवं संतान संग प्रेम से रहने वाले हे बकगण! मिलन का आनन्द देकर वियोग का दुःख देने वाले प्रभु के लोक विलक्षण सौंदर्य का स्मरण किया जा रहा है। **9.7.3-** आपके नेत्र, हाथ व पग आदि लाल कमल पुष्प के समान और दिव्य श्याम विग्रह कमल-पत्र सदृश है। बकगणों! उनसे पूछो कि हम उनसे मिलन योग्य हैं या नहीं? **9.7.9-** हमारे प्रभु तुलसीदल का मुकुट एवं सुनहले चक्र धारण कर तिरुमूळिक्कळम में स्थित हैं। गहने धारण करने लायक हमारे उरोज पीले व ढ़ीले पड़ गये हैं एवं कमल के समान आँखों में आँसू भर गये हैं। उनसे कहो कि हमसे दूर रहना सर्वथा उचित नहीं है।

चौथे स्वरूप के दूत प्रभु को उनके सौंदर्य का स्मरण कराते हैं।

चूर्णिका 157 -

प्रभु के विभन्न स्वरूपों (पर....अर्चा) को विभिन्न दूतों से भेजे गये संदेश में एक ही लक्ष्य की प्राप्ति की आकांक्षा निहित हैं। प्रभु समस्त सृष्टि के

एक मात्र सच हैं परन्तु उनके विभिन्न स्वरूप विभिन्न परिस्थितियों में उनकी कृपा के प्रदर्शन के कारण हैं।

सूत्र 157 (8) - सं. अहनि सभायामुपविश्य नीलं धृत्वा शोध्यकार्यं मंत्रयित्वा मृगयां कृत्वाऽऽरामेषु बिहारश्च राजनीत्यामेकमपि च्यवनं विनाऽऽज्ञाप्रवर्त्तकभूम्याक्रमण इति च त्रिविधकिरीटोपयुक्त-बालराज्ञश्चाकाशो-परीत्याख्यं पंचसु दृष्टव्यः।

सामान्य अर्थ - उच्चतम व्योम स्थित सर्वनियन्ता, विभिन्न स्वरूप, गतिविधियों पर परामर्श-दाताओं मंत्रियों से विचार-विमर्श, विना कोई रिक्त स्थान के, उद्यान-क्रीड़ा एवं आखेट-क्रीड़ा, अधीनस्थ राजाओं द्वारा आज्ञा पालन, पाँच स्वरूपों में अनुभूत, तीन मुकुट, शीर्षस्थ।

विशेषार्थ - सिंहासनस्थ **पर-स्वरूप शेषी** (स्वामी) श्रीमन्नारायण भक्तों के शेषत्व भाव की प्रवृत्ति को स्वीकार करते हैं। **परत्व** में ही **अन्तर्यामी** स्वरूप संनिहित हैं। जैसे राजा अपनी प्रजा के दोष-गुण को अपने मुखाकृति के परिवर्तन से व्यक्त करता है और नगर का अकस्मात निरीक्षण करता है। अपने परामर्शदाताओं से आगे की गतिविधियों पर विचार विमर्श करना **व्यूह स्वरूप** का बोधक है। अच्छे गुणवालों के अभीष्ट कल्याण की व्यवस्था करता है। आखेट-क्रीड़ा में हिंसक पशुओं की तरह दुष्टों का नाश करना **विभव** स्वरूप का बोध कराता है। सज्जन भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के नाश के आखेट की थकान को मिटाने के लिए दिव्य-महिषियों के साथ उद्यान-क्रीड़ा करना **अर्चा** स्वरूप के लिए प्रयुक्त हुआ है।

तिरुवाय. 6.9.5- प्रभु आप ऊँचे आकाश श्रीवैकुण्ठ लोक (**पर-स्वरूप**) में बैठे हैं, श्रीवेंकटाचल पर (**अर्चा रूप**) खड़े हैं, क्षीरसागर पर (**व्यूह रूप**) शयन किये हुए हैं, श्रीरामकृष्णादि (**विभव**) रूप में धरा पर विचरते हैं, **अन्तर्यामी** रूप में सर्वत्र छिपे हैं, मेरे हृदय में गुप्त रूप से विराजते हैं। प्रभु के पाँचों रूप की अनुभूति भक्त को होती है। सार्वभौम राजा अपनी उपर्युक्त सभी गतिविधियों (सिंहासनस्थ, परामर्श करना, आखेट तथा बगान-क्रीड़ादि) में व्यस्त रहते हुए सार्वभौम ही रहता है। इसी तरह पाँचों रूप वाले श्रीमन्नारायण सर्वनियन्ता हैं। इसीलिए भिन्न रूपों को संदेश भेजना सर्वनियन्ता को ही संदेश देने के सदृश है।

नाच्चियार तिरु. 11.3 - तिरुवरंग (श्रीरंगम्) के श्रीसंपन्न प्रभु शाश्वत रूप से सागर से घिरे धरती एवं आकाश के सर्वप्रभुता सम्पन्न स्वामी हैं। **तिरुविरुत्तम 33-** शेषशायी प्रभु! आप अपने उदार चक्र से कर्म के अन्धकार को दूर करते हुए विस्तृत धरा एवं आकाश पर शासन करते हैं। विना किसी रिक्त स्थान के समस्त लीलाविभूति पर इनका ही शासन चलता है। तीन मुकुट धारण करना - **तिरुविरुत्तम 80-** धरा को मापने वाले महान राजा! परमपद के राजा! विश्लेष से विषाद बाँटने वाले राजा! सार्वभौम श्रीमन्नारायण तीन प्रधान दिव्य गुणों (सौलभ्य- सर्व सुलभ, परत्व- सर्वेश्वर परमपदनाथ, एवं प्रणयत्व- प्रेम रसिक) के मुकुट से विभूषित हैं।

तिरुवाय. 6.9.5- वैकुण्ठ में बैठे, वेंकटाचल पर खड़े, श्रीरंगम् में सोये, राम एवं कृष्ण बनकर घूमते हुए, सबमें छिपकर विराजते हुए, कबतक मुझसे

छिपे रहेंगे? कहा है- **वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्द्धं जगत्पतिः। आस्ते विष्णुरचिंत्यात्मा-भक्तैर्भागवतैस्सह।।** भगवान् विष्णु, जिन्हें समझना कठिन है, वे लक्ष्मी जी एवं नित्यसूरियों के साथ वैकुण्ठ में विराजते हैं। भूत आळवार **इरण्डाम तिरुवन्दादि 81-** हमने प्रकाश को देखा। **तिरुवाय. 4.9.10-** केवल आप एवं गोरी लक्ष्मी स्थायी हैं। जिनके प्रति शेषत्व मानते हैं उनकी ही राजधानी वैकुण्ठ लोक है। वहीं से वे समस्त सृष्टि की व्यवस्था का संचालन करते हैं। अदृश्य (काले) वेष अर्थात् अन्तर्यामी रूप में राजा की तरह आप नगर का निरीक्षण करते हैं। कहा है- **यमात्मा न वेद-** अर्थात् जिसे जीवात्मा जान नहीं सकता। **तिरुमालै 34-** प्रभु आप सबके हृदय में **अन्तर्यामी** रूप में रहते हैं। सबके मन में जो विचार उत्पन्न होते हैं उन सबके साक्षी हैं। **तिरुवाय. 6.9.5** में प्रभु का क्षीरसागरशायी अवस्था **व्यूह स्वरूप** का बोधक है। इस अवस्था में उनके जीवों की रक्षा हेतु विचार मग्न रहने की जो **योगनिद्रा** की अवस्था है उसी को सूत्र में मंत्रियों से परामर्श करना कहा है। कर्म के वशीभूत जीव आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं। **6.9.5** में प्रभु का **अवतार** लेकर धरा पर भ्रमण करने का उल्लेख है। **नाच्चियार तिरु. 14.9-** पक्षी, बछड़ा एवं हाथी (बकासुर, धेनुकासुर व बत्सासुर एवं कुवलयापीड़) का नाश करने वाले प्रभु आखेट के बाद वन से बाहर आये हैं। इस सूत्र में आखेट करने का भाव है **अवतार** काल में धर्म की हानि पहुँचाने वाले दुष्टों का नाश करना। आखेट से थके प्रभु विश्राम हेतु सुगंधित फूलों के बागों से घिरे तिरुमला पर्वत पर मृदु मुस्कान के साथ **अर्चा रूप** में खड़े हैं। **शिरिय तिरुमडल् 71 -** सुगंधित

फूलों के बागों से घिरे। इस सूत्र का भाव है कि विभिन्न स्वरूपों (**पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चा**) में विराजने वाले प्रभु अपने विभिन्न दिव्य गुणों के अनुरूप जीव की रक्षा के एकमात्र उद्देश्य की पूर्ति हेतु हैं। इनके मौलिक स्वभाव पर रूप एवं स्थल भेद का कोई प्रभाव नहीं है।

चूर्णिका 158 -

अर्चा रूप से नम्माळवार की विशेष अभिरुचि।

सूत्र 158 (9) - सं. दाससंतोषस्थाने दासानामेवेत्युक्ते पाश्चात्यैः सेव्यमान-स्थले सर्वं पूर्णम्।

सामान्य अर्थ - भक्तों के मनोनुकूल दिव्यगुणों से विभूषित रहते हैं। भक्तों की उत्तरोत्तर भावी पीढ़ी इनकी पूजा करती है।

विशेषार्थ- सरोयोगी आळवार **मुदल् तिरुवन्दादि 44**- भक्तगण जिसरूप में प्रभु को देखना चाहते हैं उसमें देखते हैं। आप वही नाम स्वीकार कर लेते हैं जिससे आपको पुकारा जाता है। **पेरिय तिरु. 4.9.5 -** इन्दलूर के प्रभु! क्या आप भक्तों के प्रभु नहीं हैं? भगवान् के अन्य स्वरूप किसी भी तरह उपलब्ध नहीं हैं। भक्तों के आश्रय इन्दलूर में खड़े हैं और उनसे मिलन सुगम है। **तिरुनेडुन्दाण्डगम् 10-** तिरुमुळिक्कळम के प्रभु! भावी पीढ़ी सदा आपकी पूजा करेगी। कहा है - **सर्वं पूर्णं सहोम् ।** अनुभव करने योग्य रक्षा आदि दिव्य गुण **पर, अन्तर्यामी, व्यूह** तथा **अवतार** स्वरूप में होते हैं वे सभी अर्चा स्वरूप के साथ होते हैं। **तिरुवाय. 7.10.10-** देवपिरान प्रभु

हमारे अन्तःमन को जानते हैं। भाव है कि नम्माळवार को सबसे ज्यादा अर्चा स्वरूप ही प्रिय हैं।

क्रमांक	सूत्र	दिव्यदेश - स्वरूप	प्रधान दिव्यगुण
1	159	श्रीरंगम् व्यूह	सौहार्द
2	160	वेंकटम् अन्तर्यामी	वात्सल्य
3	161	आळवार तिरुनगरी परत्व	परत्व
4	162	तिरुकुरुंगुडी वैष्णव वामन विभव	विभव लावण्य
5	163	श्रीवरमंगलम् तोताद्री	औदार्य (उदारता)
6	164	कुम्भकोणम् (कुडन्दै, अर्वामुदन्)	माधुर्य
7	165	तिरुवल्लवाल	कृपा
8	166	तिरुवण्वण्डूर पंपोत्तर स्थित	रक्षणस्थैर्य
9	167	तिरुविण्णगर	विरुद्धघटना-सामर्थ्य
10	168	तिरुतोलैविल्लीमंगलम्	विघटनाबांधव
11	169	तिरुक्कोलूर वैयत्तमानिधि	आपत्सखा
12	170	तिरुप्पेर	सौंदर्य
13	171		
14	172		
15	173		
16	174		
17	175		
18	176		
19	177		
20	178		

क्रमांक	सूत्र	दिव्यदेश - स्वरूप	प्रधान दिव्यगुण
21	179		
22	180		
23	181		
14	182		
25	183		
26	184		
27	185		
28	186		

चूर्णिका 159 -

सूत्र 159 - 186 तक विभिन्न दिव्य-देशों के अर्चा स्वरूपों से जुड़े विभन्न दिव्यगुणों को स्पष्ट किया गया है। यहाँ 159 में श्रीरंगम् के प्रभु के **सौहार्द** गुण का वर्णन है।

सूत्र 159 (10) - सं. बलिष्ठमहदाकाशस्थानं प्रथमं यथोज्जीवेत्तथा भोग्यत्वेन श्रीनेत्र वृद्धिं गते लक्ष्मीनायकश्रीस्थाने विग्रहयुक्तः समुद्रस्थानं नेत्राविषय इति तेषु अस्या विषये कथं पर्यवश्येदित्युक्तव्यूहसौहार्दे प्रधानम्।

सामान्य अर्थ- देवों की कल्पना से परे दिव्यगुणों से युक्त निवास स्थान पर व्यूह स्वरूप में प्राणियों के कल्याण के लिए विचारमग्न प्रभु शयनावस्था में लेटे हुए हैं। प्रभु प्रधान दिव्यगुण सौहार्द से विभूषित हैं।

विशेषार्थ- कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरु. 1.10-** श्रीरंगम् के प्रभु दक्षिण दिशा में देखते हुए लेटे हुए हैं। आप नित्यसूरि जनों को सर्वोच्च ऊँचा परमपद में रखे हुए हैं। सबसे पहले इन्द्र ने आपके पावन स्वरूप की पूजा की। वहाँ से आप अयोध्या में पधारे और सूर्यवंशी राजाओं से पूजे गये। उपहार के रूप में भगवान् राम ने आपको विभीषण को दे दिया। लंका जाते समय आप श्रीरंगम् में रुक गये। **कम्ब रामायण कुलमुरै. पा. 2**- लम्बे समय तक सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु ने ब्रह्मा की पूजा करके आपको प्राप्त किया। अयोध्या में निवास करने के बाद शेषशायी प्रभु ने श्रीरंगम् को अपना निवास स्थान बनाया। पिल्लै पेरुमाल अयंगर (अळगिया मनवाल दासर) के अष्टप्रबन्धों में से एक- **तिरुवरंगक्कलम्बकम् 13-** हे कृतज्ञ! पताकों से सुशोभित रत्नजड़ित महलों वाले अपने पुराने निवास अयोध्या को छोड़कर आप पावन श्रीरंगम् में वसते हैं। **नैमित्तिक प्रलय** से प्रभावित न होने वाले ब्रह्मलोक वासी ब्रह्मा तथा कार्मिक जगत् के लोगों की आप रक्षा करते हैं। आपके दर्शन से सभी पाप-ताप का निवारण होता है। जो आपको नहीं जानता वह कुछ नहीं जानता। **पेरियाळवार तिरु. 4.9.10-** तिरुवरंगम (श्रीरंगम्) के शयनावस्थावाले प्रभु। **4.8.10-** श्रीरंगम् में प्रभु का निवास है। इस पावन स्थान को **कोयिल** (श्रीमंदिर) कहते हैं और श्रीवैष्णवजन इसकी पूजा करते हैं। तिरुवायमोळी का 7.2 दशक नायकी की मातृ वाणी में श्रीरंगम् के प्रभु श्रीरंगनाथ जी से निवेदन है। **तिरुवाय. 7.2.10-** महान् देवों के सम्राट एवं नित्यसूरियों के नाथ। इससे **परत्व** का बोध होता है। **7.2.7-** सागरवर्ण के क्षीरसागर निवासी। इसमें **व्यूह स्वरूप**

की अनुभूति है। **7.2.3-** हे नेत्र से अदृश्य रहने वाले! यह **अन्तर्यामी** रूप की अनुभूति है। **7.2.3-** हे काकुत्स्थ! हे श्रीकृष्ण! इसमें **अवतार** की अनुभूति है। **तिरुवाय. 2.6.5-** क्षीरसागर में सबके रक्षणार्थ योगनिद्रा की मुद्रा में आप मग्नचित्त रहते हैं जो आपके **सौहार्द** दिव्यगुण की प्रधानता का बोधक है।

चूर्णिका 160 -

तिरुवेंकटम् में वेंकटाचलपति के **वात्सल्य** गुण की प्रधानता।

सूत्र 160 (11) - सं. भौमानां दिविषदां च पर्वते वर्तमानस्य सप्तलोकस्य चात्मनः पाशस्था अनुपमवात्सल्यमुज्जवलम् ।

सामान्य अर्थ - सात लोकों पर वात्सल्य वर्षाने वाले वेंकटाचल पर खड़े प्रभु मनुष्यों एवं देवों की शाश्वत निधि हैं।

विशेषार्थ - नवजात बछड़े की देह से गर्भ से लिपटे अवशेषों को गाय चाट जाती है और बछड़े को सुन्दर बना देती है। गाय का यही वात्सल्य गुण है। भगवान् भी वात्सल्य गुण से भक्त के सभी दोषों को अनदेखा करते हैं। जड़-चेतन में **अन्तर्यामी रूप** से विराजते प्रभु का प्रधान दिव्य गुण वात्सल्य है। **तिरुवाय. 1.8.3-** भूतल निवासी एवं स्वर्गादि निवासी के आँखों के तारा प्रभु वेंकटम् पर राज्य करते हैं। भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 45-** वेंकटाचल के शीतल झरनों के बीच वेंकटम् प्रभु देवों एवं

मनुष्यों के लिए स्थायी धनराशि हैं। **तिरुवाय. 2.6.10-** शीतल सुगन्धित तुलसी मंजर के धारण करनेवाले वेंकटम के प्रभु हमारे भूत, भविष्य तथा वर्तमान के माता, पिता एवं प्राण हैं। **पेरिय तिरु. 1.9.10-** घनश्याम वदन वेंकटम् प्रभु आँखों एवं प्राणवायु की तरह सातों लोकों के प्यारे हैं। भाव है कि वेंकटम् प्रभु सबके **अन्तर्यामी** हैं। आप अत्यन्त प्रिय वात्सल्य गुण सम्पन्न हैं। **तिरुवाय 3.3.4-** क्या नित्यसूरिनाथ (**परात्परत्व स्वरुप वाले**) कहलाने पर भी वेंकटाद्रिनाथ का यश बढ़ेगा? आप मुझ जैसे गुणहीन दरिद्र के लिए परम ज्योतिर्मय रूप हैं। आप सौशिल्यादि गुणयुक्त होने से क्षुद्र संसारियों से असीम प्रेम करने वाले हैं। अर्थात् परात्पर होना भगवान् के लिए शोभादायक नहीं है जितना सुशील होना है। **6.10.10-** अतुलनीय यश वाले हैं वेंकटम् प्रभु। उपर्युक्त 3.3 एवं 6.10 के दशक वात्सल्य गुण की गाथा हैं। दशक 3.3 की तरह 2.10 आळगर कोईल (तिरुमालिरुञ्शोलै) के वात्सल्य की गाथा है। भाव है कि वेंकटम् के साथ आळगार अर्थात् दोनों समेकित रुप से एक साथ जुड़े हैं।

चूर्णिका 161 -

तिरुक्कुरुगूर (आळवार तिरुनगरी) में परत्व की प्रधानता है।

सूत्र 161 (12) - सं. ओमित्यात्मानं युंजीत इति।

सामान्य अर्थ - प्रणव परत्व स्वरूप में भगवान् तथा उनके मंदिर की दिव्य गाथा है।

विशेषार्थ - कहा है - **ऊँ इति आत्मानं युंजीत।** ऊँ उच्चारण करते हुए आत्मा पर ध्यान करे। प्रणव की शक्ति से आत्मज्ञान होता है। **ओंकारो भगवान् विष्णुः।** भगवान् विष्णु प्रणव हैं। प्रणव की शक्ति से भगवान् का दर्शन होता है। अतः प्रणव से जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों के गुणों का ज्ञान होता है। आळवार तिरुनगरी नम्माळवार का गौरव एवं आदिनाथ भगवान् की महिमा (**परेशत्व** - **पर** एवं **ईशत्व** अर्थात् सार्वभौम परमपदनाथ) को प्रकट करता है। **तिरुवाय. 4.10.2-** प्रभु अपनी स्वेच्छा से कुरुगूर (आळवार तिरुनगरी) में रहते हैं। जब प्रभु परमपद में रहते हैं तब सांसारिकों की यातनाओं पर विचार करते रहने से उनका शरीर तप्त हो जाता है। परन्तु तिरुनगरी में भक्तों के परम प्रिय भक्त के सहवास के कारण शीतल शरीर एवं प्रसन्नचित्त प्रभु खड़े मुद्रा में विराजते हैं। **तिरुवाय. 4.10.10-** आप अपने निष्कलंक स्वरूप में सभी देवों, लोकों एवं समस्त प्राणीवर्ग को करते हैं। धान एवं गन्ना के पौधों से समृद्ध तिरुनगरी में आप स्थित हैं। आपने वामनरुप में अवतार लिया। आपने भगवान् कृष्ण के रूप में निपुणतापूर्ण कुम्भ नर्तन किया। भगवान् आदिनाथ की सेवा ही हमारा स्वरूपानुरूप कार्य है। **तिरुवाय. 4.10.3-** तिरुनगरी के प्रभु सभी देवों से पूजित हैं। **4.10.4-** उज्जवल तथा ऊँचे चहारदीवारियों से घिरे तिरुनगरी में सर्वेश्वर रहते हैं। **4.10.5-** तिरुनगरी में खड़े प्रभु ही तू एवं तुम्हारे सभी देवगण हैं। स्पष्ट है कि तिरुनगरी में विराजने वाले सामान्य रूप के प्रभु का **परत्व** ही प्रधान गुण है।

चूर्णिका 162 -

तिरुकुरुंगुडी (श्रीकुरंग नगरी) के प्रभु का विभवातार के लावण्यपूर्ण दिव्यगुण की प्रधानता है। आप वैष्णव नम्बी तथा नम्बी नारायण कहे जाते हैं।

सूत्र 162 (13) - सं. वैष्णववामने परिपूर्णनील विग्रहस्य रुचिजनकविभव-लावण्यं पूर्णम्।

सामान्य अर्थ - वैष्णव वामन में विराजते नील विग्रह का आकर्षक रूप विभवातार के सौंदर्य से परिपूर्ण है।

विषेशार्थ - तिरुकुरुंगुडी की एक अद्भुत् घटना के कारण यह स्थान **वैष्णव-वामन** कहा जाने लगा। वामन भगवान ने राजा महावली से दान में तीन पग भूमि माँगी। इसीतरह तिरुकुरुंगुडी के प्रभु ने शिष्य का रूप धारण किया और भाष्यकार रामानुज स्वामी से **वेदार्थ** का ज्ञान प्राप्त किया। फलस्वरूप इन्हें **श्रीवैष्णव नम्बी** भी कहा जाने लगा। वामनावतार के अंश स्वरूप से प्रभु ने अपने भक्त को अनुगृहीत किया। पवित्र तिरुकुरुंगुडी नगर को भी तब से **नम्बी** कहा जाने लगा। **तिरुवाय. 5.5.11-** तिरुकुरुंगुडी प्रभु के इस दशक को पुष्प अर्पित करते हुए गानेवाले धरती पर ही भगवान् विष्णु से एकाकार हो जायेंगे। भाव है कि तिरुकुरुंगुडी की महत्ता को जानने वाला परम **श्रीवैष्णव** भक्तों का सम्बन्धि वन जायेगा। यह पावन नगर **विभव लावण्य पूर्णम्** का केन्द्र बन गया है। तमिल शब्द **कुरुंगुडी** का अर्थ है- (वामनावतार के आधार पर) वह जो लघु आकार का बनकर उसी स्थान

पर स्थित हो जाये। **तिरुवाय. 5.5.7-** तिरुकुरुंगुडी के प्रभु का अतिसुन्दर एवं पूर्णतया तेजोमय रूप हमारे हृदय में घर कर गया है। **5.5.6-** वैष्णव नम्बी प्रभु का श्यामवदन एवं चारों भुजाओं ने हमारे हृदय को पूरी तरह भर रखा है। **5.5.1-** उनको देखने हेतु मेरा हृदय सदा तड़पते रहता है। तात्पर्य है कि वैष्णव नम्बी प्रभु का सौंदर्य ही उनमें मेरी बढ़ती अभिरुचि का जनक है। **वा.रा. 5.34.30- रूपवान् सुभगः श्रीमान्।** हनुमान् जी रामजी के वारे में कहते हैं - रूपवान्, सौभाग्यशाली और कान्तिमान् तो वे इतने हैं, मानों मूर्तिमान् कामदेव हों। **वा.रा. 3.1.13- रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्। ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः।।** श्रीराम के रूप, शारीरिक गठन, कान्ति, सुकुमारता तथा सुन्दर वेष को उन वनवासी मुनियों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा। भाव है कि वैष्णव नम्बी का शोभा-लावण्य विभव रूप की पूर्णज्योति के प्रवाह से पूर्णतया परिवृत्त है (**तिरुवाय. 5.5.7)** जो भक्तों के मन को हठात् अपनी ओर खींचते हुए दिव्यानन्द से भर देता है।

चूर्णिका 163 -

श्रीवरमंगलम् (तोताद्री) के प्रभु में औदार्य की प्रधानता है। यहाँ से सूत्र 186 के **तिरुपेर** दिव्यदेश तक सहस्रगीति के क्रम में वर्णन किया गया है।

सूत्र 163 (14) - सं. रुचिविवशानां पादमेव रक्षकत्वेन दीयमानमौदार्य-वानमामलै स्थले प्रवालवत् विकसेत्।

सामान्य अर्थ - वानमामलै (तोताद्री) प्रभु के आभामय सौंदर्य के आनन्दातिरेकरत भक्तों के प्रभुके श्रीचरण ही रक्षा-प्रदायक आश्रय हैं।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 5.7.10- तोताद्री (नांगुनेरी / वानमामलै) के प्रभु ने मुझे अपने श्रीचरण एकमात्र आश्रय के रूप में दिया है। **तिरुवाय. 5.7.3-** वैकुण्ठ के श्यामवदन प्रभु! इससे उनके **औदार्य** गुण की प्रधानता का संकेत मिलता है। **तिरुवाय. 5.7.6 -** दिव्य वानमामलै पर्वत के प्रभु तोताद्री के भक्तों के पूज्य हैं। **5.7.7-** परमपद को छोड़कर मेरे हृदय को निवास बनाने वाले नित्यसूरियों के नाथ तोताद्रीनाथ! दयार्द्र प्रभु ने हृदयस्थ होकर भक्तों की अतिशय अभिरुचि बढ़ायी है।

चूर्णिका 164 -

कुम्भकोणम (कुडन्दै) के प्रभु में माधुर्य की प्रधानता।

सूत्र 164 (15) - सं. रक्षकरहितान् शिथिलीकरणमाधुर्यं कुम्भकोणे प्रवहेत्।

सामान्य अर्थ - सारंगपाणी व आरावमुदन् प्रभु का माधुर्य भक्तों को द्रवित कर देता है। भक्तजनों के कोई अन्य रक्षक नहीं हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. 5.8.8- आप हमारी यातना का अंत करें या न करें आप ही हमारे एकमात्र आश्रय हैं। **5.8.1-** अतृप्त अमृत (अमृत से भी अधिक मधुर जिससे तृप्ति कभी पूरी नहीं होती)! मेरा शरीर आपके प्रेम में पिघलता है। मुझे रुलाकर चंचल जल-तरंगों की तरह तड़पा रहे हैं। भूताळवार **इराण्डाम् तिरुवन्दादि 97-** आप कुडन्दै के मन्दिर में रहते हैं।

चूर्णिका 165 -

तिरुवल्लवाळ में कृपा गुण की प्रधानता।

सूत्र 165 (16) - सं. शिथिलीभवने क्षेमदानकृपादर्शनीय नगरे नित्या।

सामान्य अर्थ -तिरुवल्लवाळ में प्रभु की कृपा, क्षीणवस्था वाले की सर्वदा रक्षा करती है।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 5.9.1- नायकी की सखियों से वार्ता- यह क्षुद्र दिनानुदिन क्षीण हो रही है। सूत्र 164 के कुडन्दै व अर्वामुदन् प्रभुसे मिलन की सम्भावना न देख नायकी क्षीण हो रही है। **तिरुवाय. 5.9.11-** ज्ञानवान एवं समझदार कुरुगूर शडगोपन का यह दशक शांत तिरुवल्लवाळ प्रभु के बारे में है। इसे गानेवाले को सर्वोत्तम सफलता मिलेगी। **5.9.9-** शाश्वत करुणा व कृपा स्वरुप।

चूर्णिका 166 -

तिरुवण्वण्डूर में कमलनाथ प्रभु के रक्षणस्थैर्य गुण की प्रधानता।

सूत्र 166 (17) - सं. व्यवसायज्ञानां रक्षणस्थैर्यं पंपोत्तरदेशस्थम्।

सामान्य अर्थ - पंपा नदी के उत्तर के तिरुवण्वण्डूर में कमलनाथ प्रभु के सहज स्वभाव से अवगत भक्तों की रक्षा में दृढ़ता सर्वविदित है।

विशेषार्थ - व्यवसायज्ञानां - प्रभु के सहज स्वभाव से अवगत भक्तजन। **वा.रा. 5.16.4- रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः। नात्यर्थं क्षुभ्यते**

देवी गंगेव जलदागमे।। जैसे वर्षा ऋतु आनेपर भी देवी गंगा अधिक क्षुब्ध नहीं होती है, उसी प्रकार श्रीराम तथा बुद्धिमान लक्ष्मणके अमोघ पराक्रम का निश्चित ज्ञान रखनेवाली देवी सीता भी शोकसे अधिक विचलित नहीं हो रही है।

रक्षणस्थैर्यं - रक्षण कार्य में दृढ़ एवं स्थिर। **तिरुवाय. 6.1.5-** मुकुट पर तुलसीदल की माला धारण करने वाले प्रभु तिरुवण्वण्डूर में रहते हैं जहाँ बालू की ढ़ेर में बहुत सारे शंख मिलते हैं। मुकुट पर तुलसी माला भगवान् के भक्तजन संरक्षण संकल्प का सूचक है।

तिरुवाय. 6.1.10- केरल स्थित पंपा नदी के उत्तर तट पर यह दिव्यदेश है। नायकी मधुमक्खी दूत से विनयावनत हो "*मैं भी उनकी प्रतीक्षा में जीवित हूँ*" कहने हेतु प्रभु के पास भेजती है। भगवान् राम का शरणागत-रक्षा-संकल्प - **वा.रा. 6.18.3- मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।** जो मित्रभाव से मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह त्याग नहीं सकता। **वा.रा. 18.33- एतत् व्रतं मम। -** यह मेरा सदा के लिए संकल्प है। तिरुवण्वण्डूर के कमलनाथ प्रभु का भक्तों की रक्षा का दृढ़ व्रत है।

चूर्णिका 167 -

तिरुविण्णगर में ओप्पिल्ला अप्पन प्रभु के विरुद्धघटना-सामर्थ्य गुण की प्रधानता।

सूत्र 167 (18) - सं. विलम्बविरोधभग्नकरणं विरुद्धघटना-सामर्थ्यं समीचीन नगरे विस्तीर्णम्।

सामान्य अर्थ - तिरुविण्णगर में विलम्ब-विरोधी घटनाओं के नाश करने में समर्थ ओप्पिल्ला अप्पन प्रभु का प्रधान गुण सर्वविदित है।

विशेषार्थ - प्रभु में सर्वथा दो पृथक गुण की वस्तुओं को जोड़ने की क्षमता है। तिरुविण्णगर के प्रभु को अघटित-घटना में समर्थ कहा है और इसी के फलस्वरूप नम्माळवार के ***प्रणय रोष*** को आपने मिटा दिया। **तिरुवाय. 6.2.1-** हमारा गेंद एवं डंडा वापस कर आप चले जाइये। **6.2.6-** मेरा आलिंगन करना बचपना और अमर्यादित है। इस प्रणय रोष में *सुख का सूक्ष्म भाव* निहित है। **6.2.9-** मन्दहास के पाश में मेरा ह्रदय द्रवित हो रहा है। आपने पाद-प्रहार से बालू के घरौंदों को तोड़ दिया। नायकी के रोष को मिटाकर आसक्ति उत्पन्न करना ही अघटित-घटित सामर्थ्य है। **6.3.1-** गरीबी-सम्पन्नता, स्वर्ग- नरक, शत्रुता-मित्रता तथा विष-औषध की विषमता वाले प्रभु सर्वत्र दिखते हैं। आप सम्पन्न जनों के साथ तिरुविण्णगर में रहते हैं। **6.3.2-** सुख-दुःख, कलुषता-प्रसन्नता, निग्रह-अनुग्रह, शीत-उष्ण परस्पर विरोधियों के बीच तरंगालंकृत जल से घिरे आप तिरुविण्णगर में रहते हैं। विषमताओं में समता वाले प्रभु जगत के अणु-अणु में व्याप्त हैं, और मन्दहास मुद्रा में भूदेवी के संग तिरुविण्णगर में रहते हैं।

चूर्णिका 168 -

तिरुतुलैविल्लीमंगलम के देवपिरान एवं अरविन्दलोचन प्रभु के विघटना-बांधव दो गुणों की प्रधानता।

सूत्र 168 (19) - सं. घटितघटकविघटनाबांधवं तद्ग्रामे द्विगुणम्।

सामान्य अर्थ - विघटनाबांधव दो प्रधान गुणों से सम्पन्न उदासीन भाव वाले तिरुतुलैविल्लीमंगलम के देवपिरान एवं अरविन्दलोचन प्रभु ।

विशेषार्थ - विघटनाबांधव - जोड़ने की संभावना रहित। मातृवाणी में नायकी **तिरुवाय. 6.5.10-** खड़े एवं बैठे दोनों मुद्रा में प्रभु तुलैविल्लीमंगलम में विराजते हैं। यह किशोरी इस नगर का केवल नाम सुनना चाहती है। पहले पहल माँ ने ही किशोरी को इस नगर के दिव्यमंगल विग्रहों का दर्शन कराया और अब माँ ही किशोरी की सखियों को इसे वहाँ जाने के लिए मना करने को कहती हैं। यह एक ही साथ दो विपरीत दिशाओं में जाने की तरह बात है। सखी माँ को कहती है- **तिरुवाय. 6.5.5-** हे सजनी! आपने ही इसे तुलैविल्लीमंगलम ले जाकर कमलनयन (अरविन्द लोचन) तथा रत्नों की ज्योति हरने वाले (देवपिरान) के दर्शन करा दिया। भगवान् के दिव्य दर्शन से किशोरी का उनसे सम्बन्ध जोड़ने में माँ एवं सखियाँ सहायक रही हैं। भाव है कि इस नगर के प्रभु ने एक बार किशोरी को अपने से जोड़कर संश्लेष सुख दिया और वही प्रभु अब किशोरी को अपने यहाँ आने से मना करके विश्लेष का विषाद दे रहे हैं। **तिरुवाय. 6.5.1-** सजनी! इस किशोरी को अब अकेली रहने दीजिए। **तिरुवाय. 6.5.11-** कुरुगूर के शडगोपन विचार, वचन एवं कर्म से प्रभु को अपनी माँ एवं पिता के रूप में पा चुके हैं। **6.5.10-** किशोरी उस नगर की दिशा में सिर झुकाती है। नायकी तुलैविल्लीमंगलम का नाम लेती रहती थी, परन्तु सखी

जब तुलैविल्लीमंगलम बोलती है तब किशोरी नगर का नाम नहीं सुनना चाहती। किशोरी नाम न लेकर केवल "**वह नगर**" बोलती है। तुलैविल्लीमंगलम की एक सन्निधि में देवपिरान का मूल विग्रह खड़े मुद्रा में हैं एवं पास की ही दूसरी सन्निधि में मूल विग्रह अरविन्द लोचन बैठे मुद्रा में हैं। विदित है कि आळवार तिरुनगरी के पास कुल नौ दिव्यदेश हैं जिन्हें नौ तिरुपति कहा जाता है। तुलैविल्लीमंगलम में दो सन्निधि होने के कारण इसको युगल-तिरुपति कहते हैं। यहाँ के प्रभु के दो गुण हुए। एक ओर किशोरी के हृदय में मधुर प्रेम उत्पन्न करते हैं जबकि दूसरी ओर सखियों के साथ ऐसी कोई बात नहीं है। दो नाम से विदित यहाँ के प्रभु इस नगर को दो गुणों से सम्पन्न करते हैं। संसार के बंधु-बान्धव सच्चे हितैषी नहीं हैं। एकमात्र नारायण ही सच्चे बन्धु हैं। माँ एवं सखियाँ अन्ततः अपने को नायकी से दूर कर लेती हैं। जैसा "**तिरुवाय. 6.5.1-** *सजनी! इस किशोरी को अब अकेली रहने दीजिए"* से स्पष्ट है। यही इस सूत्र का मुख्य संदेश है।

चूर्णिका 169 -

तिरुक्कोलूर के वैयत्तमानिधि प्रभु का आपत्सखत्वम् प्रधान गुण है।

सूत्र 169 (20) - सं. हस्तोपायं त्यक्तवद्भिरनुभूयमान-निधेरापत्सखत्वं प्रवेशग्रामे समृद्धम्।

सामान्य अर्थ - निधि-सम्पन्न प्रभु अपने धनहीन हो जाने वाले भक्तों के उसके आपत्काल में सहायक बनते हैं।

विशेषार्थ - इस सम्बन्ध में तिरुवायमोळी के दशक 6.6 एवं 6.7 द्रष्टव्य हैं। यह स्थान मधुरकवि आळवार का अवतार स्थल है तथा आळवार तिरुनगरी के पास नौ तिरुपतियों में से एक है। शापवश कुबेर अपना ऐश्वर्य तथा नौ-निधि खो बैठे थे। यहाँ उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रभु ने उनकी निधि के कुछ ही अंश उनको दिया। बाकी सब प्रभु ने स्वयं रख लिया। **तिरुवाय. 6.6.1-** हमारी गोरी बेटी ने कंगन गँवा दी है। **6.6.10-** हमारी तीक्ष्ण मेधावी बेटी ने प्रभु को सबकुछ गँवा दिया है। भगवान् से मिलन न होने की स्थिति में नायकी सभी अनावश्यक वस्तुओं का परित्याग कर देती है। **6.7.1-** हमारी सुकुमारी बेटी कहती है, "हमारा भोजन तथा पेय एवं पान जो हम चबाते हैं सभी कृष्ण हैं।" **6.7.11-** तिरुक्कोलूर के प्रभु वैयत्तमानिधि एवं मधुसूदन। संसार के दोष से प्रभु भक्तों को बचाते हैं। **6.7.1-** मेरी बेटी ने तिरुक्कोलूर का मार्ग जान लिया है। भाव है कि भक्तों के उपाय के एक मात्र फल तिरुक्कोलूर के भगवान् हैं। **6.7.4-** तिरुक्कोलूर में प्रभु अपार सम्पति के साथ रहते हैं। तिरुक्कोलूर में भुजंग शयन करने वाले प्रभु अपने भक्तों को अपनी अपार सम्पति मानते हैं जिसकी रक्षा में वे सर्वदा तत्पर रहते हैं।

चूर्णिका 170 -

तिरुप्पेरेयिल प्रभु का सौंदर्य प्रधान गुण है।

सूत्र 170 (21) - सं. गत्वा प्रविशतां सहायनिवर्त्तकं सौन्दर्ये महानगरे उद्‌घुष्यति ।

सामान्य अर्थ - वैदिक पाठ की ऊँची ध्वनि के इस महानगर में प्रभु के दर्शन करनेवाले का चित्त प्रभु का सौंदर्य चुरा लेता है।

विशेषार्थ - तिरुप्पेरेयिल आलवार तिरुनगरी के पास नौ तिरुपतियों में से एक है। इस सम्बन्ध में तिरुवायमोळी का दशक 7.3 द्रष्टव्य है। नायकी वाणी- **तिरुवाय.7.3.8-** तिरुप्पेरेयिल जाकर हमें प्रभु से अवश्य मिलना है। अपनी सखियों के परामर्श की अवहेलना करके नायकी तिरुप्पेरेयिल जाती है। **7.3.4-** सजनी! उनके शंख की अलौकिक आकृति को देखकर हम अपना हृदय वहीं खो बैठी। हाय! हमारा हृदय वहीं रह गया। अब क्या करने के लिए किसकी सहायता हमें मिलेगी? भाव है कि प्रभु का सौंदर्य अति मनोहारी है। **7.3.3-** सखी! हमारा हृदय लाज खोकर तिरुप्पेरेयिल में रहता है, जहाँ प्रभु बैठे हैं एवं जहाँ दिनों तथा महीनों उत्सव मनाये जाते हैं। कैसे हम उनके ऊँचे मुकुट, शंख, चक्र, कमल सी आँखें एवं मूँगा से होंठ भूल जायें जिसका हम लम्बी अवधि तक आनन्द ले चुके हैं! सभी आळवारगण प्रभु के अनोखे सौंदर्य की प्रशस्ति गाते हैं। **7.3.9-** महान नगर तिरुप्पेरेयिल। **7.3.4 -** सागर की शाश्वत लहरों के समान बढ़ते साम (वैदिक) गान के बीच प्रभु बैठे हैं। आनन्द विभार भक्तों के साम गान से प्रभु का सौंदर्य और अधिक आकर्षक हो गया है।

चूर्णिका 171 -

तिरुवारन्विलै के तिरुक्कुरलअप्पन प्रभु का आनन्द वृत्ति प्रधान गुण है।

सूत्र 171 (22) - सं. प्रवणचित्तं परत्वविमुखकरणानंदवृद्धिर्दीर्घनगरे।

सामान्य अर्थ - अतिविशाल इस नगर के प्रभु से प्रेम आनन्द विभोर करता है जो परमपद के प्रति मन की अभिरुचि को हटानेवाला है।

विशेषार्थ - तिरुवारन्विलै केरल में अवस्थित एक दिव्यदेश है। इस सम्बन्ध में तिरुवायमोळी का दशक 7.10 द्रष्टव्य है। **तिरुवाय. 7.10.9-** कर्मों के क्षय एवं पाप मिटने पर यदि परमपद जाता हो तो उसे भी छोड़कर मेरा मन यही चाहता है कि मन-वचन-कर्म से स्तुति करते सभी लोग जहाँ जाकर प्रणाम करते हैं, उपवन से घिरे उस वारन्विलै में शान्ति पूर्वक परिक्रमा व प्रणाम करने का भाग्य मिलेगा क्या? भाव है कि प्रभु भक्तों के हृदय में बसते हैं। **7.10.10-** तिरुवारन्विलै प्रभु के प्रति हमने समर्पणकर दिया है। भक्तगण मन-वचन-कर्म से आपकी पूजा करते हैं। **7.10.1-** कब वह दिन आयेगा जब हम करबद्ध हो बागों से घिरे तिरुवारन्विलै में सुख से पद्मवासिनी लक्ष्मी को वक्षस्थल पर धारण करने वाले प्रभु की परिक्रमा करेंगे? आप हमारे नाथ हैं। हम पर स्नेहासिक्त हो शासन करते हैं और सातों लोकों में आनन्द का संचार करते हैं। भाव है कि तिरुवारन्विलै के प्रभु का साक्षात्कार होने से आळवार का प्रेम उमड़ पड़ा है। **7.10.6-** आप परम प्रसिद्ध तिरुवारन्विलै में हैं। तात्पर्य है कि तिरुवारन्विलै के प्रभु **तिरुक्कुरलअप्पन** के मुखमंडल से आनन्द ही आनन्द उमड़ता है।

चूर्णिका 172 -

तिरुकुलन्दै के प्रभु का चेष्टित-आश्चर्यम् प्रधान गुण है।

सूत्र 172 (23) - सं. सादरानां लज्जानाशक-चेष्टिताश्चर्यं कुलन्दैदिव्यदेशे धवजेन प्रकाशते।

सामान्य अर्थ - तिरुकुलन्दै प्रभु के कार्य-कलाप आश्चर्य से भरे हैं। जो इनका प्रेमासिक्त होता है उसके मन से वे लज्जा का नाश कर देते हैं।

विशेषार्थ - आळवार तिरुनगरी के पास नौ तिरुपतियों में से **पेरुंकुळम** या **कुलन्दै** कहा जाने वाला यह एक दिव्यदेश है। प्रभु को **मायाकूत्तन** या **वेंकटवनन** भी कहते हैं। इस सम्बन्ध में तिरुवायमोळी का 8.2.4 पद द्रष्टव्य है। **तिरुवाय 8.2.4-** प्रभु का पीछा करते समय मेरे कंगन गिर गये। मैंने हृदय, मन इत्यादि सबकुछ खो दिया है। भाव है कि नायकी प्रभु के प्रेम से बन्ध चुकी है। **8.2.4-** कंगन वाली सखियों के सामने मैं लज्जित खड़ी हूँ। अब मैं क्या गँवा ही सकती हूँ? तात्पर्य है कि भगवान् की सुन्दरता ने नायकी की लज्जा का नाश कर दिया है। **8.2.4-** विस्मयकारी नर्त्तक (मायाकूत्तन)। प्रभु के आश्चर्यभरे कृत्य हैं। **8.2.4-** बागों एवं महलों से घिरे दक्षिण कुलन्दै के पश्चिम तरफ स्थित। तात्पर्य है कि कुलन्दै में प्रभु के विस्मयकारी कृत्य भक्तों के कल्याण के लिए हुये हैं।

देवपिरान प्रभु हमारे अन्तःमन को जानते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद्वरवरमुनये नमः

तीसरा प्रकरण

तीसरे प्रकरण में 150 से 218 तक कुल 69 सूत्र हैं।

चूर्णिका 173 -

मानव की यातनाओं का अन्त करने वाले तिरुवनपरिशारम के प्रभु का सौकुमार्य प्रकाशम् विदित है। नम्माळवार की माँ उडैनंगै देवी का यह जन्म स्थान है और इनका भी जन्म यहीं हुआ है।

सूत्र - 173 (24) - सं. मनोव्याप्तसौकुमार्यप्रकाशं समीपग्रामे।

सामान्य अर्थ - माँ के नगर वाले प्रभु का सौकुमार्य मानसिक अशान्ति/ चिन्ता से घिरा है।

विशेषार्थ - तिरुवनपरिसारम नागरकोइल के पास केरल में अवस्थित है। अशान्त मन - **तिरुवाय. 8.3.6-** प्रभु नित्यसूरियों के प्रणाम को स्वीकार करते हैं। नित्यसूरियों से सेवित सुकुमार शरीर वाले प्रभु सांसारिकों की यातनाओं को नष्ट करने हेतु अवतार लेते हैं। **8.3.5-** तिरुपुलिंगुडी एवं तिरुक्कोलूर में आप शांति से सोये हैं। आळवार तिरुनगरी के पास नौ तिरुपतियों में इन दो स्थानों पर आप शयनमुद्रा में हैं। क्या लंका के युद्ध एवं त्रिविक्रमावतार में जगत के मापने की लंबी छलांग से थक कर सोये हैं? आप कितने सुकुमार हैं! भक्तों के कल्याण हेतु आपका मन अशांत

रहता है। **8.3.6-** अपने मणिवर्ण से हमारे हृदय को प्रकाशित करेंगे। जैसे आप फूल धारण करते हैं वैसे ही सुन्दर शंख चक्र धारण करते हैं। यह भगवान् की सुकुमारता को प्रकाशित करता है कि विना श्रम के फूल का भार सहने वाले प्रभु विना श्रम के आयुधों का भी भार सह लेते हैं। इसका यह भी तात्पर्य है कि प्रभु की पर्वत सदृश भुजाओं के लिए आयुधादि का भार पुष्पवत है। **8.3.7 -** लक्ष्मी जी को वक्षस्थल पर धारण करनेवाले प्रभु परिसारम में रहते हैं। यात्रीजन यहाँ आते-जाते रहते हैं परन्तु, हाय ! कोई यह कहता नहीं, "एक भक्त प्रतीक्षा में हैं कि एक कौर खाकर शिशु की तरह सोये हुए प्रभु के जागने पर वह उनके शंख-चक्र को लेकर वह उनके पीछे-पीछे चलेगा।" इस स्थिति के निवारण हेतु प्रभु यहाँ अपना सौकुमार्य को प्रकाशित करते हैं।

चूर्णिका 174 -

तिरुच्चेंगनूर का प्रधान गुण शौर्यादि है। वास्तव में केरल में अवस्थित इस स्थान को तिरुच्चित्तारु कहते हैं परन्तु पास के च्चेंगनूर स्टेशन के कारण इसे तिरुच्चेंगनूर भी कहा जाने लगा।

सूत्र - 174 (25) - सं. महामतिभिर्भयं निवृत्य स्थातुं योग्यं सौर्यादीनि-शित्तारु दिव्यदेशे प्रकाशते।

सामान्य अर्थ - ज्ञानवानों के भय विनाशक प्रभु के शौर्यादि गुण तिरुच्चित्तारु में विकसित हो रहे हैं।

विशेषार्थ - महाभारत उ.प. 94.51- संस्पृशन्नासनं शौरेर्विदुरस्स महामतिः। परम बुद्धिमान् विदुर भगवान् श्रीकृष्ण के आसनको स्पर्श करते हुए अपने अलग आसन पर बैठे। तात्पर्य है कि भगवान् कृष्ण की सुकुमारता पर विचार करते हुए विदुर जी ने उनके आसन को उनके अनुकूल है कि नहीं परखा। **तिरुवाय. 8.4.1-** गोप किशोर विजयी हुए। भाव है कि प्रभु के अनिष्ट का भय जब मिट जाता है तब वह भय कीर्ति गाथा में परिणत हो जाता है। वरवर मुनि स्वामी **तिरुवायमोळी तिरुवन्दादि 73, 74-** नम्माळवार को डर था कि नित्यसूरियों के प्रभु का इस संसार में मंगलाशासन करने वाला कोई नहीं है। ऐसा सुनकर एम्पेरुमान (भगवान्) ने कहा कि जब आप (आळवार) हैं तब मुझे कहाँ सोंचना है। भगवान् ने उन्हें अपना पराक्रम आदि तथा महान् भक्तों से एक जुटता तथा लगाव दिखाया। इससे आळवार निर्भय हो गये। **तिरुवाय. 8.4.10-** शिव एवं ब्रह्मा के अन्तर्यामी प्रभु को हमने प्राप्त किया। अर्थात् शिव-ब्रह्मा जिनके निरीक्षण में अपना कर्त्तव्य करते हैं उस परम श्रेष्ठ प्रभु को प्राप्त किया। परमनियन्ता की सरलता के कारण विदुर जी तथा अन्य भक्तजन ऐसा अवसर के संयोग से उनका सामीप्य प्राप्त करके प्रसन्न हैं। **8.4.1-** पर्वत सदृश कुवलयापीड हाथी लुढ़क गया। चिपका हुआ महावत मारा गया। उत्सव के चाणूर एवं मुष्टिक आदि मल्ल योद्धाजन ध्वस्त हो गये। ऊँची दीर्घा वाले राजागण पीछे मुड़कर भाग गये। कंस का सिर कुचल दिया गया। तिरुच्चित्तारु में विकसित होने का भाव है कि नदी के रत्नादि जैसे नदी तट पर चमकते हैं वैसे ही प्रभु के शौर्य, धैर्य एवं पराक्रम आदि गुण

पावन स्थल तिरुच्चित्तारु में प्रकाशित हो रहे हैं। नदी के जल के निरन्तर प्रवाह की तरह तिरुच्चित्तारु के प्रभु के शौर्यादि विकसित होते रहेंगे।

चूर्णिका 175 -

केरल में अवस्थित दिव्यदेश तिरुक्कडित्तानम (सुगन्ध क्षेत्र) में कृतज्ञता गन्धम् की प्रधानता है।

सूत्र - 175 (26) - सं.

सामान्य अर्थ - आळवार के **साध्य** रूप वाले प्रभु तिरुक्कडित्तानम में **वासना** युक्त कृतज्ञता रूपी **साधन** की तरह विराजते हैं।

विशेषार्थ- आळवार के **साध्य** रूप प्रभु का तात्पर्य है कि जब साध्य रूपी फल की प्राप्ति हो जाती है तब साधन विस्मृत हो जाता है। **तिरुवाय. 8.6.2-** तिरुक्कडित्तानम तथा मेरे हृदय दोनों में प्रभु समान रूप से रहते हैं। भाव है कि आळवार का हृदय प्रभु के लिए **साध्य** अर्थात् फल है। प्रभु के लिए दिव्य क्षेत्र तिरुक्कडित्तानम **साधन** की तरह है। पावन नगर तिरुक्कडित्तानम में रहना प्रभु की उस क्षेत्र पर **कृतज्ञता** का बोधक है। **तिरुवाय. 8.6.8-** प्रभु का परमपद धाम, धरा तथा क्षीरसागर आदि अनेकों श्रेष्ठ वासस्थान है, परन्तु उन्होंने कृतज्ञता की वासना (गन्ध) के कारण सुगंधित तिरुक्कडित्तानम को तथा मेरे हृदय को अपना वास स्थान बनाया। पिल्लै लोकाचार्य स्वामी **श्रीवचनभूषण 174-176 - परमार्तस्यास्य शरीरस्थितेर्हेतुः केवल भगवदिच्छैव हि - 174,** परमार्त इस चेतन का शरीर

भगवद् इच्छा के कारण है। **तिरुमालिरुंशोलै इत्युक्तप्रकारेण अभिमतदिव्य-देशेषु सर्वेषुक्रियमाणमादरमस्य शरीरैकदेशे - 175,** तिरुमालिरुंशोलै आदि समग्र दिव्यदेशों को जितना आदर देते हैं उतना आदर शरीर के एकदेश में करते हैं। **तत्र वासः साधनं, अत्र वासः साध्यम् -176,** वहाँ (दिव्यदेश) वास साधन है और यहाँ (भक्त का शरीर) वास साध्य है। वे **अमृत-नारायण** की तरह अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं।

चूर्णिका 176 -

केरल में अवस्थित दिव्यदेश कुट्टनाडु **तिरुप्पुलियूर** (शिरुपुलियूर) में **नायकलक्षणम्** की प्रधानता वाले प्रभु मायापिरान कहे जाते हैं।

सूत्र - 176 (27) - सं. अवगाहितानन्यार्हकरण-नायकलक्षणं सौंदर्यश्लाघ्य-ग्रामे पूर्णम्।

सामान्य अर्थ - बहुप्रशंसित इस नगर में अवस्थित शूर-वीर प्रभु अपने कृपा-पात्र भक्तों को अपनी ही संपदा मानते हैं।

विशेषार्थ- तिरुप्पुलियूर प्रभु का तिरुवाय. 8.9 दशक की गाथा सखी वाणी में है। **तिरुवाय. 8.9.5 -** विश्वनायक प्रभु की करुणा में यह किशोरी अपने को सदा डुबाये रहती है अर्थात् उनका कृपा-पात्र बन गई है। प्रभु की संपदा - **8.9.1-** कुट्टनाडु **तिरुप्पुलियूर** के प्रभु के अतिरिक्त किशोरी किसी अन्य का नाम तक नहीं लेती। **8.9.9-** रात-दिन मेघ-श्यामल का नाम बोलती है। **8.9.10-** दक्षिण कट्टुनाट्टु (दक्षिण केरल) के ऊँचे सुन्दर रत्नालंकृत

महलों की श्रृँखलाओं के बीच **तिरुप्पुलियूर** में प्रभु प्रकाश-स्तम्भ की तरह खड़े हैं। **8.9.1-** जलाशयों से घिरे मणि-पर्वत सदृश प्रभु। **8.9.2-** सुन्दर मेरु पर्वत के ऊपर कांतियुत सूर्य व अनेक ग्रह-नक्षत्रों के प्रकाश-सदृश प्रभु। भाव है कि सुन्दर शरीर एवं अलंकरणों के साथ नायकलक्षणयुक्त प्रभु भक्तों को आकर्षित करते हैं। बहुप्रशंसित नगर - **8.9.3-** उज्जवल रत्नादि से अलंकृत बड़े प्रासादों से ऐश्वर्य-विशिष्ट **तिरुप्पुलियूर** क्षेत्र की ही प्रशंसा दिन-रात अनवरत करती है। **अवगाहित** का तात्पर्य कृपा-कटाक्ष / कृपा-पात्र के अनन्तर संश्लिष्ट-अननन्यार्ह करने में समर्थ नायक-लक्षण युक्त (स्वामी स्वरूप) मायापिरान प्रभु स्वामी हैं और आळवार उनकी संपदा हैं।

चूर्णिका 177 -

आळवार तिरुनगरी के पास अवस्थित नौ तिरुपति दिव्यदेश के **तिरुपुलिंगुडी, वरगुणमंगै** एवं **वैकुण्ठम्** में **भोग्यपाकत्वरा** की प्रधानता वाले क्रमशः शयन, बैठे एवं खड़े मुद्रा वाले प्रभु हैं।

सूत्र - 177 (28) - सं. भोग्यपाकत्वरा स्वच्छवाक्यात् पूर्वत्रये च प्रकटा।

सामान्य अर्थ - उपर्युक्त तीनों नगरों में मीठे पदार्थ की त्वरा से युक्त "मेरे हृदय में प्रवेश कर मन को निर्मल करने वाले" प्रभु हैं।

विशेषार्थ- क्षुधा की त्वरा में एक भूखा व्यक्ति भोजन तैयार होने तक पाकशाला के आस-पास घूमता है। उसीतरह आळवार की परमभक्ति में परिपक्वता आने तक भगवान् उनके पास मँड़राते रहते हैं। **तिरुवाय. 9.2.4-**

तिरुपुलिंगुडी में शयनावस्था**, वरगुणमंगै** में बैठे, एवं **वैकुण्ठम्** में खड़ा रूप में विराजने वाले प्रभु ने हमारे हृदय में प्रवेश कर हमारे विचार को निर्मल कर दिया। इसका भाव है कि आळवार को प्रभु ने मधुर बना दिया। शीघ्रता से आळवार का उन्होंने सबकुछ चूस लिया (**तिरुवाय. 9.6.10)**।

चूर्णिका 178 -

केरल स्थित **तिरुक्काट्करै** अप्पन प्रभु का शील गुण प्रधान है। इसके पहले कि आळवार भगवान् को निगलें उन्होंने ही इन्हें चूस लिया।

सूत्र - 178 (29) - सं. भोगेविनिमयशीलं काट्करैदिव्यदेशे तीरं नाशयेत्।

सामान्य अर्थ - जल में निमग्न हो जाने वाले नदी के तट की तरह आनन्द का प्रवाह तिरुक्काट्करै नगर की सीमा को डुबा दे रहा है। आनन्द भोगने की महानता एक को छोड़कर दूसरे के पक्ष में जा विराजी है।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 9.6 दशक यहाँ स्मरणीय है। शील गुण के कारण महान व्यक्ति निम्न स्तर के व्यक्ति से घुलमिल जाता है। **तिरुवाय. 9.6.7 -** प्रभु आये और स्नेह से हमारी सेवा को स्वीकार कर लिया। **9.6.9-** हमारी आत्मा को यातना देनेवाले प्रभु अन्य आत्मा के साथ ऐसा ही करते हैं क्या? सामान्यतया प्रभु **शेषी** हैं परन्तु यहाँ आळवार को उन्होंने **शेषी** बना दिया और स्वयं **शेष** होना स्वीकार कर लिया। अपनी महानता से वे जीवात्मा के साथ अपने सम्बन्ध का विनिमय (अदल-बदल) कर लिया। आळवार कहते हैं- **तिरुवाय. 9.6.1-** जिसकी वीथियों में नीले कमल की

सुगंध फैली है, वहाँ के तिरुक्काट्करै अप्पन के सौशील्यादि गुणों को याद करके मेरा हृदय पिघल कर बह रहा है। आशा तो इतनी बढ़ रही है कि आत्मा में वह समा नहीं पा रही है। हाय! एक साधारण सेवक मैं कर ही क्या कर सकता हूँ? भाव है कि सम्बन्ध के विनिमय से आनन्द तिरुक्काट्करै नगर की सीमा को डुबा दे रहा है।

चूर्णिका 179 -

केरल के **तिरुमूळिक्ककळम** प्रभु का सौकुमार्यम् / मार्दवम् गुण प्रधान है। सूत्र 173 का सौकुमार्य प्रभु के शरीर का सौंदर्य है, और यहाँ यह मूल स्वभाव के गुण के रूप में प्रदर्शित है।

सूत्र - 179 (30) - सं. महात्मनो विरहासहमार्दवं संपद्भूतस्य कलाख्य स्थले कुटीरे पूरयेत्।

सामान्य अर्थ - अपने सौकुमार्य गुण के कारण भक्तों से विछुड़ना प्रभु को सहन नहीं होता। विशेष प्रेम के पात्र परिजनों के साथ, भक्तों की संपदा, प्रभु तिरुमूळिक्ककळम में रहते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 9.7 दशक यहाँ स्मरणीय है। **तिरुवाय. 9.7.2-** दलबल के साथ तिरुमूळिक्ककळम के प्रभु। अपने भागवतों के संगी विशेष प्रेम के पात्र परिजनों के साथ प्रभु तिरुमूळिक्ककळम के निवासी हैं। यामुनाचार्य स्वामी **स्तोत्र रत्न 56 - सकृत्त्वदाकार विलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः। महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय क्षणेऽपि ते**

यद्विरहोऽतिदुः सहः।। आपके एक बार दर्शन के लिए सर्वोत्तम स्वर्ग के भोग एवं कैवल्य मोक्ष को तृण के समान जो त्याग दिये हैं वैसे महात्माओं के दृष्टिपथ में मुझे डाल दीजिये। ऐसे महात्मा आपको इतने प्रिय हैं कि उनके एक क्षण का विरह आप सहन नहीं कर सकते। अपने सौकुमार्य गुण के कारण ही अपने भक्तों का वियोग प्रभु सहन नहीं कर सकते। प्रभु का यही गुण भक्तों की संपदा है। परकाल स्वामी **पेरिय तिरुमडल् 129-** तिरुमूळिक्कळम की सम्पदा। पाठान्तर के कारण **सम्पदा** के स्थान पर पासुर 129 में **प्रकाश स्तम्भ** भी पाया जाता है। भाव है कि तिरुमूळिक्कळम के प्रभु दर्शनार्थी यात्रियों के मार्ग को आलोकित करने वाले प्रकाश स्तम्भ हैं। प्रभु की स्वभाव विशिष्टता रूपी सौकुमार्य गुण घोसला को बुननेवाले सघन ताना-बाना की तरह तिरुमूळिक्कळम में वर्त्तमान है।

चूर्णिका 180 -

केरल स्थित दिव्यदेश **तिरुनावाय** के प्रभु का **आनृशंस्यम् (दया / कृपा)** गुण प्रधान है। नावाय का शाब्दिक अर्थ नाव है। प्रभु यहाँ भक्तों के लिए नाव हैं, इसीलिए इस स्थान का नाम तिरुनावाय पड़ा।

सूत्र - 180 (31) - सं. विश्लेषदुःखसमुद्रतारण विष्णुपोतनृशंस्यं नावापि दिव्यदेशे प्रतिफलेत्।

सामान्य अर्थ - दिव्यदेश नावाय नाव (विष्णुपोत) की तरह है। छाया की तरह अपने दिव्य गुणों की वर्षा से विष्णुपोत रूपी प्रभु सांसारिक यातना की सागर से भक्तों के विरह को दूर करते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 9.8 दशक यहाँ स्मरणीय है। **नाच्चियार तिरुमोळी 5.4-** प्रभु से विछुड़न का दर्द। दुःख के सागर में हम विना किसी डेंगी (नाव) या सहारा के बहे जा रहे हैं। नायकी बकगणों से संदेश भेजती है- **तिरुवाय. 9.7.2-** दलबल के साथ रहने वाले तिरुमूळिक्कळम के प्रभु से पूछो कि हम उनकी गोष्ठी के योग्य हैं कि नहीं? **तिरुवाय. 9.7.9-** उनसे कहो कि हमसे दूर रहना कभी भी उचित नहीं है। **9.7.10-** हम क्षीणकाय हो गये हैं, कमरधनी खिसक गयी है एवं मेरा प्राण पयान कर रहा है। उनसे बताओ, "यह उचित नहीं है।" सांसारिक यातनाओं से ग्रस्त स्वरूपनाश होते देख तिरुमूळिक्कळम के प्रभु की दया की अनुपस्थिति में प्रभु को अपने पास बुलाने के लिए नायकी बार-बार दूत भेजती है। कहा है- **विष्णुपोतं विना नान्यत् किंचिदस्ति परायणम्।** विष्णुपोत छोड़कर अन्य कोई साधन नहीं है। तात्पर्य है कि प्रभु की कृपा ही दुःख सागर निस्तारक नाव है। **तिरुवाय. 9.8.7-** तिरुनवा के प्रभु! अपना सेवक बना लीजिए। भाव है कि तुरुनवा में वे शाश्वत रूप से रहते हैं। शंसय की छाया के क्षीण होते ही प्रभु अपने गुणों को उद्भासित करते हुए दास को अपनी कृपा का आश्रय प्रदान करते हैं। तिरुनवा में वे शाश्वत नाव की तरह सहारा प्रदान करने के कारण एक परम **आदरणीय नाव** कहे जाते हैं। यह इस स्थान के

तिरुनवा नाम को सार्थक करता है। उनकी गौरवगाथा रूपी केन्द्रस्थ प्रकाश-स्तम्भ की कृपा रूपी किरणों से भक्तजन निश्चित रूप से आलोकित होते हैं। **विष्णुपोत आनृशंस्यम्** कवि की रूपकयुक्त भाषा है जिसका तात्पर्य है यातनाग्रस्त भक्त पर प्रभु की कृपा। **वा.रा. 5.15.49- कारुण्येनानृशंस्येन** - पत्नी खो जाने के स्मरण से प्रभु के हृदय में करुणा एवं दया उमड़ आती है। **वा.रा. 5.15.50- स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः -** "*पत्नी जो हम पर आश्रित थी और अब विछुड़ गयी है* " ऐसा करुणा से सोंचते हुए, ***आनृशंस्यतः*** अर्थात् दया से द्रवित हो उठते हैं। स्पष्ट है कि ***आनृशंस्यम्*** - आश्रित भक्तजनों पर कृपा गुण का बोध कराता है।

चूर्णिका 181 -

तमिलनाडु के कुम्भकोनम से सुगमता से पहुँचने योग्य **तिरुकण्णपुरम्** दिव्यदेश के श्रीशौरिराज व सोवरीराज प्रभु का **शरण्य मुकुन्दत्वम् (**आश्रित को मोक्ष प्रदायक स्वभाव वाले) प्रधान गुण है।

सूत्र - 181 (32) - सं. शरण्यमुकुन्दत्वमूत्पलावतके प्रसिद्धम्।

सामान्य अर्थ - मुमुक्षुओं के रक्षक तिरुकण्णपुरम् के प्रभु मोक्ष देते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 9.10 दशक यहाँ स्मरणीय है। **तिरुवाय. 9.10.5-** आपको चाहने वाले को आप यहाँ तथा मरने के बाद वैकुण्ठ में आश्रय प्रदान करते हैं। यह तिरुकण्णपुरम् के प्रभु के कृपायुक्त उपकार करने के मूल स्वभाव का बोध कराता है। कहा है - **उत्पलावतके दिव्ये विमाने**

पुष्करेक्षणं शौरिराजमहं वन्दे सदा सर्वांगसुन्दरम्। सर्वांगसुन्दर कमलनयन शौरिराज प्रभु का *उत्पलावतक* दिव्य विमान के दर्शन से दिव्य अनुभूति प्राप्त करते हुए उनकी सर्वदा वन्दना करता हूँ। तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति तिरुकण्णपुरम् में प्रभु की कृपा का अनुभव कर सकता है। **उत्पला** का शाब्दिक अर्थ मांस है। इस मांसयुक्त शरीर की उपेक्षा करने वाले मुमुक्षुगण को उत्पलवत्वर कहते हैं, अर्थात् जिन्होंने शरीर छोड़ दिया है। कहा है - **तेषां ममावतो वा समुत्पलावतकं विदुः।** मांस एवं रुधिर से बने शरीर को **उत्पलावतक** कहते हैं। मुमुक्षुओं की रक्षा हेतु खड़ा रहने वाले प्रभु के विमान को इसीलिए यहाँ **उत्पलावतक** नाम से सम्बोधित करते हैं।

चूर्णिका 182 -

तमिलनाडु के मदुरै के पास के **तिरुमोगूर** दिव्यदेश के प्रभु का **मार्गबन्धु शैत्यम्** प्रधान गुण है।

सूत्र - 182 (33) - सं. मार्गबन्धु शैत्यं मोहने ह्रदं कुर्यात्।

सामान्य अर्थ - आश्रय की शीतलता वाला मोहक नगर।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 10.1 दशक यहाँ स्मरणीय है। प्रभु अपनी कृपा से मोक्ष देते हैं। **तिरुवाय. 10.1.1 -** मेघ सा श्याम प्रभु ही हमारे एक मात्र आश्रय हैं। **10.1.6-** अपने *आत्तन* (प्रभु) के चरणारविन्द के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं है। **10.1.1-** चार भुजा, घुंघराले बाल, कमल सी आँख, मूँगावत होंठ आकर्षक मेघ श्यामल प्रभु ही हमारे एकमात्र आश्रय हैं।

10.1.2- सरोवर रूपी आपके चरणारविन्द की छाया शुभागार है। **10.1.8-** प्रभु करुणा के सरोवर हैं। तात्पर्य है कि जन्म-मृत्यु के चक्र के ताप को प्रभु शीतलता प्रदान करते हैं। तिरुमोगूर पावन एवं मनोहारी है। देवों को अमृत बाँटते मोहिनी रूप वाले प्रभु ने असुरों को मोह लिया था। **10.1.8-** मरकतमणि-तड़ाग सदृश तिरुमोगूर में प्रभु के चरणारविन्द तापनाशक शीतलता प्रदान करते हैं।

चूर्णिका 183 -

केरल के **तिरुअनन्तपुरम्** दिव्यदेश के प्रभु का **साम्यम्** प्रधान गुण है। योगनिद्राशायी अनन्तशयन प्रभु अपने सभी तरह के भक्तों के साथ समानता वरतते हैं।

सूत्र - 183 (34) - सं. ससैन्य-पुत्र-शिष्य-साध्यसिद्ध-भूसुरार्चनस्य मुखनाभिपादानां द्वारत्रयेण दर्शन-साम्य-अनन्तशयने व्यक्तम्।

सामान्य अर्थ - सेना के साथ सेनानायक विष्वकसेनजी, पुत्र ब्रह्मा एवं ब्रह्म-साधक नम्माळवार के भक्तों की प्रार्थना को समान रूप से सुनने वाले आदिशेषशायी तिरुअनन्तपुरम् के प्रभु अपने सुन्दर मुखारमंडल, नाभि तथा पावन श्रीपादों का तीन दरवाजों से दर्शन देते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 10.2 दशक यहाँ स्मरणीय है। **तिरुवाय. 10.2.6-** देवाधिदेव की सबसे पहले सेनानायक विष्वकसेन जी पूजा करते हैं और उसके बाद ही अन्य लोग पूजा करते हैं। **पुरुष सूक्त 7 or 16 - यत्र पूर्वे**

साध्याः - नित्यसूरियों के प्रधान विष्वकसेन जी प्रभु के साथ पुरातन सेवकों (साध्या) की तरह वर्तमान रहते हैं। **10.2.6-** सिद्धों की तरह प्रभु के नाभिकमल से उत्पन्न पुत्र ब्रहमा। **10.2.8-** भक्तजनों! फणधारी शेष पर शयन करते प्रभु के श्रीचरण के दर्शन हेतु तैयार हो जाओ। तिरुअनन्तपुरम् में तीन द्वार के पहले द्वार से सबके प्रधान विष्वकसेन जी प्रभु के मुखमंडल का दर्शन करते हैं। इनको भगवान् से बात करने के कारण **मुखमंडल द्वार** से दर्शन मिलता है। तात्पर्य है कि यह नित्यसूरियों का द्वार है। बीच के **नाभि द्वार** से ब्रह्मा दर्शन करते हैं, अर्थात् यह द्वार देवों के लिए है। तीसरा **श्रीपाद द्वार** मानव भक्तों (नम्माळवार के भक्तों) हेतु है जो भगवान् के चरणारविन्द के दास हैं। एक ही साथ योगनिद्रा-शायी भगवान् नित्यसूरियों, देवों तथा मानवों के लिए समानरूप से उपलब्ध हैं।

चूर्णिका 184 -

केरल के **तिरुवत्तारु** दिव्यदेश के प्रभु का **पारतन्त्र्य** प्रधान गुण है। **पारतन्त्र्य** का तात्पर्य है कि प्रभु भक्तों के अधीन हैं।

सूत्र - 184 (35) - सं. मोक्षदाने प्रणतपारतन्त्र्यं संपदतिशयनधांकलम-तिक्रमेत।

सामान्य अर्थ - प्रचूर प्राकृतिक संपदा तथा जलाप्लावित किनारे वाले तिरुवत्तारु में प्रभु आज्ञा के वशीभूत मोक्ष देते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 10.6 दशक यहाँ स्मरणीय है। **तिरुवाय. 10.6.1-** तिरुवत्तारु में भक्तों के आदेश की प्रतीक्षा करते हुए चक्रधारी प्रभु विराजते हैं। **10.6.3-** हमारे आदेश पर श्रीवैकुण्ठ प्रदान करने की शीघ्रता में हैं। पूर्व के सूत्र से दशक 10.1 में साम्यता के गुण से विभूषित विना किसी लौकिक आसक्ति के पारतन्त्र्य गुण वाले प्रभु मोक्ष देने को लालायित हैं। **10.6.3-** श्रीसंपन्न तिरुवत्तारु में प्रभु विराजमान हैं। जैसे जल नदी तटों को डुबाता है प्रभु मोक्ष प्रदायक गुण से तिरुवत्तारु को डुबाये हुए हैं।

चूर्णिका 185 -

मदुरै समीपस्थ **तिरुमालिरुंजोलै** दिव्यदेश के प्रभु का **त्याज्य देहव्यामोह** प्रधान गुण है। अपने भक्तों की देह से आसक्त प्रभु **तिरुमालिरुंजोलै** में विराजते हैं। समस्त सहस्रगीति में मात्र **तिरुमालिरुंजोलै पर्वत** (दक्षिण श्रीपर्वत) एवं **वेकटाचल** (उत्तर श्रीपर्वत) दिव्यदेश के प्रभु की गाथा ही दो-दो दशकों में गायी हुई है। अन्य सभी दिव्यदेश एक-एक दशक के ही विषय वस्तु रहे हैं।

सूत्र - 185 (36) - सं. त्याज्यदेहव्यामोहोऽज्ञाननिवर्त्तक व्यामोहवर्द्धकोद्याने वर्द्धते ।

सामान्य अर्थ - प्रेम का गीत गाते आकर्षक उद्यानों से घिरे पर्वतरत्न पर विराजने वाले अज्ञान नाशक प्रभु को भक्तों की देह से अतिशय आसक्ति है।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 10.7 दशक यहाँ स्मरणीय है। मुमुक्षुगणों का वर्तमान शरीर अंतिम शरीर होता है। जन्म के चक्र से छुटकारा पा कर वे भगवान् के श्रीचरणों को प्राप्त कर लेते हैं। **तिरुवाय. 10.7.1-** मधुरभाषी कविगण! सावधान होकर गायें। **तिरुमालिरुंजोलै** के प्रभु धूर्त युक्तिवाले हैं। आप हमारे हृदय एवं आत्मा में मुग्धकारी कवि की तरह प्रवेश कर गये। फिर सबकुछ खा गये। फिर स्वयं वही हो गये। विना मेरी जानकारी के मुझमें पूरी तरह भर गये। **10.7.3 -** हमें खाकर आप **तिरुमालिरुंजोलै** में स्थित हैं। आप हमारी विस्मयकारी वाणी में प्रवेश कर गये और तब हमें अपना बना लिया। तात्पर्य है कि मानव शरीर की नश्वरता की उपेक्षा करते हुए वे इसमें प्रवेश कर निवास बना लिए हैं। **10.7.8-** हे **तिरुमालिरुंजोलै** पर्वत!, हे क्षीर सागर!, हे मेरे शिखर! भाव है कि पावन दिव्य स्थानों पर विराजने वाले प्रभु नश्वर मानव देह में वसने की इच्छा रखते हैं। **10.7.10- तिरुमालिरुंजोलै** के प्रभु! समस्त जीवात्मा आपकी दिव्य नैसर्गिक लीला के अंग हैं। लौकिक आसक्ति से अपने भक्तों की रक्षा हेतु ही आप अपने प्रिय भक्तों से अदम्य प्रेम करते हैं। **10.7.7-** प्रेम गीत गाने वाले मणि-पर्वत सदृश **तिरुमालिरुंजोलै** के प्रभु! **तिरुवाय. 2.10.3-** हे मन ! मनमोहक बागों से घिरे **तिरुमालिरुंजोलै** पर्वत के मंदिर में जाओ जहाँ मेघ सदृश श्याम प्रभु गौरव के साथ विराजते हैं। भाव है कि बगान सब सदा विकसित होते रहते हैं। भक्तों के मन में प्रेम का उन्माद भरकर उसमें जा वसते हैं। राजकुमार जैसे अपनी कामिनी के मलिन शरीर तथा

मुँह के लार आदि से आसक्त रहता है, वैसे ही प्रभु अपने प्रेमी भक्तों के त्याज्य मलिन शरीर को अपना लेते हैं।

चूर्णिका 186 -

तिरुप्पेरनगर (कोइलाडी) श्रीरंगम् के समीप है। अप्पक्कूडत्तान या आदिरंगनाथ प्रभु शेषशायी हैं और **स्वामित्वम्** प्रधानगुण है। दाहिने हाथ में मालपुआ से भरा घड़ा होनेके कारण आप **अप्पक्कूडत्तान** कहे जाते हैं।

सूत्र - 186 (37) - अंगीकर्त्तुमवकाशदर्शनस्वामित्वं महानगरे प्रसिद्धम्।

सामान्य अर्थ - तिरुप्पेरनगर में यथोचित समय पर स्वीकार करने के कारण प्रभु का स्वामित्व गुण विख्यात है।

विशेषार्थ- तिरुवाय. का 10.8 दशक यहाँ स्मरणीय है। प्रायः धन-संपति आदि के मालिक को स्वामी कहते हैं। सभी जीवात्मायें प्रभुके धन हैं अर्थात् वे ही सब के स्वामी हैं। **तिरुवाय. 10.8.1 -** तिरुमालिरुंजोलै बोलते ही हमारे हृदय में प्रवेश कर प्रभु ने इसे भर दिया। पर्याप्त पुण्य के अभाव में मोक्ष नहीं मिलता। किसी की पीठ पर आम रखकर समय आने पर कोई व्यक्ति उसे अपना आम घोषित करता है। इसीतरह समय आने पर अपने आप भगवान् भक्तों को यह कहते हुए स्वीकार करते हैं कि "*ये! तूने हमारे पावन नगर का नाम बोला है।* " कृपा पूर्वक भक्त को अपनाना प्रभु के स्वामित्व गुण का बोध कराता है। **पेरिय तिरु. 5.9.3-** ऊँची दीवारों से घिरे शेषशायी प्रभु तेन (दक्षिण) तिरुप्पेर में रहते हैं। शेषशायी होना

प्रभु के स्वामित्व गुण का बोध कराता है। नम्माळवार ने मंगलाशासन करते हुए प्रत्येक दिव्यदेश में प्रभु के विशेष दिव्यगुण की गाथा गायी है।

क्रमांक	सूत्र	दिव्यदेश - स्वरूप	प्रधान दिव्यगुण
1	159	श्रीरंगम् व्यूह	सौहार्द
2	160	वेंकटम् अन्तर्यामी	वात्सल्य
3	161	आळवार तिरुनगरी परत्व	परत्व
4	162	तिरुकुरुंगुडी वैष्णव वामन विभव	विभव लावण्य
5	163	श्रीवरमंगलम् तोताद्री	औदार्य (उदारता)
6	164	कुम्भकोणम् (कुडन्दै, अर्वामुदन्)	माधुर्य
7	165	तिरुवल्लवाल	कृपा
8	166	तिरुवण्वण्डूर पंपोत्तर स्थित	रक्षणस्थैर्य
9	167	तिरुविण्णगर	विरुद्धघटना-सामर्थ्य
10	168	तिरुतोलैविल्लीमंगलम्	विघटनाबांधव
11	169	तिरुक्कोलूर वैयत्तमानिधि	आपत्सखा
12	170	तेन तिरुप्पेरयिल	सौंदर्य
13	171	तिरुवारन्विलै	आनन्द वृत्ति
14	172	तिरुकुलन्दै	चेष्टित-आश्चर्यम्
15	173	तिरुवन् परिसारम	सौकुमार्य प्रकाशम्
16	174	तिरुच्चेंगुनुर	सौर्य आदि
17	175	तिरुक्कडित्तानम	कृतज्ञता गन्धम्
18	176	तिरुप्पुलियूर (शिरुपुलियूर)	नायकलक्षणम्
19	177	तिरुपुलिंगुडी, वरगुणमंगै एवं वैकुण्ठम्	भोग्यपाकत्वरा
20	178	तिरुक्काट्करै	शील

क्रमांक	सूत्र	दिव्यदेश - स्वरूप	प्रधान दिव्यगुण
21	179	तिरुमूळिक्कळम	मार्दव/सौकुमार्य
22	180	तिरुनावाय	आनृशंस्यम् (दया / कृपा)
23	181	तिरुकण्णपुरम्	शरण्य मुकुन्दत्वम्
14	182	तिरुमोगूर	मार्गबन्धु शैत्यम्
25	183	तिरुअनन्तपुरम्	साम्यम्
26	184	तिरुवत्तारु	पारतन्त्र्यम्
27	185	तिरुमालिरुंजोलै	त्याज्य देहव्यामोहम्
28	186	तिरुप्पेरनगर	स्वामित्वम्

चूर्णिका 187 -

सूत्र 163 से 186 तक आळवार ने प्रभु के गुण विशेषों को विभिन्न दिव्यदेशों की गाथा गाकर बताई है। कब दिव्यदेशों के प्रति आळवार का अदम्य प्रेम उमड़ा, कब इन्होंने सहस्रगीति की रचना की, इस तरह के काम के लिए कौन सी योग्यता चाहिए, इस रचना में कौन सा माधुर्य भरा हुआ है - यहाँ इन बातों को स्पष्ट किया गया है।

सूत्र - 187 (38) - येषु प्रावण्यमस्याः भरं किमित्युत्पन्नं षोडशकलापूर्ण-चन्द्रमंडलवत् षोडशश्रीनक्षत्रे पूर्णे देवभोग्यभूते तस्मिन् अमृतवद्विना मज्जिह्वा द्राविडभाषानिपुणाः स्वरज्ञाः प्रथमभक्ताः नित्यसूरयः मत्स्वामी-भूम्यामभ्यसनयोग्यं यथा भवेत्तथा सेश्वरविभूतियोग्यभूतक्षीरसहितामृत-सदृशमृदुशब्दो मुखोद्गतः।

सामान्य अर्थ - परिपक्वता के पहले, चन्द्रमा की सोलह कलाओं की तरह सोलह वर्ष की आयु में दिव्यदेशों से प्रेम उत्पन्न होता है। यह देवों के लिए अमृत सदृश मधुर नहीं है, परन्तु "मेरे मधुर पद," "कवियों एवं संगीतज्ञों से प्रशंसित," "भक्तों की वाणी," "देवगण भी," "मेरे प्रभु," "लोक प्रशंसित," पावन मुख से निकली दूध एवं मधु के सदृश वाणी नित्यविभूति एवं लीलाविभूति दोनों को आनन्द प्रदान करती है।

विशेषार्थ- "परिपक्वता के पहले" का तात्पर्य है कि नायकी के उरोज अभी पूरे उभरे भी नहीं हैं। वह निरन्तर बोलती है- **तिरुविरुत्तम 60-** प्रभु का पर्वत तिरुवेंकटम् है। चन्द्रमा की सोलह कलाओं का भाव है कि चाँद की सभी कलाओं की तरह नायकी में दिव्यदेशों के प्रति आकर्षक प्रेम सोलह साल की अवस्था से उदित हुआ है। **वि.पु. 2.11.22- कृष्णपक्षेऽमरैः शाश्वत्पीयते वै सुधामयः।** कृष्णपक्ष में उस अमृतमय चन्द्रमा की एक-एक कला को देवगण निरन्तर पान करते हैं। अर्थात् देवों के लिए तिरुवायमोळी मधुर नहीं है क्योंकि चन्द्रमा की कलायें ही उनके भोग्यपेय हैं। **तिरुवाय 3.9.1-** वेंकटम् के प्रभु हमारे माता, पिता एवं स्वामी हैं, अतः हम अपना मधुर गीत अन्य किसी की प्रशस्ति में नहीं गा सकते। भाव है कि आळवार को तिरुवायमोळी मधुर लगता है। **तिरुवाय. 1.5.11-** यह दशक संगीतज्ञ, गायक एवं भक्तों से बहुप्रशंसित है और आश्चर्यभरे प्रभु के बारे में है। **7.9.3-** निर्मल भक्तों की वाणी में प्रभु अपनी प्रशस्ति स्वयं गाते हैं। अर्थात् इन पदों के पाठ भक्तगणों के लिए अत्यन्त मधुर हैं। **10.6.11-**

परमपदवासी नित्यसूरिगण धरा से वहाँ पधारे मुक्तों के मुख से तिरुवायमोळी के कर्णामृत व मधुर शब्द सुनकर कभी तृप्त नहीं होते। **10.7.5-** हमारे माध्यम से पन्न-आधारित गीत गाने वाले प्रभु पावन तेनेका गाते हुए तिरुनालिरुंजोलै में खड़े हैं। **7.9.5-** मैं तो केवल शब्द बोल रहा था, उसमें सार भरने वाले तो प्रभु हैं। सर्वेश्वर प्रभु को ये गीत *नित्यविभूति* तथा *लीलाविभूति* दोनों में आनन्द देने वाले हैं। **8.6.11-** दूध एवं मधु जैसा यह मधुर दशक। **6.5.2-** उत्सव की आवाज से गूँजते। तात्पर्य है कि दिव्यगुणों से विभूषित सर्वेश्वर प्रभु स्वयं तिरुवायमोळी के शब्द तथा अर्थ दोनों हैं। इसके स्निग्ध शब्द एवं भाषा की मनोहारी शैली दूध एवं मधु के सरस मिश्रण से भी अधिक मधुर हैं।

चूर्णिका 188 -

तिरुवायमोळी के अवतार को स्पष्ट किया है।

सूत्र 188 (39) - सं. जलक्षीरघृतामृतैः परिपूर्णतटाको यथा शिथिलं भवेत् तथा परभक्त्यादिमयज्ञानामृताब्धिः स्फुरदधरप्रांतेन साद्रसूक्तिरूपतां प्रप्याभिनिवेशरूपांतादिरिति नामलब्धः।

सामान्य अर्थ- जल, दूध, घी एवं अमृत से उत्प्लावित सरोवर के किनारे ऊँचे-नीचे रहते हैं। **परभक्ति, परज्ञान** एवं **परमभक्ति** रूप अमृत से भरे समुद्र की तरंगों से इसके किनारे टूटे-फूटे रहते हैं। सारगर्भित शब्दों से विरचित यह पावन सहस्रगीति प्रबन्ध **अन्तादि** की विशेषता से परिपूर्ण है।

पहले पद का अंतिम शब्द जब दूसरे पद के प्रारम्भ का शब्द रहता है तब ऐसे पदों को अन्तादि शैली के पद कहते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. 1.1.1- सभी शंका का निवारण कर प्रभु शुद्ध ज्ञान देते हैं। *कर्म* एवं *ज्ञान* से प्राप्त *भक्ति* भगवद्कृपा से परिपक्व होकर ***परभक्ति*** हो जाती है। ***परभक्ति*** अवस्था में *ज्ञान* परिपक्व होकर ***परज्ञान*** कहा जाता है। ***परज्ञान*** परिपक्व होने पर ***परमभक्ति*** कहा जाता है। यामुनाचार्य स्वामी **स्तोत्ररत्न 3- अच्युत भक्तितत्त्व ज्ञानामृताब्धि परिवाह शुभैर्वचोभिः।** भगवान् की भक्ति के ज्ञानामृत सागर की शुभवाणी का प्रवाह, अर्थात् परमभक्ति का अमृतसागर। सारगर्भित शब्द (वाणी) तिरुवायमोळी की विशेषता है। **तिरुवाय. 6.5.2-** किशोरी की आँखें आँसू बहाती हैं, यह स्वयं गिरकर पिघल रही है। इसमें ऊँचे-नीचे तट वाले सरोवर का भाव अन्तर्निहित है। **तिरुवाय. 1.7.11-** कविता की अद्भुद् शैली पर आधारित सहस्रगीति के मधुर हजार पद। **तिरुवाय. 8.10.5-** आपके नाम के प्रिय पदों की बाढ़ के गान का आनन्द। इन पदों का सन्दर्भ **परभक्ति, परज्ञान** एवं **परमभक्ति** की अवस्था का बोध कराते हैं। **तिरुवाय. 10.10.11-** यह तिरुवायमोळी प्रबन्ध भक्ति की विशिष्ट अवस्थाओं के अन्तर्ज्ञान से ओतप्रोत हजार अन्तादि पदों से परिपूर्ण है।

चूर्णिका 189 -

तिरुवायमोळी की गीता से तुलना।

सूत्र 189 (40) - सं. मानसावधिरहितज्ञानानन्दं निर्मलत्वेन साक्षात्कृतवान् ज्ञानोपकारकं ज्ञाने स्थापयतेत्युक्तेन तत्त्वविवेक नित्यत्वानित्यत्वनियंतृत्व सौलभ्यसाम्याहंकारेन्द्रिदोषबलमनः प्राधान्यकरणनियमनसुकृतिभेद-देवासुर-विभागविभूतियोग विश्वरूपदर्शन सांगभक्तिप्रपत्ति द्वैविद्यादिभिः तत्कालोक्तगीतासम इति च।

सामान्य अर्थ- तिरुवायमोळी ज्ञान के स्वामी प्रभु का निवास है। अतिशय आनन्द से नम्माळवार ने इसमें सबके आदिमूल प्रभु की गौरवगाथा गायी है। शाश्वत एवं क्षणभंगुर, कर्मरत एवं कर्मविरत, सुलभ, साम्य, अहंकार दोष, ज्ञानेन्द्रियाँ बल, मन की प्रधानता, अन्तः इन्द्रियाँ संयम, पुण्यात्माजन, दैवासुर सम्पद्-विभाग, विभूतियोग, विश्वरूप दर्शन, अंग-प्रपत्ति एवं स्वातन्त्र्य-प्रपत्ति के वर्णन में तिरुवायमोळी श्रीमद्भगवद्गीता के सदृश है।

विशेषार्थ- अतिशय आनन्द एवं ज्ञान से अभिभूत नम्माळवार लौकिकों को सदुपदेश करने के कारण अर्जुन को उपदेश करने वाले भगवान् कृष्ण के सदृश हैं। **तिरुवाय. 1.5.2-** हे हमारे आश्चर्यमय प्रभु! आप ही सम्पूर्ण सृष्टि की अक्षुण्ण इच्छाशक्ति एवं आदि बीज हैं। आप केवल हृदय से समझे जा सकते हैं। **3.10.8-** शुद्ध अप्रमेय आनन्द, प्रभापूर्ण छटा से विभूषित, असीम ज्ञानवाले प्रभु। **10.10.10 -** उससे भी बड़ा विस्तार तेजोमय ज्ञानानन्द ! *प्रकृति एवं पुरुष* स्वरूपी प्रभु का अनन्त विस्तार सर्वत्र आलोकित करते रहता है जिसको समझना दुस्तर है। अचेतन-चेतन

तत्त्वों में व्याप्त उनके नियामक संकल्प रूप, आनन्दमय ज्ञानवाले हे प्रभो! **4.7.7-** हृदय के गह्वर में आपको ज्ञान की प्रतिमा के रूप में देखता हूँ। भाव है कि आळवार पूर्ण ज्ञान-स्वरुप प्रभु के आनन्द में निमग्न हैं और इसी आशय का वे तिरुवायमोळी में उपदेश भी देते हैं। **तिरुविरुत्तम 99-** आकाश के देवों के लिए, धरती के मरणशील लोगों के लिए तथा अन्य सभी जनों के लिए मैं जो जानता हूँ उसकी घोषणा करता हूँ - *ज्ञान के प्रभु* जो वराह रूप में आये और धरा को उठा लिए, वैसा कोई अन्य देवता नहीं है। प्राकृतिक प्रलय के कारण धरती जल में डूबी थी, तब वे वराह रूप में पधारे और सब व्यवस्था को नियमित करने हेतु उसको जल से ऊपर लाये। सर्वज्ञ प्रभु के ज्ञान की परिधि से कुछ भी बाहर नहीं है और वे संसार के प्रत्येक चित्-अचित् तत्त्वों में व्याप्त होकर उससे पूर्णतया जुड़े हुए हैं। वराहावतार के **चरम श्लोक** - **अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्** से जनसामान्य के चरमोंद्धार की उन्होंने उद्घोषणा की है। अपने ज्ञान एवं बल से सब के ऊपर वे कृपा की वर्षा करते रहते हैं। **तिरुविरुत्तम** में आळवार ने जगत-सृष्टि के मौलिक सिद्धान्त को प्रकाशित किया है। सभी भक्तों के लिए आळवार का यह निष्ठा पूर्वक उपदेश है। **तिरुवाय. 4.10.9-** सुन्दर खेतों से घिरे कुरुगूर (आलवार तिरुनगरी) में स्थित आप आदिपिरान हैं। मुक्तिकामी उनको अपने हृदय में धारण करे।

तत्त्व- विवेक को तीन तरह के ज्ञान से परिभाषित करते हैं- (1) जीवात्मा एवं परमात्मा में अन्तर, (2) जीवात्माओं में परस्पर अन्तर, (3) जीवात्मा

एवं उसके शरीर में अन्तर। यामुनाचार्य स्वामी **गीतार्थ संग्रह 5 - अस्थान स्नेह कारुण्य धर्माधर्मधियाकुलं। पार्थं प्रपन्नमुद्धिस्य शास्त्रावतरणं कृतं।।** गीता शास्त्र का सूत्रपात अर्जुन के हितार्थ किया गया। अर्जुन ने अयोग्य सम्बन्धियों के प्रति मोह एवं आसक्ति के कारण धर्म युद्ध को अधर्म माना। परिणामस्वरूप व्याकुलतावश उन्होंने भगवान् कृष्ण के प्रति स्वयं का समर्पण कर दिया। **गीता 2.9 - न योत्स्य इति गोविन्दमुक्तवा तूष्णीं बभूव ह।** हे गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा। **गीता 2.7- कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः ...... यच्छ्रेयं स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।** करुणा के दोष से मैं अपना कर्त्तव्य भूल गया हूँ। मेरे कल्याण के निश्चत साधन मुझे बतायें। मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरणापन्न मुझ दीन को शिक्षा दीजिये। तदुपरान्त उन्होंने अर्जुन का मोह दूर किया। **तिरुवाय. 4.8.6-** विश्व के विचारक लोग यह जान सकें कि ज्ञान के प्रतीक प्रभु ने सत्य का मार्ग स्थापित किया। **गीता** सांसारिक जीवन का अद्भुद् मार्ग दर्शक है। भगवान् ने अर्जुन को **शरीर एवं आत्मा** के अन्तर को इसमें स्पष्ट किया और उसके भ्रामक मोह को दूर किया। **गीता 2.12- न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।** ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैं न रहा होऊँ या तुम न रहे हो अथवा ये समस्त राजा न रहे हों; और न ऐसा है कि भविष्य में हम लोग नहीं रहेंगे। भगवान् ने समझाया कि परमात्मा (मैं) की तरह जीवात्मायें (तू एवं ये राजा लोग) भी शाश्वत है और सभी जीवात्मा (तू एवं ये राजा लोग) एक दूसरे से भिन्न हैं। **गीता 2.13-**

देहनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। इस वर्तमान शरीर में जैसे जीवात्मा को कुमार, युवा और वृद्धावस्था की शनैः शनैः प्राप्ति होती है उसी प्रकार मृत्यु होने पर आत्मा दूसरे शरीर में चली जाती है। ऐसे परिवर्तन से धैर्यवान् व्यक्ति शोक नहीं करता कि आत्मा नष्ट होती है। स्पष्ट है कि जीवात्मा शरीर से भिन्न है। **तिरुवाय. 8.8.2 -** जो प्रभु हमारे हृदय में हैं, वही हमारे शरीर में तथा विश्व में एवं इसके बाहर हैं। **8.8.5-** आप **"यह"** हैं व **"वह"** हैं, नहीं कहा जा सकता, और देखना तो दूर की बात है। आप सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। **गीता 2.18- अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्मात् युद्ध्स्व भारत।।** अविनाशी, न नापा जा सकने योग्य तथा शाश्वत जीव के भौतिक शरीर का अन्त अवश्यम्भावी है। अतः हे भरतवंशी अर्जुन! युद्ध कर। **गीता 2.20- न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यं शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।** आत्मा के लिए किसी भी समय में न तो जन्म है न मृत्यु। वह तो कभी न जन्मा है और न जन्म लेगा। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन (सबसे प्राचीन) है। शरीर के मारे जाने पर वह मारा नहीं जाता। **गीता 2.22 - वासांसी जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्याणि संयाति नवानि देही।।** जिस प्रकार मनुष्य पुराणों वस्त्रों का त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा भी पुराने शरीरों को त्याग कर अन्य नवीन भौतिक शरीरों को प्राप्त होता है। **तिरुवाय. 1.2.2-** नित्य

आत्माओं के शरीर तड़ित से भी क्षणिक होते हैं। **1.2.8-** प्रभु की सेवा में स्वयं को भी लगा दो। शरीर क्षणिक है परन्तु आत्मा शाश्वत है। **गीता 7.4 और 5- भूमिरापो नलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधाः।।4।।** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अंहकार - ये आठ मेरी निकृष्ट जड़ (अपरा) प्रकृति हैं। **अपरेमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।5।।** अब इससे दूसरी, हे महाबाहु अर्जुन! तू मेरी जीव रूपा उत्कृष्ट चेतन (परा) प्रकृति को जान जो इस भौतिक जड़ (अपरा) प्रकृति के साधनों का उपयोग (भोग) कर रहे हैं। **गीता 15.15- सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।** मैं प्रत्येक जीव के हृदय में आसीन हूँ और मुझसे ही स्मरणशक्ति, ज्ञान तथा (पिछले जन्मों को) भूलने की प्रक्रिया होती है। मैं ही वेद के द्वारा जानने योग्य हूँ। निस्सन्देह मैं वेदान्त (वेदोक्त फल) का कर्ता और वेद का जाननेवाला हूँ। **गीता 18.61- ईश्वरः सर्वभूतानां हृत्-देशे अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढ़ानि मायया।।** अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में स्थित हैं। यन्त्र पर सवार गुड़िये की तरह सभी प्राणियों को अपनी माया से घुमा रहे हैं। **तिरुवाय. 1.1.7-** पञ्चभौतिक तत्त्वों के रूप में प्रकट होनेवाले प्रभु सब वस्तुओं में विराजमान हैं। सब शरीरों में आप प्राण की तरह छिपे हुए हैं। **1.1.10-** हर अणु-परमाणु में आप सदा के लिए छिपे हुए हैं। तात्पर्य है कि सभी चित्-अचित् (चेतन-जड़) तत्त्वों में आप विराजमान हैं। **1.1.6-** शाश्वत रूप से आप

अपरिवर्तनशील हैं। खड़े, बैठे, सोये एवं चलते हुए आप हैं और नहीं भी हैं। अर्थात् कर्मों में रत तथा विरत भी हैं।

सुलभ - गीता 8.14- तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। मेरी भक्ति में प्रवृत्त जनों के लिए मैं सुलभ हूँ। **गीता 4.8- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्मभवामि युगे युगे।।** भक्तों का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने तथा धर्म की फिर से स्थापना करने हेतु हर युग में मैं प्रकट होता हूँ।। **तिरुवाय. 1.3.1 -** प्रभु प्रेम से भक्तों को मिलते हैं। **1.3.2-** स्थान एवं प्रसंग को भुलाकर आप अनेकों रूपों में प्रकट होते हैं। भाव है कि भक्तों को सुलभ हैं तथा विभिन्न अवतारों से सम्पूर्ण जगत् को सुलभ हैं। **साम्य -** विना भेद-भाव के सबके साथ समानता का व्यवहार - **गीता 9.29- समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।** मैं न तो किसी से द्वेष करता हूँ, न तो किसी के साथ पक्षपात करता हूँ। मैं सबों के लिए समभाव रखता हूँ। **तिरुवाय. 1.2.6-** विना बन्धन के आप सर्वत्र विराजमान हैं। भगवान् सबको अपनी भक्ति में लगाना चाहते हैं। **अहंकारहीन - गीता 3.27- अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।** जीवात्मा अहङ्कार के प्रभाव से मोहग्रस्त होकर अपने आप को सब कर्मों का कर्ता मान बैठता है। **तिरुवाय. 1.2.3- तू** एवं **तेरा** तथा **मैं** एवं **मेरा** का मूलोच्छेदन करो। भगवान् का आश्रय ग्रहण करो। इससे बड़ी उपलब्धि नहीं होगी। भाव है कि अहंकार - ममकार का त्याग करो। **इन्द्रियों का बल - गीता 2.60- यततो हि अपि कौन्तेय पुरुषस्य**

विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। हे अर्जुन! इन्द्रियाँ इतनी प्रबल तथा वेगवान हैं कि वे उस विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक हर लेती हैं, जो उन्हें वश में करने का प्रयत्न करता है। **तिरुवाय. 7.1.6-** आपकी सेवा करने वाले नित्यसूरियों को भी यहाँ आने पर उनको त्रास देनेवाली ये पञ्चेन्द्रियाँ मुझ दुर्बल को क्या-क्या नहीं करेंगी?

मन की प्रधानता - गीता 6.34- चञ्चलः हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। हे कृष्ण! चूँकि मन अस्थिर, उच्छृंखल, हठीला तथा अत्यन्त बलवान है, अतः मुझे इसे वश में करना वायु को वश में करने से भी अधिक कठिन लगता है। **गीता 6.35 - असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तू कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।** हे महाबाहु कुन्तीपुत्र! निस्सन्देह चंचल मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु अभ्यास द्वारा तथा विरक्ति द्वारा ऐसा सम्भव है। **तिरुवाय. 5.1.4-** मन को क्षुद्र विषयों से हटा भी नहीं सकता तथा मन को आप से लगा भी नहीं सकता।

गीता 2.61- तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। जो इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखते हुए इन्द्रिय संयम करता है और अपने मन को मुझमें स्थिर कर देता है, वह मनुष्य स्थिरबुद्धि कहलाता है। **गीता 8.12- सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।** सभी द्वारों (इन्द्रियों) को रोककर मन को हृदय में स्थिर करे। **तिरुवाय. 1.2.8-** अपने तन, मन एवं वचन को पूजा

का उपकरण समझ कर उन्हें स्वामी की सेवा में लगा दो। **गीता 7.16- चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।** भरतश्रेष्ठ (अर्जुन)! आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी - ये चार प्रकार के पुण्यात्मा मनुष्य मुझको भजते हैं। **तिरुवाय. 4.1.1-** जो अपनी सम्पदा खो देते हैं वे आर्त हैं। भगवान् नारायण के चरणारविन्द का ध्यान कर शीघ्र जागो। विश्व के एकछत्र राजा अपना ऐश्वर्य खो देने के कारण रात में भिक्षा माँगने निकलता है। कैवल्य मोक्ष प्राप्त करने की कामना वाले आर्त जन - **तिरुवाय. 4.1.10-** सब कुछ त्याग कर चेतन इन्द्रियों पर ध्यान करने वाले ऋषिगण आत्मानन्द कैवल्य प्राप्त करते हैं परन्तु पुरानी स्मृति उन्हें वासना पर खींच लाती है और एकदिन कैवल्य मोक्ष को खो देते हैं। **4.1.8-** उदार छत्रधारी राजा भी एकदिन धराशायी हो जाते हैं। स्थायी मोक्ष के लिए एकमात्र प्रभु के चरणों को पकड़े रहो।

दैव-आसुरी के अन्तर - **गीता 16.6- द्वौ भूतसर्गो लोकेऽस्मिनदैव आसुर एव च।** इस लोक में कर्म-प्रवृत प्राणियों की सृष्टि दो प्रकार की होती है- दैवी एवं आसुरी। **16.5 - दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायायासुरी मता।** दैवी मोक्ष देती है और आसुरी लौकिक बन्धन। **तिरुवाय. 5.2.5 -** भक्तों! संशय छोड़ दो। अगर तुम्हारे बीच असुर होंगे तो वे बच नहीं सकते, वे मृत्यु का दर्शन करेंगे। **10.7.5-** आसुरी प्रकृतिवालों का अन्त हो गया, दैवी प्रकृतिवाले प्रगति पर हैं। **विभूति योग- गीता 10.19- हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या हि आत्मविभूतयः। प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।** हाँ, अब

मैं तुमसे अपने मुख्य-मुख्य वैभवयुक्त रूपों का वर्णन करूँगा, क्योंकि हे अर्जुन! मेरा ऐश्वर्य असीम है। **गीता 10.21- आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशमान्।** आदित्यों में मैं विष्णु, प्रकाशपुञ्जों में किरणोंवाला सूर्य हूँ। **तिरुवाय. 3.4.1-** पूज्य अपने कृष्ण को मैं कैसे सम्बोधित करूँ ? **6.3.1-** हम प्रभु को सर्वत्र देखता हूँ। आप अनेकों तरह से प्रकट होते हैं। **7.8.1-** आश्चर्यमय प्रभु ! वामन। **विश्वरूप - गीता 11.15- पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्। ब्रह्माणमाशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।** अर्जुन बोले- देव! आपकी देह में सब देवताओं को, प्राणियों के विभिन्न समूहों को, कमल पर बैठे ब्रह्मा को, शिव तथा समस्त ऋषियों एवं तेजस्वी सर्पों को मैं देख रहा हूँ। **तिरुवाय. 6.9.1-** प्रभु! आप ज्योतिपुञ्ज, शिव, ब्रह्मा, धरा, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश बन गये। **संग भक्ति - गीता 9.34- मन्मना भव मद्भक्तों मत् याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानां मत्परायणः।।** मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त हो, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको नमस्कार कर। इस प्रकार आत्मा को मुझमें लगाकर तू मुझको ही प्राप्त होगा। इस तरह भक्ति के विभिन्न व्यवहारिक रूपों के साथ चेतन प्रभु के श्रीचरणों को प्राप्त करता है। **तिरुवाय. 1.3.5-** भ्रम का त्याग करके अपने बन्धनों को काट दो। प्रभु छः दर्शन सिद्धान्तों के द्वन्द को मिटा देते हैं। **5.2.9-** संसार पावन भक्तजनों से भर गया है जो परम पवित्र पुरुषसूक्त, नारायणानुवाक् आदि वेद मन्त्रोंच्चारण पूर्वक शास्त्रविधि के अनुसार हाथ में फूल, दीप, धूप,

चन्दन तीर्थ आदि सामग्री लिए भगवान् अच्युत के दिव्यगुणों के अनुभव में तल्लीन उनके कैंकर्यरत हैं। उनकी सेवा करके तुम भी धन्य बनो।

प्रपत्ति द्वैविद्या के दो रूप हैं - **अंग प्रपत्ति** एवं **स्वतन्त्र प्रपत्ति** । अंग प्रपत्ति अन्य विधियों के साथ की जाती है जबकि स्वतन्त्र प्रपत्ति अपने आप में पूर्ण है। **गीता 7.14 - दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।** प्रकृति के तीन गुणोंवाली मेरी माया निःसन्देह दुस्तर है, पर जो एकमात्र मेरी शरण ग्रहण कर लेते हैं, वे इस माया को पार कर जाते हैं। **गीता 18.62 - तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।** हे भारत (अर्जुन)! सब प्रकार से प्रभु की शरण में जाओ। **गीता 18.66- सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।** समस्त धर्मों का परित्याग करके मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। शोक (सोंच) मत कर। नम्माळवार भी अंग तथा स्वतन्त्र प्रपत्ति के मार्ग बताते हैं। **तिरुवाय.1.3.5-** आत्मानुभव से प्रभु को प्राप्त करो। **9.1.7-** इसमें कोई सन्देह नहीं है। हमने कहा यहाँ अन्य कुछ भी नहीं है। **9.10.5-** जो प्रभु को खोजते हैं उनको यहाँ तथा मृत्यु के पश्चात् वैकुण्ठ में वे आश्रय प्रदान करते हैं।

भक्तिसार स्वामी **नान्मुगन् तिरुवन्दादि 71-** युद्ध में बोली गयी (गीता में) प्रभु की बातों को जो नहीं सीखे उनका हमेशा के लिए जीवन निरर्थक रह गया और वे अज्ञानग्रस्त रह गये। **गीता 4.9- जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।** हे अर्जुन!

मेरा यह जन्म तथा कर्म दिव्य है इसको जो समझ जाता है वह शरीर छूटने के बाद फिर जन्म नहीं लेता और मुझको प्राप्त कर लेता है। **गीता 9.26- पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्ति-उपहृतम्-अश्नामि प्रयतात्मनः।।** यदि कोई प्रेम तथा भक्ति के साथ मुझे पत्र (तुलसी दल), पुष्प (सुगंधित), फल या जल प्रदान करता है तो मैं उसे ग्रहण करता (खाता) हूँ। **तिरुवाय. 1.3.11-** जो इस सहस्रगीति को याद कर लेंगे वे परमपदधाम के अधिकारी हो जायेंगे। **तिरुवाय. 1.6.1 -** निर्मल प्रभु की गाथा गाओ और पूजा में फूल, जल तथा अगरबत्ती अर्पित करो। आत्मा शरीर से भिन्न है, प्रभु की कृपा परमपद प्राप्ति का साधन है और सिद्धोपाय का ज्ञान प्रदान करने में गीता तथा तिरुवायमोळी (सहस्रगीति) समान हैं।

चूर्णिका 190 -

तिरुवायमोळी की गीता से उत्कृष्टता।

सूत्र 190 (41) - सं. स तत्त्वोपदेश एतत्तत्त्वदर्शिवचनम्

सामान्य अर्थ- तिरुवायमोळी का तत्त्वोपदेश आत्मानुभूति पर आधारित है।

विशेषार्थ - महाभारत शान्ति प. 347.90- तत्त्वं जिज्ञासमानानां हेतुभिः सर्वतोमुखैः। तत्त्वमेको महायोगी हरिनारायणः (परः) प्रभुः।। जो लोग सर्व व्यापक हेतुओं द्वारा तत्त्व को जानने की इच्छा रखते हैं, उनके लिये महायोगी भगवान् नारायण हरि ही सब भवरोग तथा दोष को नष्ट करनेवाले

एकमात्र ज्ञातव्य सर्वोपरि तत्त्व हैं। **गीता 4.34 - तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।** सत्य संपन्न ज्ञान को तू (तत्त्वदर्शी ज्ञानियों से) सीख। वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी दण्डवत् प्रणाम करने से (जिज्ञासुभाव से) प्रश्न करने से और सेवा करने से तुझे उसका उपदेश करेंगे। नम्माळवार ज्ञानीशिरोमणि हैं और प्रभु की कृपा से उन्हें सत्य का बोध हुआ है। **गीता 7.6 - एतत्-योनीनि भूतानि सर्वाणि-इति-उपधारय। अहं कृत्सनस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।** भगवान् कहते हैं- ऐसा समझ कि सम्पूर्ण जड़ वस्तु तथा चेतन प्राणियों की उत्पत्ति अपरा एवं परा प्रकृति से है। अतः मैं इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का स्थान हूँ। **गीता 7.7 - मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।** अर्जुन! मुझसे श्रेष्ठतर दूसरा कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार मोती माला के धागे से गुँथे रहते हैं, उसी प्रकार सब मुझमें पिरोया हुआ है। **गीता 18.66- मामेकं शरणं व्रज।** एक मात्र मेरी शरण में आ जा। **तिरुवाय. 2.2.1-** परमपद एवं अन्य सबकुछ देनेवाले हमारे प्रभु ने धरा एवं आकाश को निगल लिया। आप समझ के परे हैं। यह निश्चित है कि भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त कोई कर्ता नहीं है। **तिरुवाय. 9.1.10-** यह निश्चित है कि भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं है। जिसे अपना समझते हो सबकुछ प्रभु को समर्पित कर दो। गीता 18.66 में भगवान् ने अपनी प्रशंसा स्वयं की है जो साधारणजनों के मन में चुभता है, परन्तु नम्माळवार ने सर्वत्र अपना कोई श्रेय न दिखाकर भगवान् को ही सबकुछ माना है। इस तरह से तमिल वेद गीता से उत्कृष्ट है।

चूर्णिका 191 -

पच्चीस तत्त्व पर नियंत्रण रखना तिरुवायमोळी का उद्देश्य है। गीता से उत्कृष्ट होने के कारण बताया है।

सूत्र 191 (42) - सं. सपंचतान् जाययित्वा दश पंच द्वंय पातितुमुक्तो लोकः सर्वजित इति पंच पंच विनाशेषु चोक्तः।

सामान्य अर्थ- गीता की रचना पाँच से सौ का अन्त करने से हुई है। तिरुवायमोळी पच्चीस पर विजय प्राप्ति का मार्ग बताती है।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 4.6.1- हृदय रथवाहे की चाह में है जिन्होंने भयानक युद्ध में सेना का संचालन कर पाँच पाण्डवों को विजय दिलायी थी। **महाभारत वन प. 189.58- द्रौपद्या सहिताः सर्वे नमश्चक्रुजनार्दनम् ।।** युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा नकुल-सहदेव– इन सबने द्रौपदी सहित उठकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम किया। **गीता 1.32- न काङ्क्षे विजयं कृष्ण -** श्रीकृष्ण! मुझे विजय की चाह नहीं। **गीता 18.73 - करिष्ये वचनं तव।** आपके वचन का पालन करूँगा। तात्पर्य है कि अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के समझाने पर अपना संकल्प बदल दिया। **पेरिय तिरु. 2.4.4-** शक्तिशाली सौ जनों का नाश कराया। भाव है कि अधर्म के रास्ते चलने वाले दुर्योधन के सौ भाईयों पर विजय हेतु ही भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। **तिरुवाय. 2.1.7-** अपना क्षीण हृदय को नारायण प्रभु को गँवाकर। भाव है कि क्षीण हृदय **शेषी** को अर्पित किया। इन्द्रियाँ

तिरुवायमोळी के विरुद्ध व्यवहार करती हैं। **तिरुवाय. 8.7.11-** यह सहस्रगीति प्रभु की कृपा से पुनर्जन्म का क्षय कर देगा। पच्चीस तत्त्वों के समूह में पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ लौकिक लगाव के मुख्य सहायक हैं। अतः तिरुवायमोळी लोकजनों को भगवान् के श्रीचरणों में लगाता है। गीता मूलतः मोक्ष-शास्त्र माना जाता है परन्तु इसका मुख्य लक्ष्य पाण्डवों को विजय दिलाना है। यह गीता का दोष एवं उसकी त्रुटि है। इसके विपरीत तिरुवायमोळी सबों के लिए है और भगवाद्गाथा की महत्ता का ही गुणगान करता है।

चूर्णिका 192 -

तिरुवायमोळी में सिद्धोपाय की उपयोगिता का वर्णन है। इसके प्रारम्भ एवं अन्त गीता के प्रारम्भ एवं अन्त से सर्वथा भिन्न हैं।

सूत्र 192 (43) - सं. तत्र पूर्णः शरणमित्यारभ्यवसानेऽप्रियमित्युक्तम् अत्र किं पापंभर एव हा इति प्रविश्य वर्द्धतामिति संतुष्टम्।

सामान्य अर्थ- "हे! शरणापन्न" से वहाँ (गीता) का शुभारम्भ होकर "**कोई इच्छा नहीं**" से अन्त होता है। यहाँ (तिरुवायमोळी) विघ्न **"मूर्ख लोगों को समझाने का भार"** से शुरु होकर **"सुखद सेवा"** के आनन्द से अन्त होता है।

विशेषार्थ -गीता के आदि में आश्रय माँगते अर्जुन का उल्लेख है। **पेरियाळवार तिरु. 1.10.4-** जब अर्जुन ने कहा "नन्दक खड्ग को धारण करने वाले

प्रभु आप ही हमारे आश्रय हैं।" **गीता 2.7 - शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।** मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरणापन्न मुझ दीन को शिक्षा दीजिए। **महाभारत अश्वमेध प. 16.11,10 (अनुगीता) - नूनमश्रद्धानोऽसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव।11।** पाण्डु- नन्दन! निश्चय ही तुम बड़े श्रद्धाहीन हो, तुम्हारी बुद्धि बहुत मन्द जान पड़ती है। **अबुद्ध्या नाग्रहीर्यस्त्वं तन्मे सुमहदप्रियम् ।10।** तुमने जो अपनी नासमझी के कारण उस (गीता के) उपदशको याद नहीं रखा, यह मुझे बहुत अप्रिय है। अतः स्पष्ट है कि अर्जुन ने गीता के उपदेश में रुचि नहीं दिखायी और अन्त में भगवान् से कह दिया कि आप जैसा कहेंगे वैसा करूँगा।

यहाँ तिरुवायमोळी की शुरुआत लौकिकों के दुःख से है क्योंकि ये लोग अपने दुःख को जानते भी नहीं। **तिरुवायमोळी 2.2.2 -** क्षुद्र देवतान्तरों के पीछे पड़े रहने वाले मूर्ख लोगों को समझाने का बोझ मेरे सिर पर है। नारायण की परात्परता ये समझते नहीं। सातों लोकों का पाप मिटाकर सबों की रक्षा करने वाले पुरुषोत्तम के सिवा दूसरा कौन देव होगा? आळवार भक्तों पर अतिशय प्रीति एवं स्नेह दिखाते हुए मंगलाशासन करते हैं- **तिरुवाय. 5.2.1-** जय हो, जय हो, जय हो! लौकिक अस्तित्व का पाप क्षीण हुआ। **तिरुवाय. 10.8.10 -** सुखद सेवा करके हमने आपका चरण पा लिया, यही मैं चाहता था। तिरुवायमोळी मूर्ख लौकिकों के विघ्न से शुरु होकर सुखद सेवा के लाभ से पूरा होता है। यहाँ **सिद्धोपाय** के व्यवहारिक माध्यम से मानवलोगों के उद्धार को प्राप्त किया गया है।

यहाँ गीता से इसकी श्रेष्ठता बतायी गयी क्योंकि गीता में सबकुछ मात्र अर्जुन को युद्ध-प्रवृत्त करने के लिए किया गया।

चूर्णिका 193 -

तिरुवायमोळी में उदारता प्रधान है।

सूत्र 193 (44) - सं. तत्र सिद्धधर्मविधिः अत्रास्मिन् विध्यनुष्ठाने।

सामान्य अर्थ- वहाँ (गीता में) प्रत्यक्ष रूप से विराजमान भगवान् कृष्ण की शरण पकड़ने का उल्लेख है। यहाँ (तिरुवायमोळी में) अप्रत्यक्ष सर्वव्याप्त भगवान् को प्राप्त करने के व्यवहारिक मार्ग को नियमितरूप से अभ्यास करने को बताया है।

विशेषार्थ - गीता 18.66- मामेकं शरणं व्रज। मात्र मेरी शरण में आ जा। **तिरुवाय. 4.1.1-** श्रीमन्नारायण का ध्यान करते हुए शीघ्र ही आत्मकल्याण पाओ। **तिरुवाय. 6.10.10-** आपके चरण पर गिरकर यह आश्रयविहीन जीव अपना आश्रय पा गया है। तिरुवायमोळी में श्रीमन्नारायण के कृपाप्रदायक चरण प्राप्त करने हेतु नियमितरूप से अभ्यास करने का संदेश है।

चूर्णिका 194 -

आळवार ने स्वयं गीता की महानता का उल्लेख किया है।

सूत्र 194 (45) - सं. भगवान् विधिः उक्तप्रकारेणेति अस्यांगीकारेण तस्योत्कर्षः।

सामान्य अर्थ- वे संदेश देते हैं भगवान् स्वयं ज्ञान के मार्ग एवं निरन्तर सेवा के पात्र हैं।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 1.3.5- प्रभु अन्तहीन तथा सबके आदि कारण हैं। **तिरुवाय. 5.2.9-** पुरुषसूक्त, नारायणानुवाक आदि वेद मंत्रोंच्चार से प्रेम से पुष्पादि सहित पूजा करनेवाले। भाव है कि निश्चय ही ज्ञान के मार्ग से प्रभु प्राप्त होते हैं। **तिरुवाय. 10.4.9-** आपके पूर्व की शिक्षा के अनुसार हमने अनवरत आपकी सेवा एवं पूजा की तथा आपके दिव्य चरणारविन्द का दर्शन पाया। गीता शास्त्र को पुरातन प्रमाण माना है। बौद्ध एवं कपिल (सांख्य) शास्त्र को वेद मतावलम्बी प्रामाणिक नहीं मानते। **रङ्गराजस्तव 3.16 - इति मोह न वर्त्मना त्वयापि ग्रथितं वाह्यमत तृणाय मन्ये।** पूर्व में रचित होने पर भी ये वेद विरुद्ध मत तृण सदृश त्याज्य हैं। नम्माळवार को मान्य गीता अवश्य ही प्रामाणिक शास्त्र है। वेद मतानुयायी आळवार ने अपने श्रीमुख से गीता को प्रामाणिक कहा है। अतः इसके समर्थन में अन्य उक्ति अनावश्यक है।

चूर्णिका 195 -

आळवार की महानता।

सूत्र 195 (46) - सं. वेदवेद्यवैदिकोपदेश आविद्यानां मात्रमज्ञानिनो ज्ञान-विशेषयुक्ताः सर्वज्ञ इति भेदं विनाऽसौ परिष्करोति।

सामान्य अर्थ- वेद एवं भगवान् कृष्ण द्वारा गीता का उपदेश विशेष ज्ञानवानों के लिए है, जबकि नम्माळवार का उपदेश विना किसी भेदभाव के संसार में प्रवृत सभी लोगों के कल्याण के दृष्टिकोण से किया गया है।

विशेषार्थ - वेद सर्वदा मानव-हित का ज्ञान देता है। गीता का उपदेश परम-पुरुष भगवान् कृष्ण ने किया है। कहा है- **वेदवेद्ये परे पुंसि-** नरों में सबसे श्रेष्ठ आप वेद से जाने जाते हैं। **ऋषियों की शिक्षा** - **महाभारत वन प. 88.25 - ये च वेदविदो विप्रा ये च अध्यात्मविदो जनाः।** वेद के पूर्वभाग (कर्मकाण्ड) तथा उत्तरभाग (ज्ञानकाण्ड) के ज्ञानवाले तथा अध्यात्म शास्त्र के विद्वान् ब्राह्मण लोग। तत्त्व, हित एवं पुरुषार्थ के ज्ञान से विहीन लोग अविद्याग्रस्त हैं और भगवान् को नहीं जानते हैं। कहा है- **आविद्यः प्राकृतः प्रोक्तः।** अर्थात् तत्त्व, हित एवं पुरुषार्थ के ज्ञान से अनभिज्ञ सांसारिक लोग। ज्ञानीलोग परमात्मा को ही परमसत्य का ज्ञान करानेवाले जानते हैं। परमज्ञानीजन अन्तःकरण तथा सर्वव्याप्त परमात्मा की सर्वज्ञता आदि दिव्य स्वरूपगुण तथा विभूति को जानते हैं। कहा है - **नैवकिञ्चित् परोक्षं ते ।** अर्थात् तुम कुछ भी देख नहीं सकते। **योवेत्ति युगपत् सर्वम् -** जो एक ही वार सबकुछ जानते हैं, अर्थात् परमात्मा सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान हैं। विना भेदभाव के नम्माळवार विविध सांसारिक जनों की योग्यता के अनुरूप अध्यात्म के मार्ग पर प्रवृत होने का उपदेश करते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद्वरवरमुनये नमः

तीसरा प्रकरण

तीसरे प्रकरण में 150 से 218 तक कुल 69 सूत्र हैं।

चूर्णिका 196 -

नम्माळवार के चार तरह के श्रोता हैं।

सूत्र - 196 (47) - सं. ज्ञानशून्यानामुज्जीवनप्रकार एतत्तटमारूढ़ानामानन्द-प्रवाहश्च स्थलज्ञानरहितानामगाधस्थलं च तीरं प्रापयितुः षट्कचतुष्टयं ज्ञापयितव्यम्।

सूत्रानुवाद - अनभिज्ञ के उद्धार का **उपाय**, विशेषरूप से तट पार करनेवाले, अगाध अनभिज्ञता, स्थलज्ञान रहित, तट पार करने में सहायक तथा तट पार करने में छः गुणा चार के विघ्न।

विशेषार्थ - पेरिय तिरु. 11.7.8 - लाल कमल जैसे नेत्रवाले प्रभु पर जो ध्यान नहीं करते एवं अनुभव नहीं करते वे सदा के लिए अनभिज्ञ रह जाते हैं। **तिरुवाय. 4.1.11-** एकमात्र आश्रय भगवान् कृष्ण का चरणारविन्द। **तिरुवाय. 4.1.1-** श्रीमन्नारायण के चरणारविन्द पर ध्यान करते हुए आत्मकल्याण प्राप्त करो। सांसारिक मोह तथा पुनर्जन्म के चक्र में उलझे लोगों के लिए **उपाय**रूप एकमात्र आश्रय भगवान् के चरणकमल हैं। **पेरियाळवार तिरु. 5.3.7-** हम संवेदनरहित संसार सागर के उस किनारे पर

फिसलते रहे। आपकी असीम कृपा से इस किनारे पर थके हुए आ गये हैं। भाव है कि प्रभु की कृपा ही **उपाय** है। उस किनारे से इस किनारे का तात्पर्य है कि परमपद के पासवाले किनारे पर आ गये हैं और परमपद की दूरी अब नगण्य है। भक्त अपने प्रयास को भूलकर **उपाय** पर ही आश्रित है। **तिरुवाय. 7.2.11-** इसके पाठ करने वाले परमपद में नित्यसूरियों से सेवित ब्रह्मानन्द प्रवाह में गोता लगायेंगे। जो नदी के जल के प्रवाह में बहते रहते हैं न तो स्थिर किनारे या ठहरने के स्थान का ज्ञान रहता है और न प्रवाह की गतिशीलता का। इसी तरह ब्रह्मानन्द के प्रवाह में बहने वाले को गन्तव्य लक्ष्य (स्थान) की प्राप्ति की चेतना नहीं रहती है। प्रभु के शीलगुणादि अगाध गहराई वाले हैं, अगाध स्थल का वोध नहीं होता। **तिरुवाय. 10.7.1 -** मधुरभाषी कविजन (सरोयोगी आदि)! जब आप गाते हैं तो सावधान रहें (प्रभु आप में प्रवेशकर आपको पूर्णतया अपने में मिला लेंगे। कहीं आपका सत्तानाश न कर दें)। कहा है - **संसारसागरं घोरमनन्तक्लेशभाजनं त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरंति मनीषिण।** भाव है कि इस किनारे से उस किनारे तक जाने में प्रभु ही सहायक होते हैं।

तिरुवाय 10.7.10 - पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच उनके शब्दादि विषय, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच भूत, मूल प्रकृति, अहंकार, मन और बुद्धि ये चौबीस तत्त्व प्रभु को प्राप्त करने में वाधक हैं। प्रभु की कृपा से इन विघ्नों को पार किया जा सकता है। छः गुणा चार का तात्पर्य चौबीस तत्त्वों के विघ्न से है। नम्माळवार के उपदेश के चार प्रकार के श्रोता हैं - **1. संसारी** जो

श्रीमन्नारायण को न तो जानते हैं और न उनको प्राप्त करने का उपाय जानते हैं। **2. ज्ञानी** जो संसार सागर को पार करके अपने **उपेय** को प्राप्त कर चुके हैं। **3. ज्ञानविशेषयुक्त** जो संसार सागर को पार करके भगवान् के विशेषताओं से अवगत हैं। **उपेय एवं प्राप्य** को पा कर भी आनन्दवस्था प्राप्त करने में भ्रमित रहते हैं। **4. श्रीमन्नारायण** जो **लीलाविभूति** (संसार) को पार करके **नित्यविभूति** पहुँचने में सहायक होते हैं। इन चारों में ज्ञानी साधन तथा ज्ञानविशेषयुक्त साध्य से बन्धे होने के कारण गौण हैं। अतः संसारी एवं श्रीमन्नारायण इनके मुख्य श्रोता हैं।

चूर्णिका 197 -

नम्माळवार के चार तरह के श्रोता के विषय-वस्तु।

सूत्र - 197 (48) - सं. तस्य कोपपात्राणां स्वेन दृष्टार्थं स्वस्मिन् कोपं कुर्वतां स्वनेत्रं दर्शनदुर्लभं दृष्टवतां नेत्रनिवर्तनस्थलं रागांधस्य मायादोषम-नेन प्रदर्शयंति।

सूत्रानुवाद - कोप के कारण, आळवार को अन्तःदृष्टि से पीड़ा व वियोग, उत्सुकतावश शरीर के दोष की उपेक्षा।

विशेषार्थ - गीता 16.19- क्षिपामि (न क्षमामि) - क्षमा न करके, निरन्तर भवसागर के विभिन्न आसुरी योनियों में डालता रहता हूँ। भगवद्-ज्ञान से अनभिज्ञों को प्रभु कोपवश संसार सागर में डालते रहते हैं। **तिरुविरुत्तम् 99-** ज्ञान के प्रभु के अतिरिक्त एवं जो धरा को वराह रूप में उठा लाये

दूसरा कोई देवता नहीं है। प्रभु की कृपा के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। संसारियों के लिए नम्माळवार का यही उपदेश है।

तिरुवाय. 5.5.1 - माताओं! मुझ पर क्यों कोप करोगी? भगवद् प्राप्तिरूपी फल की महिमा से अनभिज्ञ नायकी की माताओं की अपने उपाय पर विश्वास है। **5.5.2 -** हमें दोष न लगाओ, हमारे हृदय की आँख से देखो। अतः आळवार स्वयं अपने नायकीरूप को अपने अन्तःज्ञान से प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश देते हैं। ज्ञानी भक्तों को यह उपदेश है।

तिरुवाय. 10.7.1- मधुरभाषी कविजन (सरोयोगी आदि)! जब आप गाते हैं तो सावधान रहें (प्रभु आप में प्रवेशकर आपको पूर्णतया अपने में मिला लेंगे। कहीं आपका सत्तानाश न कर दें)। प्रभु की दयालुता की आकांक्षा के अतिरिक्त उनके दिव्य शील-गुणादि की अनुभूति करना भी वांछनीय है। **रागान्ध** श्रीमन्नारायण के लिए प्रयुक्त है जिसका तात्पर्य है कि प्रभु अपने अनुरागी नम्माळवार (भक्त) से मिलने को इतने आतुर व उत्सुक रहते हैं कि भक्त के भौतिक शरीर के दोष के प्रति आपनी आँखें बन्द किये रहते हैं। **तिरुवाय. 10.7.10-** भक्त के भौतिक शरीर से सम्बन्धित चौबीस तत्त्व प्रभु की नैसर्गिक लीला के अंग हैं।

चूर्णिका 198 -

नम्माळवार बार-बार सामान्य भक्तों को तथा भगवान् को उपदेश देते हैं।

सूत्र - 198 (49) - सं. साधनसाध्यमध्यस्थान् विसृज्य तयोः कालुष्यं प्राप्तजीवेश्वराणां त्यजत स्मरगृहीतवान् त्यक्षामि किं वर्द्धेरन् यादित्वादित्वाम्लायमानासु कर्म न गवां पृष्ठतः करं मा त्यज संचर मद्वचः स्वीकुर्वित्यसावसकृत् हिताहिते वदति।

सूत्रानुवाद - साधन एवं साध्य के अनुशरण करने वाले भक्त को बीच में छोड़ना; साधन एवं साध्य से ईश्वर को त्वरा; बार-बार कृत्य - अकृत्य को दुहराना; दृढ़ता से पकड़ में आये हुए प्रभु को क्या कभी जाने दोगे?; वंशी बजाओ; किशोरियाँ आप पर आश्रित हैं; छीनो मत; विनती है जाओ नहीं व चुपके से मत चले जाना, मधुर मिलन का आनन्द लो, मेरी बातों पर ध्यान दो।

विशेषार्थ - 1. जो **उपाय** का अनुशरण कर रहे हैं, और 2. जो **उपाय** के **फल** को प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे भक्तों को आळवार उपदेश करने से बचे हैं। ज्ञानीजन भी जो उपाय तथा इसके फल से अवगत हैं, नम्माळवार इन लोगों को उपदेश नहीं करते हैं। ऐसे लोग जो कर्म बन्धन के कारण संसार सागर में पूर्णतया निमग्न हैं, और **उपाय** तथा इसके **फल** से अनभिज्ञ हैं आळवार ने तिरुवायमोळी (सहस्रगीति 1.2.1 से लेकर 10.5.1 तक) में उपदेश किया है। **तिरुवायमोळी 1.2.1 -** सब कुछ छोड़कर अपनी आत्मा को जगत नियन्ता के जिम्मे समर्पित कर दो एवं उनका संरक्षण स्वीकार करो। **तिरुवाय. 10.5.1 -** जो भगवान् कृष्ण के चरण की चाह रखते हैं वे आपके नाम का स्मरण करें। **नारायण** ही मन्त्र हैं। स्नेहवश अपने भक्तों

को साधन-साध्य से प्राप्त उपलब्धि की उपेक्षा करते हुए भगवान् उनसे मिलने को आतुर रहते हैं। भगवान् से मिलने की त्वरा में आळवार कभी वियोग के हीन भाव में और कभी मिलन के ऊच्च भाव में लीन दिखते हैं। **तिरुवाय. 10.8.3-** आपको धारण करके हमने पुनर्जन्म का नाश कर दिया, रोग पर विजयी हो गये एवं अपने को सांसारिक जीवन के लोभ से मुक्त कर लिया। **तिरुवाय. 1.7.5-** गोपकिशोरियों के समक्ष शिशुरूप में प्रकट होकर उनसे छेड़खानी करनेवाले प्रभु हमारी आत्मा एवं ज्योति हैं। आपको अब हम कैसे छोड़ सकते हैं? **2.6.1-** यह जान लीजिए कि हमने दृढ़ता से आपको अपने में रख लिया है। **2.6.10-** आप हममें मिल गये हैं, अब कैसे जायेंगे? **6.2.2-** महाशय जाइये। आपकी कमल सी आँख एवं मूँगा सा होठ हमें आहत करता है। आप अपनी बाँसुरी गायों के साथ बजाइये। किशोरियाँ आपकी कृपा की पूजा करेंगी। **6.2.5-** महाशय झूठ मत बोलिए। नर तथा देवगण आपके छल से परिचित हैं। मृदुभाषी किशोरियाँ उत्सुकता से आपकी कृपा की पूजा करेगी। हमारे गूँगे मैना एवं तोता से खेल न करें। **तिरुवाय. 6.2.7-** विनती है, हमारी गुड़िया न छीनें। **तिरुवाय. 10.3.8-** विनती है मत जाइये, चुपके से भाग मत जाइये। अन्य कृशकटि किशोरियों से मधुर मिलन का आनन्द लीजिए। **10.3.10-** ध्यान दीजिए। हमारी संवेदनायें मेरी आत्मा को जला रही हैं।

चार तरह के श्रोताओं में उपाय से अवगत तथा उपेय को प्राप्त करनेवाले मध्य के दो हैं जो अपने श्रेयस को प्राप्त कर लेंगे। पहला तो उपाय-उपेय

से अनभिज्ञ जीव है तथा अंतिम ईश्वर हैं। मध्यवाले दोनों को अपने मार्ग से विचलित हो जाने का भय बना रहता है। अतः इनदोनों को भी उपदेश देना छोड़ना नहीं है। **कृत्य-अकृत्य** का उपयोग नैतिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। आळवार **अर्थपञ्चकम्** का उपदेश देते हैं जो जीव, ईश्वर, उपाय, उपाय विरोधी तथा फल की उपयोगिता को प्रकाशित करते हैं। भक्त किसी तरह श्रीमन्नारायण के चरणों को प्राप्त करे यही आळवार के ह्रदय का भाव है। **तिरुवाय. 1.2.1** का उपदेश **उपेय** ही **उपाय** है समझाता है। **10.5.1** उद्धार प्राप्ति के कृत्यों को बताता है। तात्पर्य है कि **भक्ति** उपायरूप, **प्रपत्ति** उपेयरूप तथा **कैंकर्य** फलरूप है। जीव को अपने अन्तःकरण से भगवान् के सहज स्वभाव-शीलादि गुणों की अनुभूति करना है। यद्यपि जीव के मन के स्वाभाविक दोष इसे प्राप्त करने में बाधक हैं तद्यपि **उपाय-उपेय** पर मन को दृढ़ करना होगा। आळवार द्वारा कृत्य-अकृत्य को बार-बार दुहराना (अर्थपञ्चक के) विरोधी स्वरूप का नाश करना है जो जीव के भ्रम को मिटाता है और ईशवर-चरण को प्राप्त कराता है।

भगवान् जब आळवार के ह्रदय में विराजकर उनको मिलन का अतिशय आनन्द देते हैं तब आळवार के मन में एक विचार उठता है। दिव्य गुणों से सम्पन्न प्रभु सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारे शरीर तथा मन अत्यन्त कलुषित हैं। उनकी प्रेयसी के रूप में उन्हें सर्वदा अपने साथ रखना महत्वाकांक्षा हो जायेगी। हमें अपनी सीमा में रहना होगा। इस भौतिक शरीर से उनके साथ परमपद जाना उचित नहीं होगा। नित्यसूरिगणों का हमारे साथ क्या

व्यवहार होगा? उनके इस विचार को देखकर भगवान् चकित हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। वे सोंचते हैं कि जब हमने आळवार को प्राप्त कर लिया है तब उनको छोड़ना कदापि उचित नहीं होगा, परन्तु वे मौन रहकर आळवार की सक्रियता की प्रतीक्षा करते हैं। उनकी कृपाकांक्षी किशोरी (आळवार का नायकी रूप) प्रणय कलह करके अधिक से अधिक समय तक अपने पास भगवान् को रोकना चाहती थी। "मैना, तोता को मत छेड़िये," "गुड़िया मत छीनिये," "चुपके से भागेंगे नहीं" "मधुर मिलन का आनन्द लें" आदि के दृष्टान्त इसी भाव के प्रदर्शक हैं। आळवार की ये सब बातें उनकी तरफ से ईश्वर को उपदेश हैं। भगवान् कभी भी भक्त को छोड़ते नहीं। वे उसमें घुलमिल जाते हैं।

चूर्णिका 199 -

नम्माळवार सामान्य भक्तों को ज्ञान से, तथा भगवान् को भक्ति से उपदेश देते हैं।

सूत्र - 199 (50) - सं. कांतिज्ञानमूर्तेरुपदेशकरणं प्रेम्णा तमः प्रचुराणां भक्तिजनतृत्वं ज्ञानेन।

सूत्रानुवाद - भक्ति से ओतप्रोत, ज्ञानप्रभा से युक्त भगवान् को उपदेश देते हैं। अज्ञानग्रस्त लोगों को ज्ञान से भक्ति का उपदेश देते हैं।

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 6.2.8- अप्रमेय कीर्ति एवं दिव्यज्ञान के प्रभु ! अपको छोड़कर सब वस्तु कितने भिन्न हैं। प्रलयकाल में श्रीमन्नारायण

स्थूल को सूक्ष्म बना देते हैं। चेतन एवं जड़ को समेटकर एक साथ उदरस्थ कर लेते हैं। सृष्टि के समय उसके पूर्व के कर्मानुसार सबको यथावत प्रकट कर देते हैं। **तिरुवाय. 6.2.5 -** तेजोमय चक्रवाले प्रभु! हम आपको कुछ शिक्षा देना चाहते हैं। उसकी आवश्यकतानुसार लोगों को शिक्षा देना यही इसका भाव है। घोर अज्ञानग्रस्त लोगों को भगवान् की भक्ति का मार्ग दिखाते हैं। **तिरवाय. 4.9.4 -** अपार सम्पत्ति तृष्णा को प्रज्वलित करती है एवं चारों ओर से संसार को अन्धकार की चादर में समेट लेती है। सम्पत्ति नश्वर है परन्तु अज्ञानग्रस्त लोग इसे अर्जित करना चाहते हैं। **तिरुविरुत्तम 96-** आपने इतनी सारी पूजा की विधि बनाई। तात्पर्य है कि आळवार लोगों को भगवद् भक्ति में लगाना चाहते हैं। सांसारियों को अज्ञान के गड्ढे से निकालकर अपने ही समान नारायण की भक्ति में प्रवृत्त करना चाहते हैं।

चूर्णिका 200 -

दूसरों की तथा भगवान् की वेदना को नम्माळवार सहन नहीं कर पाते हैं।

सूत्र - 200 (51) - सं. प्राणत्यागं मज्जति मम पूर्णप्राणः इति परदुःखासहन-मुभये च वर्त्तते।

सूत्रानुवाद - दूसरों के दुःख को सहन नहीं कर सकने के कारण दोनों उपयोगी हैं। भगवान् को दुःखग्रस्त होते देख - "मेरा हृदय बैठ रहा है।"

विशेषार्थ - तिरुवायमोळी 4.9.3- सुख, मित्रता, सम्बन्धीजन, अपार सम्पत्ति, जुड़े वाली नारी एवं गृह आदि मृत्यु के समय छोड़ जाते हैं। हम इसे सहन नहीं कर सकते। भगवान् की वेदना को सह नहीं पाना - **तिरुवाय. 10.3.8-** हमारा हृदय बैठ रहा है, विनती है, मत जाइये। क्या होगा अगर असुरगण आप पर आक्रमण कर दें? मिलन की चाह भींग कर हमारे भीतर फैल गयी है। तात्पर्य है कि असुरों के आक्रमण से प्रभु आपदग्रस्त हो जायेंगे। भगवान् को अनेकों कष्ट का सामना करना पड़ेगा। भगवान् की इस दुःखदायी स्थिति को सोंचकर उनकी वेदना आळवार को सहन नहीं हो रहा है और आळवार का "हृदय बैठ रहा है।" पूर्व के सूत्र के "भक्ति एवं ज्ञान" लौकिकों तथा भगवान् दोनों की वेदना का नाश करने में सहायक हैं।

चूर्णिका 201 -

भगवान् पर आई खतरा को नम्माळवार सहन नहीं कर पाते हैं।

सूत्र - 201 (52) - सं. मम तवात्मेत्यस्मिन् ज्ञानिन आत्मेति तन्मते प्रकाशेत्।

सूत्रानुवाद - जो अपनी आत्मा को भगवान् का समझते हैं उनको भगवान् के लक्ष्य का बोध हो जाता है।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 4.3.8 - मेरी आत्मा आपकी है एवं आप हमारे हैं। भगवान् का सहज स्वभाव दिव्य गुणों से युक्त है। **6.9.8-** हे मर्त्यों की आत्मा! भाव है कि भगवान् के सहज गुणों से अवगत जनों की वे ही स्वयं

आत्मा बनकर विराजते हैं। **गीता 7.18 - ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।** भगवान् कृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है। आळवार की अनुभूति है कि भगवान् अपने भक्त की आत्मा बनकर रहते हैं और उसकी अस्मिता भगवान् के कारण है। आलवन्दार यामुनाचार्य स्वामी कहते हैं कि जीव के कर्म के कारण उसका हृदय भगवान् को धारण नहीं कर सकता परन्तु भगवान् को कहीं भी विराजने में कोई रोक भी नहीं सकता। इसी के कारण भगवान् की अशान्ति आळवार को कदापि सहनीय नहीं है।

चूर्णिका 202 -

भगवान् शिष्य की तरह नम्माळवार के अनुयायी हैं।

सूत्र - 202 (53) - सं. स्थापयेन्मनोरथरूपोऽनृतसंपर्को नास्त्यादर कृत्वा संगरहितः क्षुत्तृट्पीडितनिर्द्धन इव पश्यन्सन्भुक्त्वा पीत्वा परिजनादिभिः सहात्मानं दत्वा किं करिष्यामीत्येवं स्थित्वाऽखिलभरे समर्पिते तद्वहित्वा रात्रौ समानदिवसे च गच्छेत्युक्तेऽपि त्युक्तुमशक्तो न गतंव्यमित्युक्तेऽपि प्रीतिं च त्यक्त्वा विधिप्रकारेणैव कर्ता स एवोपदेशसत्पात्रम्।

सूत्रानुवाद - स्थापित, व्यवहार, इच्छा, स्नेह, विलग, भूख, प्यास, पीड़ित, आत्मसमर्पण, लालसा, संयोग, वियोगरहित, प्रस्थान एवं आज्ञा-पालन - उपदेश के लिए ईश्वर सुयोग्य ।

विशेषार्थ - सच्चा शिष्य अपने आचार्य को अत्यन्त ऊँचे सम्मान की दृष्टि से देखता है। उनका शरीर भी उतना ही प्रिय और सम्मानीय मानता है।

जो आचार्य के विमुख हैं उनसे वह दूर रहता है। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, रंक को धन जितना प्रिय होता है वैसे ही शिष्य को आचार्य प्रिय होता है। **विहंगेश्वर संहिता - शरीरमर्थं प्राणं च सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्।** अपना शरीर तथा प्राण आचार्य को सर्वसमर्पित करे। प्रामाणिक वचन है - **कृत्स्नां वा पृथिवीं दद्यात् न तत्तुल्यं कथंचन।** आचार्य द्वारा किये गये उपकार के बराबर समस्त जगत् का समर्पण भी नहीं हो सकता। शिष्य सर्वदा दोष एवं कल्मषयुक्त होता है। आचार्य से डाँट सुनकर भी उनके प्रति अन्यथा भाव न रखे। **तिरुवाय. 8.7.1-** उतावला होकर अनेकों दिन हमने पूजा की, पुकारा एवं प्रार्थना की कि हमारी आवाज सुनकर हमें अपने चरणारविन्द से जोड़ लिया जाय। भगवान् ने आळवार को अपने श्रीचरणों के पास रखा। **तिरुवाय. 1.8.7-** मेरा चैतन्य (आत्मा) आपका सुखद आवास है। भाव है कि भगवान् स्वयं आळवार की आत्मा बन गये हैं। **1.8.5-** निस्सन्देह प्रभु हममें विलीन हो गये हैं। तात्पर्य है कि भगवान् के कारण आळवार का शरीर दोषरहित एवं निर्मल हो गया है। **तिरुवाय. 2.5.1-** सुन्दर स्थान पर आपने हमसे प्रेम किया एवं हमारे प्राण में मिल गये। परमपद के समान ही प्रभु ने आळवार को प्रिय माना। **तिरुवाय. 1.2.6-** प्रभुका कोई बन्धन नहीं, आप स्वतन्त्र हैं। आळवार से प्रेम होने के कारण प्रभु ने परमपद को छोड़ दिया है। **तिरुवाय. 9.6.8-** वे हमारी सेवा लेने नहीं हमारी आत्मा को खाने आये हैं। दिन व दिन कण-कण वे हमारा सब कुछ खा रहे हैं। अर्थात् भगवान् भूखे की तरह व्यवहार कर रहे हैं। **9.6.10-** उन्होंने मेरा सबकुछ चूस लिया। यानी भगवान् ने प्यासे की तरह पी

लिया। **तिरुवाय. 8.7.2-** सब समय खड़े होकर इस अधम को आप देखते रहे और पाँचो नीच का नाश कर दिया। अर्थात् जैसे कि रंक को अपार धन मिल गया।

वरदराज स्तव 63 - परिजनपरिबर्हा भूषणान्यायुधानि प्रवरगुणगणाश्च ज्ञानशक्त्यादयस्ते। परमपदमथाण्डान्यात्मदेहस्तथाऽऽत्मा वरद सकलमेतत् संश्रितार्थं चकर्थ।। हे वरदा! अपने आश्रितों को आपने अपने सेवकवृन्द (नित्यसूरिगण), दिव्य आभूषण, दिव्य आयुध, ज्ञान शक्ति आदि शुभ गुण, परमपद, ब्रह्माण्ड, अपना दिव्य शरीर तथा अपने आपको न्योछावर कर दिया है। **तिरुवाय. 2.7.11-** आप हमारे कल्पवृक्ष हैं। आपने हमें अपना बनाया तथा अपने को हमारा बना दिया। **पेरिय तिरुवन्दादि 53-** आप सदा अपने भक्तों के लिए कुछ करने को आतुर रहते हैं। नम्माळवार ने अपना पूरा भार **मूल मन्त्र** के **"नमः"** से भगवान् के जिम्मे कर दिया है। **तिरुवाय. 3.3.6-** जो केवल वचन (नमस्कार व जयकार) से आपकी सेवा करते हैं वे आगत तथा अनागत कर्मों से मुक्त हो जाते हैं। **यजुर्वेद 5.36 - भूयिष्ठाम्** - नमस्कार युक्त विनम्र वाणी। **तिरुवाय. 1.10.8-** भक्तों से बोला गया "जय श्रीमन्नारायण" सुनकर आँखें प्रेमाश्रु बहाती हैं। रात-दिन आप मेरे साथ परम मित्र की तरह रहते हैं। **6.2.2 -** महाशय जाइये। क्रोध में आलवार भगवान् को जाने कहते हैं, परन्तु विपरीत ही काम करते हैं। **2.6.7 -** आप हमारे नीच हृदय में प्रवेश कर गये और अब छोड़कर नहीं जाते। सभी स्थितियों में प्रभु आळवार के साथ रहते हैं। **तिरुवाय. 10.3.8-**

मेरा ह्रदय बैठ रहा है। विनती है, मत जाइये। **10.3.10-** मूँगे जैसे होंठवाले कृष्ण! आपको चरवाही वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। **10.6.1-** चक्रधारी प्रभु भक्तों के आदेश की प्रतीक्षा करते हैं। अर्थात् भगवान् आळवार के मनोनुकूल काम करते हैं। उनकी पात्रता देख आळवार बार-बार उपदेश दुहराते हैं।

चूर्णिका 203 -

संसार को उपदेश देने के कारण।

सूत्र - 203 (54) - सं. शत्रवोऽसत्ये मांसमाशानिर्वेदेन सहास्तिक्यामानित्वादिपरिपूर्णानां प्रणिपाताभिवादन परिप्रश्नसेवापराणां ह्रदये स्थापयत वक्तुं योग्यता नास्तीत्युक्तमर्थमागच्छत विरोधहीनवाक्यं सर्वात्मनां च ज्ञानार्थमिति क्रममतिक्रम्यातपस्कानामुपदेशो लौकिकेषु बन्धबुद्धयाश्चानर्थं दृष्वाऽसहनं चातिशयितकृपया च खलु।

सूत्रानुवाद - शास्त्र का अनुशरण करते हुए शरीर के मांस पालने से विरक्त व्यक्ति सज्जनों को सम्मानपूर्वक साष्टांग प्रणाम करता है और उनकी सेवा में रत होकर अपने जिज्ञासा के प्रश्नों का समाधान प्राप्त करता है। ऐसे योग्यजनों को उपदेश न करके जो भक्ति, इन्द्रिय व वाणी में असंयमित हैं वैसे जनों को स्वेच्छा से अप्रिय उपदेश देने के कारण।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 4.9.1- शत्रुओं का हर्ष एवं मित्रों का दुःख बढ़ानेवाला यह संसार। **पेरुमाल तिरु. 3.1 -** सांसारिक सुख-भोग को जीवन का सच

समझनेवाले के साथ मैं नहीं रह सकता। **पेरुमाल तिरु. 4.1 -** अगर वेंकट प्रभु की सेवा नहीं कर सका तो बाद के जन्म का कष्टमय जीवन मुझे कभी पसंद नहीं होगा। **पेरियाळवार तिरु. 4.5.1-** मृत्युकाल में घर-परिवार का नाम भूलकर केशव, वराह प्रभु कहनेवाले की महत्ता अवर्णनातीत है। **मुण्डक उपनिषद् 1.2.12- परीक्ष्य लोकान् कर्मचित्तान् ब्राह्मणो निर्वेदम् आयात् न अस्ति अकृतः कृतेन्।** कर्म से प्राप्त होनेवाले लौकिक सुखों की परीक्षा करके मनुष्य समझ ले कि किये जानेवाले कर्मों से स्वतःसिद्ध नित्य परमेश्वर नहीं मिल सकते। तात्पर्य है कि नम्माळवार रक्त-मांस-चमड़े से बने शरीर से प्राप्त भगवद् भक्ति से रहित लौकिक जीवन के अनेकानेक दोषों से अवगत हैं। प्रामाणिक कथन है - **आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान् वैष्णवः शुचिः गंभीरश्चतुरो धीरः शिष्य इत्यभिधीयते।** शास्त्र का अनुशरण करनेवाले भगवान् विष्णु के भक्त, निर्मल चित्त, उदार, धार्मिक, शीलवान तथा धैर्यपूर्वक कार्यों को निपुणता से करने वाले योग्य शिष्य होते हैं। **गीता 13.7 - अमानित्वम् अदम्भित्वं अहिंसा क्षान्तिः आर्जवम्। आचार्योपासनं शौचं** स्थैर्यम् **आत्मविनिग्रहः।।** मानहीनता, दम्भहीनता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्य की उपासना, पवित्रता, स्थिरता और मन का भलीभाँति निग्रह ये सब शास्त्र मानने वाले के गुण हैं। ये आत्मिक गुण सम्पन्न महापुरुषों के शिष्य के योग्य हैं। **वि. पु. 1.1.1- प्रणिपत्याभिवाद्य च।** प्रणाम एवं चरण छू कर मैत्रेय जी ने पूछा। **गीता 4.34- तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।** दण्डवत्-प्रणाम करने, सेवाभाव से प्रश्न करने पर तुझे उपदेश करेंगे। **तिरुवाय. 4.10.9-** अगर

तू मुक्ति चाहता है तो आपको हृदय में धारण कर। **पेरिय तिरु. 2.4.9-** भक्तजनों! यह शब्दों से परे है। इसके पहले कि दूसरे इस रहस्य को सुन लें, आओ। भाव है कि विशेष ज्ञान बहुतों को न सुनाकर किसी एक भक्त को बताओ। स्वेच्छा से - **तिरुवाय. 3.9.6-** हे पंडितों! नरस्तुति छोड़ इधर आओ। नम्माळवार स्वेच्छा से भक्तों को अपनी बात बता रहे हैं। **3.9.1-** कहना तो कठिन है (क्योंकि विरोध होग), परन्तु मैं कहूँगा। भाव है कि किसी से श्रद्धापूर्वक नहीं भी पूछने पर आळवार स्वेच्छा से उपदेश कर रहे हैं। **तिरुविरुत्तम 99-** अगर ये शब्द अप्रिय हैं तो रहें (परन्तु मैं कहूँगा)। आळवार का भाव है कि भवसागर के दूषित एवं उफनते जल में ये कंकड़ फेंकने जैसे हैं। **तिरुवाय. 9.1.7 -** मैंने जो कहा इस संसार में कुछ नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। **10.2.5-** हम इसे निश्चित जानते एवं बोलते हैं। तात्पर्य है कि आळवार ने अपने उपदेश को गुप्त न रखकर सब के लिए सार्वजनिक किया है। इसके विपरीत **गीता 18.67** में कहा है- **इदं ते न आतपस्काय न अभक्ताय कदाचन। न च अशुश्रूषवे वाच्यं न च मां यो अभ्यसूयति।।** इसको न तो कभी तपहीन (असंयमी), भक्तिहीन, सुनने न चाहनेवाले और मेरी निन्दा करने वाले को सुनाना चाहिए।

तिरुवाय. 4.5.8- धरती के समस्त प्राणियों एवं परमपद निवासियों के नाथ। तात्पर्य है कि आळवार ने धरतीवासियों एवं परमपदवासियों को समान मानकर (क्योंकि प्रभु दोनों के नाथ हैं) संसारियों को उपदेश किया। **4.9.3-** मरते समय भी लौकिक झंझट को भूलकर भगवान् की चिन्ता न

करने वाले ये यातनाग्रस्त लोग मुझसे नहीं सहे जाते। **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु 8-** इससे बड़ी कृपा आपकी और क्या हो सकती है जो आपने (अर्थात् नम्माळवार ने) सहस्रगीति में दिखायी है। भगवान् ने **गीता 16.19 - क्षिपामी (न क्षमामि)** कहा कि आसुरी प्रवृत्तियों वालों को मैं क्षमा न करके संसार में फेंकते रहता हूँ। परन्तु आळवार स्वयं परमपद जाना छोड़कर, अतिशय प्रेमवश लौकिकों को भगवत् चरणारविन्द में लगाना चाहते हैं। अतः इस दृष्टि से आळवार भगवान् से भी अधिक दयालु हैं।

चूर्णिका 204 -

नम्माळवार से सीता जी, प्रह्लाद, विभीषण तथा रामानुज स्वामी की तुलना।

सूत्र - 204 (55) - सं. मातुश्च पुत्रस्य चानुजस्य च येषां तत्पादाश्रितानां सूरीणां खल्वेते वर्त्तते।

सूत्रानुवाद - उनके चरणों को साष्टांग करनेवाले माँ, पुत्र, अनुज तथा रामानुज स्वामी में ये सब वर्तमान हैं।

विशेषार्थ - जगत माता सीता जी- **वा.रा. 5.21.19-20 - मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता। बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः।19।** सीता जी रावण को समझाती हैं - यदि तू लंका को सुरक्षित रखना और अपने को दारुण बन्धन से बचाना चाहते हो तो मित्रता के योग्य भगवान् राम से मैत्री कर ले। **विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः। तेन मैत्री भवतु**

ते यदि जीवतु-मिच्छसि।20। वे सभी धर्मों के ज्ञान तथा शरणागत की रक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं। यदि जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हें उनसे मित्रता कर लेनी चाहिए। **वि.पु. 1.8.17- नित्यैवैसा जगन्माता विष्णोः श्रीः अनपायिनी।** भगवान् विष्णु का कभी संग न छोड़नेवाली जगज्जननी लक्ष्मी नित्य ही हैं। रावण के क्रूर व्यवहार के लिए चिन्ता न करके वे उसकी भलाई करना चाहती हैं। **पुत्र प्रह्लाद जी -** भगवान् का नाम लेते रहने के कारण हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद जी को कठोर यातना देते हुए श्रीमन्नारायण से शत्रुता कर लेता है। फिर भी प्रह्लाद जी उसे उचित परामर्श देते हैं। **वि.पु. 1.19.37- सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये।** हे पिता जी! सभी प्राणियों की आत्मा सर्वव्याप्त भगवान् संसार के स्वामी हैं। प्रामाणिक कथन है - **उर्व्यामस्ति -** वे सर्वत्र हैं। असुर जाति को कहते हैं- **वि.पु. 1.17.90- असार-संसारविवर्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि। सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य।।** हे दैत्यों! निवेदनपूर्वक कहता हूँ, इस असार संसार से कभी संतुष्ट मत होना। सर्वत्र समदृष्टि रखना ही भगवान् अच्युत की सच्ची आराधना है। **पेरियाळवार तिरु. 1.6.2-** अति भयकारी नृसिंह रूप में हिरण्यकशिपु का पेट फाड़कर उसके रक्त से होली खेली और परम भक्त की रक्षा की।

अनुज विभीषण रावण को उचित राय देते हैं। **वा.रा. 6.14.3-4 - यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति बलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः। दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली।3।** नख एवं दाँत के आयुधवाले पर्वतनुमा बानरों

का लङ्का पर चढ़ाई के पहले ही सीता जी को रामजी को सौंप दीजिए। **यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता राक्षसपुंगवानाम्। वज्रोपमा वायु-समानवेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली।4।** वायुवेग वाले वज्र सदृश रामजी के बाण प्रधान राक्षसों के सिर काटने के पहले ही सीता जी को रामजी को सौंप दीजिए। रावण विभीषण को डाँटता है - **वा.रा.6.16.16- त्वां तु धिक् कुलपांसन।** कुलकलङ्क निशाचर! तुझे धिक्कार है। विभीषण रावण से कहते हैं- **वा.रा.6.16.21-22 - सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।21।** राजन्! मीठी बात कहने वाले तो सुगमता से मिल जाते हैं। सुनने में अप्रिय परन्तु अन्ततः हितकारी हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं। **बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः। न नश्यन्तमुपेक्षे त्वां प्रदीप्तं शरणं यथा।22।** सभी प्राणियों का संहार करनेवाले कालके पाश में तुम बन्ध चुके हो। आग लगे घर की भाँति नष्ट हो रहे हो। अतः तुम्हारी उपेक्षा न करके तुम्हारे हित की बात सुझा दी थी। **तिरुवाय. 7.6.9-** दुष्ट राक्षसकुल का नाश करके राज्य छोटे भाई को दे दिया।

आळवार ने भवरोगग्रस्त मानव समुदाय को शिक्षा देते हुए कहा- **तिरुवाय.1.2.1-** सबकुछ छोड़कर अपनी आत्मा को जगतनियन्ता को सुपुर्द कर दो। आचार्य से शिष्य और आगे शिष्य के शिष्य की पुनरावृत्ति से गुरु परम्परा विकसित होती है। प्रारम्भ के आचार्य के उपदेश को ही अग्रोत्तर सुरक्षित रखते हुए प्रसारित करने की परम्परा है। रामानुज स्वामी ने निजी

परिश्रम से गोष्ठीपूर्ण स्वामी से उपदेश प्राप्त कर उसे सार्वजनिक कर दिया। अतः वे श्रेष्ठ आचार्य की तरह सम्मानित हुए। उन्होंने गुरुपरम्परा को प्रसारित करने हेतु चौहत्तर पीठों की स्थापना की। **शाण्डिल्य स्मृति** का कथन है - **वृथैव भवतो याता भूयसि जन्मसंततिः। तस्यामन्यतमं जन्म संचित्य शरणं व्रज।।** बार-बार मिलनेवाले अनेकों जन्मों को तू ने निरर्थक गँवा दिया। वर्तमान जन्म को महत्वपूर्ण मानते हुए अपने को भगवान् के चरणाश्रित कर दे। रामानुज स्वामी ने संसार में प्रवृत्त रहनेवाले अनभिज्ञ व अयोग्य लोगों को भी भगवान् के चरणों की **शरणागति** स्वीकार कराई। **रामानुज नुट्रन्दादि 1 -** हे हृदय! आओ रामानुज का नाम लो। इनमें नम्माळवार की तरह योग्यता वर्तमान है।

चूर्णिका 205 -

नम्माळवार के उपदेश से भक्तिहीन लोगों को भी भगवान् के चरण प्राप्त होनें का फल मिला।

सूत्र - 205 (56) - सं. ख्यातिलाभपूजापेक्षां विना पुष्पाण्यन्विष्य दास्ये कृते उज्जीवयित्वा कमवलंब्य खड्गं च धनुष गृहीत्वेत्युक्तदुःखानां निवृत्तिर्लब्धा।

सूत्रानुवाद - ख्याति, लाभ एवं पूजा की अपेक्षा किये विना, संसार के यातनाग्रस्त उद्धार की इच्छा वाले लोगों पूजा के फूल सदृश पदों की

साधना करना, उचित संगी का अभाव, प्रभु के खड्ग व धनुष लेकर चलने की कामना।

विशेषार्थ - तिरुवाय. 3.3.4 - मेरे जैसे नीच एवं मूर्ख के लिए आपका गाथा-गान उचित है क्या? अर्थात् आळवार ख्याति नहीं चाहते हैं। **4.9.4-** अपार सम्पत्ति तृष्णा को जगाती है। अतः आळवार धन आदि का लाभ नहीं चाहते हैं। **8.9.11-** तीनों लोकों के नाथ के भक्त के भक्त शठकोप के हजार पद। अर्थात् वे पूजा-सम्मान नहीं चाहते। **9.1.11-** शठकोप के हजार पद के इस दशक को गानेवाले मेरे चिरन्तन नाथ होंगे। भाव है कि तिरुवायमोळी गानेवाले आळवार के नाथ हैं। **5.5.11-** यह दशक पूजा के सुगंधित फूल (आत्म-पुष्प) के सदृश है जो प्रभु के चरणों पर शठकोप ने समर्पित किये हैं। **4.10.11 -** शठकोप की यह प्रेमपूर्ण रचना है। गानेवाले को मोक्ष मिलेगा। स्पष्ट है कि आळवार ने अपने इस कैंकर्य से बहुतों को सुधारकर भगवत्सेवा में प्रवृत्त किया। **4.10.9-** मुक्ति चाहनेवाले को प्रभु को अपने हृदय में रखना होगा। भाव है कि आळवार लौकिकों की दुर्दशा देखकर स्वयं दुःखी हैं और उनके उद्धार का मार्ग बताते हैं। **7.3.4-** मैं किसको साथी बनाकर, उसके साथ कौन सा वार्तालाप कर शान्ति पाऊँ। अर्थात् किसी उचित संगी की कमी से आळवार दुःखी हैं।

तिरुवाय. 8.3.3- न तो कोई आपका खड्ग एवं धनुष लिए आपके पीछे-पीछे चलता है। भाव है कि भगवान् की सुकुमारता देख प्रभु से अपार अनुराग रखनेवाले आळवार यह सोंच अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हैं

कि इनके कठोर आयुधों को इनके साथ लेकर चलने वाले कोई नहीं हैं। लोगों को बार-बार उपदेश करने से आळवार भगवान् से जुड़े अपने इन दुःखों का शमन करते हैं। **तिरुवाय. 1.4.9-** यह शरीर प्रभु के चरणों पर फूल चढ़ाने के लिए बना है। अतः आळवार **कैंकर्य** की महत्ता स्पष्ट करते हैं। इसका अन्तःभाव है कि **चेतन** भगवान् के दिव्यगुणों का स्तुति-गान स्वयं न करके प्रभुकी ही बलवती इच्छा के वशीभूत करता है। आळवार के उपदेश से भक्तिहीन भी कैंकर्य का फल प्राप्त कर लेते हैं।

चूर्णिका 206 -

नम्माळवार की अकारण करुणा।

सूत्र - 206 (57) - सं. ब्रह्मनिष्ठासंवत्सरवासिनश्चेति भवंति चेत्किं पापं प्रयोजनाभावेऽपि इति वाक्येन संगच्छेत।

सूत्रानुवाद - भगवत् ज्ञान से सम्पन्न आचार्य, जो उनके शरणागत हैं उनके अतिरिक्त, अन्यों को एक संवत्सर तक अपने साथ रखकर शिष्यत्व प्रदान करे। **नासंवत्सरवासिने ब्रूयात्** के अनुसार आळवार इन सभी बातों पर ध्यान न देकर, अनाश्रितों की दुर्दशा देखकर, द्रवित हो सब के लिए उपदेश करते हैं।

विशेषार्थ - विना शरणागत हुए को शिष्य के रूप में शिक्षा न दे। **तिरुवाय. 2.2.2 -** हाय! ये तो इतने मूर्ख हैं कि भगवान् के परापरत्व को भूलकर क्षुद्र देवतान्तरों के पीछे पड़े रहते हैं। इन्हें कोई नहीं समझा सकता। अगर

ऐसे लोग भी आळवार के पास जाकर उपदेश सुनें तो फल प्राप्त होगा। अगर संयोग से कोई एक वर्ष पर्यन्त आचार्य के पास रहे तो निश्चित रूप से उसे उपदेश मिलेगा और यह उपदेश फलीभूत होगा। आळवार के प्रधान शिष्य मधुरकवि आळवार कहते हैं - **कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु 10-** नाकाम एवं बेकार लोगों को आपने एक साथ मिला दिया। भाव है कि नम्माळवार अपनी अतिशय दया (जीवों की दुर्दशा से द्रवित होकर) के वशीभूत दोषपूर्ण व्यक्तियों को स्वीकार करके उस पर अनुग्रह वर्षाते हैं और उन्हें भगवान् के चरणों में लगाते हैं। अन्तर्निहित तात्पर्य है कि दोषमुक्त तथा दोषग्रस्त दोनों के तरह लोग सहस्रगीति को साधकर भगवान् के श्रीचरणों की प्राप्ति रूप फल को प्राप्त करते हैं।

चूर्णिका 207 -

अन्यों को उपदेश करते हुए नम्माळवार अपनी अनुभूति में लीन रहते हैं।

सूत्र - 207 (58) - सं. सत्यं स्थित्वा नाशमनुमन्यस्वेत्यनयोर्मध्येऽनुभव-गर्भोपदेशः।

सूत्रानुवाद - उपदेश करते हुए भी अपनी अनुभूति में लीन रहते हैं।

विशेषार्थ - चारों तमिल वेद (तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम, पेरिय तिरुवन्दादि, तिरुवायमोळी) का उपदेश - **तिरुविरुत्तम 1-** हम अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति, दुष्टतापूर्ण कार्य तथा गंदगी से भरे शरीर को न प्राप्त करें इसकी कृपा करके स्वीकृति दीजिए। **तिरुवाय. 10.7.10-** तिरुमालीरुञ्जोलै के प्रभु,

हमारे संरक्षक! आळवार की भगवान् की भक्ति और भगवत् अनुभूति इतनी प्रगाढ़ होती गयी है कि वे अपनी दृष्टि लोगों पर डालते हुए उपदेश भी देते हैं। श्रीवैष्णव आचार्यों के मत हैं कि आळवार की अनुभूति एवं उपदेश दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उनके उपदेश को उनकी भगवत् अनुभूति से अलग नहीं किया जा सकता।

चूर्णिका 208 -

नम्माळवार के सभी प्रबन्ध रहस्यत्रय के प्रतीक हैं।

सूत्र - 208 (59) - सं. एतेषां मन्त्रविध्यनुसंधानरहस्यः सम्बन्धः।

सूत्रानुवाद - इनके प्रबन्ध मूल मन्त्र, द्वय मन्त्र तथा चरम मन्त्र के व्यवहारिक उदाहरण हैं। **"मन्त्र रहस्यम् विधि रहस्यम्, अनुसंधानरहस्यम्"; विधिरहस्यम् - चरम श्लोक**।

विशेषार्थ - चारों प्रबन्ध हैं - तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम, पेरिय तिरुवन्दादि तथा तिरुवायमोळी। **पाञ्चरात्र - सर्वम्-अष्टाक्षर-अन्तस्थम्।** पाञ्चरात्र तथा वेद सभी अष्टाक्षर के अन्तर्गत हैं। यह सभी शास्त्रों का सार है। चरम मन्त्र भगवान् के श्रीचरण पकड़ने का साधन है। द्वय मन्त्र भगवान् के श्रीपाद तथा कैंकर्य फल को प्राप्त कराता है। महापुरुषगण मन्त्रों के आनन्द-मय रहस्य को जानते हुए जीवन में इनके अनुसंधान करते रहते हैं।

चूर्णिका 209 -

नम्माळवार के प्रबन्धों का रहस्यत्रय से अलग अलग सम्बन्ध। **मूल मन्त्र** (**ॐ नमो नारायणाय**) के पहले दो शब्द का सम्बन्ध **तिरुविरुत्तम** प्रबन्ध से है। प्राप्य फल **नारायण** का सम्बन्ध **तिरुवाशिरियम** प्रबन्ध से है। **पेरिय तिरुवन्दादि** प्रबन्ध **चरम श्लोक** को समझाता है।

सूत्र - 209 (60) - सं. रक्षणार्थं दासः तव भरं शिरसा धृत्वाऽसत्ये यत्किंचिदपि न मज्जंतीति स्वरूपविरोधि निवृत्तिश्च तामरसनाभिबृहत् महाश्चर्य-युक्तेऽस्य दासभवने मंगलं भवतीति प्राप्य फलानि च मार्गान् प्रदर्शय मनसि कृत्वा कृष्णेन प्रहारं प्राप्य न पश्याम आश्चर्य यथा तथा वा भवत्वित्युपाय-प्रतिपादका एते मंत्रश्लोकाभ्यां संघटेयुः।

सूत्रानुवाद - आत्मा के सहज स्वरूप एवं विरोधी स्वरूप के निरोध को स्पष्ट करने में सहायक - स्वीकार कर, दास, एकमात्र आश्रय, सहना, दोषग्रस्त, भिन्नता, शिथिलता मुक्त, नाभि कमल, आश्चर्यतम, सर्वस्थिति, हमारा यशगान, कैंकर्य फल बताना, उपाय बताना, मार्ग निर्देश, उनका चिन्तन, कृपापात्र, अवशेष रहित, कैसे - मूल मन्त्र एवं चरम श्लोक से सम्बन्ध।

विशेषार्थ - नम्माळवार के चारों प्रबन्ध हैं - तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम, पेरिय तिरुवन्दादि तथा तिरुवायमोळी के रहस्य मन्त्रों से सम्बन्ध। **तिरुविरुत्तम 1-** हम अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति को न प्राप्त हों इसकी कृपा करके स्वीकृति दीजिए। **प्रणव** के प्रथम अक्षर **अकार** से आत्मरक्षा, अकार के चतुर्थी संप्रदान विभक्ति **आय** से आळवार का दासभाव से नम्र

निवेदन। प्रणव के दूसरे अक्षर **उकार** से एकमात्र नारायण के दासत्व की अनन्यता (अनन्यार्ह शेषत्व) एवं शरीर से भिन्न ज्ञानान्द की रक्षा। **प्रणव** सहज जीवात्म-स्वरूप का बोधक है। **तैत्तिरीय आरण्यक - ब्रह्मणे त्वामहसे ओमित्यात्मानं युंजीत।** प्रणव से परमात्मा के श्रीचरणों में अपनी आत्मा को समर्पित करे। **तिरुविरुत्तम 85-** हमारे नीच प्राण के लिए आप एकमात्र सहारा हैं। अतः प्रणव बोध कराता है कि भगवान् ही एकमात्र सहारा हैं। मूल मन्त्र का दूसरा शब्द **नमो** से यह बोध होता है कि भगवान् को एक मात्र सहारा मानने वाले भक्त का वे अपने को दास मानते हैं। **तिरुविरुत्तम 100-** तिरुविरुत्तम के सौ पद **मारन शडकोपन** (नम्माळवार) के हैं जो ऐसे भक्तों के चरण को धारण करते हैं जो प्रभु के नाम का गान अपने गले की माला की तरह करते हैं। **नमो** का बोधक - **तिरुविरुत्तम 1-** हम अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति, दुष्टतापूर्ण कार्य तथा गंदगी से भरे शरीर को न प्राप्त करें इसकी कृपा करके स्वीकृति दीजिए। **तिरुविरुत्तम 95 -** हर जीवात्मा को पुनर्जन्म एवं मृत्यु की आवृत्ति में अनेकों शरीरों से गुजरते देख माता-पिता की तरह प्रभु हमारी रक्षा में आते हैं। **नमो** की षष्ठी विभक्ति समबन्ध कारक से अन्त होनेवाले अहंकार एवं ममकार का प्रतीक **"म" अक्षर** जीव के दुष्कर्म के कारण अनेकों लौकिक व दैविक शरीर में आते-जाते रहने का बोधक है। **तिरुविरुत्तम 100 -** जो इसे कंठ कर लेंगे वे कभी भी यातनापूर्ण पुनर्जन्म के कीचड़ में नहीं पड़ेंगे। अर्थात् अज्ञान के भ्रम एवं जीवन के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे। अज्ञान का भ्रम ही सांसारिक बन्धन देता है। आळवार ने तिरुवायमोळी में जीवात्मा के ज्ञान

एवं आनन्द के सहज स्वरूप को बताया है। फलस्वरूप वह भगवान् के श्रीचरण का आश्रय प्राप्त करता है। भगवत् स्वरूप को सपष्ट करते हुए आळवार कहते हैं कि भगवान् अपने को दासों का दास मानकर संसार की रक्षा करते हैं तथा अज्ञान के भ्रम को दूर करते हैं। इस तरह तिरुवायमोळी मूल मन्त्र के प्रथम दो शब्दों **"ॐ नमो"** से जुड़ा हुआ है। भगवान् के नाभिकमल के दर्शन से उनके **"आश्चर्यों के आश्चर्य"** स्वरूप का आनन्द मिलता है। **तिरुवाशिरियम् 1 -** नाभि में कमल वाले अद्भुत अद्वितीय प्रभु! से प्रारम्भ होकर **तिरुवाशिरियम् 7 -** आश्चर्यों के आश्चर्य! से अन्त करता है। इस प्रबन्ध में परमपद, नित्यविभूति एवं लीलाविभूति की गतिविधियों के एकमात्र नियन्ता श्रीमन्नारायण का गाथा-गान है। मूल मन्त्र के **नारायणाय** पद का भी यही भाव है।

तिरुवाशिरियम् 3 - कम से कम अब से, क्या युगों-युगों तक हम आपके भक्तों के सेवक नहीं बने रहेंगे? **तिरुवाशिरियम् 4 -** क्या हम आश्चर्यमय देव की अनवरत प्रशस्ति-गान का युगों-युगों तक आनन्द ले सकेंगे जिनकी नाभि में कमल है और जिन्होंने सब लोकों की रचना की? भगवान् के श्रीचरणों की सेवा का कैंकर्य लाभ इनके भाव हैं। मूल मन्त्र के संप्रदान कारक चतुर्थी विभक्ति वाले पद **नारायणाय** के भाव भी समान हैं। तिरुविरुत्तम तथा तिरुवाशिरियम् प्रबन्धों से सम्पूर्ण मूल मन्त्र के अर्थ का बोध होता है।

पेरिय तिरुवन्दादि 6- क्या अपना चरण दिखाकर आप लुप्त हो जायेंगे? इसमें आळवार भगवान् से शिकायत करते हैं कि आपके चरण के अतिरिक्त अन्य उपाय भी है क्या? **गीता 18.66 - सर्वधर्मान् परित्यज्य -** तात्पर्य है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। **पेरिय तिरुवन्दादि 48 -** सुगठित बाहों वाली नप्पिनाय के लिए आपने सात बैलों का शीघ्र ही बध कर दिया। आपका ध्यान करते हुए हमने वैकुण्ठ का मार्ग जान लिया। तात्पर्य है कि ध्यान से भगवान् की शरणागति ली और मोक्ष का रास्ता जान गये। **गीता 18.66- मामेकं शरणं व्रज-** केवल भगवान् की शरणागति करनी है। **पेरिय तिरुवन्दादि 25-** कृष्ण भगवान् की कृपा से हमने अपने हृदय को संसार की अकथनीय यातना से मुक्त कर लिया। **पेरिय तिरुवन्दादि 26-** अपने हृदय से मिलकर हम अपने दुष्कर्मों को जंगल व पहाड़ों में खदेड़ देना चाहते हैं। **गीता 18.66- अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।** मैं तुमको सारे दुष्कर्मों एवं यातनाओं से मुक्त कर दूँगा। **पेरिय तिरुवन्दादि 54-** वत्सासुर का बध करनेवाले प्रभु के चरणों की पूजा करते हैं। हमारी सारी यातनाएँ विना कोई चिह्न छोड़े हमें छोड़कर चली गयीं। चरम श्लोक का **यिष्यामि** का तात्पर्य है कि अपने प्रयत्न से नहीं बल्कि भगवान् की कृपा से ही सभी दोषों का अन्त होता है। **पेरिय तिरुवन्दादि 70-** सुवर्ण मुकुट, हजार नाम तथा तेजोमय चक्र वाले प्रभु हमारे माँ-पिता हैं। हम आपको अपने अन्तःकरण में रखते हैं और आप हमारी यातनाओं का नाश करते हैं। जो होगा सो देखेंगे। होगा ही क्या है? **गीता 18.66 - मा शुचः** का यही तात्पर्य है। **पेरिय तिरुवन्दादि** में भगवान्

की पूजा से उपाय स्वरूप भगवान् का सर्वत्र उल्लेख है। अतः इससे चरम मन्त्र का ज्ञान होता है।

चूर्णिका 210 -

नम्माळवार का तिरुवायमोळी प्रबन्ध **द्वय मन्त्र (श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।)** की व्याख्या है। पिल्लै लोकाचार्य स्वामी का **सारसंग्रह** रचना में भी यही विषय वस्तु है।

सूत्र - 210 (61) - सं. द्वयार्थो दीर्घशरणागतिरित्युक्तं सारसंग्रहे।

सूत्रानुवाद - सारसंग्रहम में द्वय का अर्थ दीर्घशरणागति कहा है।

विशेषार्थ - श्रीमन्नारायण, दिव्य महिषी लक्ष्मी जी एवं विरोधाभास नाश आदि को लेकर तिरुवायमोळी में कुल दस विषयों का विवरण है। द्वय मन्त्र श्रीमन्नारायण के सहज स्वरूप तथा दिव्यगुणों का वर्णन करता है। वेद का सार इतिहास, पुराण, स्मृति तथा अन्य शास्त्रों में वर्णित है। द्वय मन्त्र इन सभी शास्त्रों का सार है। द्वय के शाब्दिक अर्थ के अनुरूप दो भागों में बँटा यह मन्त्र दो मुख्य तथ्यों का वर्णन करता है। श्रीवैष्णव आचार्यों का यह अक्षय संपदा है। दस शतकों के तिरुवायमोळी में प्रत्येक शतक को दस दशकों में बाँटा गया है। दसों शतक में विभिन्न दस प्रधान विषय-वस्तुओं का समालेख है। प्रत्येक दशक में ग्यारह पासुर (पद) हैं।

पहला शतक - लक्ष्मी के पति - तिरुवाय. 1.3.1- प्रभु प्रेम से भक्तों को मिलते हैं। आपका चरणारविन्द दूसरों को मिलना कठिन है, यहाँ तक कि

पद्मश्री लक्ष्मी को भी। **1.5.9-** श्रीपति। **1.6.9-** महान सम्मानीय प्रभु लक्ष्मी के अलौकिक पति हैं। **1.9.1-** श्रीपति। **1.9.3-** लक्ष्मी के अलौकिक पतिदेव। **1.10.4-** हमारे प्रभु राजकुमार हैं जिन्होंने लक्ष्मी से विवाह किया।

दूसरा शतक- प्रभु सब के नाथ - तिरुवाय. 2.1.7- अपने क्षीण ह्रदय को प्रभु के पास गँवा दिया। **2.7.1-** मेरे मणिवर्ण नारायण। **2.7.2-** नारायण सब लोकों के नाथ हैं।

तीसरा शतक- प्रभु के आश्रयदाता चरण- तिरुवाय. 3.3.9 - गोपकुमार वेंकटम प्रभु के चरणारविन्द। **3.4.3-** दिव्य चरणवाले प्रभु। **3.6.4-** आपके दिव्य चरणारविन्द का स्मरण करते। **3.6.10-** रथ हाँकने वाले प्रभु के विजयी चरण। **3.8.1-** आपके तीनों जगत में पूजे जानेवाले चरण।

चौथा शतक- कामनाओं का नाशकरके उपाय स्वरूप वांछित लक्ष्य की प्राप्ति - तिरुवाय. 4.2.8- बाणों से लंक को जला दिया। **4.4.11-** उदार कृष्ण की प्रशस्ति। **4.4.11-** याद करनेवाले की यातना का अन्त। **4.5.2-** विचित्र विश्व की घातक यातना का अन्त। **4.5.4-** अपनी जिह्वा से प्रशस्ति गाकर प्रभु को प्राप्त किया। **4.7.7-** जीवन-मरण के रास्ते अतिसम्मानीय प्रभु का बार-बार ध्यान करके अपनी चिन्ता से मुक्त हुए। **4.9.7-** दुष्ट संसार जन्म, मरण, रोग, आयु एवं यातना से अलग रखकर दर्शन दीजिए। **4.9.9-** हमारी इच्छा को मिटाते हुए हमारे सिर पर चरण रखकर हमें भ्रमण कराया। हम आपके चरणारविन्द से अलग नहीं हो

सकते। **4.1.11-** एक मात्र आश्रय कृष्ण के चरणारविन्द। **4.3.11-** एक मात्र आश्रय कृष्ण के चरण की प्रशस्ति।

पाँचवा शतक- उपाय स्वरूपी भक्त की सभी इच्छाओं को प्रभु कृपा से पूर्ण करते - तिरुवाय. 5.7.2- आपके प्राप्ति के किसी उपाय के अनुष्ठान से विरत इस अकिंचन पर कृपा करें। **5.7.10-** आपने अपने चरण एकमात्र आश्रय तथा मार्ग के रूप में दिया। **5.8.3-** आपके अतिरिक्त अन्य से रक्षा की गुहार नहीं की। **5.8.11-** कृष्ण के चरणाश्रित। **5.9.11-** ज्ञानवान एवं समझदार कुरुगूर शठकोपन के हजार नाम वाले की प्रभु की प्रशस्ति। **5.10.11-** एकाग्र चित्तसे शेषशायी प्रभु के एक मात्र आश्रयरूप चरणारविन्द की अर्चना।

छठा शतक- लक्ष्मी एवं नारायण के कैंकर्य- तिरुवाय. 6.5.8- वैदिक वाचकों एवं लक्ष्मी सदृश नारियों के बीच रहने वाले प्रभु। **6.5.11-** श्रीपति के नित्य किंकर बनेंगे। **6.7.8-** कमलोद्भवा श्रीजी के नाथ। **6.8.10-** मदीय लक्ष्मीजी से अलंकृत श्रीवक्षवाले भगवान्। **6.9.3-** कमल निवासिनी लक्ष्मीजी के साथ प्रभु।

सातवाँ शतक- कैंकर्य का मधुर निरतिशय भोग्यता - तिरुवाय. 7.1.2- गन्ना के रस । **7.1.7-** हमारे प्रिय अमृत। **7.2.5-** सागर मथनेवाले दुर्लभ अमृत। **7.9.9-** श्रीवैकुंठनाथ को बतानेवाले मधुर गाथारूप पेय भूत एवं भविष्य से पी रहे हैं। क्या यह आपकी गाथा गाने की हमारी प्यास को मिटा पायेगा? **7.10.1-** सातों लोक में आनन्द का संचार करते हैं।

आठवाँ शतक- सर्वस्वामी त्रिलोक नायक- तिरुवाय. 8.1.3- प्राणाधार प्रिय शिशु। **8.2.2-** राजीवनयन यहाँ फिर दिख जायें। **8.4.10-** चिरंतन परमपदनाथ। **8.9.5-** विश्व के प्रभु। **8.9.11-** तीनों लोक के नाथ।

नौंवाँ शतक- जीव का चिरंतन कैंकर्य- तिरुवाय. 9.2.1- पुराकाल से आपकी तथा कमलनिवासिनी लक्ष्मीजी की कृपा से हम आपके मंदिर में हर तरह से बंधुआ सेवक की तरह आपकी सेवा करते रहे। **9.2.2-** आपकी सार्वभौम प्रभुता का आदर करते हुए आपके दिव्य चरण की सेवा करते रहे। **9.2.3-** अनवरत सेवारत अपने बंधुआ सेवक का आवेदन सुन लीजिए। **9.2.10-** मैं भी आपका चरण दबाऊँ। **9.4.4-** हमने समर्पण कर दिया है। **9.6.7-** वे आये और स्नेह से हमें अपनी सेवा में स्वीकार कर लिये। **9.8.4-** आपकी सेवा लाभ पाने का आपका संकल्पित दिन कौन सा है जब मैं आपकी सेवा में लगूँगा।

दसवाँ शतक- कैंकर्य प्रतिबन्धक का अन्त- तिरुवाय. 10.1.8- विषाद भाग खड़ा होंगे। **10.2.1-** सारे व्यवधान लुप्त हो जायेंगे। **10.2.2-** सात जन्म तक विषाद नहीं सतायेगा। **10.2.3-** तुम्हारे सारे विषाद मिट जायेंगे। **10.2.5-** इस जीवन का अंत कर नित्यसूरि हो जायेंगे। **10.3.9-** जबभी आप गोप किशोरियों से मिलकर अपना विषाद मिटाते हैं तब मेरा नारीपन अनियंत्रित हो उठता है। **10.4.7-** रोग दूर रहेंगे तथा पुनर्जन्म से मुक्त हो जाओगे। **10.4.3-** पुनर्जन्म की यातना से मुक्त होंगे। **10.4.9-** हमारे कर्मों का नाश हो गया। **10.5.9-** कर्मों का नाश करते हुए भक्तों के पास।

10.6.11- नरक की यातना का अंत करते हैं। **10.8.3-** आपको धारण करके अपने पुनर्जन्मों का नाश कर लिया। **10.8.5-** सारे व्यवधानों का अंत हुआ। **10.8.7-** हमारे हृदय ने चरम शब्द को पा लिया। **10.10.11-** अपनी मुक्ति प्राप्त करनेवाले।

द्वय मन्त्र प्रारम्भ होता है लक्ष्मी जी के साथ रहनेवाले भगवान् के ज्ञान से, और इसका अन्त होता है कैंकर्य के विघ्नों के नाश से। भगवान् के चरण के अलावे जिसका कोई सहारा नहीं है उसे तिरुवायमोळी भगवान् का भक्तों के प्रति स्नेह दर्शाते हुए उसके शरीर धारण किये रहने तक भक्ति की सारी योग्यताओं को पूरा करता है। तिरुवायमोळी में सभी श्रीवैष्णव आचार्य द्वय मन्त्र के सूक्ष्म भाव का अनुभव करते रहे हैं।

चूर्णिका 211 -

तिरुवायमोळी भक्तों को भगवान् के चरण प्राप्त कराने का एकमात्र आश्रय है।

सूत्र - 211 (62) - सं. त्रये संगृहीतपंचकं चोच्छ्रायदृढपर्यंक एक अभिवर्द्ध-मानऋषभनेत्रनीलत्यजत् अभिधने एकपरिगृहीत अनुष्टितचतुष्टयं सुमह-द्विच्छेदनहद्वंश इत्युक्तविंशत्यां विशदं कृत्वाऽशीत्यां विस्तारित्वात् पंचकं च दत्तवान् परमपदं प्राप्तवान् इत्युक्तत्वात पंचके च द्वयं चाश्रित्य गर्वं प्राप्तः वक्तुं समर्थः कैंकर्य कृत्वा इत्युक्तमुक्तलक्षणवृत्या द्वये एकं चास्य प्रमेय इति वदेत्।

सूत्रानुवाद - पाँच (अर्थपञ्चक) का वर्णन बीस (तिरुवायमोळी के पासुरों) से हुआ। उच्चतम (से उच्चतर), परमपद-दाता, सर्वव्याप्त, कोई नहीं था, तेजोमय, अवाँछित, आँखें, मणिपर्वत, त्यागो, कहो, एक, आपके, चारों (कोई तपस्या नहीं की, मेरे प्रभु, निरन्तर, एकमात्र प्रभु, अस्सी में विस्तार, प्रारम्भ (अनुदान) और अन्त (मुक्त हो गये), पाँच (अर्थपञ्चक) और द्वय(उपाय-उपेय) के बीच तिरुवायमोळी के विषय, मुक्ति के अंग (पूजा, आनन्दमग्न, चरम शब्द (नमन) की उपलब्धि), कैंकर्य, एक महत्वपूर्ण विषय पर विचार। **उपाय** एवं **उपेय** पर विचार, **उपेय** की महत्ता।

विशेषार्थ - मूल मन्त्र एवं चरम मन्त्र की विषयवस्तु का द्वय मन्त्र व्याख्या करता है। **पर स्वरूप, आत्म (स्व) स्वरूप, उपाय स्वरूप, विरोधी स्वरूप** तथा **पुरुषार्थ (फल) स्वरूप** (अर्थपञ्चक) तिरुवायमोळी में समाहित हैं। नम्माळवार के अन्य प्रबन्ध तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम् तथा पेरिय तिरुवन्दादि की भी यही विषयवस्तु हैं। सूत्र 209 तथा 210 द्रष्टव्य। तिरुविरुत्तम तथा तिरुवाशिरियम् में मूल मन्त्र की व्याख्या है। पेरिय तिरुवन्दादि चरम मन्त्र के भाव वाले हैं। तिरुवायमोळी में द्वय मन्त्र की व्याख्या है।

तिरुवाय. 1.1.1- आपकी पूजा करो जो उच्चतम से भी उच्चतर है। इतिहास - पुराण के विभिन्न अवतारों की गाथा आळवार के प्रबन्धों की विषयवस्तु हैं। **तिरुवाय. 2.2.1-** शाश्वत मोक्ष आदि तथा समस्त पुरुषार्थों के दाता। यह भगवान् के पर स्वरूप को बताता है। **2.8.1 -** सर्वव्याप्त प्रभु शेषशायी

हैं। मोक्षदाता प्रभु अर्चावतार स्वरूप में मन्दिरों में तथा घरों में पूजे जाते हैं जो तिरुवायमोळी की मुख्य विषयवस्तु है। **4.10.1-** जब कोई देवगण, विश्व आदि कुछ भी नहीं थे प्रभु ने ब्रह्मा को बनाया। ऊपर के पासुरों में आळवार ने **पर स्वरूप** के गुणों का वर्णन किया है।

तिरुवाय. 3.7.1 - अतिप्रिय कमलनयन तेजोमय प्रभु। जिनमें भगवान् के प्रति सेवाभाव नहीं है उनका परित्याग करना है। **4.8.1-** वृषभारोही शिव, चतुरानन ब्रह्मा एवं कमलवासिनी लक्ष्मी प्रभु के शरीर पर विराजते हैं। इसका भाव है कि समस्त जीवगण प्रभु के विराट शरीर हैं। ज्ञान एवं आनन्द जीवात्मा के सहज गुण हैं जो प्रभु की सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। **8.8.1-** कोई लाल बड़ी आँख एवं लाल मूँगावत होठ वाला हमारे हृदय में विराज रहे हैं। **8.9.1 -** तालों वाले कुट्टनाडु तिरुप्पुलियूर के प्रभु मणि पर्वत की तरह खड़े हैं। इन चार पासुरों में जीवात्मा के अनन्यार्ह शेषत्व (अनन्य सेवक अर्थात् किसी अन्य को स्वामी नहीं मानते) का उल्लेख है जो **स्व स्वरूप** का बोध कराता है।

अहंकार व ममकार से भरा जीव अन्य देवों से जुड़े रहते हैं। **तिरुवाय.1.2.1-** क्षुद्र विषयों को छोड़कर अपने सर्वस्व का भगवद्-अर्पण कर दो। **3.9.1-** कहना कठिन होने पर भी कहूँगा। वेंकटम प्रभु के अतिरिक्त अन्य की प्रशस्ति में हम मधुर गीत नहीं गा सकते। ऐश्वर्य एवं कैवल्य सबको छोड़ना है। **4.1.1-** संसार के एकछत्र राजा का ऐश्वर्य नष्ट हो गया और वे भीख माँगने लगे। **9.9.1-** पत्नी एवं सन्तान, मित्र एवं सम्बन्धी किसी

को स्नेह नहीं है, तुम्हारे पास कितना धन है वे मात्र यही देखते हैं। इन चार पासुरों में आत्मोज्जीवन के विरोधी दोष को बताकर उसके सहज स्वभाव का वर्णन हुआ है जिससे **विरोधी स्वरूप** का ज्ञान होता है।

प्रभु के दिव्य चरण ही एक मात्र **उपाय** है। **तिरुवाय. 5.7.1-** मैंने कोई तपस्या नहीं की है। **5.7.10-** आपने अपने चरण एकमात्र आश्रय के रूप में दिया है। **5.8.1-** अतृप्त अमृत। **5.8.11-** जिनके प्राण कृष्ण के चरणाश्रित हैं। **भक्ति की महिमा** - **5.9.1-** मृगनयनी सखियाँ! यह क्षुद्र दिनानुदिन क्षीण हो रही है। कब यह भक्तात्मा प्रभु के चरण प्राप्त करेगी। **5.9.11-** ज्ञानवान एवं समझदार शठकोपन के ये हजार पद हजार नाम वाले प्रभु की प्रशस्ति हैं। **5.10.1 -** आपका जन्म, बालपन, पाण्डव के पक्ष में आपकी शक्ति - ये आश्चर्यमयी घटनायें हमारी जीवात्मा को आत्मसात् कर ले रही है। भाव है कि जीवात्मा भक्ति प्रेम से ओतप्रोत होकर अपना भौतिक ढ़ाँचा से विहीन हो जाता है। **5.10.11-** एकाग्र चित्त से शेषशायी प्रभु के चरण को एकमात्र आश्रय के रूप में अर्चना करने को बताती है जो **उपाय स्वरूप** का ज्ञान कराता है।

कैंकर्य करते हुए आत्मा को कभी स्वार्थ भाव नहीं रखना होगा। **तिरुवाय. 2.9.1-** हम अपने लिए स्वर्ग नहीं माँगते। भक्तों की सेवा करके मेरा कैंकर्य पूरा करो। **3.3.1-** प्रत्येक समय एवं सर्वदा तेजोमय वेंकट प्रभु की सेवा करनी है। **8.10.1-** केवल मेरे सोंचने से कि मैं प्रभु की सेवा करूँगा दुष्ट कर्म भाग गये। **10.3.1-** हमारे सुघड़ बाँस सदृश बाहें झुक जाती हैं।

10.3.9- जबभी आप गोप किशोरियों से मिलकर अपना विषाद मिटाते हैं तब मेरा नारीपन अनियंत्रित हो उठता है। इन पासुरों में **पुरुषार्थ (फल) स्वरूप** का वर्णन है जो जीव को उसके प्राप्य कैंकर्य का बोध कराता है।

तिरुवायमोळी में अर्थपञ्चक के पाँचों अंगों को स्पष्ट किया गया है। प्रत्येक के लिए चार-चार मुख्य पासुरों का उल्लेख करके पाँच के लिए बीस का प्रयोग हुआ। ये बीस पुनः चार-चार पासुरों अर्थात् अस्सी पासुरों से समझाये गये हैं। अर्थपञ्चक के पाँच तत्त्वों को **प्रमेय** कहा गया है। **तिरुवाय. 1.1.1-** उठो! हे हृदय! आपकी पूजा करो जो उच्चतम से भी उच्चतर है। देवाधिदेव सभी शंका का निवारण करके भक्ति का शुद्ध ज्ञान देते हैं। तिरुवायमोळी के पहले पासुर (पद) से प्रभु की पूजा ही अज्ञान निवृत्ति के साधन का बोध होता है। **तिरुवाय. 10.10.11-** अपनी मुक्ति प्राप्त कर लेनेवाले कुरुगूर शडगोपन (शठकोप स्वामी) के हजारपद को गानेवाले नित्यसूरि होते हैं। सहस्रगीति **पाँच** अर्थात् अर्थपञ्चक का वर्णन करते हुए **द्वय** अर्थात् **उपाय** एवं **उपेय** को प्रतिपादित करता है। मुक्ति पूजा करते हुए आनन्दमग्न की अनुरक्ति है। **10.8.6-** मुक्ति के शीतल अमृत का स्वाद चखकर हम परम आनन्दमग्न हैं। **10.8.7-** हमारे हृदय ने चरम **नमः** शब्द को पा लिया। प्रामाणिक कथन है - **बद्धाञ्जलि पुटा हृष्टा नम इत्येव वादिनः।** नमन करने में दोनों हाथों को जोड़ने की मुद्रा से अतिसम्मान देना, और **विपण्यवः** अर्थात् प्रशस्ति गान करना ये **मुमुक्षु** के लक्षण हैं जो अपने को श्रीमन्नारायण का सेवक मानता है। **1.10.11-** सहस्रगीति के पद मणिवर्ण

प्रभु के यशगान की सेवा है। तात्पर्य है कि भगवद्भक्त सेवक के रूप में सहस्रगीति के पदों से भगवान् का यशगान करके उनकी सेवा करता है। तिरुवायमोळी **उपाय** एवं **उपेय** को प्रतिपादित करते हुए **उपेय** को प्रधानता देता है। **आचार्य-हृदयम्** में कुछ सूत्र **प्राप्य** (श्रीमन्नारायण), कुछ जीवात्मा के स्वरूप, कुछ **प्रपत्ति (**श्रीचरण प्राप्ति के उपाय) और कुछ **प्रपत्तिविरोधि** विघ्न-बाधाओं को बताते हैं। इसका प्रधान लक्ष्य प्रपत्ति के फल अर्थात् कैंकर्य का बोध कराना है। कैंकर्य के विरोधी विघ्नों आदि के निवारण के लिए **ईडु** का अवलोकन वांछनीय है। **ईडु** 36000 पदों में है जो तिरुवायमोळी के पाँच व्याख्यानों में प्रधान एवं विशद व्याख्यान है। मानव समुदाय के लिए एकमात्र लक्ष्य **उपेय** (श्रीमन्नारायण) को प्राप्त करना है जो **कैंकर्य** से ही प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि तिरुवायमोळी (सहस्रगीति) में चार मुख्य विषयों का विवरण है- 1. कैंकर्य स्वीकार करने वाले श्रीमन्नारायण, 2. जीवात्मा जो कैंकर्य करता है, 3. कैंकर्य के विरोधी तत्त्व, 4. विरोधी का अन्त करना। अतः तिरुवायमोळी में उपाय के फल कैंकर्य को प्रधानता दी गयी है।

चूर्णिका 212 -

तिरुविरुत्तम एवं तिरुवायमोळी के प्रथम पद क्रमशः इनके सार हैं।

सूत्र - 212 (63) - सं. रहस्यैकाक्षरस्तस्मिन्नेक-प्रकृतिवर्तमानयोरनयोः सूरीणामधिपतिर्दासो मनोऽसत्यमज्ञानं जनित्वा दत्तवान् विज्ञापनमाश्रित्य

वर्द्धस्वेत्युक्तपञ्चकेनाऽविद्यादिस्वरूपस्वभावा आत्मेश्वरबंधरक्षणक्रमगुण-विग्रहविभूति-तदीयाभिमानोपदेश-विषयान्यापदेश-हेत्वादयः संगृहीताः।

सूत्रानुवाद - मूलमन्त्र का एक शब्द में सार (ऊँ) का **अकार** ही आधार है। पाँच के साथ (नित्यसूरियों के नाथ, बन्धुआ सेवक, मेरा हृदय, अविद्या, सब शंकायें), जन्मे और अनुदान, कृपया सुनें, चरण सेवा, स्वभाव तथा अज्ञान का अन्तःकरण पर निरन्तर प्रभाव, आत्मा एवं प्रभु का सम्बन्ध, क्रमबद्ध रक्षा, पुण्य स्वरूप एवं विराट स्वरूप, भगवद्भक्तों का सम्मान, उपदेश के विषय एवं वस्तुओं का स्पष्टीकरण, भक्ति देनेवाले एवं अन्य विषयों का सम्यक सार।

विशेषार्थ - पेरिय तिरु. 6.1.5- आप ही शब्द (सूक्ष्म) एवं रूप (स्थूल) के प्रारम्भ हैं। कहा है - **ओमित्येकाक्षरम् - ऊँ (प्रणव)** मूल मन्त्र का सार है। **तस्य प्रकृतिलीनस्य** - तात्पर्य है कि **अकार** इसका (प्रणव का) आधार (सार) है। इसी तरह **तिरुविरुत्तम** तथा **तिरुवायमोळी** प्रबन्ध के प्रथम पद ही इनके आधार (सार) हैं। **तिरुविरुत्तम 1-** नित्यसूरियों के नाथ! सम्पूर्ण जीवात्माओं की रक्षा के लिए आपने कई गर्भ से अवतार लिया। हम पुनः अनर्गल ज्ञान की निम्नस्थिति, दुष्टतापूर्ण कार्य, गंदगी से भरे शरीर को नहीं प्राप्त हों इसकी कृपा करके स्वीकृति दीजिये। हमारा यह विनम्रतापूर्ण समर्पण है, कृपा कर मेरा निवेदन सुनें। **तिरुवाय. 1.1.1-** उठो! हे हृदय! आपके चरणों की पूजा करो जो उच्चतम से उच्चतर हैं। सर्वदा जाग्रत नित्यसूरियों के नाथ हैं। सभी शंकाओं का निवारण कर शुद्ध ज्ञान देते

हैं। प्रभु नित्यसूरियों के **शेषी** हैं और जगत् मूल प्रकृति के वस्तुओं के एकमात्र नियन्ता हैं। विनीत सेवक (तिरुविरुत्तम 1), और हे! हृदय (तिरुवाय. 1.1.1), प्रभु के **सेवक** तथा निर्मल **अन्तःकरण** आत्मा के मूल स्वभाव को दर्शाते हैं। अनर्गल ज्ञान अविद्या की निम्न स्थिति न प्राप्त करें (तिरुविरुत्तम 1), और सब शंकाओं का निवारण कर शुद्ध ज्ञान देते हैं (तिरुवाय.1.1.1)। "अविद्या" तथा "शंका" **उपाय** के मूल विरोधी (विघ्न बाधायें) हैं। सब जीवों की रक्षा के लिए आप कई अवतार में जन्मे (तिरुविरु.1), शंकाओं का निवारण कर शुद्ध ज्ञान का अनुदान देते हैं (तिरुवाय. 1.1.1)। इससे प्रभु के अनुग्रह स्वरूप **उपाय** का बोध होता है। हमारा विनम्र निवेदन सुनें (तिरुविरु. 1), उच्चतम से उच्चतर की चरण-पूजा करें (तिरुवाय.1.1.1)। इनसे भगवान् के चरणों के **कैंकर्य** लाभ का उच्चतम **पुरुषार्थ** अर्थात् **उपाय** से प्राप्त फल का बोध होता है। स्पष्ट है कि तिरुविरु. तथा तिरुवाय. से अर्थपञ्चक के पाँच तत्त्वों के सार का ज्ञान होता है जो लीलाविभूति तथा नित्यविभूति के परमोत्तम जीवन का आधार प्रदान करता है।

तिरुविरु.1 कहता है कि जन्म-जन्मान्तर से अविद्या का **प्रभाव** गंदगी भरे शरीर का **कारण** बनता है। इस तरह से **प्रभाव** एवं **कारण** की श्रृँखला जन्म-जन्मान्तर से निरन्तर चलती रहती है। **तिरुवाय. 1.1.1** से स्पष्ट होता है कि **अविद्या** का नाश सार्वभौम प्रभु की पूजा से प्राप्त **शुद्ध निर्मल ज्ञान** से होता है।

नित्यसूरियों के नाथ, विनम्रतापूर्ण (तिरुविरु.1), तथा आपके चरणों की पूजा करो (तिरुवाय.1.1.1), से जीव एवं भगवान् के आपस के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। तिरुविरु.1 में कहा है कि जीवात्माओं की रक्षा के लिए आपने कई गर्भ से अवतार लिया। तिरुवाय. 1.1.1 में उल्लेख है कि सभी शंकाओं का निवारण कर शुद्ध (भक्ति का) ज्ञान देते हैं। दोनों में समस्त चराचर की रक्षा के लिए भगवान् की तत्परता का भाव है। जैसे वे शुद्ध भक्ति का ज्ञान देकर पुनर्जन्म की यातना से रक्षा करते हैं, उसीतरह वे अपने विभिन्न अवतारों से सबकी रक्षा करते हैं।

तिरुवाय. 1.1.1 से उच्चतम से उच्चतर, तथा जिनकी चरणपूजा से शंकाओं का निवारण होता है, ये सब उनके दिव्यगुण हैं। नित्यसूरियों के नाथ, एवं सदा जाग्रत नित्यसूरियों के नाथ, से उनके विराट स्वरुप का आभास होता है। तदीयाभिमान अर्थात् शेषी सेवकों को वे अपना गौरव मानते हैं। तदीय का अर्थ है जो भगवान का है। भक्त अपने को तदीय अर्थात् आपका हूँ कहता है, तब भगवान् उसे मदीय अर्थात् तुम मेरे हो कहते हैं। स्पष्ट है कि वे भक्तों को सम्मान देते हैं।

तिरुविरुत्तम तथा तिरुवायमोळी दोनों नम्माळवार के प्रबन्ध हैं। तिरुविरु. 1 में आळवार भगवान् को अपना आवेदन सुनने को कहते हैं। भाव है कि भगवान् को वे उपदेश दे रहे हैं। तिरुवाय.1.1.1 में आळवार जीवों को हृदय से भगवद्-श्रीपाद की पूजा करने को कहते हैं अर्थात् भक्त को उपदेश दे

रहे हैं। दोनों का तात्पर्य है कि आळवार भगवान् तथा भक्त दोनों को उपदेश करते हैं।

चूर्णिका 213 -

तिरुवायमोळी भगवान् की प्रशस्ति, पूजा तथा सत्य-ज्ञान-प्रदाता है।

सूत्र - 213 (64) - सं. चरणाश्रित्य वर्द्धस्व इत्यस्मिन् वस्तुनिर्देशनमस्कार आशिषश्च वर्त्तते।

सूत्रानुवाद - 'चरण' से भविष्योक्ति, 'पूजा' से नमस्कार, 'उठो' से प्रशंसा।

विशेषार्थ- तिरुवाय.1.1.1 - श्रीचरण की पूजा करो, शंकाओं का निवारण करेंगे। पहले 'पूजा' करना कहते हैं, तब इससे प्राप्त होने वाली वस्तु 'शंका निवारण' कहते हैं। चरण-पूजा में नमस्कार का भाव है। 'उठो! हे हृदय!'

पूर्व-विचारित न होकर आळवार की सद्यःप्रसूत वाणी है। जैसे बाढ़ का पानी बान्ध तोड़कर बहता है उसीतरह भक्ति से ओत-प्रोत वाणी इनके मुँह से स्वमेव प्रवाहित होने लगी। तिरुवायमोळी को निर्विघ्न पूरा होने के लिए यह मंगलाचरण है। 'वस्तु पूर्वनिर्देश', 'पूजा नमस्कार', 'प्रशंसा' इस प्रबन्ध की दिव्यता को उद्भासित करते हैं।

चूर्णिका 214 -

तिरुवायमोळी की संरचना दस-दशकों के दस रूप में है जो भगवान् के दसावतार की तरह है।

सूत्र - 214 (65) - सं. साधुजनशत्रवः अज्ञाननिवृत्तिमालिन्यं छिन्द्यात् वैशद्योत्पादनार्थं भक्ताः भवेयुः दास्यमर्त्यतमुपयुक्तव्याधिं निवर्त्तयेत् भग्नं कृत्वाऽऽरोहणदुर्लभमाकाशस्य चरणाधः पादाधः आनन्दगतो दद्यात् अंतः प्रविश्य त्रिलोकं द्रवीभवेयुरिति गाथोक्तसाम्येन वाच्यस्य दशविधावतारवद-वतारयुक्तसहस्रस्य दशशतकत्वेन वर्तमानस्याऽऽविर्भावः।

सूत्रानुवाद - साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों का नाश, दुष्ट के लिए संसार एवं साधु के लिए परमपद, कुविचारों एवं शंकाओं का नाश करके भक्ति के ज्ञान से युक्त, किसी अन्य का सेवक नहीं, जन्म-मृत्यु के बन्धनरूप रोग तथा अनेक तरह की व्याधियों से छुटकारा, परमपद ले जाकर अपने श्रीपाद की सेवा में लेना, तीनों लोकों के भक्तों एवं जीवों को आनन्दातिरेक से द्रवित रखना, दशावतार विषय पर चर्चा, दस के दस दशकों से सहस्रगीति का प्रकटन्।

विशेषार्थ- तिरुवाय.3.5.5 - निर्दोषलोगों को बचाने हेतु नरदेह में मर्त्यलोक में पधारना। **गीता 4.8- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।** साधुओं की रक्षा, दुष्टों का विनाश एवं वैदिक धर्म को सुरक्षित रखने हेतु युग-युग में अवतार लेता हूँ। भगवान् तो अवतार लेते हैं और यह पावन प्रबन्ध तिरुवायमोळी समस्त मानव समाज को भगवान् के श्रीचरण सेवा में लगाने हेतु प्रकट होता है। **तिरुवाय. 10.7.5-** आसुरी प्रवृत्ति वालों का अन्त हुआ एवं दैवी प्रवृत्ति वाले प्रगति-पथ पर हैं। प्रबन्ध के रहते आसुरी विचारवाले संसारी बने हुए हैं एवं दैवी

जन परमपदमार्गी हो गये। **1.1.1-** शंका निवारण कर शुद्ध (भक्ति का) ज्ञान देते हैं। **5.2.11-** सहस्रगीति के पद भक्तों के हृदय को धोकर निर्मल करते हैं। **2.10.11-** सहस्रगीति का यह दशक शुद्ध हृदय से निकला है। **6.4.11-** जो इसे गाकर नाचेंगे वे निर्मल भक्त हो जायेंगे। **4.9.6-** आपने मुझे स्वीकार कर अपनी सेवा में लगा लिया। भाव है- ज्ञानयुक्त भक्ति देकर प्रभुने अन्य देवों से मेरे मन को हटा दिया। **6.9.11-** धरा को निगलने वाले प्रभु इसके गान से अपना चरण प्रदान करते हैं। **9.3.3-** विचारवानों! प्रभु की पूजा से सभी यातनाओं का नाश होता है। **1.7.11-** यह दशक गानेवालों के रोग एवं यातना का नाश करते हैं। जैसे भगवान् यातनाओं का नाश करते हैं उसीतरह यह प्रबन्ध भी प्रभावी है। **7.6.10-** करुणा से कंस का अन्त एवं पाण्डवों से मित्रता करने वाले प्रभु हमें वैकुण्ठ का अमूल्य आरोहण प्रदान करेंगे। भगवान् परमपद देते हैं और यह प्रबन्ध भी परमपद देता है। **8.4.11-** धरा निगलनेवाले, दूध-मधु-शक्कर जैसे मधुर कमलनाभ प्रभु की प्रशस्ति के सहस्रगीति के इस दशक के पाठ करनेवाले को संसार के नाटक का अन्त होकर वैकुण्ठ मिलता है।

तिरुवाय.7.5.10- माया जनित कष्ट, जन्म-रोग-बुढ़ापा-मृत्यु से जड़ से छुटकारा दिलाकर हम अपने चरणारविन्द में शरण देते हैं। **8.8.11-** हजारगीतों का यह दशक श्याम मणि-वर्ण के प्रभु के चरणारविन्द को प्राप्त कराता है। प्रभु जैसा प्रबन्ध भी प्रभावी है। **7.5.11-** सरस हजारपद का यह दशक कृष्ण भगवान् की प्रशस्ति है जो खड़े होकर अपने पदों की

पूजा करनेवाले को आनन्द प्रदान करते हैं। **7.9.11-** यह जानते हुए कि लोक-परलोक में लक्ष्मीपति के अतिरिक्त कोई लक्ष्य नहीं है, जैसे भी इस दशक का पाठ करता है आनन्द का भागी बनता है। **5.10.10-** अमृत मंथन में भगवान् के पराक्रम की गाथा हमारे हृद्य में प्रवेश कर हमारी आत्मा को पिघलाते हैं। **9.5.11-** इस दशक का गान सबके हृदय को द्रवित करता है। **6.8.11-** यह दशक हृदय को जल में बालू की तरह बहाता है। उपर्युक्त सन्दर्भों से स्पष्ट होता है कि तिरुवायमोळी और भगवान् में कितनी सदृशता है। भक्तिसार स्वामी **तिरुच्चन्दविरुत्तम् 79-** आपके दस अवतार हमलोगों के प्रति आपका प्रेम प्रदर्शित करता है। जैसे भगवान् के दस अवतारों से जगत् की रक्षा हुई उसी तरह तिरुवायमोळी के दस दस-दशक मानव मात्रा की रक्षा करते हैं। **तिरुवाय. 6.8.11-** शठकोपन् को आत्मसाक्षात्कार से प्राप्त होनेवाले मधुसूदन के चरणारविन्द पर समर्पित ये अतिप्रिय शब्दों से विरचित हजार पदों के गीत। भाव है कि नम्माळवार का यह प्रबन्ध भगवान् से ही प्रेरित होकर प्रकट हुआ है।

चूर्णिका 215 -

तिरुवायमोळी नम्माळवार के हृदय से स्वतः प्रवाहित है और इसे आचार्य हृदय कहते हैं।

सूत्र - 215 (66) - सं. पंचकेन साकं नवभिः साकमेकदशकमित्युक्ता इव शतमेवोक्त दशशतकमेक सहस्रमिति वचनं च साभिप्रायम्।

सूत्रानुवाद - पाँच पदों के पाँच दशक, नौ जोड़ एक दस, एक दशक, यह शतक, इसे दस शतक और एक हजार कहते हैं।

विशेषार्थ- किसी एक दशक का पहला पद किसी विषय पर है और अन्य दूसरे विषय पर हैं- यह पाँच पदों के पाँच दशक का भाव है। **तिरुवाय. 10.2.11-** परमपद के अर्चिरादि मार्गी मुक्तजनों का पाँच सौ दिव्य अप्सरायें अलंकार करेंगी। किसी दशक का पहला नौ पद एक विषय पर और एक पद अन्य विषय पर - यह नौ जोड़ एक का तात्पर्य है। **9.5.11-** नौ जोड़ एक पद का यह दशक सुनने वाले के कठोर हृदय को द्रवित करता है। प्रथम नौ पद में नायकी अपने मनोभाव के संघर्ष को अभिव्यक्त करती है और एक पद अर्थात् दसवें में शरीर पात हो जाने की सम्भावना को अभिव्यक्त करती है। **3.4.11-** मधुर हजार पदों वाली रचना का यह दशक। दसों पद के एक ही विषयवस्तु हैं। **9.4.11-** हजार पदों की रचना के शतक का यह दशक। तात्पर्य है कि इस पूरे शतक में आळवार एक ही भाव में रहते हैं। प्रत्येक शतक में आळवार इसी तरह एक-एक भाव में दिखते हैं। **6.7.11-** दस शतक के हजार पद। अर्थात् एक-एक दशक से पूरे शतक चलते हैं। **6.9.11-** हजार पदों का आत्मसाक्षात्कार हुआ। **7.6.11-** अति मधुर हजार पदों का यह दशक। **10.10.11-** पूज्य हजार पदों का दशक। **सूत्र 188 द्रष्टव्य-** पर भक्ति, पर ज्ञान एवं परम भक्ति।

चूर्णिका 216 -

तिरुवायमोळी में एक पद एक दशक के लिए, एक दशक एक शतक के लिए। समस्त प्रबन्ध व्यवस्थित रूप से संकलित है।

सूत्र - 216 (67) - सं. गाथायाः क्रियावत् दशकस्य तात्पर्यवत् शतकस्यो-पदेशकम्।

सूत्रानुवाद - दस के लिए एक, प्रत्येक शतक के लिए दस भाव।

विशेषार्थ- वाक्य में विषय (कर्ता/संज्ञा) की मुख्य विधेयक क्रिया के साथ परिमित क्रिया भी रहती है। परिमित क्रिया काल और वचन पर आधारित रहती है। इसी तरह से तिरुवायमोळी के हर पद में भगवान् के परत्व को एक विशेष शब्द से सम्बोधित किया जाता है। हर दशक में एक पद उसके मुख्य भाव को बताता है। अतः हर सौ पद (दस दशक) में दस पद उस शतक के भाव का बोध कराते हैं। **तिरुवाय. 1.6.4-** प्रभु की पूजा एवं सेवा में मेरा शरीर नाचने लगता है। उनके दिव्यगुणों को नित्यसूरिगण लालायित होकर व्याख्यान करते रहते हैं। परमपद में स्थित होने के कारण ये लोग आळवार की पहुँच से बाहर हैं। **2.3.10-** कब हम आपके भक्तों (नित्यसूरियों) की पंक्ति में बैठेंगे ? आळवार ऐसे भक्तों को न पाकर लौकिक प्रपंच में लगे लोगों को उपदेश के द्वारा उनके दुर्गोणों का नाश करते हैं। हर शतक के दस पदों से आळवार के उपदेश की उपयोगिता प्रमाणित होती है जो समस्त मानव समुदाय के लिए कल्याणकारक है।

चूर्णिका 217 -

तिरुवायमोळी के उद्देश्य एवं प्रयोजन का क्षेत्र।

सूत्र - 217 (68) - सं. भगवद्भक्तपराः आश्रयणविधिशेषाः।

सूत्रानुवाद - तिरुवायमोळी के भगवद्भक्तों से सम्बन्धित पद भक्तों के आश्रयरूप लक्ष्य को बताते हैं।

विशेषार्थ- तिरुवाय. 3.7.1- कमलनयन भगवान् का तेजोमय स्वरूप। भगवान् को प्राप्त करने के साधन को एक दृष्टान्त से बताया गया है। स्वर्ग चाहनेवाले ज्योतिष्टोम यज्ञ करते हैं। **आपस्तम्ब 8.2- ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्।** यज्ञ की विधियों को **प्रयाज** कहते हैं। प्रयाज की विधियों से ज्योतिष्टोम करते हैं। यज्ञ का फल प्रयाज के सहारे प्राप्त होते हैं।

भगवान् के चरण का आश्रय प्राप्त करने हेतु - **तिरुवाय. 4.1.1-** श्रीमन्नारायण के चरणारविन्द का ध्यान कर शीघ्र जागो। **2.8.4-** अक्षय श्रेय प्राप्त करने हेतु प्रभु की गौरव गाथा गाना सीखो। तात्पर्य है कि आश्रय स्वरूप भगवान् के श्रीचरण प्राप्त करने हेतु उनका यशोगान ही साधन है। भगवत्-चरण लक्ष्य है एवं यशोगान का **कैंकर्य** साधन है।

चूर्णिका 218 -

तिरुवायमोळी के दस शतक में भगवान् के विशिष्ट दस दिव्यगुणों का वर्णन है जिसका गान लक्ष्य को प्राप्त कराता है।

सूत्र - 218 (69) - सं. परत्व-कारणत्व-व्यापकत्व-नियंतृत्व-कारुणीकत्व-शरण्यत्व-शक्तत्व-सत्यकामत्व-आपत्सखत्व-आर्तिहरत्व-विशिष्टेअज्ञानछेदि-

तवतित्ववेदने विस्मृतिं निवर्त्य ज्ञप्तिफलमुक्तिर्यथा स्वाधीनं भवेत्तथा निष्कर्ष कृत्वा मोक्षफलवृत्तिकरणार्थमर्थित्वा पुरुषार्थफलान्यरुचिं निवर्त्य विरक्तिफलरागोऽत्यन्तं वृद्धिं प्राप्य प्रेमफलोपाये प्रविश्य साधनफलोपकारस्य प्रत्युपकारं विना कृतज्ञताफलप्रतिकृतं ज्ञात्वाऽऽत्मदर्शनफलप्राप्तिं मरणावधित्वेन लब्ध्वा कालाशक्तिफलगतेः सहायसंपादनस्वप्राप्तिमन्ये यथा जानीयुस्तथा प्रतिशतकं प्रकाशयंति।

सूत्रानुवाद - दसमुख्य दिव्यगुणों से श्रीमन्नारायण की विशिष्टता- **परत्व-कारणत्व-व्यापकत्व-नियंतृत्व-कारुणीकत्व-शरण्यत्व-शक्तत्व-सत्यकामत्व-आपत्सखत्व-आर्तिहरत्व;** सहस्रगीति के दस दस-दशक से आळवार ने सबके कल्याण हेतु भगवान् से प्राप्त आशीष स्वरूप को प्रकाशित किया; फलस्वरूप प्राप्त लाभ- 1. भगवान् सम्बन्धि अज्ञान का समूल नाश, 2. मोक्ष की प्राप्ति, 3. मोक्ष से कैंकर्य लाभ, 4. अन्य कामनाओं का त्याग, 5. परिणाम स्वरूप अनन्य भक्ति का विकास, 6. भक्ति के फलरूप उपाय का लाभ, 7. जीवात्मा को भगवान् का धन समझना, 8. भगवान् के चरणकमल की प्राप्ति, 9. आत्मस्वरूप का ज्ञान, 10. अर्चिरादि मार्ग से परमपद गमन और भगवद् सान्निध्य की प्राप्ति।

विशेषार्थ- दस शतक में भगवान् के दस विशिष्ट दिव्यगुण अन्तर्निहित हैं। **परत्व** - सबों से श्रेष्ठ। **कारणत्व** - सबके आदिकारण, कारणों के कारण जिससे समस्त चर-अचर तथा मूल प्रकृति प्रकट हुई। **व्यापकत्व** - आदिकारण, सीमातीत, सर्वत्र सभी वस्तु एवं प्राणी में वर्तमान, कार्य एवं

कारण से परे। आकाश की तरह सभी जगह मात्र फैले हुए न होकर **नियंतृत्व से** अन्तरात्म की तरह स्थित होकर सबकुछ व्यवस्थित तथा नियमित रखना। **कारुणीकत्व-** सभी चर-अचर को अपने परात्परत्व का भय नहीं देखते हुए भी सबों पर अतिशय दया रखना। **शरण्यत्व-** सबों को निरपेक्ष भाव से आश्रय देना। **शक्तत्व-** सबके आश्रय होकर अपनी कृपाविशिष्टि से उनकी अनिष्ट- निवृत्ति तथा इष्ट-पूर्ति करना। सर्वशक्तिमान होकर लौकिक जगत के सभी विलक्षण कार्य करते रहते हैं। **सत्यकामत्व-** अप्रमेय शक्ति एवं बल से संपन्न प्रभु दिव्यमहिषी, नित्यसूरिगण तथा दिव्यपार्षदों से सम्मानित हैं। समस्त कामना एवं इच्छा से सर्वदा परिपूर्ण हैं। **आपत्सखत्व-** युग-युगान्तर के प्रलयादि काल में लीलाविभूति को उदरस्थ कर मित्रवत् संरक्षण देते हैं। **आर्तिहरत्व -** आश्रितों को जन्म-मृत्यु की व्याधि से छुटकारा देना तथा तीनों भवताप का निवारण करना।

पहले शतक में आळवार भगवान् के परस्वरूप ज्ञान की प्राप्ति को बताते हैं। **तिरुवाय.1.10.10-** भगवान् को भूलना या याद रखना मेरे वश में नहीं। कहीं यह भक्त हमें भूल न जाय, ऐसा सोंचकर वे अपने नयनारविन्द के सौंदर्य की झाँकी के साथ हमारे हृदय में प्रवेश कर गये। ऐसे मणिसदृश को मैं अब कैसे भूल सकूँगा? भगवान् परात्पर होते हुए भी भक्तों को अत्यन्त सुलभ होते हैं। **तत्त्ववेदम्** - सच्चे ज्ञान का लाभ।

आत्म स्वरूप के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति की विषय-वस्तु **दूसरे शतक** में वर्णित है। **तिरुवाय.2.9.1 -** मैं तो परम विलक्षण मोक्ष भी नहीं माँगता। मोक्ष भक्ति के ज्ञान से मिलता है। **तीसरे शतक** में मोक्ष के बाद कैंकर्य-सेवा लाभ का उल्लेख है। **तिरुवाय. 3.3.1-** सब समय तथा सभी अवस्थाओं में सेवा का अवसर मिले। मोक्ष का फल सेवा-कैंकर्य है। **चौथे शतक** में भगवान् के अतिरिक्त अन्य लौकिक चाह के नाश का प्रसंग है। **तिरुवाय.4.9.10-** परमपद में लक्ष्मीजी के साथ आपके दर्शन करके मैंने सुनना, देखना, छूना, सूँघना और चाटना इन्द्रिय जनित सुख को भूल गया। भगवान् के अतिरिक्त अन्य कामना नहीं रही। **पाँचवें शतक** में लौकिक विरक्ति के कारण भगवद्भक्ति की आसक्ति का वर्णन है। **तिरुवाय.5.5.10-** इस किशोरी का भगवान् से प्रेम लगातार बढ़ता ही जा रहा है। **छठे शतक में** भक्ति से उत्पन्न भगवान् को एकमात्र उपाय समझने का प्रसंग है। **तिरुवाय.6.10.10-** भगवान् वक्षस्थल पर अलग न होनेवाली लक्ष्मी को धारण करते हैं। आपके चरण पर गिरकर मैं आश्रय पा गया हूँ। **सातवें शतक** में **प्रपत्ति** के अनुगामी फल का उल्लेख है। **तिरुवाय.7.9.10-** मेरी जिह्वा को आपने यशोगान की शक्ति दी। इसके लिए आपको मैं क्या पारितोषिक दे सकता हूँ? भगवान् से शरणागतिरूप उपाय मिलने पर आळवार ने अपनी आत्मा को भगवान् को समर्पित करना चाहा। परन्तु इनको ऐसा भान हुआ कि मेरी आत्मा तो भगवान् की ही संपत्ति है। भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता दिखाना अर्थात् उन्हें कुछ

पारितोषिक देना आळवार के मोह के कारण हुआ। इसे भी आळवार को भगवान् से प्राप्त उपकार का फल माना जाता है।

आँठवें शतक में साधन प्रपत्ति के फल का वर्णन है। उपकार के लिए कृतज्ञता प्रकट करना जीव का सहज स्वभाव है। **तिरुवाय.8.1.10 -** इस क्षुद्र को आपके चरण के उपहार के बदले आपको हम अपना जीवन समर्पित करते हैं। **तिरुवाय. 8.8.4-** प्रभु मुझे अपना परम भोग्य मानते हैं। प्रति-कृतमानम् अर्थात् कृतज्ञता का उपहार देने के फलस्वरुप आपने आत्मस्वरूप का बोध कराया। **नौंवे शतक** में आळवार भगवान् से मिले फल का वर्णन करते हैं। शरीर का अन्त होने पर वे कैंकर्य का अवसर देने का आश्वासन देते हैं। **तिरुवाय. 9.10.5-** प्रभु को जो खोजते हैं उन्हें मृत्यु पश्चात् परमपद में आश्रय देते हैं। **दसवें शतक** में वर्णन है कि अर्चिरादिगति मार्ग से जीवात्मा को परमपद पहुँचने पर उसे भगवान् का सान्निद्ध्य प्राप्त होता है। **तिरुवाय.10.1.1- तालतामरै** अर्थात् कमल की बहुतायत वाले तालावों के मध्यस्थित तिरुमोगूर के प्रभु, तथा **10.1.6 -** तिरुमोगूर के घट-नर्तक गोपाल प्रभु के पादारविन्दों के विना कोई आश्रय नहीं है।

आळवार की हार्दिक इच्छा है कि उन्हीं की तरह अन्यजन भी प्रभु के चरणाश्रित हों। चरणकमल **उपाय** है एवं प्रभु **उपेय** हैं। लक्ष्यसाधन के लिए साधन के रूप में यह तिरुवायमोळी सर्वसुलभ है।

****** आचार्य ह्रदय का तीसरा प्रकरण पूरा हुआ ******

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद्वरवरमुनये नमः

चौथा प्रकरण

चौथे (अंतिम) प्रकरण में 219 से 234 तक कुल 16 सूत्र हैं।

चूर्णिका 219 -

भगवान् के परत्व दिव्यगुण का सहस्रगीति के पहले शतक में वर्णन है। आळवार कहीं भगवान् को भूल न जायें इसलिए करुणावश अपने आदिकारणत्व का स्मरण कराते हुए वे आळवार के हृदय में विराजते रहते हैं और उनको निर्मल भक्ति का ज्ञान देते हैं। लौकिक राग में लीन लोगों को अपने जैसा प्रभु की परमभक्ति में लगाने हेतु आळवार भगवत् दिव्यगुणों की गाथा गाते रहते हैं।

सूत्र - 219 (1) - सं. परपरो भूत्वा स्थितो माहात्म्यविशिष्टसप्तनिधिर्भवति तदन्त ऊर्ध्वदेशवासि दिविषदधिपतिरज्ञाननिवृत्तिप्रतिष्ठायमनो यथा स्थापयेत्तथा शोधित्वा विस्मरेदिति स्नेहं कृत्वा विच्छेदमन्तरास्थिरत्वेन स्थित्वात् विस्मरणशून्यो नाशितवान् किमुक्त्वा विस्मरिष्यामीति यथोच्येत तथा तत्त्वज्ञभूतः तेजस्चरणास्मत्स्वामिनमजहत् अद्राक्षीस्त्वं चाहञ्चेत्युच्यमानसहृदयानुभवः संसारिणामपि यथा भवेत्तथा त्यजतेति त्याज्योपादेयदोषगुणपरित्यागसमर्पणक्रमं सालम्बनमन्त्रं यथा भवति तथोपदिश्य सुलभत्वेनावतीर्यापराधान् सोढ्वा भेदरहितं संश्लिष्याल्पसंतुष्टो भूत्वाऽमृतमेवौषधं

कृत्वा जलसदृशं यथाभवति तथा स्वं नियम्य भोगं सह्यं कृत्वा भक्तिगण-नयोः सममागच्छतः सेवायाः सौलभ्यं भोग्यता चास्ति सेवते चेद् दुर्लभफला-न्यपि दद्यात् उपक्रमे पापान्यपि विनयश्येयुः तेनोक्तमार्गे स्थित्वा द्वयोः परत्वबुद्धिसंशयरूपमालिन्यं यथा निवर्तत तथा ज्ञानं गृहीत्वा भक्तिः कर्तव्येति स्वयमज्ञानं यथा निवर्ते तथा ज्ञानभक्ती भजने प्रवेशयन्ति प्रथम शतके।

सूत्रानुवाद - पाँच भूतों से बने स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रभु ही हैं। आप सात लोकों के नाथ, अनन्तगुण वाले तथा देवाधिदेव हैं। आळवार के हृदय में प्रभु प्रवेश कर सब शंकाओं का निवारण करते हैं। आळवार कहीं उन्हें भूल न जायें इसलिए उनके मन में सदा विराजते हैं। भक्तों से दिव्यगाथा गवाकर उनके अज्ञान का नाशकर **तत्त्वों** का समुचित ज्ञान देते हैं। अपने चरणाश्रित को दिव्यानन्द देकर **मूलमन्त्र** से जीवन निर्वाह का मार्ग बताते हैं। ग्राह्य-अग्राह्य का ज्ञान देकर अपने चरणों में समर्पण कराते हैं। विभिन्न अवतारों से अपने गुणों का विस्तृत प्रसार करते हैं। भक्तों के दोष की उपेक्षा करते हुए ऊँच-नीच का विचार छोड़ सबके साथ घुलमिल कर उनसे अर्पित जल आदि साधारण- सुगम वस्तुओं को स्वीकार करते हैं। अमृतवत् औषध हैं। भक्तों की मनोदशा के अनुसार उन्हें अपने दिव्यगुणों के रहस्यपूर्ण आनन्द का अनुभव कराते हैं। **तत्त्वों** के परिगणन करते भक्तों की प्रेम से की गयी साधारण पूजा से प्रसन्न उचित **उपाय** का ज्ञान देकर उनके **दोनों कर्मों** का नाश करके उन्हें उच्चतम फल प्राप्त

कराते हैं। अपने दिव्यगुणों के आनन्द में अवगाहन करते भक्तों का अपनी कृपा से उनका मंगल करते हैं। पहले शतक में आळवार लौकिक जनों के अज्ञान जनित शंका का निवारण करके उन्हें श्रीमन्नारायण की दिव्यगाथा का निर्मल ज्ञान देते हैं।

विशेषार्थ - 1. **प्रभु के परत्व गुण** - **तिरुवाय. 1.1.8-** आप प्रथम कारण तथा सर्वशक्तिमान हैं, सब को आपने निगल लिया। **1.1.11-** प्रभु आग में गर्मी, मिट्टी में गन्ध-वजन-सहिष्णुता, जल में शीतलता, आकाश में शब्द, वायु में शक्ति हैं। **1.5.1-** सातों लोक, देवों एवं नित्यसूरि के आदि कारण। **1.7.2-** आप भक्तों के औषध एवं सम्पन्नता हैं। **1.9.1-** सबके आदि कारण हैं। **1.10.9-** देवों एवं नित्यसूरि के आदि कारण। **1.1.1-** सदा जाग्रत देवों एवं नित्यसूरि के नाथ। भगवान् सृजन, पालन तथा संहार के कर्ता हैं, लीलाविभूति तथा नित्यविभूति के नाथ हैं, उपाय तथा उपेय हैं एवं आनन्द से चर- अचर के शरीर बनते हैं। आप ही शब्द एवं उसके अर्थ हैं, नित्यसूरियों के नियंत्रक तथा संचालक हैं। इसीलिए उच्चतम से उच्चतर हैं। ज्ञानपूर्ण, पूर्णकाम तथा नित्यसूरियों को शाश्वत आन्नददाता हैं। **तिरुवाय. 1.1.11-**सभी शंका का निवारण कर भक्ति का शुद्ध ज्ञान देते हैं। **1.7.4-** अज्ञान को भगाकर हमारे हृदय में प्रवेश कर गये हैं। शरीरात्मक बुद्धि को मिटाते हैं। **1.5.10-** हमारे **युगल कर्मों** (युगों के पाप तथा प्रभु के बारे में अनभिज्ञता) को भगाते हुए माया के बन्धन को काट दिया तथा हमारे हृदय को विश्वासपूर्वक अपने उपर दृढ़ कर दिया। प्रभु की परात्परता

का अनुभव करके आळवार अपने को अति हीन जीव समझ उनके चरणारविन्द से दूर भागने लगते हैं। ऐसा देखकर भगवान् करुणाग्रस्त हो उन्हें अपने दिव्यगुणों का आनन्द देते हुए उनके सांसारिक राग का नाश करके उन्हें अपने साथ कर लेते हैं। बंजर भूमि को जैसे उत्पादक बनाते हैं वैसे ही अपने दिव्यगुणों की झाँकी दिखाकर उनको अपने चरणों से जोड़ लेते हैं। **तिरुवाय. 1.10.10-** क्या स्मरण रखना है और क्या भूल जाना है हमें नहीं पता है। ऐसा न कि मैं आपको भूल न जाऊँ आप हमारे हृदय में सदा के लिए प्रवेश कर गये। **1.10.8-** रात-दिन आप हमारे साथ मित्रवत रहते हैं।

2. मानव को आलवार का उपदेश - आळवार का अपने चरणों में विश्वास दृढ़ करके भगवान् उनके हृदय में प्रवेश कर गये और उसमें भक्ति भरने लगे। **तिरुवाय. 1.3.10-** आपके चरणारविन्द ने धरा को नापा। **1.7.3-** अपने मृदुमय प्रभु का अमृत हमने जी भरकर पिया है। पुनर्जन्म से बान्धने वाला धागा अब टूट चुका है। **1.10.9-** ओह, किन कारणों से मैं आपको भूल सकता हूँ। स्पष्ट है कि आळवार को संसार के सारे तत्त्वों का ज्ञान तथा भगवान् के दिव्यगुणों के आनन्द का अनुभव होने लगा है। ऐसा देखकर वे दयावश लौकिकों को भी भगवान् के दिव्यगुणों का आनन्द लेने के लिए अभिप्रेरित करने लगे। इससे लौकिक जनों को भी आत्मस्वरुप के ज्ञान के साथ मोक्ष प्राप्त हो जायेगा।

तिरुवाय. 1.1.1- हे हृदय! प्रभु के चरणों की पूजा करो। **1.10.3-** हे हृदय! शान्त राजीवनयन प्रभु की पूजा करो। **1.10.4-** हे हृदय! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। इस संक्रमण काल में प्रभु को दृढ़ता से पकड़ लो। **1.10.5-** देखो ! हमारे कृत्य अब फल देने लगे हैं। **1.10.6-** देखो हृदय ! जब तू और हम उनके सामने इस तरह से खड़े होंगे तब भवरोग को कभी भी प्रवेश नहीं करने देंगे। तात्पर्य है कि आळवार प्रभु के चरणों के निरन्तर कैंकर्य से अपना उद्धार प्राप्त कर लिए। प्रामाणिक कथन है- **एकः स्वादु न भुञ्जीत्।** भाव है कि प्रभु के अलौकिक आनन्द का स्वाद अकेले न ले। उदार स्वभाव वाले आळवार लौकिकों की यातना से द्रवित होकर प्रभु के दिव्यगुणों की अनुभूति का ज्ञान सबों को बाँटना चाहते हैं।

मूल मन्त्र की महिमा - तिरुवाय. 1.2.1- क्षुद्र विषय-संग छोड़कर सर्वस्व भगवद-अर्पण कर दो। यह शरीर आकाश की क्षणमात्र चमकने वाली बिजली की तरह लुप्त होने वाला है। क्षणभंगुर को त्यागकर प्रभु के शाश्वत श्रीचरण को पकड़ो। मूल मन्त्र के अनुसंधान से ज्ञात होता है कि यह मन्त्र जीवात्मा में भक्ति को जगाकर परमात्मा को समर्पित करा देता है। **1.10.3-** हे हृदय**!** शांत राजीवनयन प्रभु की पूजा करो।

3. भक्ति मुक्ति का साधन - तिरुवाय. 1.3.2- स्थान एवं प्रसंग को भुलाकर आप अनेकों रूपों में प्रकट होते हैं। भगवान् राम एवं कृष्ण के रूप में प्रकट होकर आप संसार में भागवत धर्म की स्थापना करते हैं। प्रभु **सौलभ्य** गुण वाले हैं और भक्त अपने दोषों पर विचार कर जब अपने को

प्रभु के योग्य नहीं समझता है तब आप ही उसके पीछे दौड़ पड़ते हैं। **1.4.7-** उसने कौन सी गलती की है जो आप उस पर अपनी करुणा नहीं दिखाते हैं। प्रभु इतने **सहिष्णु** हैं कि वे अपने भक्त के दोष की उपेक्षा कर देते हैं। **1.5.3-** समस्त दिशाओं को अपने श्रीपादों से मापने वाले माता की भाँति वत्सल भगवान्। **1.6.1-** पूजा में फूल,जल एवं धूप अर्पित करो। जैसे जल से जल घुलमिल जाता है उसी तरह यह सबसे घुलमिलकर रहनेवाले प्रभु के **शील** गुण को उजागर करता है। **1.7.3-** अपने मृदुमय प्रभु का अमृत हमने जी भरकर पिया है। पुनर्जन्म से बान्धने वाला धागा अब टूट चुका है। भाव है कि प्रभु अमृत समान औषध हैं जो पुनर्जन्म के रोग को दूर करते हैं। **1.8.11-** सागर सा सलोने प्रभु की गाथा। भाव है कि प्रभु जल की तरह निर्मल, शीतल एवं स्वयं प्रवाहित होते रहते हैं। एक सूक्ष्म छिद्र से भी प्रवाहित हो जाना जल का गुण है। वैसे ही प्रभु भक्तों से द्रवित हो उनपर कृपा वृष्टि करते हैं। प्रभु सागर के जल के रंग को जैसे ग्रहण कर श्यामले दिखते हैं वैसे वे भक्तों की मनोदशा के अनुसार उनके अनुसरण करते हैं। यह प्रभु के **आर्जव** गुण को प्रकाशित करता है। **1.9.1-** हमारे हृदय में विराजमान हैं। तात्पर्य है कि सागर सा अतिविस्तृत प्रभु गाय के खुर के जल की भाँति छोटा होकर हमारे हृदय में बस गये। **1.9.10-** मेरी रक्षा करते प्रभु ललाट से उठकर सिरपर पर विराज गये। भक्तों के ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक में भगवान् के श्रीपाद कमल के आसन पर विराजते हैं। वही शठारी पर आरुढ़ हो हमारे सिर पर विराजते हैं। भक्तों को संतुष्ट करने हेतु प्रभु अपने दिव्यगुणों से परत्व के ज्ञान से

भक्तों को सम्पन्न करते हैं। **1.10.2-** जब भी हम प्रेम से प्रभु की पूजा करते हैं मेरी आँखों से प्रवेशकर हृदय में विराज जाते हैं। भाव है कि भक्तों की योग्यता के अनुसार वे अपना स्वरूप बना लेते हैं। उसके **परमभक्ति** की क्षमता के अनुरूप प्रभु अपने मुखमंडल की झाँकी उसे दिखाते हैं। **10.7.10-** लौकिक राग में उमड़ती पाँच इन्द्रियाँ आदि की परिगणना जीवात्मा समेत 25 तत्त्वों तक करते हैं और 26वाँ भगवान् स्वयं हैं। कोई भक्त भगवान् के नाम एवं दिव्यगुणों को न दुहरा कर अगर मात्र 26 बोलता है तो प्रभु समझते हैं कि मेरा स्मरण कर रहा है और वे उसे अपने श्रीपाद समेत मुखमंडल का दर्शन करा देते हैं।

तिरुवाय. 1.3.1- भक्तजन प्रेम से प्रभु को प्राप्त करते हैं। **1.6.6-** प्रभु अमृत से भी मधुर हैं। **1.6.8-** अपने को समर्पित कर दो। राह के रोड़े जो तुम्हारे कर्म हैं उनका क्षय हो जायेगा। तुम श्रीसम्पन्न हो जाओगे। **1.6.9-** युगल कर्मों का क्षय करके आप उच्चतम फल देते हैं। **1.3.8-** दिव्यचरणों की पूजा से पूर्व के कर्मों का नाश हो जायेगा। प्रभु के बताये **उपाय** का पालन करो। **1.3.5-** वेद की विधि का पालन करते हुए आत्मानुभव से प्रभु को प्राप्त करो। वेद में बताया है कि आप अन्तहीन हैं तथा सबके प्रारम्भ में हैं। भ्रम का त्याग करके अपने बन्धनों को काट दो। प्रभु ही छः दर्शन के सिद्धान्तों के द्वन्द को मिटाते हैं। वात्सल्य गुण से सम्पन्न प्रभु ने अपने छःगुणों ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, शक्ति, सौंदर्य एवं प्रेम से महाभारत के संग्राम में अर्जुन के भ्रम को दूर किया। **गीता 11.54- भक्त्या**

त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।। परन्तु शत्रुओं को परिताप देनेवाले अर्जुन! मैं जिस रूप में यहाँ तुम्हारे सामने खड़ा हूँ अनन्य भक्ति से इसी प्रकार मेरा साक्षात् दर्शन भी किया जा सकता है। केवल इसी विधि से तुम मेरे ज्ञान के रहस्य को पा सकते हो। **गीता 9.34- मन्मना भव मद्भक्तो मत-याजी मां नमस्कुरु। माम्-एव-एष्यसि युक्त्वा-एवम्-आत्मानां मत्परायणः।।** अपने मन को सदा मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे नमस्कार करो और मेरी ही पूजा करो। इस प्रकार मेरी भक्ति में अनुरक्त होने पर तुम निश्चित रूप से मुझको ही प्राप्त होगा। भगवान् के बताये **उपाय** से **उपेय** अर्थात् श्रीपाद के शाश्वत कैंकर्य को भक्त अवश्य प्राप्त करेगा।

तिरुवाय. 1.3.7- सब इच्छा को त्याग कर श्रीपाद की एक मात्र सेवा करो। **1.3.8-** पूर्व के कर्मों का नाश हो जायेगा एवं नई इच्छा नहीं उत्पन्न होगी। **1.3.5-** आत्मानुभव से प्रभु को प्राप्त करो। **1.3.7-** उनकी सेवा ही श्रेयस्कर है। आळवार एक मात्र भगवान् की भक्ति करने को बताते हैं। भगवान् ने (**तिरुवाय. 1.1.1** से) आळवार के सभी शंकाओं का निवारण कर निर्मल भक्ति का ज्ञान दिया। इस तरह से ज्ञान सम्पन्न आळवार समस्त मानव को श्रीमन्नारायण की गाथा का गान करने की प्रेरणा देते हैं। दयावश आळवार इनको तत्त्व (सिद्धान्त), हित (जानने के साधन) एवं पुरुषार्थ (प्राप्य) के साथ भक्ति का ज्ञान देते हैं। **1.1.1** में कहते हैं- उठो, उच्चतम से उच्चतर की पूजा करो।

चूर्णिका 220 -

भगवान् के **कारणत्व** दिव्यगुण का सहस्रगीति के दूसरे शतक में वर्णन के अतिरिक्त भगवान् के आळवार को उपदेश की दिव्यता एवं आळवार द्वारा मानव के भगवान् में भक्ति की अनुरक्ति के विकाश हेतु दिये गये उपदेश इस सूत्र में समाहित किये गये हैं।

सूत्र - 220 (2) - सं. अविकीर्णनाशरहितसहकारीकारणं बीजं च भूत्वा लोकं सृष्टवानित्युच्चमानचिदचित्त्रयत्रिविधकारणभूते अज्ञातान्ज्ञापयति मनोनिर्मलं भूत्वा परिशुद्धमन अज्ञानशुन्येति च ज्ञानफलभूतदीप्तिमन्मोक्ष-मन्विष्यग्लाने सति शुष्कता यथा न भवति तथात्मनि संश्लिष्य दृढ़ं प्रविश्य सम्बन्धिनोपि प्रवेशन्निवृत्ता इति यथोच्येत् तथा सुखमित्वोपकुर्वद्वाहुत-रणार्हदुःखरहितसर्वप्रकार-विलक्षणमोक्षमुभयानुगुणं कृतवान् आश्रयणीयस्य पूर्वोक्तपरत्वस्य स्थापकसकलप्रदत्वकारणत्वशेषशायित्वश्रियःपतित्वसौ-ल्भ्यादीन् दृढ़ं शयनमिति प्रकाश्यकपटतीर्थेति वचनप्रत्यक्षेपि दर्शयित्वा विषयान्पञ्चेति संसारमोक्षसाधनदुःखानन्दरसं प्रथमं यथा भवति तथा विधीयमानान्तर्गतगुणोपासनमादृत्य समवद्धावगाह्य निमज्य नैच्यं पलं कापट्यमपि कृत्वा बाल्यहानिर्यथा न भवेत्तथा कर्तव्यक्षेत्रवाससंकीर्तनांजलि प्रदक्षिणगतिचिन्तनाद्यंगयुक्तं कुर्वन्ति द्वितीयशतके।

सूत्रानुवाद - चित्-अचित् के तीनों प्रकार से युक्त विश्व को बनाने वाले सर्वमहान् आदिकारण प्रभु अतृप्त प्रेम से युक्त हैं। वे सब को उपदेश करते हैं परन्तु निर्मल चित्त आळवार प्रभु के तेजोमय रूप के दर्शन से मुक्ति

लाभ के विचार में मग्न हो समाधि में चले जाते हैं। भगवान् जीवात्मा को यातनामुक्त करना चाहते हैं। वे इनका नाश नहीं चाहते। कुटुम्ब एवं साथियों समेत नम्माळवार को अपने अनुग्रह से नरक की अन्तहीन यातना से बचाने हेतु वे उपाय ढूँढ़ते हैं। यातना एवं विनाश से रहित उच्चतम से उच्चतर **मोक्ष** हेतु वे मधुर **उपाय** का निर्देश करते हैं। पहले शतक में आळवार भगवान् के **परत्व गुण** की पुष्टि करते हैं। अतिसुलभ शेषशायी श्रीपति सबके कारण, सर्वफलदाता, सर्वव्याप्त, परमपद-दाता, 'धरा नापने वाले कपटी', 'शेषशय्या पर शयन करनेवाले' प्रभु की परात्परता को आळवार अपनी अनुभूति से बताते हैं। 'पाँच इन्द्रियों' के पद से **उपाय** का उल्लेख कर बताते हैं कि सांसारिक राग राह के रोड़े हैं और सब यातनाओं के कारण हैं, जबकि प्रभु के दिव्यगुणों में अवगाहन आनन्द देनेवाला है। इसके पहले कि युवावस्था निरर्थक न बीत जाये, प्रभु की पूजा करो; प्रिय गुणों को प्राप्त करने हेतु 'आदर', 'समृद्धि', 'डूबना', 'अवगाहन', 'दुष्कृत्य', 'व्यर्थ जीवन', 'धोखाधड़ी' तथा **उपाय** बताते हैं। दूसरे शतक के दसवें दशक (**2.10**) में दिव्यदेश यात्रा, प्रशस्ति, पूजा, सुकृत्य एवं भगवद्चिन्तन करने का निर्देश देते हैं।

विशेषार्थ - 1. प्रभु के कारणत्व दिव्यगुण - भगवान् सब कारण के कारण हैं। **तिरुवाय. 2.1.11-** परंज्योति महान् प्रभु, सबों के कारण। **2.8.5-** देवाधिदेव नित्यसूरियों के नाथ। **2.8.10-** सबके मूल एवं कारण। **2.10.11-** जगत् के परम स्वतन्त्र नियन्ता के बारे में शुद्ध ह्रदय आळवार के

परामर्श। तीन तरह के चिद् (चेतन) - नित्य मुक्त, मुक्त एवं बद्ध। तीन तरह के अचिद् (जड़ वस्तु)- प्राकृत, अप्राकृत एवं काल। तीन तरह के कारण - सहकारी, निमित्त एवं उपादान। चेतन एवं जड़ की **लीलाविभूति** में सबके आदिकारण भगवान् **सहकारी** तथा **निमित्त कारण** के रूप में स्थित हैं। इनकी **सूक्ष्मावस्था** में वे मूल कारण हैं। ज्ञानबलादि से वे सहकारी कारण बन जड़ वस्तुओं की सृष्टि तथा अपनी इच्छा मात्र से वे निमित्त कारण बनते हैं। **नित्यविभूति** में चेतन तथा जड़ की अप्राकृतिक अवस्था के वे मूल कारण हैं।

2. अनुग्रह से नम्माळवार को भगवान् का उपदेश - आळवार को सबसे पहले शंकाविहीन करते हैं। **तिरुवाय. 2.3.2-** आप हमें वे सब पढ़ाते हैं जो हम नहीं जानते हैं। श्रीवैष्णव मतानुसार वे *तत्त्व, हित* तथा *पुरुषार्थ* का ज्ञान देते हैं। **2.6.8-** आपके चरणकमल प्राप्त कर मेरा हृदय आश्वस्त है तथा अन्तहीन आनन्दातिरेक में निमग्न है। **2.7.8-** आपने हमारे हृदय को निर्मल किया। **2.10.11-** शुद्ध हृदय के शठकोपन के ये पद। मोक्ष की कामना से निर्मल हृदय एवं भगवान् के दिव्यगुणों की अनुभूति से अथक प्रयत्न करके आळवार ज्ञान एवं तेजोमय प्रभु को जान सके। **2.3.10-** आप आभापूर्ण ज्योतिपुंज हैं। धरा एवं गगन आपका है। तेजोमय शंख एवं चक्र धारण कर आप हमारी रक्षा करते हैं। लौकिक सुख तथा जन्म-मरण-जरा-व्याधि के दुःख से हम निवृत्त हो गये। कब हम आपके नित्यसूरि एवं मुक्त भक्तों की पङ्कति में बैठेंगे? लौकिक सुख जनित

गर्व-क्लेशादि छः विकारों से रहित वे परमपद के शुद्ध सात्विक नित्यसूरि के संघ में मिलने की इच्छा रखते हैं। **तिरुवाय. 2.4.1-** नायकी आँसू बहाते हुए अचेत हो जाती है। बढ़ने का कोई आधार न पाकर बीजांकुर जैसे नष्ट हो जाता है वैसे ही भगवद्कृपा के अभाव में परमपद में वे नित्यसूरि की संगति से अपने को विमुख मानकर अचेत हो जाते हैं। उनकी वेदना को परिवर्तित करते हुए भगवान् उन्हें मोक्ष-दान की स्वीकृति देते हैं। **तिरुवाय. 2.4.7-** इसका हृदय सूख गया है एवं आत्मा शुष्क हो गयी है। **2.5.1-** सुन्दर स्थान में आपने हमसे प्रेम कर हमारी आत्मा में घुल गये। विछुड़न के दुःख का अन्त करते हुए स्नेहवश भगवान् उन्हें मिलन का आनन्द देते हैं। **2.6.2-** क्षणभर में सबको निगल कर समस्त विश्व को अपने में समाहित करनेवाले प्रभु हमारे भीतर प्रवेश कर गये हैं। **2.6.7-** सात पीढ़ी पीछे के तथा सात आगे के हमारे सम्बन्धी नरक की यातना से बच गये हैं। **2.7.1-** केशव नाम लेने से हमसे सात पीढ़ी पीछे तथा सात आगे आपके भक्त हो गये हैं। क्या आश्चर्य तथा क्या उपलब्धि! आळवार को भगवान् श्रीवैष्णव के अपार धन से सम्पन्न करते हैं।

भगवान् साधन ढूँढ़ते हैं अर्थात दया के वशीभूत **उपाय** ढूँढ़ते आळवार तथा उनके सम्बन्धियों पर अतिशय कृपा वर्षाते हैं। **तिरुवाय. 2.8.2-** आपके साथ घुलमिल जाना जन्म एवं अन्य यातना से मुक्ति है। **2.9.11-** सहस्रगीति की गाथा गाने वाले को मुक्ति देती है। **2.9.1-** शीघ्रता से आप अपने अरुणाभ चरणकमल हमारे माथे पर रख दीजिए। भाव है कि यह

उच्चतम से भी उच्चतर उपलब्धि है। आळवार मोक्ष को प्रभु के स्वामित्व तथा जीवात्मा के दासत्व से जोड़ते हैं। माँगकर मोक्ष पाने से अहंकार उत्पन्न होने की आशंका से आळवार बचना चाहते हैं। अर्जित धन के सुख से आळवार दूर रहना चाहते हैं। भगवान् अकारण करुणावश स्वयमेव उन्हें मोक्ष देते हैं। आळवार **तिरुवाय. 2.9.1-** शीघ्रता से आप अपने अरुणाभ चरणकमल हमारे माथे पर रख दीजिए। श्यामले प्रभु के आकर्षक तेजोमय अरुणाभ चरण मधुर एवं सर्ववन्दित हैं। तात्पर्य है कि आळवार को भगवत् प्रदत्त मुक्ति उसी तरह से है जैसे बाल बक पक्षी के मुँह में उसकी माँ चारा खिलाती है। **तिरुवाय. 2.9.4-** हमारे हृदय में प्रभु यह कहते हुए स्थित हैं, 'सर्वदा हमारी सेवा करो'। भगवान् के उपदेश के फलस्वरूप आळवार प्रभु की सेवा (शेषत्व) को मोक्ष से श्रेष्ठ मानते हैं।

3. मानव को आळवार का उपदेश- तिरुवाय. 2.2.1- शाश्वत मोक्ष इत्यादि समस्त पुरुषार्थ के दाता। अर्थात् भक्तों को मोक्ष का अतिवांछित कैंकर्यादि सब फल प्रभु ही देते हैं। **2.2.5-** श्रीसम्पन्न प्रभु ने स्वेच्छा से उच्चस्थ देवों एवं जड़-चेतन की सृष्टि की। **2.2.9-** सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को अपने नाभिकमल से प्रकट किया। देवगण तथा सब लोकों को बनाया। भगवान् ही सबके कारण हैं और स्वयं सब कारणों से परे हैं। अतः मूल कारण (कारणत्व गुण) तथा सबसे (परत्व गुण) श्रेष्ठ हैं। **2.8.1-** सर्वव्याप्त प्रभु शेषशायी हैं। सौलभ्य गुण सम्पन्न प्रभु सब के कल्याण हेतु अवतार लेते रहते हैं। **2.2.4-** नाभिकमल से ब्रह्मा को बनाया जिसने देवों एवं सब

प्राणियों की सृष्टि की। **अघटितघटनासामर्थ्यम् - 2.2.6-** प्रलयकाल में सभी वस्तु, सभी प्राणी एवं सभी लोक को अपने मजवूत उदर में सरलता से रख कर आप बटपत्र पर सोते हैं।

पाँच दिव्य गुण - 1. **सर्वव्याप्त** - **2.8.1**- सर्वव्याप्त श्रीपति शेषशायी हैं। 2. **कारणत्व -** आपके अतिरिक्त कोई कर्ता नहीं है। 3. **सौलभ्य-** विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं। 2.2.1- हमारी आँखों की तरह प्रिय कृष्ण हैं। 4. **उपाय- 2.8.2-** मोक्ष के एकमात्र उपाय हैं। गजेन्द्र के उद्धार के उपाय बने। 5. **रक्षकत्व 2.8.5-** जगत् की प्रवाहपूर्ण सृष्टि कर्ता, पालक तथा रक्षक हैं। **2.2.6 -** प्रलय में सबको उदरस्थ कर जड़-चेतन सबकी रक्षा करते हैं।

कपटी चोर प्रभु - **2.2.10-** ब्रह्मा, शिव, इन्द्र इत्यादि गरुड़ध्वज के श्रीपाद में प्रणत हों स्तुति करते हैं- 'हे चोर! आप हमें तथा सातों लोक को अपने शरीर में से समुत्पन्न कराने वाले स्वामी हैं'। विभिन्न अवतारों में प्रभु आप से ही उत्पन्न देवों की सेवा करते एवं उनसे वरदान माँगते हैं। इस कपट नाटक को प्रकाशित कर देवगण उनको जोर कहकर स्तुति करते हैं। **2.8.6-** जब अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के चरणों पर फूल चढ़ाये तो उसे शिवजी को अपने शिर पर धारण किये देखा। कथा है कि युद्ध में अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की आवश्यकता हुई। कृष्ण भगवान् ने सरल उपाय बताते हुए अपने चरण की पुष्प से पूजा कराई और शिवजी पाशुपत अस्त्र लेकर जब प्रकट हुए तो अर्जुन ने वे सब पुष्प शिव जी के शिर पर देखा।

पार्थो विजेता मधुसूदनस्य पादारविन्दार्पित चित्रपुष्पम्। ददर्श गंगाधरमौलिमध्ये बभूव वीरः कृतनिश्चयार्थः।। जब विजेता अर्जुन ने विष्णु भगवान् के चरणपर पुष्प चढ़ाये तो उसे शिवजी के सिर के बाल पर देखकर स्वयं सब कुछ समझ गये। रामानुज स्वामी **गीता भाष्य - स तु पार्थो महामनाः।** समझदार अर्जुन भगवान् विष्णु के परत्व को समझ गये।

पाँच इन्द्रियजनित वासनात्मक सुख क्षणिक एवं त्याज्य है जो **उपाय-उपेय** प्राप्ति में विघ्नकारक है। **तिरुवाय. 2.8.4-** अगर पाँच इन्द्रियों के क्षेत्र से बाहर निकलकर अक्षय श्रेयस को प्राप्त करना है तब असुर-समूह के संहारक प्रभु का गाथागान सीखो। **परमपद** सीमातीत है **गीता 9.2- सुसुखं कर्तुमव्ययम्।** जो समस्त रहस्यों में सर्वाधिक गोपनीय, परम शुद्ध है और आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति करानेवाला है। धर्ममय, अविनाशी और सुखपूर्वक अनुष्ठान करने योग्य है। मोक्ष परम आनन्ददायक है, अतः इसे प्राप्त करानेवाला **उपाय** भी आनन्द देनेवाला है। सांसारिक कार्यों के विपरीत मोक्ष के **उपाय** का अनुसरण प्रारम्भ से अन्त तक आनन्द ही देता है। अवतार लेकर भगवान् राम ने विना परिश्रम के असुरों का नाश किया। इसी तरह प्रभु की गौरव-गाथा का ज्ञान विना परिश्रम का श्रद्धावान् भक्तों को असीम आनन्द देता है। **तैत्तिरीय उप. - तस्मिन् पदन्तस्तदुपासितव्यम्।** परमसत्य प्रभु की गौरव-गाथा ही उपाय है जिसको सर्वदा स्मरण करते रहना श्रेयस्कर है। प्रभु के दिव्यगुण दोषरहित हैं और उसमें गहरा अवगाहन **उपेय** है जो **उपाय** से प्राप्त फल है। कहा है- **पापत्वादिगुणोपासनम्।**

भगवद्-उपासना में शास्त्रों में वर्णित वर्जित कृत्यों का त्याग करना है। दिव्यदेश की यात्रा से त्याज्य कृत्य स्वतः छूट जाते हैं। आळवार ने 2.10 दशक में **दिव्यदेश वासम्** अर्थात् दिव्यदेश की यात्रा और वहाँ वास करना श्रेयस्कर कहा है। **2.10.1** इसके पहले कि युवावस्था का रंग फीका पड़े, तिरुमालिरुञ्जोलै (मदुरै से 19 कि.मी. पर अवस्थित तिरुमला के बाद दूसरा पर्वतीय दिव्यदेश जिसे आळगर कोईल कहते हैं) की यात्रा श्रेयस्कर है। **2.10.2 -** युवतियों के मधुर वचनों का तिरस्कार कर वहाँ जाकर पूजा करनी है। **2.10.5-** अपनी इच्छाशक्ति से यातना (पुनर्जन्म की) का अन्त कर देते हैं। **2.10.9-** दुष्टतापूर्ण कार्य में मत लिप्त हो। **2.10.6-** नीच काम में मत लगे रहो। **2.10.8-** यत्रतत्र के भ्रमण में अपना जीवन मत गँवाओ। भगवान् कृष्ण के निवास आळगर कोईल में वास कर वहाँ चतुर्दिक् शोभा को देखने में मन लगाओ। **2.10.10-** श्रेय पर मन लगाओ, आडम्बरपूर्ण धूर्तता को त्याग दो। कहा है- **बाल्ये एव च चरेत् धर्मम्।** युवाकाल में ही धर्म का आचरण करो। **विष्णु पु. 1.17.76- तस्मात् बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा।** विवेकी व्यक्ति को चाहिए कि बाल्यावस्था व युवास्था में ही अपने कल्याण का यत्न करे। **2.10.6**- मक्खन चुराने वाले प्रभु आळगर में हैं। उनकी पूजा के बारे में सोचना ही श्रेयस्कर है। भाव है कि आळवार मानव को भगवान् की पूजा से आध्यात्मिक विकास का उपदेश देते हैं।

चूर्णिका 221 -

भगवान् के **सर्वव्यापकत्वम्** दिव्यगुण का सहस्रगीति के तीसरे शतक में वर्णन है। **तैत्तिरीय उप. - तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।** सबकी सृष्टि करके श्रीमन्नारायण उनमें अन्तर्यामी की तरह प्रवेश कर विराज गये। इसके अतिरिक्त आळवार को भगवान् की आध्यात्मिक अनुभूति का लाभ, कैंकर्य पर मन को स्थिर करने तथा अर्चावतार की सुलभता (सौलभ्य) को इस सूत्र में समाहित किये गये हैं।

सूत्र - 221 (3) - सं. सर्वं व्याप्य सर्वत्र विच्छेदेन विनान्तर्यामीभूत्वा स्थित्वा सम्बन्धशून्यसर्वव्यापको निर्वृत्तदासान् पादयुग्माधः स्वीकर्तृस्वस्व-भावस्य च त्वद्दत्त महामायाबन्ध कर्मजन्मनी निमज्य व्याकुलो भवानि निर्मूलं छित्वा कस्मिन्काले कस्मिन्देशे आगत्य प्राप्नुयामीति विसृज्य प्रविश स्वानुरागस्यापि सदृशं दृष्टवा स्वीकुर्विति चोच्यमानापकर्षरहित मोक्षफलरहित किरीटतेजस्यनुभवेन नित्यवस्तुसतां प्राप्य परिच्छेदरहित दास्यं कर्तव्यं यथा भवति तथा सर्वात्मभावं स्तुत्वा उक्त्वा श्रुत्वा जल्पित्वो-त्थायापि उत्पत्त्यापि पुनः पुनरुत्थाय विनश्याधः शिरः प्रणामनर्तनं कृत्वा प्रणम्य नाट्यं कृत्वा हसेयुः यथा तथा द्रवीभूत्वा शैथिल्यकरमीतिरुत्कटा यथा भवति तथा सहभागतिरुपसाध्यं यथा वर्द्धेत् तथा विस्तृतफलसहित-सर्प इवेन्द्रिय व्यापारनियमं विना गानार्थमागतकविर्यथा न भवेत्तथा सृष्ट्वत् श्लोककृद्भूत्वालोपमतिहतिविषयान्तःसंगदुःखनिवृत्तिदुःखदेशविशेषाप्राप्ति-दुःख लीलाविभूत्यन्तर्भावदुःखन्यदुःखशैथिल्य हानिरहितममृतानन्दमग्नभूतः सः अरुणाक्षनेत्रः सः नित्यसूरिभिर्वाहक इति भयरहितं सौल्भ्यसजातीयो

भवेदित्युक्तानि परत्वं यथा भवेत्तथा भवेदित्युक्तसौलभ्यकाष्ठां दर्शयित्वा मार्गदातरि स्थिते सत्यपकर्षाययत्नः कीदृशो भवेत् अपेक्षितं सर्वददयात् स्व-समेव स्वीकुर्यात् स्तोत्रकरणायागच्छेति मुक्तैश्वर्यं पुरस्कृत्यस्ववृत्तिं निवर्त्य स्ववृत्तौ प्रवेशयति तृतीयशतके।

सूत्रानुवाद - सबों में पूर्णतया व्याप्त दोषरहित प्रभु समझ के परे हैं। समान मानकर वे एकमात्र आश्रय अपने श्रीपाद में उनको समर्पित कराते हैं। सबके साथ रहते हुए प्रभु ऐसा सोंचते हैं कि उनको शरीर दिया है परमपद प्राप्त करने के लिए पर वे माया के वशीभूत पुनर्जन्म के चक्र में फँस जाते हैं। शरीर के संसर्ग में आत्मा कर्म के वशीभूत हो युगों से संसारजाल में पड़े अपने को निकालने का यत्न करती है। दोषग्रस्त रहते हुए जब और जहाँ वे प्रेम से भगवान् के श्रीचरण को प्राप्त करते हैं प्रभु के दिव्यगुणों का आनन्द उन्हें मिलता है। अपने मूलस्वभाव को विना बदले भगवत् प्रदत्त परमसुख दायक मोक्ष का वे आनन्द लेते हैं। तेजोमय मुकुटधारी प्रभु के परमपदधाम में **कैंकर्य का अवसर-लाभ** ....। दासभाव में आळवार प्रभु के दिव्यगुणों की गाथा गाते, प्रसंसा करते, बोलते, उछलते-कूदते, गाते-नाचते, सिर के बल नाचते, आनन्दातिरेक में हँसते, पुलकित-द्रवित होते। प्रभु के **सर्वात्मभाव** की गाथा गाते आळवार आनन्दातिरेक में रहते हैं। भक्तों के प्रति स्नेहासिक्त वे **साध्य** से सम्पन्न रहते। फणिराज की दिव्य अनुभूति से शरीर में देखने की शक्ति की कामना करते। मानव प्रशस्ति न करके प्रभु की पूजा में रत रहना चाहते हैं। उच्च अवस्था में

आकर विघ्न, पीड़ा, दुःख, संताप, उदासी, क्षीणता, विनाश से रहित हो प्रभु की आनन्ददायी दिव्यानुभूति के सागर में गोता लगाते। अरुणकमल की आँख वाले नित्यसूरियों के नाथ से भयरहित हैं। **परत्व** गुणयुक्त प्रभु **अर्चास्वरूप** में सुलभ होकर सबको **उपाय** बताते हैं। आग्रहवश वे सबको अपने समान कर देते हैं। 'हे कविगण! यहाँ आकर उनकी गाथा गाओ'। मुक्ति को परमधन समझकर अपने पदों में मानवों की नहीं श्रीमन्नारायण की कीर्ति गाओ।

विशेषार्थ - 1. सर्वव्यापकत्वम् - सबों में पूर्णतया व्याप्त दोषरहित प्रभु समझ के परे हैं। **तिरुवाय.3.1.8-** अखिल एवं पूर्ण। **3.2.4-** सर्वव्याप्त। **3.2.7-** सबों में सर्वदा विराजमान। **3.10.10-** पंचभूतों के निर्वाहक पाँच इन्द्रियों की समझ के बाहर। तात्पर्य है कि समस्त समय, स्थान एवं वस्तु से नहीं परिभाषित होने वाले क्षरणरहित ज्ञानस्वरूपी हैं। **3.4.10-** ज्ञानस्वरूप प्रभु सभी जड़-चेतन में सर्वत्र एवं सर्वदा विराजते हैं तब भी सबों से पृथक हैं। **कठोपनिषद - अनश्ननयो अभिकाशतीति।** परमपद में भूख आदि नहीं रहती एवं मात्र परमानन्द ही व्याप्त रहता है। सबसे पृथक कर्म के नियम से बाहर अपने तेज को फैलाते है। भक्त को चरणाश्रित करके उसकी क्षमता के अनुसार अपने स्वरूप का ज्ञान देते हैं। **तिरुवाय. 3.5.11- '**भगवान् ही उपाय एवं फल हैं' की दृढ़ भावना वाले भक्त की भूल सुधारकर भगवान् उसे अपनाते हैं। **3.7.7-** आळवार कहते हैं कि सर्वदा उनकी गाथा गाने वाले को प्रभु पुनर्जन्म से मुक्त करके

अर्चिरादिगति से ले जाकर अपने स्वरूप का ज्ञान देकर चरणाश्रित बनाते हैं वे हमारे नाथ हैं। अतः इसतरह से आळवार का भगवान् के चरणों में अतिशय प्रीति को दर्शाया गया है।

2. नम्माळवार की दिव्यानुभूति - तिरुवाय. 3.2.1- आपका दिया हुआ शरीर यातनाग्रस्त होकर समय काट रहा है। कब मैं कर्म को समूल काटकर इस क्षुद्र शरीर का त्याग करके आपसे मिल सकूँगा? भाव है कि यह शरीर आपकी दया को प्राप्त करने का यत्न न करके लौकिक गतिविधियों में लग कर केवल दोषों का संग्रह कर रहा है। **3.2.2-** माया से जकड़े जाकर अनगिनत शरीर से गुजर चुके। **3.2.3-** इस अधम मार्ग को त्यागना दुस्तर है। अर्थात् मूल प्रकृति के तीनों गुणों से प्रभावित होकर इससे निकलना अत्यन्त कठिन हो गया है। **3.2.7-** ज्ञानाभाव में कर्मजनित जन्म की यातना। **3.2.9-** कर्म की गह्वर से आपको पुकारता हूँ परन्तु क्षुद्र मार्ग में फँस जाता हूँ। तात्पर्य है कि तूफान में पड़े वस्तु की तरह अत्यन्त यत्न करने पर भी उचित मार्ग न पाकर आपके चरणों से दूर हूँ।

तिरुवाय. 3.2.1- कर्म को समूल काटकर आपके चरणों से कब मिल सकूँगा। **3.2.2-** अनगिनत जन्मों के अन्तहीन कर्म को समूल काटना। **3.2.1-** मैं नहीं जानता कब यह समूल नष्ट होगा और आपसे मिल सकूँगा। **3.2.5-** आप शक्ति न देंगे तब अपने से हम कैसे आपको पा सकेंगे। **3.2.9-** कहाँ और कब आपको पाऊँ। भाव है कि आळवार जानना चाहते हैं कि कहाँ और कब उनके कैंकर्य को प्राप्त करने का अवसर मिलेगा।

आळवार को ऐसा अवसर पाने में शंका है और वे शरीर को त्यागना चाहते हैं परन्तु प्रभु ऐसा नहीं करने देते। **3.9.8-** नीलादेवी (नप्पिनाय) के नाथ का यशगान करते इस पाँचभौतिक शरीर को छोड़ प्रभु के चरणारविन्द को पाना चाहते हैं। परिणाम स्वरूप उन्हें प्रभु के चरण पाने की अनुभूति मिली। **3.9.9-** प्रभु के दिव्यधाम के भोगों के दर्शन की अनुभूति उन्हें मिली। प्रभु के तेजोमय मुकुट की झाँकी एवं परमपदधाम में कैंकर्य का अवसर-लाभ एक सदृश हैं। प्रभु के साथ परमपद धाम का आनन्द उनके अन्तर्यामी स्वरूप की अनुभूति के समान है। **3.4.7-** प्रभु को नित्यसूरियों के साध्य (अक्षय निधि; शाश्वत ऐश्वर्य) कहें या विलक्षण मोक्ष कहें? भाव है कि ऐश्वर्यादि शब्द धरावासियों के लिए अनित्य (नाशवान्) हैं परन्तु आळवार को ये सब भगवदात्मक होनें से नित्य ही प्रतीत हो रहे हैं। तात्पर्य है कि आळवार से प्रभु का गाथा-गान एवं नित्यसूरि के परमपद का कैंकर्य समान हैं। **3.1.1-** क्या आपके मुखमंडल की आभा से आपका मुकुट तो नहीं चमक रहा? **तिरुवायमोळी में** प्रभु के दिव्य आभूषणों की झाँकी का उल्लेख है, अर्थात् आळवार को प्रभु के सच्चे स्वरूप की अनुभूति हुई है जो 3.1 एवं 3.2 दशकों की गाथा से स्पष्ट है। ऐसा करते आळवार अपने को प्रभु के असीम दिव्यगुणों के गान के योग्य नहीं पाते कि वर्णातीत को शब्दों की सीमा में कैसे बान्धें? ऐसा सोंच वे उदास हो जाते हैं; प्रभु हस्तक्षेप कर कहते हैं कि नित्यसूरियों से किये गये गाथा-गान भी मेरी सीमा को छू नहीं पाते हैं। आळवार प्रसन्न हो गाथा-गान में प्रवृत्त हो जाते हैं। **तिरुवाय. 3.3.1-** सदा पार्श्व में रहकर वेंकट प्रभु की सेवा करनी है।

अर्थात् वे प्रभु की सेवा की अनुभूति करते हैं। अगर **जीवात्मा** ऐसा नहीं कर पाता है तब उसकी सत्ता ही नाहक है। यही 3.3 दशक का भाव है। दशक 3.4 में वे प्रभु के **सर्वात्मभाव** को प्रकट करते हैं। तात्पर्य है कि प्रभु आळवार को पाँचभूतों से प्रकट किये गये ब्रहमा-शिवादि आदि के साथ सर्वत्र अपनी स्थिति की अनुभूति कराते हैं। इस भाव से वे आळवार के हृदय को अपनी सत्ता की अनुभूति से पूर्णतया भर देते हैं।

3. प्रभु-कैंकर्य में आळवार की स्थिरता -

दशक 3.5 प्रभु के सर्वात्मभाव से जुड़े भक्तों के नाचने- गाने आदि की आवश्यकता से आळवार के भाव को अभिव्यक्त करता है। **3.5.1-** वे किस काम के हैं जो न तो यशगान करते और न नाचते हैं। **3.5.2-** गले की ऊँची आवाज में न तो गाते और न आनन्दातिरेक में नाचते वे कर्मजनित यातना न छूटेंगे। **3.5.6-** जो सदा गीत एवं नृत्य के साथ प्रशस्ति गाते हैं वे पूर्ण ज्ञान पाते हैं। **3.5.8-** गाँव या नगर उतावले होकर उन्मादग्रस्त जैसा कूदते हुए गाओ। लोगों को उपहास करने दो। **3.5.3-** यश गाते हुए सिर को बार-बार भूमि से स्पर्श करते नाचो। **3.5.4-**श्रीधर का यश गाते हाथ को सिर पर रख नाचो। **3.5.7-** बाहों को मांसल बनाये रखने का क्या लाभ जो गाथा-गान करते द्रवित हृदय से आनन्द में नाचते नहीं। भाव है कि प्रभु की दिव्य अनुभूति गाते हुए नाचने से मिलेगी। **3.4.1-** अपने कृष्ण को कैसे सम्बोधित करें - पूजा के सुयोग्य, अद्वितीय विस्तृत धरा या शीतल सागर, अग्नि-हवा-विस्तृत आकाश, सूर्य-चाँद या सर्वव्याप्त

सार्वभौम। उपर्युक्त सन्दर्भ का तात्पर्य है कि सर्वात्मभाव की आनन्दानुभूति से आळवार प्रभु का अद्‌भुद्‌ **कैंकर्य** करते हैं।

तिरुवाय 3.7.6- जो प्रभु को अपने हृदय में रखते हैं वे हमारे पूरे जीवन के नाथ हैं। **3.7.9-** नीच जाति का चाण्डाल अगर चक्रधारी प्रभु के भक्त हैं तो उनके सेवक के सेवक हमारे नाथ होंगे। **3.7.10-** भक्त के सेवक के सेवक हमारें नाथ हैं। **2.3.10-** कब हम आपके भक्तों की पङ्क्ति में बैठेंगे? **3.8.4 -** हम दोनों हाथों से प्रभु की पूजा करते हैं। हमारी आँख शेषशायी प्रभु के दर्शन को सदा अपनी दृष्टि में बनाये रखना चाहती है। नित्यसूरि अनन्त, प्रभु के कृतज्ञ, दिव्य शय्या हैं। अनन्त को **चक्षुस्श्रवाः -** कहा है, उनकी आँखें उनके कान हैं। अर्थात् भक्त के एक अंग को दूसरे अंग की शक्ति मिल जाती है। **3.8.2-** हमारी जीभ निरंतर आपकी प्रशस्ति गाती है। **3.8.3-** इस जीभ को प्रशस्ति के लिए शब्द देनेवाले नित्यसूरियों के नाथ हैं। **3.8.5-** उत्सुक आँखों की इर्ष्या में हमारे कान गरुड़ के पंखों की आवाज सुनने को तड़पते हैं। भाव है कि जीभ दिमाग एवं हाथों का काम करना चाहती है, हाथ आँख के काम करने को तत्पर हैं, और आँख कान का काम करना चाहती है। अर्थात् सब मिलकर प्रभु के दिव्यगुणों के गान करना चाहते हैं। आळवार का अन्तःकरण दिव्यगुणों के आनन्द लेने हेतु ऐसा काम करना चाहते हैं। वे मानवों के गुणगान नहीं करना चाहते हैं। **3.9.9-** मर्त्यों के गुणगान के लिए हमारा जन्म नहीं हुआ है। **3.9.10-** सदा के लिए आपका कवि होकर दूसरे के लिए कभी नहीं गा सकता।

उपनिषद का कथन है- **अहं श्लोक कृत् अहं श्लोक कृत्।** पद रचने वाले को श्लोक कृत् कहते हैं। आळवार कहते हैं कि प्रभु ने लोकसृष्टि उनके कल्याण के लिए की है।

दशक 3.10 में प्रभु के आनन्ददायक गुणों के अथाह सागर में निमग्न आलवार का वर्णन है। वे प्रभु के दिव्य गाथा-गान से इतने प्रसन्न हैं कि वे इस शरीर में कोई दोष न देखते हुए **अर्चिरादिगति** से परमपद न जाकर इस शरीर में ही रहना चाहते हैं। प्रभु की लीलीविभूति को ही आळवार आनन्ददायक मानते हैं। यह विदित है कि प्रभु सर्वव्यापक हैं और वे भक्तों की रक्षा करते हैं। आवश्यकतानुसार वे अवतार लेकर धरती पर भक्तों की रक्षा के लिए आते हैं। 3.10 के पदों से अवतार की महत्ता के साथ उनके गुणगान से आळवार अनेकों लाभ बताते हैं। **तिरुवाय. 3.10.1-** किसी वस्तु का कोई अभाव नहीं। **3.10.2-** सभी आवश्यकताओं से मुक्त। **3.10.3-** कोई चिन्ता नहीं बची। **3.10.4-** कोई यातना नहीं सताती। **3.10.5-** समस्त शोकों से दूर। **3.10.6-** दैन्यों से विरहित। **3.10.7-** आर्त्तभाव से दूर। **3.10.8-** दुःख लेशमात्र भी नहीं। **3.10.9-** ग्लानि विरहित। **3.10.10-** हानिगंध विरहित। 3.6 तथा 3.9 दशक में आळवार सबको उपदेश करते हैं। उदाहरण स्वरूप, **3.6.9 -** लोगों! भय एवं भ्रम से 'इस' और 'उस' देवता के चक्कर में मत पड़ो। मेरे श्यामल प्रभु उसी स्वरूप में दर्शन देते हैं जैसी हृदय की चाह रहती है। **3.6.10-** 'नित्यसूरियों के नाथ' **परत्व** सूचक हैं। **3.6.11- अन्तर्यामि** की प्रशस्ति करो। प्रशस्ति का उपदेश दशक

3.9 में महत्वपूर्ण है। 'एकमात्र वेंकट प्रभु की प्रशस्ति करो, मनुष्यों की प्रशस्ति का कोई लाभ नहीं'।

4. अर्चावतार में प्रभु की सुलभता- परत्व के साथ अर्चावतार की सुलभता का उल्लेख पहले शतक के अतिरिक्त अन्य शतकों में है। **1.3.2-** प्रभु का सौलभ्य सहज स्वभाव है। अनेकों योनियों में अवतार लेनेवाले रत्न की भाँति चमकते रहते हैं। **2.8.1-** मोक्षदाता प्रभु संसार-सागर को पार करनेवालों के लिए नाव हैं। अर्चावतार लेने की पृष्ठभूमि से उनके परत्व का बोध होता है। **3.6.1-** **'राजीवनयन प्रभु'** अर्थात् वे सुलभ हैं। सबके **उपाय** हैं। **3.6.9-** मेरे श्यामल प्रभु उसी स्वरूप में दर्शन देते हैं जैसी हृदय की चाह रहती है। **गीता 4.11- ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।** जो जिस भाव से मेरी शरण ग्रहण करते हैं उसी के अनुरूप मैं उन्हें फल देता हूँ। **श्रीरङ्गराज स्तव. उ. 74- अर्च्यस्सर्वसहिष्णुः अर्चकपराधीन अखिलात्मस्थितिः।** अर्चक कर पूर्णतया निर्भर, सबकुछ सहन करते हुए, सब स्थिति में आप मंदिर, घर तथा आश्रमों में पूजा से प्रसन्न होते हैं। अर्चावतार ही आपकी सुलभता की सीमाभूमि है। **तिरुवाय. 3.9.1-** मेरी बात अच्छी लगे या न लगे मैं कहूँगा। वेंकट प्रभु के अतिरिक्त किसी मानव की प्रश्स्ति मैं नहीं गाता। **3.9.3-** मधुरवाणी के निपुण कविगण! हमारे मार्ग प्रशस्त करने हेतु नित्यसूरियों के नाथ जब वेंकटाचल पर विराजमान हैं तब झुककर मर्त्यों की प्रशस्ति गाने से क्या लाभ? भाव है कि आत्मस्वरूप को समझने एवं **कैंकर्य** के लक्ष्य प्राप्ति हेतु नारायण प्रभु

की प्रशस्ति गाओ। **विष्णुधर्म – सकलप्रदो हि विष्णुः।** भगवान् विष्णु सबकुछ देनेवाले हैं। **मुण्डक उप. 3.1.3.- परमं साम्यमुपैति।** वह (जीवात्मा -भक्त) सबतरह से (भगवान् से वरदान पाकर) उनके समान हो जाता है। **तिरुवाय. 3.9.3-** हमारे मार्ग प्रशस्त करने हेतु नित्यसूरियों के नाथ सदा वेंकटाचल पर विराजमान हैं। **3.9.4-** वेंकट प्रभु की प्रशस्ति गाओ, वे तुम्हें सर्वदा के लिए अपना बना लेंगे। **मनुस्मृति 4.06 - सेवाश्ववृत्तिर् आख्याता।** (भगवान् को छोड़कर) अन्यों की सेवा कुत्ते की वृत्ति है। **शेषत्व भाव** से मात्र भगवान् का ही **कैंकर्य** करे। **मूल संहिता** का प्रमाणिक कथन है- **छायावासत्वमनुगच्छेत्।** छाया की तरह उनके (भगवान् के) साथ रहे। **विष्वकसेन संहिता 24.14 - सा किमर्थं न सेव्यते -** किस कारण से भगवान् वासुदेव की छाया की सेवा न करता है? अगर कोई भगवान् के पावन चरण तथा उनके कैंकर्य न करता है तो वह मार्ग से विचलित हो कल्मषयुक्त हो जाता है। आळवार मनुष्य की प्रशस्ति की क्षणभंगुरता बताते हुए भगवद् दिव्यगुणों के गाथा-गान की राह दिखाते हैं। वे उदारता पूर्वक प्रभु की पूजा से होनेवाले शाश्वत कैंकर्य लाभ को दर्शाते हैं।

चूर्णिका 222 -

भगवान् के (1) **न्यामकत्वम् (सर्वनियन्ता या नियन्तृत्व)** दिव्यगुण का सहस्रगीति के चौथे शतक में वर्णन है। **अरण्यक 3.20 - अन्तः प्रविष्टः शास्ताजनानाम्।** सबकी आत्मा में प्रवेश करके प्रभु उनकी गतिविधियों को नियन्त्रित करते हैं। **वृहदारण्यक उप. - य आत्मानमन्तरो यमयति।**

आत्मा में विराजकर वे निदेश करते हैं। **विष्णु पु. 1.17.20- शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतः।** भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत् के उपदेशक हैं। प्रामाणिक कथन - **शास्ता चराचरस्यैकः।** समस्त चर-अचर भगवान् से नियन्त्रित हैं। प्रामाणिक कथन- **वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया श्रद्धं जगत्पतिः। आस्ते विष्णुः अचिन्त्यात्मा भक्तैः भागवतैः सह।।** समस्त लोकों के सार्वभौम प्रभु लक्ष्मी के साथ सर्वोच्च परमपद धाम में रहते हैं। **तिरुवाय. 4.5.1-** केशिन घोड़ा के जबड़ा फाड़ने वाले प्रभु शाश्वत श्रेयावस्था में शान्ति से सात लोकों पर शासन करते हैं। इसके अतिरिक्त (2) आळवार पर भगवान् का अनुग्रह एवं भगवान् से सदृश्यता तथा (3) मानव को उपदेश।

सूत्र - 222 (4) - सं. ईशं ईशविषये इत्युक्तातिशयित वैलक्षण्ययुक्तोर्ध्व लोकेपि भूत्यैवेत्युच्यमानव्याप्तिरुज्जवला यथा भवेत्तथा द्वितीयाज्ञानिर्वाहक सर्वनियन्ता विच्छेदरहितकालस्य सदृशं पूर्वानुभववचनानुगुणव्यामोहं प्राप्त-वच्चापलस्य सदृशं समकालं कृत्वा तत्तत्काले कैंकर्याभावहानिं निवर्तयितृ-प्रणयित्वे अभिनिवेशव्यमोहाभिवृद्ध्या भ्रांतिभूत्वा दशदूरस्याहूयापि स्वीकु-र्वित्युक्तिः निवृत्ता यथा भवेत्तथा दृष्टचातुर्येपि समानदेशं प्रकाशिते सति विच्छेदरहितानन्दं प्रापितवानसीति भुक्तभोगमान-सप्राप्तिफलभूत-देवता-न्तरात्मात्मीय लोकपात्रैश्वर्याक्षरेषु वैराग्यं प्राप्यात्मदेहेन क्रूरलोकमाशां कृत्स्नामत्यजम् इति यथा वदेत्तथाभूतः एकनायकमिति राज्यस्वर्गात्मा-नुभवाल्पास्थिरत्वसावधिकत्वादीनपि मेषो मद्यं मांसं कृष्णरक्तान्तरूप-

निंद्यैः नीचदेवतस्य बलिं कृत्वा नर्तनकरणनीचत्वमपि वचनार्हत्वेन स्थित-दैवताज्ञानशक्तिसापेक्षत्वादीन्यपि लिङ्गविषये वदतु वाह्यकुदृष्टिमततमो-निष्टतामप्युक्ता प्रधाव्या पश्यद् दृष्ट्वापि ज्ञातुं न शक्नुत ज्ञात्वाप्रधावत दास्यकरणमेव स्वरूपानुरूपं सुशकमिति विरक्तिपूर्वकमाश्रयणं रोचयन्ति चतुर्शतके।

सूत्रानुवाद - सर्वनियन्ता प्रभु अन्तर्यामी रूप से सर्वव्याप्त हैं। वे स्वयं समस्त सृष्टि को पूर्वनिर्धारित शैली पर सुव्यवस्थित किये हुए हैं। आळवार को दिव्यगुणों के आनन्द में लीन रहने हेतु अभिप्रेरित करते हैं। भगवान् के पूर्व के अवतारों की पूजा एवं दिव्यगुणों के गहरे ज्ञान से सम्पन्न आळवार को प्रभु सीमातीत आनन्द की अनुभूति से विभोर रखे हैं। स्थान एवं दूरी की बाध्यता से मुक्त करके वे आळवार को लक्ष्मीजी के साथ अपना दिव्यदर्शन देते हैं। इससे आळवार को अतिशय शाश्वत आनन्दायक मुक्ति तथा इसके वाँछित फल की प्राप्ति हुई। **अक्षर** में निर्दिष्ट अनुभव से अभिषिक्त, लौकिक सम्पदा एवं क्षुद्र देवों की चाह से वे दूर रहे। आळवार के हृदय एवं आत्मा को दुष्ट संसार की कभी इच्छा नहीं हुई। लौकिक संसार के राजोचित सुख तथा स्वर्ग की क्षणभंगुरता का वे लोगों को उपदेश देते हैं। क्षुद्र देवों पर चढ़ाये जाने वाले बकरा, मांस तथा काले-लाल भात जैसे हेय पदार्थ के साथ क्षुद्र देवों के समक्ष नृत्यादि करने वाले नीच प्रवृत्ति के लोगों की निंदा करते हैं। शिव, ब्रह्मादि देवों की शक्तिहीनता से आळवार की अनभिज्ञता को दूर करते हैं। लिंग पुराण में वर्णित लिंग

की महत्ता तथा इसके पक्ष में दिये गये तामसिक तथा वेद विरोधी कुतर्कों की आळवार भर्त्सना करते हैं। तुच्छ इच्छाग्रस्त लोग अज्ञानतावश क्षुद्र देवों के पीछे दौड़ते हैं। उनकी इस अज्ञानता को मात्र नारायण प्रभु ही दूर कर सकते हैं। इसलिए प्रभु का **कैंकर्य** प्राप्ति ही सुगम लक्ष्य है। **चौथे शतक** में आळवार प्रभु के श्रीपाद को प्राप्त करने हेतु रागरहित इच्छा को जाग्रत करना ही दुर्गणग्रस्त लौकिकों के लिए एकमात्र आश्रय बताते हैं।

विशेषार्थ- 1. प्रभु के दिव्यगुण न्यामकत्व - तिरुवाय. 4.1.10- अविनाशी प्रभु के श्रीपाद। **4.3.2-** प्रभु ने समस्त ब्रह्माण्ड को निगल कर पुनः उसको प्रकट किया। **4.10.4-** लिंग की पूजा करने वालों को प्रभु के बारे में दुर्वचन बोलने से क्या लाभ? **4.3.8-** ज्ञान के प्रदीप्त प्रदीप! सातों लोक को भरकर सर्वत्र आप ही हो गये। **4.5.9-** ऊपर के देव लोकादि, भू लोक, नीचे के पातालादि एवं आठों दिशाओं में सर्वदा निवास करनेवाले। **4.9.7-** आप स्वयं जड़ एवं चेतन हैं। आप सर्वव्याप्त हैं इसका विशद विवरण तीसरे शतक में है। **4.5.1-** शाश्वत श्रेयावस्था में प्रभु सातों लोक पर शासन करते हैं। भाव है कि सब अपने कार्यकलाप सुव्यवस्थित रूप से आपके निदेशानुसार करते रहते हैं। लीलाविभूति तथा नित्यविभूति सर्वत्र आप ही का आदेश चलता है।

2. आळवार पर भगवान् का अनुग्रह एवं भगवान् से उनकी सदृश्यता - तिरुवाय. 3.3.1- सदा पार्श्व में रहकर वेंकट प्रभु की सेवा करनी है। अर्थात् वे प्रभु के कैंकर्य की हर परिस्थिति, स्थान एवं भूत-वर्तमान सब समय

की अनुभूति करते हैं। भगवान् ने अनुग्रहपूर्वक आळवार को भूतकाल के कैंकर्य का लाभ अपने अवतारों की दिव्य झाँकी दिखाकर किया। नायकी माँ की वाणी में- **तिरुवाय. 4.2.1-** हमारी बेटी प्रभु के चरणारविन्द की शीतल तुलसी माँगते हुए अचेत हो जाती है। अवतार काल एवं स्थान के समय एवं स्थान की लीला को अब और यहाँ देखकर प्रफुल्लित होना चाहती है। **4.2.6-** सृष्टि के प्रारम्भ में सूकररूप में धरा को जल से बाहर निकालने वाले वराह प्रभु के चरण की सुनहली तुलसी माला की चाह आळवार प्रकट करते हैं। **4.2.1-** सात लोक को निगलकर शिशुरूप में बटपत्रशायी प्रभु के चरण की तुलसी की चाह। इसतरह से सुदूर अतीत की लीला का आनन्द प्रभु आळवार को वर्तमान में कराते हैं।

पूर्व में आळवार प्रभु की तुलसी, चन्दनादि से स्वयं पूजा नहीं कर पाये थे। अब वे पूजा की प्रिय वस्तु स्वयं बन जाते हैं। **4.3.1**- हमारा हृदय आपके सुमन समान मुखमण्डल के चन्दन का लेप है। **4.3.2**- हमारा हृदय चन्दन का लेप, गाथा की पदमाला चमकते वस्त्राभरण तथा हाथ ज्योतिर्मय आभूषण हैं। **4.3.4**- कभी मैंने प्रतिदिन तीनवार तुलसीमाल से आपकी पूजा नहीं की। मेरा जीवन आपके मुकुट को अलंकृत करनेवाली तुलसी की माला है। तात्पर्य है कि आळवार अन्तःकरण के मन, कर्म तथा वचन से प्रभु की मधुरतम वस्तुओं से सेवा करके उनको प्रसन्नचित्त अपने पास विराजमान देखते हैं। आळवार की जब पुनः दुःखग्रस्त मनोभावना हो जाती है कि प्रभु ने उनकी सेवा स्वीकीर नहीं की तब प्रभु उनकी सहायता करते

हैं। **4.3.9-** आप हमारे प्रति उदासीन हैं। हाय! अतिशय प्रेम में मैं अचेत हो जाता हूँ। प्रभु भी इसतरह के सीमातीत प्रेम से चकित हो उठते हैं। तब वे उनके पास से हट जाते हैं जिससे कि आळवार पुनः सक्रिय हो जायें। प्रभु की प्रिय वस्तुओं को आळवार स्वयं प्रभु ही समझते हैं।

4.7 में आळवार के स्थान एवं दूरी की बाध्यता का अन्त दिखाया गया है। **4.7.1-** न तो आप दर्शन देते हैं और न पास बुलाते हैं। **4.9.1-** केवल आप एवं कंगनवाली गोरी लक्ष्मी स्थायी हैं। परमपद में नित्यसूरि एवं मुक्त जीव इनकी सेवा से परम आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। प्रभु आळवार को भी लीलाविभूति में इसी तरह का आनन्द उठाने की क्षमता देते हैं। **4.9.8**- परमपद में प्रभु के चरणारविन्द से कभी भी पृथक न होने का भाव करते हैं। **4.6.10-** यह किशोरी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवता का आदर नहीं करेगी। **4.8.10-** एवं **4.8.9-** हमारे जीवन की चाह अगर आप नहीं रखते हैं तो हमारी कोई क्षति नहीं है। भाव है कि प्रभु को प्रिय नहीं लगने वाली अपनी आत्मा एवं उससे जुड़े सबकुछ से आळवार अपना नाता तोड़ना चाहते हैं। **4.9.7-** मुझे दुष्ट संसार से अलग रखकर अपने पास बुलाने की आळवार विनती करते हैं। **4.9.9-** मेरी लौकिक इच्छाओं को मिटाते हुए आपने अपना श्रीपाद मेरे सिर पर रखा। **4.9.10-** हमने देखने, सुनने, छूने, सूँघने एवं खाने का आनन्द लिया है तथा इन्द्रियों से परे स्वर्ग के सीमित सुख का भी अनुभव किया है। प्रणव का अकार अक्षर कैवल्य के आत्मसुख का बोधक है जो स्वर्ग के सीमित सुख से अभिव्यक्त

किया गया है। कैवल्य मिलने पर भी वासना मन में रह जाता है और जीवात्मा पुनः धरा पर आ जाता है। इस तरह के आत्मसुख को क्षणभंगुर समझ आळवार अपनी आत्मा का परित्याग कर प्रभु के श्रीचरण को ही स्थायी मानते हैं क्योंकि लक्ष्मी के साथ नारायण ही एकमात्र स्थायी हैं।

3. मानव को आळवार का उपदेश- तिरुवाय. 4.1.1- सुदीर्घकाल सारे भूमंडल का राज करने वाला एकछत्र चक्रवर्ती नरेश भी कदाचित् सारा ऐश्वर्य खोकर दरिद्र बन गया। रात में भिक्षा के लिए बाहर आने पर अंधकार के कारण उसका पैर काले कुत्ते पर पड़ने से उसे कुत्ता काट लेता है। फलस्वरूप भिक्षा पात्र गिर जाने से आवाज सुन कर सभी लोग उसे देखने लगते हैं। ऐश्वर्य की तरह कैवल्य का आत्मसुख भी नश्वर है। एकमात्र स्थायी नारायण के पादारविंद का ध्यान कर। प्रामाणिक कथन है - **राज्यं नाम महाव्याधिः चिकित्सयो विनाशिनः। भ्रातरं वा सुतं वापि त्यजन्ति खलु भूमिपाः।।** राज्य एक रोग है जिसकी कोई चिकित्सा टिकाउ नहीं है। विषम परिस्थिति में इसका नाश होने पर राजा भाई, बहन तथा अपने पुत्रादि भी छूट जाते हैं। **तिरुवाय. 4.1.9-** तृष्णा का तिरस्कार करके शरीर सुख से विमुख हो घोर तपस्या के कारण जिनके शरीर पर घास उगने लगते हैं वे भी लक्ष्यहीन हैं। सीमित अवधि का स्वर्ग सुख भोग धरा पर वापस आ जाते हैं। **गीता 9.21- ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।** वे विशाल स्वर्ग को भोगकर पुण्य के क्षीण होने पर पुनः मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं। **तिरुवाय. 4.1.10-** सबकुछ त्याग

कर चेतन इन्द्रयों पर ध्यान करनेवाले ऋषिगण आत्मा का स्वर्ग (आत्मसुख का कैवल्य) प्राप्त करते हैं। लेकिन स्मृति बनी रहती है जो उन्हें वासना का स्मरण कराती है, तब वे (कैवल्य) मुक्तिविहीन हो जाते हैं। अविनाशी प्रभु के श्रीपाद को पकड़े रहो क्योंकि यही एकमात्र मुक्ति है।

प्रामाणिक कथन है - **द्रव्यं निन्द्यसुरादिदैवतमपि क्षुद्रं च बाह्यागमो दृष्टिर्देवलोकाश्च देशिकजनाः धिग्धिगेषां क्रमः।** क्षुद्र देवों को सुरा आदि वर्जित वस्तुओं को चढ़ानेवाले वेदविरुद्ध आगम का अनुशरण करते हैं। क्षुद्र देवों के पुजारी उनके गुरु होते हैं जो अनेकों दोषयुक्त होने से सम्मानीय नहीं होते। **तिरुवाय. 4.6.7-** किशोरी के उन्माद को ठीक करने हेतु बकरी की बली एवं ताड़ी चढ़ाते हो तथा हाथ बजाकर कन्धे को जोर से झकझोरते हो। इससे क्या लाभ? यह गदहे को अन्न खाते देखने जैसा है। **4.6.4-** जादूगर भगत की बात सुनकर वेदी पर लाल एवं काला पकाया हुआ भात फेंकने से क्या लाभ? **4.6.2-** तुमने किशोरी की बीमारी को समझा नहीं है। एक महान शक्ति ने इसे भावग्रस्त कर रखा है न कि कोई क्षुद्र देवता ने जिसके लिए तुम नाचती हो। **4.6.8-** निरर्थक शब्दों एवं पापमय कृत्यों के साथ ताड़ी चढ़ाकर नगाड़े के धुन पर उन्मत्त सा नाचते हो। ओह! यह नीच काम है। भगवान् की सत्ता को समझने वाले सन्तजन इस तरह के क्षुद्र कर्मों की भर्त्सना करते हैं।

तिरुवाय. 4.10.1- जब न कोई देवगण या प्राणी थे, प्रभु ने ब्रह्मादि देवों, विश्व एवं प्राणियों को बनाया, तब अन्य किस देवता को तुम खोजते हो?

मत्स्य पुराण - ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च। वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मया।। शिव कहते हैं - क्रोध से मेरी आँखें लाल हो गयी और बाँयें हाथ के अङ्गूठे के नख से हमने ब्रह्मा का शिर काट लिया। **मत्स्य पु. - यस्मादनपराधस्य शिरः छिन्नं त्वया मम। तस्मात् शापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि।।** ब्रह्मा ने कहा- किस अपराध से मेरे शिर को तू ने काटा है। शापवश मेरा शिर तुम्हारे हाथ से चिपका रहे। **मत्स्य पु. - तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रयाचितः। विष्णुप्रसादा-त्सुश्रोणिकपालं तत्सहस्रधा स्फुटितं बहुधा पातं स्वप्नलब्धधनो यथा।।** शिव ने कहा- लक्ष्मीजी के साथ नारायण से हमने भिक्षा माँगी। हे सुन्दरी पार्वती! प्रभु की कृपा से सपने में प्राप्त धन की तरह वह शिर हजार टुकड़ों में होकर हमारे हाथ को छोड़कर गिर गया। **तिरुवाय. 4.10.4-** शिव, ब्रह्मा तथा अन्य सभी देवों के नारायण प्रभु ही नाथ हैं। वेद में राजसिक एवं तामसिक क्षुद्र देवों के उल्लेख से छोटे बुद्धि के लोग भ्रमवश उन्हें प्रधान मान लेते हैं। ये सब कर्मवश जन्म-मरण से ग्रस्त हैं। **तिरुवाय. 4.10.5-** जो लोग लिंग पुराण का सन्दर्भ देते हो, ध्यान दो। **4.10.9-** दर्शन के छः सिद्धान्त तथा इस तरह के मत प्रभु को समझ नहीं सके। तात्पर्य है कि श्रीवैष्णव मत के विरोधी तत्त्वों ने मानव समाज को दुष्प्रभावित किया है। **विष्णु पु. 1.1.5- यन्मयं च जगद्सर्वं। 1.1.41- विष्णोः सकाशादुद्भूतं -** यह जगत् विष्णु से उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में स्थित है, वे ही इसकी उत्पत्ति तथा लय के कर्ता हैं तथा ये जगत् भी वे स्वयं ही हैं। लिंग पुराण के मतावलम्बी तामसिक प्रवृत्ति के कारण वेद के प्रमाणों का कुदृष्टि ग्रस्त

हो सच्चाई से दूर हटकर गलत अर्थ लगाते हैं। जैन एवं बौद्ध मत सत्य को नहीं समझ पाते। **मनुस्मृति 12.95- या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश् च कुदृष्टयः। सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्य तमो-निष्ठा हि ताः स्मृताः।।** जो परम्परा (स्मृति) और निन्दित सिद्धान्त (कुदृष्टि) वेद पर आधारित नहीं हैं, वे सभी अगले जन्म में मिलने वाले फल का समर्थन नहीं करते और वे सब तामसिक विचारवाले हैं।

तिरुवाय. 4.10.7- अनेकों जन्म लेकर क्षुद्र देवताओं की पूजा कर तूने सच के अनेकों रास्तों का प्रयास किया। **गीता 9.21- गतागतं कामकामा लभन्ते।** तीनों वेद में प्रतिपादित धर्म पर आश्रित हो इन्द्रिय सुखभोगों की कामना वाले मनुष्य आवागमन को प्राप्त होते हैं। भाव है कि जो भगवान् के श्रीपाद के महत्व को नहीं समझ पाते वे जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़े रहते हैं। **तिरुवाय. 4.10.3-** जगत् के लोग इस ज्ञान के महत्व को नहीं समझते। **4.10.6-** केवल भगवान् की कृपा से ही शुद्ध ज्ञान मिल पाता है। **गीता 7.14- मम माया दुरत्यया।** मेरी माया निःसन्देह दुस्तर है। मेरी शरण ग्रहण वाले ही इसको पार कर जाते हैं। **गीता 18.66** - **मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि -** केवल मेरी शरण ग्रहण करो, मैं सभी पापों से मुक्त कर दूँगा। भाव है कि भगवान् के शरण में ही रहने पर कैंकर्य करने का अवसर मिलता पाता है। **तिरुवाय. 4.10.10-** आपकी सेवा ही हमारा स्वरूपानुरूप कार्य है। अतः घटनर्तक कृष्ण प्रभु की शाश्वत सेवा

में लगो। जो भगवान् की गाथा-गान में लग जाते हैं वे उनके कैंकर्य के अतिरिक्त अन्य कामना भी नहीं रखते।

चूर्णिका 223 -

भगवान् के (1) **कारुणीकत्व** दिव्यगुण का सहस्रगीति के पाँचवें शतक में वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस शतक में (2) आळवार की दिव्य अनुभूति, तथा (3) आळवार की मानव सेवा का उल्लेख है।

सूत्र - 223 (5) - सं. हन्त हन्तेति स्वयमेव दासानां कुर्यात्स्वाभाविककृपा-मिति परत्वादिविशिष्टः कुत्रत्य इत्यवदत् पापिष्ठानामप्युभयकूलमपि शिथिलीकुर्वत्कृपाप्रवाहवान् मिथ्यानटनं वंचकचौर्यं यथा निवर्तेत तथा सर्वं अपि स्वयं भूत्वा त्वां विसृज्येत्युक्त्यर्हं कृतवद्विरक्तिफलपरमात्मरागे अतीव प्राप्य पृष्टतः स्थित्वातिमहदभूत्वाहमेवेत्युक्तनुगुणं सन्निधाय धर्तुं अशक्नुवज्जलं भूत्वा शैथिल्ये सत्यन्तः प्रविश्य प्रवृद्धे सति विषवृक्षफलानि हस्ते प्राप्नुवन्तः शेषत्वे प्रविष्टान्यपि दास्यं कुर्वतोऽपि दृष्टुं लोकदीपान्त-रेभ्यः आगतदेवसमूहान् दृष्ट्वा रक्षां कृत्वा प्रह्लादविभीषणोक्ताऽश्रोतृराक्षस-सुरसदृशान् विमृग्य गृहीत्वा देशकालदोषो यथा निवर्तेत तथा सर्वत्र स्थानं गृहीतवन्तः आदृत्याञ्जलिं कृत्वोज्जीवत युष्मत्स्थापितान् देवतात्वेन स्था-पितवन्तमादृत्य विस्तारवद्भिस्तुल्यमाश्रयथ चेद्युगदोषो न भवेदिति विष्णु -भक्तिपरान् कृत्वा नेत्रसमीपप्रदर्शनयोग्यभूतानेवात्र साक्षात्कृत्य दर्शनाऽनु-कूलभक्तिसिद्धाञ्जनं संगमयति पञ्चमशतकेन।

सूत्रानुवाद - जीव को कर्मवश जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़े देख परत्वादि गुणों से अभिभूत भगवान् 'हाय-हाय' करते हुए कृपा की वर्षा करके दोनों सीमाओं का नाश करते हैं। भगवान् को मधुरतम जानकर आळवार उनकी मिथ्या, छल, चोरी आदिभाव से प्रशस्ति नहीं गाते। नायकी भावना की आलोचना होने पर भी वे माधुर्यभाव से अभिभूत होकर भगवान् से सदृश्यता की अनुभूति करते हैं। भगवान् से अलग न होकर वे सदा जल की तरह द्रवित हो विष-वृक्ष से दो फल प्राप्त करते हैं। भगवान् के कैंकर्यरत श्रीवैष्णवों की आळवार प्रशंसा करते हुए परमपद तथा श्वेतद्वीप वासी को 'धन्य,धन्य' कह मंगलाशासन करते हैं। राक्षसों एवं असुरों को प्रह्लाद-विभीषण की बातों पर ध्यान न देने के कारण उनको शिक्षा देते हैं कि स्थान एवं काल के दोष को नाश करने तथा उनके उत्थान करने हेतु इस धरा पर पधारने वाले भक्तों की प्रशंसा करो। भगवान् से गौरव प्राप्त करनेवाले अन्य देवों को वे भगवान् के शरीर का अंश बताते हैं। भगवान् के नित्यसूरिगण यहाँ सर्वत्र विराज गये हैं। ये भक्तगण युग के दोष से मुक्त हैं। सिद्धाञ्जन युक्त आँख से जैसे सब मधुरवस्तु दिखते हैं उसी तरह पाँचवें शतक में भक्ति को हृदय की आँख बताया है।

विशेषार्थ- 1. भगवान् का परमकारुण्य - तिरुवाय. 5.1.9- अति उदार प्रभु करुणावश हमारी पुकार से हमारे पास आये। **5.1.10-** अपनी करुणा एवं स्वेच्छा से प्रभु हमसे एक हो गये। **5.2.11-** ये पद कलि के विनाशक कृष्ण प्रभु के अनुग्रह से भक्त के हृदय को कज्जल करते हैं। **5.9.9-**

शाश्वत करुणा स्वरूप। **5.1.7-** सर्वस्वामी चक्रपाणी प्रभु कहाँ और अतिक्षुद्र मैं कहाँ? तथापि उनकी कृपा मुझपर बरस रही है। यदि भगवत्कृपा प्रबल पापियों पर बहना चाहेगी तो बहेगी ही। भाव है कि नित्यसूरि तथा मुक्तों के प्रभु परात्पर, सर्वनियन्ता, उच्चतम से उच्चतर होते हुए भक्तवत्सल भाववश भक्तों के दोष की अनदेखी करते हुए अपने-आप उनके पास पहुँचकर उन्हें अपना बना लेते हैं।

भगवान् का **स्वातन्त्र्य** और जीव का **स्वातन्त्र्य** ये दो सीमायें हैं जिसे करुणावश प्रभु नष्ट कर देते हैं। जीव को अहंकार उसके अपने स्वातन्त्र्य के कारण होता है। भगवान् इतने स्वतन्त्र हैं कि अहंकारी जीव पर भी वे स्वेच्छा से कृपा बरसाते हैं।

2. आळवार की दिव्य अनुभूति- तिरुवाय. 5.1.1- तेजोमय चक्र, मणिवर्ण आदि छोटी प्रशस्ति करते हुए नाचा। **5.1.2-** 'मेरे नैसर्गिक मणि', 'शहद की तरह मधुर हमारे अमृत' आदि मैंने मिथ्या बातें बोली। **5.1.3- '**उदार', 'मणि वर्ण' प्रभु आदि दिखावटी बातें बोलने पर आपका दर्शन हुआ। तात्पर्य है कि मैंने यह सब दिखावटी बातें ऐसी बोली जैसे कोई महान् भक्त हूँ। **5.1.10-** हमारे भीतर एक विश्वासी सेवक की झलक देखकर आप उल्लसित होकर हमारे पास आये। आप अपनी करुणा एवं स्वेच्छा से हमारे साथ एक हो गये। भाव है कि मेरे भीतर सच्चाई कुछ और थी। **5.1.3-** सागर में शयन करनेवाले प्रभु! कौन मेरा आश्रय हो सकता है? इसके बाद कुछ समय तक आळवार प्रभु को भूल जाते हैं, फिर भी वे इनको न भूलते हुए

इनके कल्याण का उपाय सोंचते हैं। **4.9.10-** हमने देखने, सुनने, छूने, सूँघने एवं खाने का आनन्द लिया है तथा इन्द्रियों से परे स्वर्ग के सीमित सुख का भी अनुभव किया है। केवल आप एवं कंगनवाली गोरी लक्ष्मी स्थायी हैं। क्या आश्चर्य है! मैंने आपके चरणकमल पा लिया। चौथे शतक में जैसा कि वर्णित है केवल प्रभु के दिव्यगुणों से जुड़कर आळवार ने अन्य भागवतों के संग लौकिक सुखों तथा कैवल्य को तुच्छ समझा। कहा है- **परमात्मनि यो रक्त।** परमात्मा से सच्चा प्रेम करने वाले को लौकिक वासना में राग नहीं रहता।

तिरुवाय. 5.3.4- श्यामवदन प्रभु ने ह्रदय में प्रेम का बीज बोया, लोकापवाद ने उर्वरक का काम किया, माँ के शब्दों ने इसे सींचा। मेरी इच्छा समुद्र की तरह बढ़ रही है। भक्तों से प्रभु का स्नेह निश्चित रूप से बाढ़ की तरह बहता है। **5.4.6-** असाद्धय प्रेमरोग मेरे ह्रदय को व्यथित कर रहा है। **5.5.10-** माँ भगवान् का नाम लेने से मना करती है, कहती है दिनानुदिन इसका प्रेम कामुक की तरह बढ़ ही रहा है। **5.6.1-** मेरी बेटी धरा पर यह कहते हुए घूमती है, 'मैंने धरा बनाया, हम धरा एवं सागर हैं, हमने धरा को अधिकार में लिया, हमने धरा को ऊपर उठाया, हमने धरा को निगल लिया'। **5.6.11-** पांड्य राज्य का नगर कुरुगुर (आळवार तिरुनगरी) के शठकोप के हजार पद का यह दशक श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीला देवी के पति की प्रशस्ति है। भाव है कि आळवार ने अपने को

भगवान् की क्रियाओं को स्वयं ही सम्पादित करते दिखाया है। यह भगवान् के दिव्यगुणों से उनके गहरे लगाव को प्रदर्शित करता है।

5.7.1- मैंने न तो तपस्या की, न मेरे पास सूक्ष्म मेधा है, तबभी हम आपसे क्षणभर के लिए अलग नहीं रहना चाहते हैं। **5.8.1-** हे अतृप्त अमृत! आपसे प्रेम करने के कारण मेरा शरीर पिघलकर पानी हो रहा है। **5.9.1-** हे मृगनयनी सखियाँ! यह क्षुद्र शरीर दिनानुदिन क्षीण हो रहा है। **5.10.1-** आपकी आश्चर्यमयी घटनायें (जन्म, बालपन, रथ चलाना आदि) हमारे हृदय को आप्लावित करते हुए हमारी जीवात्मा को आत्मसात कर ले रही हैं। भाव है कि भगवान् के दिव्यगुण भक्त के हृदय में घरकर गये हैं और उसे सदा के लिए द्रवित कर रहे हैं। प्रामाणिक कथन है- **संसारविषवृक्षस्य द्वे फले हि अमृतोपमे। कदाचित् केशवेभक्तिः तद्भक्तैर्वा समागमः।।** विषवृक्ष की तरह यह लौकिक जीवन अमृत के समान दो मधुर फल देता है, भगवान् केशव की भक्ति एवं परम भागवतों की संगति।

3. आळवार की मानव सेवा - दशक 4.10 में आळवार ने नारायण के अतिरिक्त अन्य देवों की उपासना को वर्जित किया है। नारायण के **श्रीचरण** को प्राप्त कर उनके **कैंकर्य** में रत रहना ही परम **पुरुषार्थ** है। तिरुवायमोळी की गाथा से आळवार ने अन्य संसारियों एवं श्रीवैष्णवों का कल्याण किया। **तिरुवाय. 4.10.11-** जो इसे याद कर लेंगे वे उस वैकुण्ठ को जायेंगे जहाँ से लौटना नहीं पड़ता। इनके उपदेश से संसारीजन सुधर गये एवं इनके समक्ष एकत्रित होकर इनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। यह अद्भुत

दृश्य देखकर परमपद के नित्यमुक्तगण तथा श्वेत द्वीप के परमैकांति भक्तगण भी उधर आ गये। इस गोष्ठी को देख आळवार अत्यानन्दित हो उनका मंगलाशासन करते हैं। पोलिग, पोलिग, पोलिग- **5.2.1-** भगवद्भक्त मंडल की जय हो, जय हो, जय हो। भगवान् के भक्तजन (भूत) इस धरातल पर घूमते हुए गायन व नर्तन कर रहे हैं। **दशक 5.2** के अनेक पदों में 'भूत' (बूदङ्गल अर्थात् भूतजन) शब्द का प्रयोग हुआ है। पूरे तिरुवायमोळी के मात्र इसी दशक में इसका प्रयोग हुआ है। 'भूत' का अर्थ है 'सत्तावान् भक्त' या 'चैतन्य' जो उपनिषद् से भी समर्थित है। इसी अभिप्राय से श्रीरामानुज स्वामी के जन्मस्थल '**श्रीपेरुम्बूदुर**' को **'भूतपुरी'** कहा जाता है। **5.2.5-** प्रभु के चैतन्य प्रतिनिधि विस्मयकारी ढ़ंग से पृथ्वी पर पधार गये हैं। **5.2.4-** सागरशायी प्रभु के चैतन्य प्रतिनिधि बहुत सारे गीत गा रहे हैं। **5.2.3-** कलि का लुढ़कता समय अब अन्त को प्राप्त हो रहा है। **5.2.6-** चक्रधारी प्रभु के भक्त (परमपद के नित्यसूरिगण तथा मुक्तगण, एवं श्वेतद्वीप के सिद्धगण) यहाँ रुककर पृथ्वी को युद्ध, भूख, दुष्कर्म तथा रोग से मुक्त रखेंगे। **5.2.2-** हमलोगों ने आँखों के प्रिय दृश्य देखा है।

कहा है - **त्वयि अस्ति मयि अस्ति च।** प्रह्लाद जी ने हिरण्यकशिपु को कहा- प्रभु तुम्हारे साथ तथा मेरे साथ भी हैं। परन्तु उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। **वा.रा. 6.14 - प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली।** सीता जी को भगवान् राम को दे दो। विभीषण जी की बात का रावण पर कोई असर नहीं पड़ा।

राक्षस एवं असुर भी आळवार के प्रभाव से भक्त बन गये। **5.2.6-** चक्रधारी प्रभु के भक्त (परमपद के नित्यसूरिगण तथा मुक्तगण, एवं श्वेतद्वीप के सिद्धगण) यहाँ रुककर पृथ्वी को युद्ध, भूख, दुष्कर्म तथा रोग से मुक्त रखेंगे। स्पष्ट है कि स्थान एवं काल (कलिकाल) के दोष (भूख-रोग आदि) से छुटकारा मिला है। **5.2.8-** पूजा अर्पित कर अपने को मुक्त करो। आळवार ने इसे ही सबके उत्थान का मार्ग बताया है। एक निष्काम कर्मयोगी की तरह आळवार मानव समुदाय को श्रीमन्नारायण के कैंकर्य को प्राप्त करने का मार्गदर्शन करते हैं।

5.2.7- जान लो कि तुम्हारे प्रिय देवगण तुम्हारी रक्षा केवल प्रभु की कृपा से ही कर पायेंगे। मार्कण्डेय इसके उदाहरण हैं। आळवार स्पष्ट करते हैं कि अन्य देवों की उपासना का कोई लाभ नहीं है। **5.2.8-** जो भी तुम अपने देवों को अर्पित करते हो सब प्रभु स्वयं स्वीकार करते हैं। जैसे एक राजा अपने गौरव को बढ़ाने के लिए गाँव व नगर में प्रधान को दायित्व देता है, उसी तरह भगवान् भी स्वयं ही अन्य देवों के रूप में विभिन्न दायित्व सँभालते हैं। **5.2.10-** सभी महान् लोकों में देवों का विशाल समूह शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि के साथ खड़े होकर भगवान् कृष्ण की पूजा करते हैं। भक्तों पर कलि के दोष का प्रभाव नहीं पड़ता है।

तिरुवाय. 5.2.2- हमलोगों ने आँखों के प्रिय दृश्य देखा है। हाँ देखाहै, हाँ देखा है। आओ भक्तों, पूजा अर्पित करके आनन्द में चिल्लाओ। जैसे सिद्धाञ्जन से रात में भी दिखता है, उसी तरह आळवार सबको प्रिय दृश्य

दिखा रहे हैं। पराशरभट्ट स्वामी **श्रीगुणरत्नकोश 12- मनसि विलसताऽक्ष्णा भक्ति सिद्धाञ्जनेन ।** हृदय की आँख के लिए भक्ति ही सिद्धाञ्जन है। **तिरुवाय. 5.5.2-** हमें दोष न लगाओ, हमारे हृदय की आँखों से देखो। आळवार का तात्पर्य है कि **वेदान्त** में छिपे रहस्य भक्ति रूपी **सिद्धाञ्जन** से दिखने लगते हैं। पाँचवें शतक को आळवार ने भक्ति के **सिद्धाञ्जन** की तरह सबको उपलब्ध कराया है जो नारायण प्रभु के श्रीचरण को प्राप्त करने का एक अचूक साधन है।

चूर्णिका 224 -

भगवान् के (1) **शरण्यत्व** दिव्यगुण का सहस्रगीति के छठे शतक में वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस शतक में (2) आळवार पर भगवान् की कृपा तथा उनकी ख्याति, तथा (3) आळवार का मानव को उपदेश का उल्लेख है।

सूत्र - 224 (6) - सं. मामपि सर्वेषामपि देवानां भूत्वा सुखं प्राप्नुतेति करुणया सर्वलोकभूतेभ्यः इत्युक्तानि समुद्रघोषोपि कण्ठादुपर्यपि यथा न भवेत्तथोपायत्वं शिलालिखितसदृशं कुर्वच्छरण्यज्ञानशक्तिं याथात्म्यज्ञानमात्रैः विना तत्रत्यः किमहं कल्पयेत्युक्तिप्रकारं विग्रहसंश्लेषभक्त्यतिशयफलत्वेन चानन्यगतिविशिष्टस्य स्वस्य चरणमेवोपायं कल्पितवति तावेव क्षेमत्वेन गृहीत्वैकचित्तो भूत्वा तिर्यग्भिः स्वाभिप्रायं निवेद्य विलम्बरोषे उपायेन निवृत्ते द्रवीभावं विना स्वीकरणेपि सन्निधायानुभवानुगुणं फलति अनन्तर-मेव सांगं यथा तथा सकृत्करणीयमिति पुराणपौराणिकैस्त्याजांशीकृतचिद्-चित्प्रापप्रापकाभासान् विसृज्य निवृत्तान् दृष्ट्वापि सर्वस्य सतोऽचिन्तयित्वा

त्यक्त्वाप्यनुभवताऽत्तपिवतेति तदीयशेषं कृत्वापि बाह्यविषयेष्ववस्थाप्य दर्शयित्वेति प्रसंगेपि नाशानुगुणं त्यक्त्वा पिता माता भोज्यान्नं महानिधि-शारिकासर्वानप्येकमेव कृत्वा शिथिलीभवेयं किं संचरेयम् किं न संदध्यात् किं निर्वाहकाहो एवंभूतार्त्या सह त्रिविक्रमत्वेन वामनसुन्दरस्वामी भूत्वा पादान् त्रीन् पावयितृमहावंचको नेत्रसमक्षं विस्तारवद्दिशाभूमिं उर्ध्वलोका-नपि स्पृष्टवद्विशलतामरसपुष्पे युग्मतामरसपुष्पे युग्मतामरसपुष्पे दृष्टुं अनिमिषापि यथाऽऽगच्छेयुस्तथाऽऽदृत्य प्रविष्टलोकतिलके दृष्ट्वा विश्लेषाश-क्तेति पूर्ववाक्यानुसंधानवन्तः विवादरहितमुपक्रम्य वेदपवित्र पर्यन्तमुक्त साध्योपायश्रवणशोकसजातीयानां दत्तवान् अन्यैकोपायरहिताः प्राविशमिति स्वसिद्धोपायनिष्ठायुक्त्यनुष्ठानाभ्याम् दर्शयन्ति षष्ठशतके।

सूत्रानुवाद - हमारे तथा हमसबके आश्रय श्रीमन्नारायण हैं। भगवान् का कृपा-वचन है कि संसार के मेरे सभी भक्त मेरे पावन श्रीचरण के सहारे जीवन यापन करें। वे सागर तरंगों की ध्वनि तथा कण्ठ के ऊपर का न होकर शिलालेख के समान रहें। भगवान् के अतिरिक्त अन्य उपाय के ज्ञान का अभाव है। उपाय का फल भगवान् जिनके भक्तगण सेवक हैं उनके बारे में ज्ञान की प्राप्ति है। जहाँ भगवान् अपने श्रीचरण को आश्रय बताते हैं उसके अतिरिक्त अन्य स्थान गन्तव्य नहीं हैं। वे अपने भक्तों पर पूरा दृष्टिपात करते हुए उनको संरक्षण प्रदान करते हैं। पूजा के फल स्वरूप तत्काल प्रपत्ति को अपनावे। पुराण तथा पौराणिक भगवान् के अतिरिक्त अन्य ज्ञान को अविद्या बताते हैं जो निरर्थक लौकिक फल देने वाले हैं।

ये सब निद्रावस्था में हाथ से पकड़े गये वस्तु की तरह छूट जाने वाले हैं। अपने पास पहुँचने का साधन भगवान् ही बताते हैं। सशक्त इन्द्रियाँ भगवान् से दूर करनेवाली हैं। भगवान् ही माता, पिता, भोज्यान्न, महानिधि, क्रीड़ा के उपकरण तथा कुटुम्बादि हैं। उनकी प्रशस्ति गाते भगवान् से संश्लेष प्राप्ति हेतु भक्त अतिशय उत्कटता से मोम की भाँति पिघलते हैं। धरती, आकाश एवं सब दिशाओं को नापने वाले त्रिविक्रम भगवान् के श्रीचरणारविन्द को प्राप्त करो जिन्होंने छल से वामन के रूप में तीन पग भूमि माँगी थी। उनके दर्शन के लिए नित्यसूरिगण सब लोकों में एकमात्र रत्नसदृश वेंकटम आते हैं। अपने को वे भगवान् का ही शरणार्थी बताते हैं। सिद्धोपाय के अतिरिक्त कुछ भी संरक्षण के योग्य नहीं है। छठे दशक में आळवार साध्य भक्ति पर ही अपना चित्त लगाते हैं।

विशेषार्थ - 1. भगवान् का शरण्यत्व - आळवार नायकी भाव में प्रभु को संदेश भेजते हैं। **तिरुवाय. 6.1.10-** ऊँची दीवाल वाले लंका को जलाकर भस्म करनेवाले तिरुवनवण्डूर के प्रभु से मेरे बारे में कहो, 'मैं भी जीवित हूँ'। भाव है कि आळवार प्रभु पर ही आश्रित हैं।

6.3.7- तिरुविन्नगर के प्रभु देवों से पूजे जाते हैं। आपके चरणारविन्द के सिवा कोई आश्रय नहीं है। अर्थात् वे सबके आश्रय हैं। **6.3.8-** वे देवों के स्थायी शरणदाता हैं। **6.10.11-** आश्रयदाता वेंकटम के प्रभु की प्रशस्ति सदा वैकुण्ठ का आनन्द देता है। **वा.रा. 6.17.17- सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने। निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थितम्।।** सबलोकों के शरणदाता भगवान् राघव से निवेदन करो कि विभीषण शरण माँग रहा है। विभीषण की यह उक्ति समुद्रघोष की तरह निरर्थक नहीं है। **वा.रा.18.33- सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।** जो एक बार भी मेरे पास आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर शरण माँगता है, उसे मैं समस्त प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ। यह मेरा सदा के लिए संकल्प है। यह भगवान् का स्वयं का वचन है, यह कोई कण्ठ के ऊपर से निकली हुई साधारण ध्वनि नहीं। भाव है कि भगवान् **प्रपत्ति** करनेवोले को शरण देकर उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। **तिरुवाय. 3.3.7-** श्यामले वेंकटम प्रभु की पूजा इन्द्र अन्य देवों के साथ करते हैं। सरोयोगी आळवार **मुदल तिरुवन्दादि 26**-तिरुवेंकटम् में पूजा करते हुए जो तुलसीधारी प्रभु का ध्यान करते हैं वे अपने सारे कर्मों के बोझ से मुक्त हो जाते हैं। भूत आळवार **इरण्डाम तिरुवन्दादि 72-** दिन के उजाले में बन्दरगण वेंकटम के बोगों से फूल चुनकर प्रभु की पूजा करते हैं। महद् / पेयाळवार **मुनराम् तिरुवन्दादि 70-** वेंकटम् प्रभु की पूजा करते हाथी अपनी सूँढ़ से मधु टपकते फूल अर्पित कर सिर नवाते हैं। देव, मनुष्य तथा तिर्यक् आदि सबसे वेंकटम प्रभु सम्पूजित हैं। नम्माळवार बड़े प्रेम से नित्यसूरिगणों के

साथ रहनेवाले शिलालेख पर अमिट अक्षरों की तरह वेंकटम प्रभु के दिव्यगुणों की प्रशस्ति गाते हैं।

2. आळवार पर भगवान् की कृपा तथा आळवार की ख्याति - श्रीसूक्ति - अविद्यातो देवे परिवृद्धतया वा विदितया, स्वभक्तेर्भूम्ना वा जगति गतिमन्मामविदुषां, गतिगम्यश्चासौ हरिरिति जितन्ताह्वयमनो, रहस्यं व्याजह्रे स खलु भगवान् शौनकमुनिः। भगवान् शौनकमुनि **जितन्तमन्त्र** का अर्थ समझाते हैं। अविद्या के कारण या भगवान् समझ के परे हैं या भक्ति की परिपूर्णता होने पर जो उनके अतिरिक्त अन्य कोई **उपाय** नहीं जानता उसके लिए भगवान् ही **उपाय** तथा **उपेय** दोनों हैं। **5.8.3-** आपके अतिरिक्त अन्य से मैं रक्षा की पुकार नहीं करता। **स्वरूपयाथात्म्य ज्ञान** से भक्त यह समझ पाता है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य की शरणागति नहीं की जा सकती। आळवार की तीन बाते हैं - **अज्ञान-आसक्ति, स्वरूपयाथात्म्य ज्ञान,** तथा **भक्ति।** भगवान् ही उपाय हैं इसको नहीं जानना **अज्ञान** है। अन्य उपाय के अनुशरण न करने की शक्ति का अभाव **आसक्ति** है। **स्वरूपयाथात्म्य ज्ञान** से जीव यह समझ पाता है कि वह प्रभुका सेवक है। एतत्सम्बन्धि उल्लेख **श्रीवचनभूषण 41-49** द्रष्टव्य है। प्रभु के श्रीपाद को पकड़े रहना ही **उपाय** है। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय स्वीकार्य नहीं है। अर्चावतार की शरणागति करने वाले तीन तरह के प्रपन्न हैं। हमलोग जैसे समान्यजन **अज्ञानासक्ति** वाले हैं जो विना समझे बूझे शरणागति करते हैं। **स्वरूपयाथात्म्य ज्ञान** वाले आचार्यगण हैं। **भक्ति** की श्रेणीवाले

आळवार हैं। **तिरुवाय. 5.7.2-** लंका के नाश करनेवाले प्रभु! मैं न तो यहाँ हूँ और न वहाँ हूँ। आपकी दर्शन की इच्छा से आक्रान्त मैं कहीं नहीं हूँ। भक्त को संशय है कि वह उपाय का अनुशरण कर सकेगा। **5.8.3-** मैं क्या कर सकती हूँ? आपने मेरे लिए क्या किया है? कौन हमारी रक्षा कर सकता है? आळवार सोंचते हैं कि हमने प्रभु के हृदय को जीतने हेतु कुछ किया भी नहीं है और कुछ कर भी नहीं सकते। **6.10.4-** वेंकटम प्रभु से विनती है कि इस क्षुद्र जीव को आपके चरणारविन्द प्राप्त करने का मार्ग बताइये।

6.8.2- नायकी तोता दूत को समझाती है कि उन्हें हमारे प्रेम के बारे में बताकर शीघ् आ जाओ। भाव है कि आळवार भगवान् के दिव्यगुणों के आनन्द में डूबे रहना चाहते हैं और उनके अनुसंधान करते हुए वे प्रभु के श्रीपाद की प्रपत्ति करते हैं। **5.8.8-** आप हमारी यातना का अन्त करें या न करें आप ही एकमात्र आश्रय हैं। जब यह शरीर थक जाये एवं मेरा अन्त आजाये तो कृपा करके अपने चरण में स्थान प्रदान कीजिए। तात्पर्य है कि आळवार स्वयं तो असमर्थ हैं और अब भगवान् को ही उन्हें स्वीकार करना है। **5.7.10-** आपने अपने श्रीचरण मुझे एकमात्र आश्रय के रूप में दिया है। **5.8.11-** जो कृष्ण के चरणाश्रित हो गये हैं। **5.9.11-** ज्ञानवान एवं समझदार शठकोपन के ये पद शान्त तिरुवल्लवाल के प्रभु के बारे में हैं। **5.10.11-** शेषशायी प्रभु के चरणारविन्द को एकमात्र आश्रय के रूप में पूजा करो। आळवार तिर्यक (पक्षी दूतों) को भी अपना एवं अपने जैसा

समझते हैं। **6.1.1-** नमी भरे जमीन से कीड़ा चुगने वाले पक्षी! लाल बद्री फल जैसे होंठ एवं चक्रधारी प्रभु सुन्दर विकासशील तिरुवन्वण्डूर में रहते हैं। उन्हें जाकर मेरे प्रेम की दयनीय स्थिति के बारे में बताओ। **6.1.10-** विनती है, बताओ कि मैं भी जीवित हूँ। भाव है कि 6.1.1 से लेकर 6.1.10 तक में एक मात्र भगवान् को ही रक्षक कहा है। अपने जीवन को **पारतन्त्र्य** एवं **शेषत्व** के कारण धारण किये रहना अपने वश में नहीं है। आळवार अपने जीवन को भगवान् के प्रेम के ही कारण धारण करते हुए बता रहे हैं। कहा है- **उभाभ्यामेव पक्षाभ्याम्** । पक्षी अपने दोनों पंखों के सहारे आकाश में भ्रमण करते हैं। भक्त "ज्ञान" एवं "अनुष्ठान" रूपी पंखों के सहारे हीं भगवान् के चरणारविन्द को प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु प्रपत्ति में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् की कृपा से आळवार को उनके चरणारविन्द का लाभ मिला परन्तु दूत भेजने पर भी भगवान् के आने में विलम्ब से आळवार प्रणयरोष से ग्रस्त हो गये। **तिरुवाय. 6.2.2-** महाशय! जाइये। **6.2.5-** महाशय! झूठ मत बोलिये। **6.2.9-** अपने कमल-पाश में उलझाकर हमारे हृदय को द्रवित करने के लिए हमारे बालू के महलों को कुचलकर वहाँ रखे भोजन को अधिकार में ले लिया। ये सब गतिविधियाँ भगवान् की कृपा के **उपलक्षण** हैं। दशक 5.10 में भगवान् के जन्म की आश्चर्यमयी घटनाओं के उल्लेख हैं जो उनके अवतार के दिव्यगुणों को बताते हैं। ये घटनायें हमारी आत्मा को आत्मसात कर ले रही हैं (5.10.1)। ये सब हमारे हृदय को द्रवित करते हैं (5.10.3)। ये सब हमारे हृदय में घुसकर हमारी आत्मा को द्रवित करते हैं (5.10.4, 5.10.10)। 6.4.1 से

लेकर 6.4.10 तक में आळवार को सच्चे उपाय का ज्ञान होता है। परन्तु उससे अहंकार न हो जाये आळवार **प्रपत्ति** को अंतिम सहारा मानते हैं।

अग्नि पुराण तथा भविष्य पुराण में त्याज्य कर्मों को बताया है। इसके आधार पर पौराणिक भगवद् रामानुज ने शरणागति गद्य में कहा है - **पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरुन्।**

रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च।।

सर्वधर्मांश्च संत्यज्य सर्वकामांशच साक्षरान्।

लोकविक्रान्त चरणौ शरणं ते व्रजं विभो।। विभो! पिता, माता, पत्नी, पुत्र, बन्धु, सखा, गुरु, रत्न, धन-धान्य, क्षेत्र, गृह, समस्त साधन और साध्य, तथा आत्मानुभव (कैवल्य) पर्यन्त समस्त कामनाओं को त्याग कर समस्त लोकों के अधिष्ठाता (त्रिविक्रम आदि अवतार स्वरूपों) के चरणों की शरण लेता हूँ। कहा है - **चित् अचित् प्राप्य प्रापक आभासान् विसृज्य।** जड़-चेतन, किसको प्राप्त करना तथा कौन प्राप्त करने वाला के मिथ्या ज्ञान को त्याग कर प्रभु की प्रपत्ति ग्रहण करे। उपेय एवं उपाय में अन्तर समझना अज्ञान (मिथ्या ज्ञान) है।

तैत्तिरीय उप. 1.11- मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। माता एवं पिता में देव-बुद्धि रखो। माता एवं पिता की सेवा भगवान् के कैंकर्य की तरह है। स्त्री पारिवारिक जीवन निर्वाह में सहायक है। अतः अन्य उपाय की तरह है। कहा है- **पुंनाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्र।** नरक से त्राण दिलाने वाले को

पुत्र कहते हैं। इसमें भी जीवन के एकमात्र उपायरूप भगवान् से भिन्नता हो जाती है। इसी तरह के भाव बन्धु, मित्र, रत्न तथा धनादि में होने से एकमात्र भगवद् प्रपत्तिरूप उपाय तथा उनके कैंकर्यरूप फल प्राप्ति हेतु इन्हें त्यागना है। तात्पर्य है कि उपायान्तर अथवा उपेयान्तर का सहकारी होने के रूप में इनका त्याग करना है। **तिरुवाय. 6.5.7-** सजनी! यह मृगनयनी मोरनी तुमलोंगों के हाथ से निकल चुकी है। तुलैविल्लीमंगलम् के सिवा यह कुछ नहीं सुनती। अर्थात् यह नायकी अपनोंजनों से नींद में हाथ से पकड़े हुए किसी वस्तु के छूट कर गिरने के समान है। **6.6.1-** हमारी गोरी बेटी अपना कंगन गँवा चुकी है। **6.7.9-** सब कुछ छोड़कर घर से बाहर चली गयी है। हमलोगों के लिए उसे कोई चिन्ता नहीं है। **6.7.6-** यह मृगछौनी अब हमारे किसी काम के नहीं है, घर छोड़कर चली गयी। **गद्यत्रय - सर्वान् भोगान् परित्यज्य** - सभी भोगों का परित्याग कर दे। **6.8.1**- श्रेय पक्षीगण! तुमलोग सुनहले धरती एवं स्वर्ग पर राज्य करो। तात्पर्य है कि आळवार भगवान् को प्राप्त करनें सहायक दूतरूप भक्तों को सबकुछ अर्पित करते हैं। **6.8.2-** अपने हाथ से मक्खन मिश्रित खीर तुम्हें खिलाऊँगी। **6.8.3-** शीघ्र लौटकर हमारे जूड़े के फूल पर उनका सुगंध बिखेरो।

6.9.8- क्या अभी भी दूर रहकर आप अपनी युक्ति से हमारी हत्या करेंगे? **6.9.9-** अलग रहकर क्या अभी भी हमारा नाश करेंगे? तात्पर्य है कि प्रपत्ति के अतिरिक्त अन्य उपाय बताकर आप अगर अनुपस्थित रहेंगे तो

हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं है। आळवार सोंचते हैं कि मरते समय हमें इन्द्रियाँ आदि कारणों को अवश्य बोल देना चाहिए जो हमारे ध्यान को भगवान् की तरफ से अन्यत्र हटाते हैं। **शरणागति गद्य - त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च गुरुस्त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव।** इसी तरह का भाव आळवार व्यक्त करते हैं। **तिरुवाय. 6.5.11-** ये शठकोपन् के दशक हैं जो मन, वचन एवं कर्म से प्रभु को अपने माँ एवं पिता के रूप में पा चुके हैं। **6.7.1-** हमारा भोजन, पेय एवं पान जो हम चबाते हैं सभी कृष्ण हैं। **6.7.11-** इस दशक को याद करने वाले को दिव्य धरा का शासनाधिकार मिलेगा। **6.7.3-** मैना, तोतो, गेंद, खिलौना, गुलदस्ता आदि सभी प्रभु थे। ये सब सांसारिक वस्तु होने पर भी भगवद् नाम से जुड़ जाने पर उन्हें प्राप्त करने में सहायक हैं। **6.9.6-** प्रभु कब तक हम आपके लिए तड़पते रहेंगे। आग में मोम की तरह पिघलकर हम धरा पर घूमते हैं। **6.9.3-** कमल निवासिनी लक्ष्मी के साथ प्रभु! कितने दिन हम विछुड़कर रहेंगे? कहा है - **श्रिया सार्धं।** लक्ष्मीजी के साथ वैकुण्ठ में रहकर आप तीनों लोक के रक्षक हैं। आपके विश्लेष में मोम की तरह बहते हुए त्रिविक्रम भगवान् के श्रीचरण को सहने में हम अक्षम हैं। **6.10.5-** मरुद वृक्षों (यमलार्जुन) में घुसने वाले आदि प्रभु। धरा मापनेवाले त्रिविक्रम प्रभु वेंकटम में हैं और उनके चरणारविन्द पाने की प्रबल इच्छा रखते हैं। **लोकविक्रान्त चरणौ शरणं ते व्रजं विभो -** हम तीनों लोक को मापने वाले त्रिविक्रम प्रभु की शरण ग्रहण करते हैं। त्रिविक्रम भगवान् के सौलभ्य गुण की महत्ता बताते हैं कि विना किसी भेदभाव के

उन्होंने उनके चरण वशिष्ठ जी तथा एक चाण्डाल के ऊपर पड़े। इसमें भगवान् का वात्सल्य गुण भी झलकता है जिनके चरण भक्त तथा अभक्त सबके ऊपर पड़े। उपर्युक्त श्लोक का **"ते"** प्रभु के **स्वामित्व** को बताने वाला है। **तिरुवाय. 5.7.11-** यह दशक देवनायक, नारायण एवं त्रिविक्रम प्रभु के श्रीचरण की प्रशस्ति में है। **5.9.6-** सुन्दर वामन प्रभु। **5.10.9-** आपने तीन पग जमीन माँगी। **6.1.11-** धरा पर अधिकार करनेवाले। भक्तों के लिए प्रभु ने वामन (बौना बालक) रूप धारण किया और बलि के यज्ञ में गये। **6.3.11-** हमारी आँखों के सामने अति विशाल रूप धारण कर लिया। जबकि आपने एक सुन्दर भिक्षु छोकरे के रूप में आकर कहा था, 'देखो बलि'। **6.4.6-** चमत्कारों के साथ आपने धरा नापा। **6.5.3-** धरा नापा। **6.6.1-** आपने वामन रूप में धरा को नापा है। **6.9.2-** विस्मयकारी प्रभु! आपने धरा एवं आकाश नापा। **6.9.6-** प्रभु! एक पग से फैलकर ऊपर के लोक में छा गये। **6.9.9-** क्या उस चरणारविन्द से जुड़ने का समय नहीं आया है? **6.10.6-** वेंकटम प्रभु के हर दिन नित्यसूरीगण मन, वचन एवं कर्म से प्रशस्ति गाकर पूजा करते हैं जिन्होंने समस्त लोकों को चरणों से नापा। **3.3.6-** वेंकटम प्रभु सब कर्मों का नाश करते हैं। संसार को नापने से थके प्रभु वेंकटम के सुशीतल झरनों के बीच प्यास बुझाकर विश्रामपूर्वक खड़े हैं।

तिरुवेंकटम् संसार के रत्न हैं। **तिरुवाय. 6.10.10-** कभी अलग न होनेवाली लक्ष्मी वेंकट प्रभु के वक्षस्थल पर विराजती हैं। अनुपम यशवाले, तीनों

लोक के नाथ, मेरे नाथ, अनुपम देवों व मुनिवरों के नाथ, वेंकटाद्रिनाथ, आपके चरण पर गिरकर यह आश्रयविहीन जीव अपना आश्रय पा गया है। 'अतुलनीय यश वाले' से **वात्सल्य गुण**, 'तीन लोक को धारण करने वाले' से **स्वामीत्व गुण,** 'मेरे नाथ' से **सौशील्य गुण, '**अनुपम देवों व मुनिवरों के वेंकटाद्रि नाथ' से **सौलभ्य गुण** प्रकाशित होते हैं। 'आपके चरणों से आश्रयविहीन जीव' से अन्य किसी लक्ष्य के अभाव का बोध होता है। यह द्वय मन्त्र के **'चरणौ'** का प्रतीक है। 'आश्रय पा गये' से द्वय मन्त्र का '**शरणम् प्रपद्ये**' का तात्पर्य है। इस पद को गाकर आळवार वेंकटनाथ के श्रीचरणों को प्राप्त कर गये। **साद्ध्योपाय भक्ति** को सुरक्षित रखने के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं है। **तिरुवाय. 1.3.5-** भ्रम का त्याग करके अपने बन्धनों को काट दो। छः दर्शन सिद्धान्तों के द्वन्द का प्रभु अन्त करते हैं। **5.2.9-** संसार पावन जनों एवं भक्तों से भर गया है जो ज्ञान के मार्ग में विना रुके अच्युत की पूजा खिले फूल, सुगंधित अग्नि, चन्दन, जल, दीप तथा वैदिक मन्त्रों से करते हैं। भक्तों! प्रेमपूर्ण पूजा में भाग लेकर अपने को मुक्त करो। जिज्ञासुओं को आळवार इसके अनुशरण का परामर्श करते हैं।

3. आळवार का मानव को उपदेश- तिरुवाय. 5.7.5- कण-कण में व्याप्त रहकर विस्मयकारी कृत्यों के श्यामल प्रभु! क्या यह सम्भव है कि मैं आपको बुलाऊँ? शिरीवरमंगल नगर (तोताद्री) के प्रभु जहाँ ईश्वरीय जन वैदिक यज्ञ करते हैं; यह मैंने देखा है कि आप पूजा के लिए उपलब्ध हैं।

साधन एवं साध्य भक्ति की कठिनाईयों को ध्यान में रखकर आळवार कहते हैं- **5.8.3-** हमारा बचा हुआ जीवन आपके चरणारविन्द के आश्रय में बीते। छठे शतक में आळवार **साध्य भक्ति** पर मन केन्द्रित करते हैं। **6.3.9-** सुनहले दीवारों से घिरे तिरुविन्नगर के अद्वितीय प्रभु! आपने अपने दिव्य श्रीचरण की साया प्रदान की। **6.3.10-** आपके श्रीचरण ही हमारे संरक्षक हैं, इस सत्य को समझो। **6.10.10-** वेंकटाद्रिनाथ! आपके चरण पर गिरकर यह आश्रयविहीन जीव अपना आश्रय पा गया है। स्पष्ट है कि प्रभु के दिव्य गुणों को गाकर आळवार **साद्ध्योपाय** को बताते हैं। अर्थात् भगवान् के श्रीचरण ही एकमात्र साद्ध्य (प्राप्य) उपाय हैं।

****** आचार्य हृदय का चौथा प्रकरण पूरा हुआ ******

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद्वरवरमुनये नमः

चौथा प्रकरण

चौथे (अंतिम) प्रकरण में 219 से 234 तक कुल 16 सूत्र हैं।

चूर्णिका 225 -

भगवान् के प्रापकत्व दिव्यगुण का सहस्रगीति के सातवें शतक में वर्णन है। यह तीन भागों में है - 1. प्रापकत्व (शक्तत्व / सर्वशक्तिमान् व मधुरतम उपाय), 2. नम्माळवार पर भगवान् का अनुग्रह एवं आळवार की उपलब्धि, 3. मानव को आळवार का उपदेश।

सूत्र - 225 (7) - सं. संख्यारहितगुणा उचितस्थानदुःखविलक्षणभूत आश्चर्य-भूतानेकोपायान् अकार्षीरित्येवमाश्चर्यशक्तियोगेन ज्ञानं प्राप्तानां दुर्लभ वैकुण्ठप्रसाद पितृप्रापकत्वमल्प तृणकिमिद्वेषिणोपि प्रापणसमर्थ सर्वशक्ति-युक्ते पादविश्लेषाशक्तं स्व विश्लेषहेतूनां मध्ये स्थापितवति दृष्ट्वा बाधार्थ-मस्मददा अहो रतिसाधनफलभूताक्रोशेन सह विनिंद्य नक्तं दिवमपि क्रमरहितमार्ति श्रीरङ्गविमानश्रीद्वारे मर्यादाहीनप्रश्नं कृत्वाऽऽश्वासनाशक्यं पराजयं प्राप्यैकीभूय यथा तिष्ठेत्तथा कृतबलाधानमन्यदप्यभ्यासकर्तृहानौ संकुच्य प्राचीनासहायता घोष उदित्य परिविरोधिन्युद्युक्ते सति उत्थित शयितक्लेशे प्रवर्तमाने उपाधिकारदोषं विनाश्चर्याणि संप्राद्य स्थापकाश्चर्यं पृष्टवति ऐच्छिकं स्थापयित्वोचितस्वीकृतस्वपरप्रयोजनं प्रसादितवति किं उक्त्वा कस्मिन्काले भूमिरुर्ध्वलोको जलं भूतो भविष्यन् किमपि इत्युच्यमा-

नोपकारस्मृत्या सह स्वचरितश्रवणं यथा न भवेत्तथा आनन्दाभिवृद्धिस्थित-वद्भूदेवसमूहे गानश्रवणानुगुणं गानगोष्ठीमपि नित्यसूरिनिर्वाहको यथा जानीयात्तथा विस्मृतवन्तः चरमोपायपराणां दीर्घनगरे तच्छेदकचरणं विनान्य देवशून्यानुसंधाय सेवध्वमिति प्राप्य साधनावधिं प्रीत्या प्रकाशयन्ति सप्तं शतके।

सूत्रानुवाद - प्रभु के असंख्य दिव्यगुण हैं। भक्तों के रक्षार्थ अनेकों उपाय पर विचार करते हुए अपने विस्मयकारी शक्ति से वे सुख एवं दुःख के बीच अनेकों नाम तथा रूप धारण करते हैं। उदारतावश वे अपने विचारवान् भक्तों को वैकुण्ठ प्राप्ति हेतु उपाय बताते हैं। सर्वशक्तिमान् होने से वे चींटी, तृणादि तथा अपने द्वेषियों पर भी अनुग्रह करते हैं। सर्वसमर्पित आळवार को जान-बूझकर वे अपने चरणोपाय से दूर रखते हैं। इन्द्रयजनित दोष से दुःखी आळवार अपने को अन्य साधनों में लगाये रखने के लिए भगवान् पर रोष प्रकट करते हैं। प्रभु के प्रति अतिशय प्रेमवश आळवार दिन-रात का विना विचार किये नायकी स्वरूप में निमग्न रहते हैं। माँ स्वरूप में स्वंय नायकी शयनावस्था वाले (श्रीरङ्गम के) प्रभु के मन्दिर द्वार पर अपनी स्थिति का बखान करती है। माँ निष्फल रहती हैं। अपनी दृढ़ता से भगवान् को प्रसन्न देख नायकी उत्साहित हो जाती हैं। भगवान् को भूले रहने वाले लौकिकों का स्मरण आते ही आळवार के उत्साह में कमी होने लगती है। अतः वे एकान्त में भगवद् गौरव का गान करते हैं। अवतार काल के प्रभु के दुःख-सुख से आळवार भी दुःख-सुख के उतार-चढ़ाव से ग्रस्त हो जाते हैं। भगवान् के उपाय एवं अधिकार को निरापद

समझते हुए आळवार अपने को संसार में ही परित्यक्त देख उनके प्रति अपनी शिकायत को अभिव्यक्त करते हैं। परन्तु आळवार के मुख से भगवान् अपनी गाथा गाने जाने हेतु इन्हें संसार में ही रखते हैं। भगवान् को सहायक देख आळवार गौरव-गाथा गाते रहते हैं। इनकी गाथा की तुलना में नित्यसूरियों के सामूहिक गान से प्रभु उदासीन रहते हैं। भगवान् ही जन्मादि के जाल को काट सकते हैं। **प्रपत्ति** जैसे **उपाय** की महानता को समझ प्रभु के दिव्यगुणों के विचार में आळवार मग्न रहते हैं।

विशेषार्थ - 1. **प्रभु के प्रापकत्व गुण** - **तिरुवाय. 7.1.1-** अनन्त दिव्यगुणवाले श्रेयस्वान् प्रभु! **7.1.11-** सृष्टि, पालन एवं संहार के तीन गुणों से सम्पन्न प्रभु की प्रशस्ति। भगवान् ने सत्त्व, रज एवं तम रूप तीन गुण के प्रतीक तीन देवों को प्रकट कर उन्हें सृष्टि, पालन तथा संहार के कार्य का भार दिया। **7.2.7-** प्रभु ने सुख एवं दुःख दोनों बनाया। भाव है कि इसका प्रभाव समय एवं स्थान पर निर्भर करता है। **7.3.11-** अनगिनत युगों से विश्व की रक्षा हेतु प्रभु अनेकों रूप एवं नाम धारण करते हैं। **7.8.6-** हे छली वामन प्रभु! **7.8.4-** क्या यह सब प्राणी एवं वस्तुयें स्थायी हैं या अस्थायी? भाव है कि जीव के रक्षणार्थ यह प्रभु के अन्य उपायों में है। **7.5.11-** खड़ा होकर उनकी पूजा करने वाले भक्त को कृष्ण आनन्द प्रदान करते हैं। **7.6.10-** अपनी करुणा से हमें वैकुण्ठ का अमूल्य आरोहण प्रदान करेंगे। अर्थात् भक्त की यह दृढ़ भावना है कि प्रभु ही **उपाय** तथा **उपेय** दोनों स्वयं हैं। लौकिक जन भ्रमवश मिथ्या उपाय में उलझे रहते हैं। बहुत कृपा करके प्रभु सच्चा उपाय दिखाते हैं जिससे

अन्ततः वैकुण्ठ मिल जाता है। **7.5.1-** तृण या कीड़े मकोड़े को भी राम जी ने अन्य जड़-चेतन के साथ ऊँचा स्थान दिया। **7.5.2-** आपने विभीषण को राज्य दिया तथा अन्य असुरों को मुक्ति दी। **7.5.3-** भगवान् कृष्ण के कट्टर शत्रु शिशुपाल ने उनको कान पका देनीवाली भद्दी गालियाँ दी तब भी उसे मुक्ति मिली। तात्पर्य है कि भगवान् अपने **स्वातन्त्र्य** से किसी के ऊपर अनुग्रह कर **प्रापकत्व गुण** (मधुरतम उपाय) के सहारे उसको मुक्ति का उत्तमोत्तम फल देते हैं।

2. नम्माळवार पर भगवान् का अनुग्रह एवं आळवार की उपलब्धि -

तिरुवाय. 6.10.9- हम आपके श्रीचरण से एक क्षण का विलगाव नहीं सह सकते। **6.10.10-** आपके चरण पर गिरकर यह आश्रयविहीन जीव अपना आश्रय पा गया है। **5.7.8-** भ्रम उत्पन्न करनेवाली आपकी दी हुई दुष्ट इन्द्रियाँ एक दिन हमें छोड़ देंगी। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आळवार की रोषपूर्ण शिकायत है, 'आपने भी मुझे छोड़ दिया है और कचरे के ढ़ेर में डाल दिया है'। **7.1.1-** इस शरीर की पाँच इन्द्रियों के माध्यम से आप वेदना देते हैं। **7.1.10-** आपने यह शरीर ढ़ोने के लिए तथा इसके वजन से दब जाने के लिए छोड़ दिया है। ये पाँच हमें घोर तूफान की ओर खींचती हैं तथा कष्टपूर्ण प्रताड़ना देती हैं। **7.1.5-** एक विशाल गोल घूमने वाली घिरनी पर ये पाँच इन्द्रियाँ हमें घुमाकर रोगग्रस्त कर देती हैं। **7.1.10-** पाँचों को उनकी शक्ति एवं सबकुछ के साथ विनाश की कृपा कीजिये। विनती है, हमारी बात सुन लें। तात्पर्य है कि पाँचों के दमन करने का **उपाय** भगवान् से मिलन में विलम्ब उत्पन्न करेगा। **श्रीवचनभूषण**

370- गली (वीथी) में दौड़ता हुआ छोटा बच्चा जब गिरता है तब घर आकर माँ की पीठ को पीटता है कि अगर तू चाहती तो मैं वहाँ नहीं गिरता। भाव है कि आळवार अपनी रक्षा के लिए भगवान् पर (माँ पर बच्चे की तरह) अपना अधिकार समझ उनको स्मरण कराते हैं।

तिरुवाय. 7.2.1- नायकी रात-दिन सोती नहीं। **7.2.4-** जैसे छोड़ी गयी थी उसी अवस्था में रहती है, उठती है और पुनः गिर जाती है। **7.2.5-** सोचते हुए अचेत हो जाती है एवं पुनः होश में आती है। ये सब नायकी की अवस्था बताते हैं। प्रामाणिक कथन है- **आशा चिन्ता स्मृतिः कीर्तिः विलापो उन्माद-विभ्रमाः मोहो व्याधिर्मृतिश्चेति विकारा कामजा दश।** नारी कामसुख की ये दश दशायें हैं जो आळवार पर भी चरितार्थ होता है। नायकी की ये दशा देख माँ भगवान् रङ्गनाथ के द्वार पर पुकार लगाती है। **7.2.3-** दीवारों से घिरे हे रङ्गा! आपने इसके साथ यह क्या किया है? **7.2.4-** हे रङ्गा! इसके लिए आपकी क्या मंशा है? आळवार माँ तथा उनकी सखियों को कहते हैं - **7.3.9-** सजनी! विनती है, हमें रोको नहीं। **7.3.5-** हमने अपने नारी-गुण कृष्ण पर न्योछावर कर दिया है। अर्थात् नायकी की वेदना किसी अन्य से नहीं मिटने को है। नायकी का **पारतन्त्र्य** भी भगवान् को समर्पित है। भगवान् आळवार को अपनाना चाहते हैं। अपने अवतारों की विजयी गाथाओं में आळवार निमग्न कर देते हैं जिससे कि वेदना को भूलकर भगवान् की विजयी घटनाओं से आनन्दित हो जायें। **7.4.11-** गोवर्धन उठाने वाले प्रभु के भक्तों के साथ खड़े होनेवाले कृतज्ञ शठकोपन के ये पद गाने से विजय मिलती है। **7.5.1-** क्यों कोई रामजी को छोड़कर

किसी अन्य के बारे में अध्ययन करेगा? तात्पर्य है कि लौकिकजन आळवार की भावना को नहीं समझ पा रहे हैं, इसलिए 7.5.1 पद से उनलोगों को समझाते हैं। **7.6.1 -** विश्व की सृष्टि रचने वाला महान् नाभिकमल! राजीवनयन प्रभु इस भटके जीव के संरक्षक! **7.7.1-** नारियों के प्राण हरनेवाले ये दोनों यमदूत हैं या सागर सा सलोने प्रभु की सुन्दर आँखें? नूतन कमल के फूल की तरह वे सर्वत्र दिखतीं हैं। **7.7.8-** प्रभु की धनुष की तरह भौहें! चन्द्र-चिह्नित ललाट! प्रभु की विजय-गाथा से प्रसन्न आळवार पुनः उनके स्वरूप-सौंदर्य के स्मरण से उनसे मिल न पाने की वेदना से ग्रस्त हो उठते है। इस तरह का मानसिक उतार-चढ़ाव की बार-बार पुनरावृत्ति होती है। भगवान् को **उपाय-दोष** की आशंका होती है कि कहीं आळवार के बताये उपाय में कोई कमी तो नहीं हो जा रही है। दूसरी तरफ आळवार को **अधिकार-दोष** से ग्रस्त होना पड़ता है। अर्थात् आळवार इतने महान् भगवान् से मिलने के योग्य अधिकारी हैं कि नहीं, यह आशंका उनके मन में उठ जाती है। **7.8.5-** आपने हमें अन्य इच्छाओं से मुक्तकर हमें अपना बना लिया। वदन, साँस एवं जन्म-मरणादि सब आप हैं। आपकी अनेकों विस्मयकारी कृतियाँ हैं। क्या है यह सब छल? आळवार इस यातना से दुःखी हैं कि **कर्म जनित** कृत्यों के कारण संसार में उलझे रहने का भगवान् ने उनको पूर्ण ज्ञान देकर भी उन्हें परमपद नहीं ले जा रहे हैं। भगवान् अपनी मंशा को स्पष्ट करते हैं कि हमारी गाथा गाकर आप लोगों को कल्याण का मार्ग दिखाइये। **7.9.8-** चक्रधारी प्रभु ने हमें अपना बना लिया एवं हमें योग्यता देकर स्वयं मधुर गीत गाये। पूरा 7.9 दशक इसी

भाव से भरा है। व्यास, पराशर, वाल्मीकि तथा तीनों प्रथम आळवार - सर, भूत, महय को छोड़कर प्रभु ने स्वयं हमारी वाणी में विराजकर अपनी गाथा गायी है। **7.9.1-** प्रतिदिन आप हमें अपनाते हैं और मेरे माध्यम से तमिळ गीत गाते हैं। **7.9.7-** प्रभु को हम अपने जीभर कब जान सकेंगे? **7.9.8-** यद्यपि कि हम भूलोक, स्वर्गलोक, परमपद तथा क्षीराब्धि के समस्त निवासियों को मिलकर भी प्रभु की गाथा गाने से कभी तृप्त हो पायेंगे? भाव है कि ये सब मिलकर भी प्रभु की स्वयं की वाणी जैसी मधुर नहीं हो पायेंगी। **7.9.10-** मेरी जीभ से गाने की सहायता के लिए मैं आपको क्या पारितोषिक दे सकता हूँ? अर्थात् उभयविभूति में इसके समतुल्य कुछ भी नहीं है। यहाँ तककि मेरी आत्मा भी आपकी है, मेरे पास तो कुछ भी मेरा अपना नहीं है। परमपद का **सामगान** भी सुनना आप भूल गये हैं। रामायण में भगवान् राम भी अपनी गाथा स्वयं सुने हैं। **वा.रा. 7.94.32- शुश्राव ...सुस्वरयुक्तं।** आळवार परमपद जानें में अपनी अभिरुचि त्यागकर इसके मधुर गान में लीन हो गये। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरु. 10.8-** प्रभु राम ने अपने चरित्र का गान मिथिला की बेटी के द्वारा जगत् के उद्धार हेतु उत्पन्न किये गये युगल किशोर लव एवं कुश के मूँगावत होठों से सुना। सीता जी की अनुपस्थिति में रामजी ने अकेले इसे सुना। **तिरुवारन्विलै** में भगवान् श्रीवैष्णवों के साथ इसे सुना। **7.10.1-** कब वह दिन आयेगा जब हम तिरुवारन्विलै में सुख से पद्मस्थ वक्षस्थला लक्ष्मी जी के साथ भगवान् की करबद्ध परिक्रमा करेंगे? आप हमारे नाथ हैं एवं स्नेहवश हमपर शासन करते हैं तथा सातों लोक में

आनन्द का संचार करते हैं। **7.10.10-** हमने तिरुवारन्विलै प्रभु के प्रति समर्पण कर दिया है जहाँ भक्तजन मन, वचन एवं कर्म से आपकी पूजा करते हैं। आळवार प्रभु को गाथा-गान का **कैंकर्य** समर्पित कर रहे हैं। भगवान् आळवार को परखते हैं कि इनकी परमपद की लालसा शेष है कि नहीं। आळवार कहते हैं कि अब इस कैंकर्य के हेतु हमने अपना सब कुछ आपको समर्पित कर दिया है। **7.10.10,11-** आप हमारे अन्तःमन को जानते हैं। अब अन्य कोई इच्छा छिपी नहीं है। यह पावन दशक के पाठ करते भक्तों के बारे में नित्यसूरिजन महर्षियों से कहेंगे - 'ये भक्तजन अत्यन्त पवित्र हैं'। सभी ज्ञान के आदिकारण प्रभु परमपद के 'सामगान के **हावु, हावु**' को भी सुनना भूल जाते हैं। **हावु** उपनिषद (**तैत्ति. 3.10**) की उक्ति है जो प्रभु को अत्यन्त विस्मयकारी कहता है।

3. आळवार का मानवोपदेश - प्रपत्ति-उपाय चरम उपाय है। सातवें शतक के 7.10 दशक में तिरुवारन्विलै दिव्यदेश के अर्चा स्वरूप की प्रशस्ति है। परमपद की तरह आळवार ने तिरुवारन्विलै को भगवान् से भी अधिक महत्व दिया है। **7.10.7-** बागों से घिरा तिरुवारन्विलै में देवों एवं नित्यसूरियों के नाथ भगवान् कृष्ण के रूप में रहते हैं। पुराकाल में आपने बाणासुर के किला में घुसकर उस असुर की हजार भुजाओं को काट दिया जबकि शिव भाग गये। आप हमारे एकमात्र आश्रय हैं। **7.10.6-** भगवान् के स्वरूप का ध्यान करें, कर्मों का क्षय हो जायेगा। चरमोपाय भगवान् कृष्ण हैं। इसका फल उनके कैंकर्य हैं। भक्तों को तिरुवारन्विलै के तिरुक्कुरूलप्पन (आळवार के स्वामी) की प्रार्थना करने का उपदेश देते हैं।

चूर्णिका 226 -

भगवान् के सत्यकामत्व दिव्यगुण का सहस्रगीति के आठवें शतक में वर्णन है। यह तीन भागों में है - 1. दिव्यगुण सत्यकामत्व 2. नम्माळवार पर भगवान् का अनुग्रह, 3. आळवार की उपलब्धि तथा मानव को आळवार का उपदेश।

सूत्र - 226 (8) - सं. देव्योऽसेवमानानुरूप समीचीनसन्निवेशेत्युक्तार्हं शक्त्या नित्यत्वेन कल्पितपत्नीपरिजनादियुक्त सत्यकामेन स्वीकृतवाचक कैंकर्यमपि यथा विस्मारयेत्तथा कालुष्यमपि शंकामपि भयमपि तथातीव परिपूर्ण दत्ते तस्मिन्कृतज्ञताफलप्रत्युपकारो यथा भवेत्तथा क्षत्रियश्रेष्ठकन्यका -दानमिव संपूर्णमालिंग्य खण्डविक्रयकृतात्मलाभेनातीव ज्वलित्वा शाखा-युक्तं भूत्वा निकृष्टेत्युक्तस्योत्कर्षं दर्शयति सति देहादिभ्यो विलक्षणं सत्स्थित्वा निरूपितं चेल्लक्ष्मीतुल्यं भूत्वा तेषामेव सपरिकरं शेषा भूत्वा पर -तन्त्रस्वरूपं अनुसंधितवन्तः स्वसाधनसाध्यस्था उभयकूलस्था यथा न भवेयुः संगं त्यक्त्वाऽऽद्वारं दासान्न नियमयति कृत्वानुरूपेण सह संगम्य विश्लेषे कृपणदशानुगुणं शुष्यत्सीतागुणैः प्रीतौ वर्धित्वा रस्ये सति अंतर्नित्यं वसित्वा पश्यन् स्थित्वाऽमानुषभोगं कृतवती त्रिगण्डानां प्रच्युताशक्त्या योग्यतानुसंधान व्याधिवासनानिवृत्तिस्तथा लीलाविभूतिस्थानामपि परमपद-वासिनामपि प्राप्यमेव समीचीनं स्वीकुरुध्वम् हृदीति प्राप्यैकपरान् कुर्वन्ति अष्टमशतकेन।

सूत्रानुवाद - विश्वपति प्रभु सभी शाश्वत वस्तुओं के धारक हैं जो उनके शरीर हैं। उनकी नित्य शक्ति के अनुग्रह से बनाये गये दिव्य महिषियों, देवगण व नित्यसूरिगण, अनेकों स्थान, भोग्य वस्तुयें एवं उपकरणादि सर्वदा उनके संग रहते हैं। वाणी से किये जानेवाले प्रभु के कैंकर्य को आळवार भूल जाते हैं। उनकी वेदना, शंका एवं भय को प्रभु दूर करते हैं तथा साथ ही उन्हें परोपकार, कृतज्ञता एवं प्रत्युपकार का स्मरण कराते हैं। राजा द्वारा राजकन्या के उपहार जैसे कृत्य के कारण वे अपनी आत्मा का समर्पण करते हैं। सौंदर्य का वर्णन करते रागविहीन वे द्वार तक पहुँचते हैं। सीता जी की तरह प्रभु को प्राप्त करते हैं तथा असह्य विरह वेदनाग्रस्त भी होते हैं। सीताजी की तरह बढ़ते स्नेहवश अपने हृदय में प्रभु को मिलते देख माधुर्यरस से भर जाते हैं। सीताजी की तरह आळवार मनुष्यों से श्रेष्ठ दिव्यानुभूति के आनन्द से अभिभूत होते हैं। तीन विकट स्थिति एवं कर्मजनित दोष से भगवान् मुक्त करते हुए नीच आत्माओं को उच्च ज्ञान देते हैं। आत्मा शरीर एवं इन्द्रियों से भिन्न होने का बोध कराते हैं। आळवार को श्रीवैष्णवों की तरह इसका बोध होता है कि **उपाय** एवं **उपेय** दो तट की तरह भिन्न न होकर एक हैं।

विशेषार्थ - 1. भगवान् के सत्यकामत्व दिव्यगुण- तिरुवाय. 8.1.1- आपकी प्रिया श्रीदेवी एवं भूदेवी के निदेश पर नित्यसूरि आपकी सेवा में लगे रहते हैं। तीनों लोक आपका क्रीड़ा स्थल है। आप जो स्वरूप चाहते हैं धारण करते हैं। **8.3.6-** नित्यसूरियों के ज्ञानादि एवं नमस्कार के आप लक्ष्य हैं। **8.9.11-** तीन लोकों के नाथ। **8.10.11-** विश्व में पूरी तरह सर्वत्र

विराजमान की प्रशस्ति गानेवाले का पारिवारिक जीवन सुखमय रहेगा। तात्पर्य है कि भगवान् अपने महिषियों एवं पूरे विश्व पर दृढ़ता से शासन करते हैं। ज्ञान एवं कैंकर्य से सम्पन्न नित्यसूरिजन के आप नाथ हैं। नित्यसूरियों एवं सबके नाथ एवं नेता प्रभु का **सत्यकाम** बोधक है।

2. नम्माळवार पर भगवान् का अनुग्रह - आळवार भूल गये हैं कि भगवान् ने इन्हें **तिरुवायमोळी** (सहस्रगीति) गाने का दायित्व दिया है। **तिरुवाय. 8.1.2-** हमारी एकमात्र इच्छा आपका दर्शन है। हमारी आँखें आँसू से भरी हैं। हाय! सब तरह से आप हमें प्रेम करने दीजिये। आळवार को प्रभु का दर्शन न मिलने से खिन्न होकर वे कहते हैं - **8.1.4-** आपके वही रूप होते हैं जो आपके भक्तों को अपेक्षित है। आपकी आश्चर्यमय लीला वही होती हैं जिनका भक्तगण सादर अनुभव करते हैं। परन्तु मुझ पापी की अब इस निश्चय के बारे में भी शंका हो रही है। **8.1.7-** हे भूत, वर्तमान एवं भविष्य! हाय! हम अब संदेह करने लगेंगे कि ये सब आप हैं। भगवान् **शरीरी** हैं एवं सम्पूर्ण विश्व उनका **शरीर** है। भगवान् को पूर्णतया न समझने के कारण आळवार को उनके दिव्यगुणों पर संदेह होने लगा है। **8.1.9-** नरक की कल्पना हमें भयग्रस्त कर देती हैं। भाव है कि वे सांसारिक यातनाओं से भयालु हो गये हैं। **7.10.5-** दूसरे अनेक भक्तों के रहते हुए अपनी कृपा कटाक्ष से मुझे सर्वदा अपने पादारविन्दों का चिन्तन एवं प्रणाम करने में निरत बनानेवाले जगदव्याप्त प्रभु का यशगान करने से हमारे सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। पराशर आदि तथा मुदल आळवार के रहते प्रभु हम से ही सहस्रगीति सुने। **8.1.10-** इस क्षुद्र को आपके चरण

के उपहार के बदले आपको, मेरे पिता एवं नाथ, हम अपना जीवन समर्पित करते हैं तथा आपको अपने हृदय से लगाते हैं।

पेरियाळवार तिरु. 4.1.2- सम्राट जनक के धनुष यज्ञ में। **विष्णु पु. 1.8.17- विष्णोः श्रीरनपायिनी।** भगवान् का कभी संग न छोड़ने वाली जगत् जननी। **विष्णु पु.1.9.144- राघवत्वेऽभवत्सीता।** भगवान् का रामजी होने पर ये सीताजी हुईं। **वा.रा. 1.73.26- इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव। प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृहणीष्व पाणिना।।** यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है। इसे स्वीकार करो और इसका हाथ अपने हाथ में लो। **तिरुवाय. 7.9.10-** भगवान् के उपकार के बदले प्रतिउपकार में अपनी आत्मा अर्पित करने का विचार करता हूँ परन्तु यह उन्हीं की वस्तु है। आळवार भ्रमित दिखते हैं। परन्तु सचेत हो कहते हैं- **8.1.10-** इस क्षुद्र को आपके चरण के उपहार के बदले आपको, मेरे पिता एवं नाथ, हम अपना जीवन समर्पित करते हैं तथा आपको अपने हृदय से लगाते हैं। तात्पर्य है कि आळवार के हृदय में भगवान् के चरणारविन्द विराजमान हैं और जब वे भगवान् को अपने हृदय से लगाते हैं तब आळवार समझते हैं कि हमने अपनी आत्मा भगवान् को समर्पण किया है। आळवार की आत्मा तो उनकी अपनी थी नहीं परन्तु भगवान् सहर्ष स्वीकार करते हैं और अतिशय आनन्द से उनका मुखारमण्डल चमकने लगता है। आनन्दातिरेक में भगवान् अपने स्वरूप का ऐसा विस्तार करते हैं कि वे हजार भुजायें, हजार सिर, हजार कमल सी आँखें, हजार चरण एवं हजार नाम वाले तेजामय स्वरूप से आळवार को दर्शन देते हैं।

प्रमाण है - **अतीव रामः सुशुभे।** रामजी अत्यन्त गौरवान्वित अनुभव करते हैं। **वा.रा. 3.37.18- अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा।** जनककिशोरी जिनकी धर्मपत्नी हैं उनका तेज अप्रमेय है। **तिरुवाय. 8.1.10-** तेजोमय प्रभु। भगवान् राम ने भी सीता जो को अतिशय स्नेह दिया और फलतः सीताजी अपनी मायके को भी भूल गयीं। इसी तरह आळवार के भी सारे लौकिक वासनात्मक सम्बन्ध छूट गये। **8.2.11-** जिन्होंने भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द के लिए अपनी सारी कामनाओं का त्याग कर दिया। **वा.रा. 2.16.21- पति सम्मानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा । आ द्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ।।** पति से समादृत कजरारी आँखोंवाली सीता उनकी मङ्गलकामना करतीं उनको द्वार तक पहुँचाने गयीं। इसी तरह के भाव आळवार के भी हैं। **तिरुवाय. 8.3.3-** हाय! कोई भी आपके शंख एवं चक्र ढ़ोने नहीं आता (आप स्वयं इसका भार ढ़ोते हैं) और न तो कोई आपके खड्ग व धनुष लिये हुए आपके पीछे-पीछे आता है। **वा.रा. 5.16.5- तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजन लक्षणाम्। राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा।।** सीताजी के शील, स्वभाव, अवस्था और बर्ताव रामजी के समान हैं। उनका कुल भी उन्हीं की तरह महान् है। अतः रामजी सीताजी के सर्वथा योग्य हैं तथा कजरारे नयनों वाली सीताजी भी उन्हीं के योग्य हैं। **तिरुवाय. 8.4.1-** मत्त बहाते पर्वत की तरह हाथी लुढ़क गया। **8.4.10-** सबके इष्ट देनेवाले तिरुच्चेंगन्नूर तिरुचित्तारु क्षेत्र के नाथ, तीन हजार वैदिक ऋषियों एवं कुशाग्र मेधा के भक्तों को प्रेरणा

प्रदान करते शिव व ब्रह्मा के अन्तर्यामी भगवान् को मैंने पा लिया। दशक 8.4 में आळवार भगवान् का मङ्गलाशासन करते हैं।

वा.रा. 5.16.30- हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना। सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना।। बर्फपात से आहत कमलिनी की तरह ये शोभाहीन हो गयीं हैं, दुःख-पर-दुःख से पीड़ित अपने संगी से बिछुड़ी चकवी के समान पति-वियोग की वेदना में सीताजी बड़ी दयनीय दशावाली हो गयी हैं। **तिरुवाय. 8.5.2-** लज्जित होकर लड़खड़ाते कदमों से हम धरा पर घूमते हैं। सूखे होंठ एवं सूखी आँसू से चारो तरफ पुकारते हुए हम देखते हैं। **वा.रा.1.77.26,27- प्रिया तु सीता रामस्य दारा पितृकृता इति। गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते।।** रामजी को सीताजी प्रिय थीं क्योंकि उनके पिता ने पत्नी के रूप में उन्हें रामजी को समर्पित किया था। सीता के पातिव्रत्यादि गुण तथा सौंदर्य गुण से रामजी का उनके प्रति अधिकाधिक प्रेम बढ़ता रहता था। **वा.रा.1.77.26- मनस्वी तद्‌गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः।** सीताजी के हृदयमन्दिर में विराजमान मनस्वी रामजी का मन सीताजी में ही लगा रहता था। **तिरुवाय. 8.6.3-** ध्यान करने पर भगवान् मधुर रूप से हृदय में विराज गये। **8.6.2-** दिव्य देश सदृश हमारे हृदय में विराज गये। **8.7.2-** सदा खड़े होकर इस अधम को देखते हुए आपने पाँचों नीच की नाश किया। **वा.रा.5.33.17- समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने। भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकाम समृद्धिनी।।** अयोध्या में रामजी के अन्तःपुर में बारह वर्षों तक मैं सब प्रकार के मानवीय भोग भोगती रही और मेरी सारी अभिलाषायें सदैव पूर्ण होती

रही। भाव है कि वनवास में भी रामजी के साथ सीताजी प्रसन्न थीं। इसी तरह की आळवार की अभिव्यक्ति है जो भगवान् से जुड़कर अतीव प्रसन्न हैं। **तिरुवाय. 8.7.2-** आपदाग्रस्त हाथी पर करुणा करने वाले प्रभु से अधिक अनुग्रह और क्या चाहिए? **8.7.7-** अहा! मुस्कुराते हुए हम आपका आलिंगन किये होते! आप हमारे हृदय में रहते हैं, इससे बड़ा अनुग्रह नहीं देखा है।

नायकी आळवार के लिए तीन विकट स्थिति - **तिरुवाय. 1.5.1-** अभागिनी मैं! चमेली जैसी मादक मुस्कानवाली नप्पिनाय को जीतने हेतु सात वृषभों का नाश करनेवाले गोपकिशोर, मेरे प्रभु! **1.5.2-** द्रवित हृदय से आपकी गाथा गाते हैं परन्तु कभी भी अन्त नहीं पाते। **1.5.7-** यह नीच बुद्धिवाली आपके दर्शन हेतु विलाप करती है, इससे बड़ी गलती हो सकती है क्या? **1.10.7-** आपको पिता एवं नाथ कहते नित्यसूरिगण ध्यान करते हैं। कितना पापी हूँ जो आपसे प्रेम करने का दुःसाहस किया। **2.5.1-** सुन्दर स्थान पर आपने हमसे प्रेम किया और हमारे प्राण में मिल गये। **2.5.5-** हमारे जैसे तुच्छ से आपने प्रेम किया। **2.5.8-** हमारी नीचता को भूलकर आपने हमसे प्रेम किया।

तिरुवाय. 8.7.1- अनेकों दिन हमने पूजा की एवं पुकारा। सुन्दर वामन ने हमें देख लिया और हमारे हृदय में चोरी से घुसकर हमें अपना बना लिया। **8.7.3-** इससे अधिक अनुग्रह और क्या चाहिए? **8.7.8-** इससे बड़ी कृपा हम नहीं जानते। तीनों लोक को धारण करते हुए आप हमारे छोटे से हृदय में रहने आये हैं। तात्पर्य है कि आळवार को निम्न भावों से ग्रस्त देखकर

भगवान् को इनको खोने की आशंका हुई। तब भगवान् ने इन्हें **शरीर-शरीरी** सम्बन्ध का स्मरण कराया एवं इनके मन से हीन भावनाओं का अन्त किया। आळवार की आत्मा कभी भी भगवान् से अलग नहीं की जा सकती। भगवान् ने स्पष्ट किया कि आत्मा शरीर से भिन्न है और हमारे **कौस्तुभ मणि** की तरह प्रकाशवान है। यह हमारा **मधुर भोग्य** है। **तिरुवाय. 8.8.4-** प्रभु हमारे अपने हुए और वे सभी प्राणियों एवं वस्तुओं से पुरातन हैं तथा आदि-प्रभु हैं। मधु, दूध तथा गन्ने के रस की तरह मधुर प्रभु हमारी चैतन्य-आत्मा में एवं प्राण, शरीर, ज्ञान में अन्तरात्मा की तरह व्याप्त हैं। हमने आपको समझ लिया।

3. आळवार की उपलब्धि तथा मानव को आळवार का उपदेश- तिरुवाय. 8.8.5- भगवान् सभी ज्ञान के परे हैं। नायकी सखी वाणी में- **8.9.5-** इस किशोरी की आभरणों की भिन्नता, वस्त्र पहननें की रीति, शरीर से उत्पन्न विशेष शोभा इत्यादि पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ये सब साधारण लोकरीति से बननेवाले नहीं हैं। **8.9.1-** प्रभु के नाम के अतिरिक्त अन्य किसी का नाम नहीं बोलती है। **8.9.10-** निश्चित रूप से यह किशोरी तिरुप्पुलियूर प्रभु का कृपा-पात्र बन गयी है। तात्पर्य है कि लक्ष्मीजी की तरह आत्मा प्रभु की **भोग्य-संपदा** है। **8.10.10-** मेरी एकमात्र इच्छा है कि अतसी (तीसी) पुष्प के रंग वाले चार भुजाओं से युक्त प्रभु के सेवकों के सेवक के परिवार में मेरा जन्म हर युग के हर जीवन में होता रहे। भाव है कि आळवार **भागवत-शेषत्व** की महत्ता की अनुभूति करते हैं।

श्रीवचनभूषण 411- विचार के ऊच्च स्तर पर प्रभु को **उपाय** एवं उनके दिव्यदेश को **उपेय** मानकर नदी के दो किनारों की तरह पृथक नहीं माने। वडुक नम्बी कहते हैं कि कभी-कभी कुरत्त आळवान (कुरेश स्वामी) तथा मुदली आन्डान (दाशरथि स्वामी) रामानुज के प्रथम प्रधान शिष्य भी दो भाव से ग्रस्त रहते हुए कभी भगवान् की तरफ तथा कभी आचार्य की तरफ देखते थे। भाव है कि जब आळवार श्रीवैष्णवों के शेषत्व की बात करते हैं तो उनका यह तात्पर्य नहीं है कि यह **भगवत-शेषत्व** से नदी के दोनों किनारों की तरह अलग है, वल्कि यह जीवात्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आळवार भगवान् पर ही पूर्ण परतन्त्रता बताते हैं।

आलवार तथा श्रीवैष्णव (नित्यसूरिगण) **उपाय** एवं **उपेय** को एक मानते हैं। दिव्यदेश भी उपाय तथा उपेय दोनों ही हैं। **8.6.6-** आप शीतल तिरुक्कडित्तानम में रहते हैं। देखो, आपकी पूजा से हमारी सारी यातनाओं का अन्त हो जायेगा। **8.6.7-** धरा, आकाश एवं सबकुछ मापने वाले गोविन्द के चरणारविन्द देवों एवं मर्त्यों से तिरुक्कडित्तानम में पूजे जाते हैं। आपको अपने हृदय में स्थापित कर अपनी यातनाओं का अन्त करो। आळवार मानवों को उपदेश देते हैं कि दिव्यदेश तथा वहाँ विराजने वाले भगवान् के चरणारविन्द उपाय एवं उपेय की तरह एक हैं।

चूर्णिका 227 -

भगवान् के आपत्सखत्व दिव्यगुण का सहस्रगीति के नौवें शतक में वर्णन है। यह तीन भागों में है - 1. दिव्यगुण आपत्सखत्व 2. नम्माळवार पर भगवान् का अनुग्रह, 3. मानव को आळवार का उपदेश।

सूत्र - 227 (9) - सं. अष्टदिशोपि विस्तृतभूमिं सर्वत्र रक्षद्वटपत्रादुपरि इत्युक्त्यानुगुणं नित्यभोगपाद्लीलोपकरणस्य लयादिनिवर्कात्सखेन केषामात्मेत्युक्त्यनुगुणं प्रवर्तितात्मदर्शनफलानुभवपरामाह्वानं वाऽऽगमनं वेति निर्वद्यैकचिन्तां कृत्वा दर्शनार्थमपेक्ष्य भरणाय निश्चित्य प्रत्यनुसंधान-काले द्रवीभूयाक्रमघोषं कृत्वोभयत्र चित्तं विना चतुर्दशवर्षान् दशमासान् एक-दिनसंध्यास्वनुभूतयेकक्षणे यथा भवेत्तथा व्याकुलीभवत्वराया अनुगुणमितः परं दशस्वेकादशमदशायां लाभ इति दिनसमुद्रत्वेनानुजस्य कल्पितं यथा न भवेत्तथा स्वविवाहसदृशं दिनकल्पनं प्राप्तवन्त एतन्मुक्धलोकाः दर्शनं समकालं शक्त्वा बान्धवाः अरक्षका भोग्या सुखानुपायप्रतिसम्बन्धिनं दर्श-यित्वान्यदेकं कृष्णं विनेत्युच्यमाननित्यानुभवसुखहेतुभूतसिद्धोपायं तस्मि-न्दुर्वलबुद्धीनां भक्तिं प्राप्य प्रातः सायं विकसन्मधुग्लानिरहितपुष्पाणि सम-र्प्य भक्तस्वरूपसांगभक्तिः त दशक्तानां चरणाश्रयप्रपत्तिः तदशक्तानांमु-च्चारणमात्रं सर्वोपायशून्यानामेतद्दशकं गीत्वा क्रियमाणनमस्कार इति गीताचार्य इवाधिकारानुगुणमुपायान् सर्वानुपदिशन्ति नवमशतके।

सूत्रानुवाद - प्रलयकाल में आठों दिशाओं में फैले विश्व का अन्त करके **आपत्सखा** वटपत्रशायी प्रभु सबकी रक्षा करते हैं। परमपद की तुलना में प्रभु का खिलौना विश्व बहुत छोटा है। आत्मा को समझने का फल

नित्यसूरि को समझने की जिज्ञासा है। पारम्परिक अनुभव सहायक होता है। भगवान् के दर्शन की लालसा से आळवार परमपद जाना चाहते हैं। प्रभु से जुड़ी वस्तुओं को देखकर वे विरह वेदनाग्रस्त हो जाते हैं। प्रभु के विचार में मग्न वे मिलन के आनन्द में रहते हैं और विरहावस्था में उदासीन हो जाते हैं। चौदह वर्ष, दश माह और एक दिवस-रात्रि की दशा से अलग वे एक क्षण के वियोग का सहन नहीं कर पाते हैं। दशवें दशक (नौंवे शतक का) दसवीं अवस्था वाली मृत्यु के उपरान्त फल-प्राप्ति अवश्य होनी है। भगवान् मिलन-अनुभूति का समय निश्चत कर देते हैं। संसार के अनभिज्ञ लोग बनावटी स्नेह का प्रदर्शन करते हैं। भगवान् के अतरिक्त न तो कोई उपाय है और न कोई शाश्वत आनन्द का अनुभव है। एकमात्र रक्षक भगवान् कृष्ण के दिव्यगुणों की अनुभूति **सिद्धोपाय** है। भक्ति की विभिन्न अवस्थाओं के अभ्यास से स्थाई रागविहीन होकर भक्त सुवह-शाम उपाय के फल भगवान् के बारे में सोचता रहता है। सुगंधिता पुष्पों एवं जल से भगवान् की निरन्तर पूजा करता है। ऐसा न कर सकनेवाला भगवान् के चरणारविन्द को **प्रपत्ति** से प्राप्त कर सकता है। जो ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं वे मात्र भगवद् नाम का उच्चारण कर सकते हैं। जो यह भी नहीं कर सकते वे सेवक भाव से नौवें शतक का गान करें। इस शतक में आळवार गीताचार्य की तरह विभिन्न उपायों का उल्लेख करते हैं।

विशेषार्थ - विकट स्थिति में सहायक होना ही आपत्सखत्व है। परमपद (नित्यविभूति) को त्रिपादविभूति कहते हैं अर्थात् यह तीन भाग में है और लीलाविभूति एक भाग में है। **तिरुवाय. 9.1.1-** आठों दिशाओं, स्वर्ग, नरक

तथा सभी कुछ को निगलने वाले प्रभु! **9.3.2-** आपने विस्तृत धरा बनाया एवं इसे ऊपर उठाया। आपने इसे निगला पुनः बनाया तथा मापा। **9.9.2-** धरा को बनाने, उठाने एवं मापने वाले प्रभु। **9.10.1-** प्रलय जल पर बटपत्र पर सोनेवाले प्रभु। तात्पर्य है कि हिरण्याक्ष एवं महाबली असुरों के कृत्यों से उत्पन्न स्थिति को आप सम्भालते हैं तथा वैदिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित करते हैं। आप अपने **अवाप्तसमस्तकामत्व** गुण से विकट स्थितियों से विना प्रत्युपकार की आशा किये रक्षा करते हैं। आळवार आपके विशेष अनुग्रह के पात्र हैं और वे आपकी दिव्य अनुभूति से सम्पन्न हैं।

कहा है- **पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।** एक चौथाई भाग में यह विश्व है तथा तीन चौथाई भाग में परमपद धाम है। यह विश्व सबसे छोटा है। हर विकट आपदाओं में **पाद** कहे जानेवाले इस खिलौने रूपी विश्व की आप एक मित्र की भाँति रक्षा करते हैं।

2. नम्माळवार पर श्रीमन्नारायण का अनुग्रह - आळवार का अनुभव है कि भगवान् की दिव्य अनुभूति का जो आनन्द इन्हें प्राप्त है वह नित्यसूरि को भी नहीं मिला है। **तिरुवाय. 8.7.1-** उतावला होकर अनेकों दिन हमने आपकी पूजा की एवं पुकारा तथा प्रार्थना की कि हमारी आवाज सुनकर अपने चरणारविन्द से हमें जोड़ लिया जाय। **9.6.9 - दिव्यदेश तिरुक्काटकरै** के हमारे श्याम प्रभु की आँखें कमल सी हैं, होंठ मूँगा सा है, चार भुजायें हैं तथा दिव्य छटा है। हमारी आत्मा को वे जैसी यातना देते हैं वैसी अन्य आत्मा के साथ करते हैं? **9.2.1-** पुराकाल से आपकी तथा कमलस्थ लक्ष्मीजी की कृपा से हम आपके मन्दिर में एकत्रित होकर बन्धुआ सेवक

की तरह सेवारत रहे हैं। **9.2.2-** आपके मंगलमय सार्वभौम क्षेत्र का विना अतिक्रमण किये बन्धुआ सेवक की तरह पीढ़ी दर पीढ़ी आपके चरणकमल की सेवा करते रहे हैं। **9.2.3-** कितने दिन आप इस तरह से हर दिन शयन करते रहेंगे, जब तक कि आपका शरीर दुखने नहीं लगे? अनवरत सेवारत अपने बन्धुआ सेवक का आवेदन सुन लीजिए प्रभु! **9.2.4.-** प्रार्थना है अपने मेघ सा श्याम वदन का दर्शन दीजिए तथा आपका मूँगावत होंठ और अधिक लाल हो जाये। **9.2.5-** प्रार्थना है, मूँगावत लाल होंठ, मोती से चमकते दाँत, मुस्कान और अर्द्धखुली कमल सी आँखों के साथ सामने खड़े होकर दर्शन दीजिए। तात्पर्य है कि आळवार भगवान् के दिव्य मिलन की कामना करते हैं तथा उनके चरणकमल को अपने सिर पर धारण करना चाहते हैं। **9.2.10-** कमलस्थ लक्ष्मीजी तथा भूदेवी आपके चरणारविन्द चाँपते हुए आपकी थकान दूर करती हैं। मैं भी आपके चरण दबाऊँ, या तो आप मेरे पास आयें या मुझे अपने पास बुला लें।

भगवान् आये और मिलन का आनन्द दे लुप्त हो गये। विरह आवेश में आळवार परमपद जाना चाहते हैं। **तिरुवाय. 9.3.7-** हमारा हृदय वैकुण्ठ की एक झाँकी के लिए लालायित है जहाँ प्रभु का निवास है। **9.4.1-** हमारी आँखें आपकी दर्शन के लिए लालायित है। नायकी **9.5.10-** मैंने जानबूझकर वैकुण्ठाधिपति से मिलने की चाह की। आळवार भगवान् से सम्बन्धित वस्तुओं को देखकर या तो मिलन चाहते हैं या प्राण त्यागना चाहते हैं। **9.6.1-** जितना मैं सह सकता हूँ मेरा हृदय उससे ज्यादा पिघलता है। तिरुक्काटकरै (तिरुओनम उत्सव वाला केरल का आलुवे नगर का त्रिविक्रम

भगवान् के चरण वाला दिव्यदेश) के प्रभु की विस्मयकारी लीला का स्मरण करके मेरा प्रेम उमड़ने लगता है। विरह वेदनाग्रस्त नायकी के पक्षी दूत **9.7.2-** तिरुमूळिक्कळम (लक्ष्मण जी की तपःस्थली केरल के आलुवे नगर के पास) में दलबल के साथ रहनेवाले प्रभु से जाकर पूछो कि क्या हम उनके दल के योग्य हैं कि नहीं? **9.7.11-** तोता जैसे मीठे शब्दों में प्रभु की प्रशस्ति का यह दशक। उदासीन भाव में **9.8.3-** मैं किसी बात से नहीं रोती बल्कि कब मैं आपसे तिरुनावाय (केरल भरतपुळा नदी किनारे) में मिलूँगी इस बात से रोती हूँ।

चौदह वर्ष का भरत जी का राम-विरह, अशोक वाटिका में दस महीनें का सीता जी का विरह, प्रातः गाय चराने जाने से दिन भर का गोपियों का विरह। **वा.रा. 6.124.1- पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।** पञ्चमी तिथि को चौदह वर्ष पूरा होने पर रामजी अयोध्या लौटते भरद्वाज मुनि आश्रम पहुँचे। भरत जी एक क्षण का वियोग नहीं सह सकते थे। **वा.रा. 5.40.10-** हनुमान जी से सीता जी कहती हैं - **मासादूर्ध्वं न जीविष्ये।** दस माह पूरा हुआ। अब एक माह भी अधिक जीवित न रहूँगी। **तिरुवाय. 9.9.11-** प्रभु से अलगाव पर उदास शठकोपन् का यह दशक सायंकाल की गोधूली वेला में प्रभु से गोपियों का अलगाव के विषाद-नाद का स्मरण कराता हैं। सायंकाल वन से लौटती गायों के पहले दल के साथ भगवान् कृष्ण को न देखकर गोपियाँ विषाद नाद करती हैं। क्षणमात्र का विलगाव नहीं सहन कर सकतीं। **9.10.5-** जो आपको खोजते हैं उसको यहाँ तथा मृत्यु पश्चात् वैकुण्ठ में आश्रय प्रदान करते हैं। 'मृत्यु दसवीं अवस्था है'

इसके प्रमाण में कहा है - **नयनप्रीतिः प्रथमं चिन्ताभोगस्ततोनुसंकल्पः निद्राच्छेदः तदनु तद्विषयविरक्तिः त्रपानाशः उन्मादो मूर्च्छा मरणमित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः।** देखते ही प्रेम, तब इसको याद करना, इस पर सोंचते रहना, निद्राहीनता, उसी तरह का हो जाना, अन्य वस्तु से घृणा, लज्जाहीनता, उन्मादकता, अचेत होना और मृत्यु, ये दस कामुक की दशायें हैं। अन्य प्रमाण में कहा है- **प्रथमः तु अभिलाषः स्यात् द्वितीयं चिन्तनं भवेत। अनुस्मृति तृतीयः तु चतुर्थं गुणकीर्तनम्।1। उद्वेगः पञ्चमः प्रोक्तः प्रलापः षष्ठ उच्यते। उन्मादः सप्तमो ज्ञेयः अष्टमो व्याधिः उच्यते।2। नवमे जड़ता चैव दशमं मरणं तथा।** तात्पर्य है कि कामुकता में मरण

दसवीं अवस्था होती है। **परमभक्ति** में लीन आळवार दसवीं अवस्था में मृत्यु के पश्चात् परमपद में कैंकर्य का फल प्राप्त करते हैं।

तिरुवाय. 1.6.7- प्रभु के सामने सिर नवाकर समय के अथाह सागर को तैर कर पार कर जाओ। रामजी ने चौदह वर्ष पूरा होने पर भरत जी से मिलने की तिथि तय की थी। गोदा जी **नाच्चियार तिरु. 6.2-** उनलोगों ने हमारा परिणय कल के लिए तय किया है। **9.10.5-** जो आपको खोजते हैं उसको यहाँ तथा मृत्यु पश्चात् वैकुण्ठ में आश्रय प्रदान करते हैं। तात्पर्य है कि मृत्यु के पश्चात् ही आळवार को परमपद मिलेगा।

3. आलवार का मानवोपदेश - तिरुवाय. 9.2.7- इन मूर्ख संसारियों के देखते हुए हमारे सामने विराजिये। **9.1.2-** मूर्ख संसारी समय तो देते हैं परन्तु जोंक की तरह तुम्हारा धन समाप्त होने तक चूसते रहते हैं। **9.1.3-**

तुम्हें सम्पन्न देखकर संसारीजन तुम्हारा स्वागत करेंगे। **9.1.4-** जो तुम्हारी सम्पति वे तेरे बुरे दिन में ऋण देनेवाले होंगे। तात्पर्य है कि संसारीजन तेरे संरक्षक होकर दुर्दिन में तुझे छोड़ देंगे। श्रीमन्नारायण भक्त तथा अभक्त सब की रक्षा करते हैं। अवतार काल में अपने-पराये का भेदभाव किए विना सबकी रक्षा करते हैं। **9.1.5-** जिनलोगों ने तोता की तरह मृदुभाषी नारियों के समागम का आनन्द लिया वे भी कुछ काल बाद फल चखेंगे। मथुरा के प्रभु की सेवा में लगे रहो जो एकमात्र आनन्द हैं। **9.1.9-** सीमित लक्ष्यवाले अनन्त प्रभु को भूलकर अपना जीवन व्यर्थ गँवाया। कान का छेद बड़ा होने पर कर्णफूल गँवा दिया जाता है। ध्वज सुशोभित महलोंवाले मथुरा नगर के प्रभु का आश्रय लो। प्रभु को छोड़कर कोई उपाय नहीं है। **9.1.7-** इसमें कोई संदेह नहीं, हमने कहा, इस संसार में कुछ है नहीं। गोपकिशोर का नाम जानने एवं जपने से कोई क्षति नहीं है। भाव है कि जो उपेय रूप भगवान् का प्रपत्ति उपाय नहीं कर सकते उनके लिए उनका गाथा-गान पर्याप्त है। **9.1.10-** निश्चित है कि कृष्ण के सिवा कोई आश्रय नहीं है। अर्थात् **उपायोपेय** बहुत सुगम है। **गीता 18.66- मामेकं शरणं व्रज।** तात्पर्य है कि प्रभु के दिव्यगुणों की अनुभूति ही **सिद्धोपाय** है। **9.10.1,2... -** अपना विषाद मिटाओ, उठो, प्रातः-शाम प्रभु के चरणों का सुगंधित फूल से पूजा करो। मधुर फूल विखेर कर प्रतिदिन पूजा करो। प्रामाणिक वचन है - **सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोयं तारयेत् नरम्। नराणां बुद्धिदौर्वल्यादुपायान्तरमिष्यते।** सांसारिक राग से मुक्त होने का तथा शास्त्रों का सार **प्रपत्ति** एकबार ही की जाती है। चञ्चल मनवालों के लिए

प्रपत्ति एकमात्र उपाय है। भाव है कि इसमें अपने **महाविश्वास** को जगाओ। **9.10.5-** तिरुकण्णपुरम् में आप भक्तों के प्रेम के कारण रहते हैं। आळवार यह संदेश देते हैं कि फूल आदि से प्रेम से पूजा **भक्तियोग** है। जिसे यह कठिन लगता है उसे सदा भगवान् के चिन्तन में रत रहनेवाला **प्रपत्ति** का मार्ग दिखाते हैं। इस छोटे उपाय से मृत्यु पश्चात् महान फल वैकुण्ठ में भगवान् का चरणारविन्द मिलता है।

तिरुवाय. 9.10.10- तिरुकण्णपुरम के प्रभु की प्रशस्ति गाओ। विषाद सदा के लिए दूर रहेगा। तात्पर्य है कि नाम की गाथा भी उपाय स्वरूपी है। मात्र तिरुकण्णपुरम् का नाम लेना अपने अप में पर्याप्त है। आळवार कहते हैं कि जिनके लिए उपर्युक्त सभी उपाय कठिन लगते हैं उनके लिए मात्र तिरुवायमोळी (सहस्रगीति) के पदों का गान ही उपाय है। **9.10.11-** इस दशक (9.10) के पदों को गाओ एवं नाचो। भाव है कि समस्त सहस्रगीति के बदले 9.10 का अनुसंधान तथा गान महान् फल देनेवाला है। **तिरुवाय. 4.8.6 -** प्रभु ने सत्य का मार्ग स्थापित किया। अर्थात् गीताचार्य की तरह आळवार ने सत्य का मार्ग दिखाया। नौवें शतक में आळवार ने **उपाय** के सभी मार्गों को बताया है जिससे की जिसकी जैसी अभिरुचि हो उस **उपाय** का अभ्यास करे।

चूर्णिका 228 -

भगवान् के आर्तिहरत्व दिव्यगुण का सहस्रगीति के दसवें शतक में वर्णन है। यह बारह भागों में है - 1. दिव्यगुण आर्तिहरत्व 2. अर्चिरादिगतिमार्ग

के माध्यम से भगवान् का जीवात्मा के साथ सम्बन्ध। 3. भगवान् कृष्ण को नम्माळवार का पशुओं को खिलाने से रोकना। 4. नम्माळवार को कृत्य-अकृत्य का बोध। 5. श्रीवैष्णवों की आध्यात्मिक क्रियायें। 6. भक्ति से परमपद प्राप्त करना। 7. भगवान् के दिव्यगुणों से श्रीवैष्णवों के लगाव। 8. आळवार द्वारा माया का मूलोच्छेदन। 9. भगवान् द्वारा आळवार की जिज्ञासा का समाधान। 10. भगवान् का उत्तर न देना परन्तु अर्चिरादिगति मार्ग दिखाना। 11. साक्षात्कार की अनुभूति की आवश्यकता। 12. आळवार की साद्ध्यभक्ति की महानता।

सूत्र - 228 (10) - सं. कुटिलालकाञ्जन जलाञ्जनस्थितानुप भुक्तक्षेत्रातसीं पुष्पेत्युच्यमाना यदि स्वीक्रियमाणेच्छा विग्रहमूलरूपेण प्रपन्नार्तिहरः भूतः कृपालाभकाले समीपकरणफलभूत परमाकाशारोहणमार्गस्यांडे त्रिलोके पुरो धावित्वा पादस्पर्शस्थलेच्छायावतारान् संपाद्यामृतप्रसादकदशरथ प्रसूत-गोपालभूत्वात् निषादः शवरस्त्री पक्षी वानरश्चराचरं गोपिका गोपो दधिभांडः कुब्जामालाकारः शवरातिथ्यसमर्पकः अपेक्षितान्नमदास्तत्पुत्रस्त दनुजो गजः सर्वो वैदिको लब्धपुत्र इत्येतादृशाष्टादशजातिमन्महासमूहस्य गमयि-तारमाप्तं मार्गसहायंकृत्वा ज्ञानार्थं उक्तसुप्रभाते सहासविरहामाया गमनं निवर्त्य निवर्तनं नास्तीति निश्चितवन्तः संचितप्रकाशनदशाप्राप्तिसमये पूर्वप्राप्तमनसः सेवस्य विस्मृतिं विना मोहं त्यक्त्वा परिहसस्तं न त्यजेति कृत्याकृत्ये विधाय मनः सदृशान् दासानित्याहूयानुकूलवृत्तिं कृत्वानुसंधध्वं वदत श्रृणुत पश्यत गच्छत प्रविशाम इति कर्तव्यं वक्तव्यं श्रोतव्यं दृष्टव्यं मन्तव्यं वस्तव्यं सर्वं प्रकाश्य विवादशान्तिं प्राप्यं सिद्धिपर्यंतं समाप्य

संख्यातीतानुसंधेयश्रीनाम्नः शब्दार्थौ संगृह्य माधव इति द्वयं कृत्वा करण-त्रयप्रयोगवृत्तिं संसारिणां हस्तपत्रंकृत्वा दत्वा हृद्वाक्कवीनां चोरमार्गस्य रक्षणं संपाद्य मनः सम्यक्कृत्य नगरालंकरणाय गत्वा सम्यक् कृते उत्तरक्षणे आगत्य परमपददानाय त्वरित्वा तद्विस्मृत्य सपरिकरः स्वनिर्गमनदेहे प्रविश्य स्थाननगराणि तस्मिनसंपाद्य रासमण्डलद्वारक-योर्विग्रहग्रहीतृचपलस्य देहदोषं ज्ञापयित्वा मायां निसर्त्य परमपदस्यैव दानायोद्युज्याभिप्रायेषु महान्तं तं इदानीमहेतुकमादरयुक्तः त्वमनाद्यनादर-हेतुं वदेति अन्तरीयचेलं गृहीतवति इंद्रियकिंकरो भूत्वा गर्तं पूरयित्वा रसित्वा दूरमगच्छतेति उक्तं चेतानि सर्वाण्यपि विश्लेषयितुं त्वद्दत्तानीति वदेयुस्त-द्देहयोगादित्युक्तं चेतस्मिन्काले त्वद्दत्त अरमिति वदेयुः अनादिकालकृत पूर्णकर्मेणेति वदेयं चेत्तद्दुःखमेव गाढसक्तद्विधिकर्मणि त्वत्कोपश्च प्रसाद-श्चेति वदेयुः अवधिरहितज्ञानहीनोस्मीति वक्तृभवदीये खलु कर्तृत्वभोक्तृत्वे इत्युक्तं चेदहंकारो भूत्वा कर्मफलभोक्ता च कर्मफलं च भवेत् त्वं कर्ता भोक्तेति वदेयुः अहमेव सर्वदायीत्युकत्वेनेति वदेयं चेदज्ञानं भूत्वा समयमतिं दत्वा मनोभेदनं त्वत्यकृत्यमिति वदेयुः जीवप्रकृतिचैतन्यं च्यवनव्रतहेतुरन्त-रंगशरीरमालिन्य निरसनमभिमानि कृत्यं स्वयमादरहेतुः बन्धो निरुपाधिकः सौहार्दम् सर्वकालेपि तिष्ठेत्संयोज्य भेदरहितज्ञानादि वैकल्यं नास्ति एकमूर्तौ दुःखनिरासकयत्न फलत्वेऽस्मदीयत्वेन स्थितस्वतन्त्रा स एवाज्ञासिष्यैवेति वक्तृसर्वज्ञाः एते उपायं दर्शयित्वा समीपे गंधमपि वेदमपि निरुत्तरमिति अधो मुखं स्थिते सत्यमन्त्रज्ञोत्सवघोषवदारोहणाय प्राप्तवदुच्छ्रायसूचक मेघसमुद्रभेरीगीतकाहलशंखाशीस्तुतिकोलाहल श्रवणान्तरमेव साक्षात्कृत

परप्राप्तेमूर्द्धोपरि भूत्वागतचरणावालिंग्य गमनरहितं निर्वन्ध्यश्रीशापरूपाज्ञां दत्वासंकोचमकृत्वा कृत्यस्खालित्यमवलंबनशाखारहित गतिहानिर्दूरग मनानु -गुणं त्यक्तमहानिंदा बहिर्गत्वा चेदागच्छद्धानिर्मुक्त प्रथमापराधः स्नेहवृद्धिमूलदाढर्यं धारकत्वसंबन्धः कारणपर्यन्तं धावनैरनर्हांऽज्ञाव्यति रिक्तां कुर्वत महाभिनिवेशः गोष्पदं यथा भवेत्तथा समुद्रतुल्यादरेण सह संश्लिष्यतापानां निवर्तकत्वं प्रकाशयन्ति दशमशतके।

सूत्रानुवाद - अतसी फूल के वर्ण तथा ज्योति के पर्वत सदृश प्रभु अपने प्रपन्नों को हर संकट की घड़ी में सहायक होते हैं। भक्तों के परमपद जाने के समय में फल रूपी अर्चिरादिगतिमार्ग में प्रवेश कराते हैं। सर्वशक्तिमान् प्रभु तीनों लोक को मापते हुए धरा की शक्ति को जाँचने हेतु इसपर अपना श्रीचरण रखते हैं और उसकी छाया में सरोवरों का निर्माण करते हैं। वे अद्वितीय हैं, दशरथ पुत्र, गोपाल अमृत बाँटते हैं। मार्गदर्शी साथी के रूप में अठारह जाति के अनेकों भिन्न संस्कृतिवाले जड़-चेतनों को पुरुष एवं नारी बहेलिया, जैसे निषाद, शबरी, जटायु, सुग्रीव, अयोध्या के चल-अचल तृणादि, गोप-गोपियों, दधिभाण्ड, कुब्जा, मालाकार, घण्टाकर्ण, भोजन करानेवाली ब्राह्मण पत्नियाँ, प्रह्लाद, विभीषण, गजेन्द्र, सुमुखन, गोविन्दस्वामी, मार्कण्डेय आदि को अर्चिरादिगतिमार्ग के पथिक बनाये; दिन में परमपद जाने का समय तय करते हैं, विरह-वेदना से विकल आळवार। आनन्द की घड़ी में भी आळवार भगवान् को गाय नहीं चराने देते। अपने उद्धार का समय आनेपर, अपने को पूर्ण दोषरहित जानकर भी भले एवं दुष्टजनों को उपदेश देते हैं। भगवान् के आज्ञापालक बनकर

उनका कभी साथ न छोड़ने का वे परामर्श देते हैं। हँसते हुए आळवार लोगों की शंका मिटाते हैं। सभी श्रीवैष्णवजन स्वयमेव आळवार के आज्ञापालक बने रहते हैं और आळवार उनलोगों के आज्ञापालक रहते है। भगवान् के मन्दिर की प्रदक्षिणा को वे कैंकर्य कहते हैं। प्रभु 'स्मर्तव्यं' (सदा उनका चिन्तन करे), 'वक्तव्यं' (विना संकोच के बोलो), 'श्रोतव्यं' (ध्यानपूर्वक श्रवण करे), 'द्रष्टव्यं' (दर्शन करे), 'गन्तव्यं' (लक्ष्य बनाये), 'वास्तव्यं' (चलें)। भक्तियोग से षड़-दर्शन का मतभेद मिटाये। नारायण को भाव से समझे। पावनकारी माधव का द्वयानुसंधान। तीनों से स्तुति। कैंकर्य-रत भक्तों को निदेश। आत्मसात न करे। प्रभु ने (आळवार के) मन को सुधारा और वैकुण्ठ को सजाया। आळवार से लोगों का कल्याण। परमपद प्राप्ति हेतु आळवार का प्रभु को त्वरित करना। भगवान् का इसे विस्मृत कर आळवार के ह्रदय में प्रवेश करना और स्थाई निवास बनाना। दिव्यदेशों को छोड़कर आळवार के शरीर का लक्ष्य करना। अनेकों रूप में गोपियों के साथ रासमण्डल-नृत्य तथा द्वारकावासी नारियों से घुलमिल जाना। माया से मुक्त आळवार का प्रभु द्वारा उद्धार। प्रभु के अकारण करुणा से द्रवित आळवार अनादिकाल से उनकी उपेक्षा का कारण पूछना। इन्द्रियों में लिप्त रहने से जन्मादि के चक्र में पड़ना। भगवान् की ओर उन्मुख न होनेवालों से उनका दूर रहना। सम्बन्ध बनजाने के कारण आळवार तथा उनके शरीर से भगवान् की आसक्ति। आळवार भगवान् को कहते हैं, ''लकड़ी के कुन्दे के भार के समान यह शरीर आपका ही दिया हुआ है''। भगवान् समझाते हैं कि जीव के अच्छे तथा बुरे कर्म के अनुसार ही उसे शरीर मिलता है।

आळवार पुनः कहते हैं, "सब कुछ आपके कोप या कृपा पर आधारित है। एक मात्र आप ही सबके भाग्य के निर्णायक हैं। दोष का निवारण कर देने पर यह जन्म का कारण नहीं बनता। आप अपनी स्वेच्छा से जीव के हृदय में रहते हैं। अतः सबकुछ आप पर निर्भर करता है।" भगवान् कहते हैं कि तुम अज्ञानग्रस्त हो। दोनों दोष तुम्हारे हैं। लेकिन आळवार का विचार है कि दोनों भगवान् की आज्ञा के वशीभूत हैं, अतः ये सब भगवान् के काम हैं। भगवान् के अनुसार जीवात्मा का ज्ञान उसके स्वाभाविक लौकिक लगाव से उत्पन्न होता है। यह सत्य है कि जीव हमारा अंशी है पर अनेकों जीव हमसे विमुख रहते हैं। उनके दोष का कारण उनका शरीर पर मोह रखना है। आळवार का कहना है कि आप ही सबके आपत्सखा हैं तथा समयानुसार चेतन-अचेतन को निगल जाते हैं। पुनः स्वेच्छा से सबको उनके कर्मजनित रूप में प्रकट करते हैं। अतः सवके कार्य-कलाप एवं तत्जनित फल आपके अधीन है। सार्वभौम होने के कारण आपको कोई आधार या सहायता नहीं चाहिए। चेतन-अचेतन के आप ही अन्तःकरण हैं। इस पृष्ठभूमि में आलवार ने उनसे जानना चाहा, "मेरी उपेक्षा करते हुए आपने तब क्यों मुझे उपायान्तर में लगा दिया? आप अपने स्वरूप का दर्शन कराकर मुझे आनन्दित कीजिए। मुझे नहीं पता आप मेरे साथ क्या करेंगे। कोई उत्तर न देकर भगवान् सिर झुकाये जमीन की ओर देखते रहे।

उत्सव के जनसमूह में मन्त्र न जानने वाला भी कुछ-न-कुछ गुनगुनाता है। इसी तरह से विना उत्तर दिए भगवान् विराजमान थे और आळवार को परमपद ले जाने के लिए सक्रिय हो गये। ज्ञान-चक्षु से उन्होंने आळवार

को वैकुण्ठ जाने का **अर्चिरादिगतिमार्ग** दिखा दिया। वैकुण्ठ के मार्ग में आळवार को सागर तथा मेघ की ओर से उनके सुस्वागतम की वाद्य-ध्वनि सुनाइ पड़ी। **आतिवाहिक** तुरही तथा शंख बजा रहे थे। अप्सरायें स्वागत-सम्मान में खड़ीं थीं। उत्सव का दृश्य था। अन्त में भगवान् आळवार को अपने चरणारविन्द में **परभक्ति** का ज्ञान देते हैं। आनन्दातिरेक में आळवार भगवान् को जाने से रोकते हैं तथा अपना चरणारविन्द उनके माथे पर रखने को कहते हैं और भगवान् उसीतरह अनुगृहित करते हैं। आळवार एक विनम्र तथा आज्ञाकारी की तरह खड़े हैं। जैसे लता को बढ़ने के लिए एक आश्रय चाहिए उसीतरह भगवान् जीवात्मा के सहारा तथा आश्रय हैं। भगवान् जब भक्त को भोग्य की तरह स्वीकार कर लेते हैं तब उसके शरीर तथा आत्मा को बीच में छोड़कर आधे खाये भोजन की तरह छोड़कर जा सकते हैं क्या? लक्ष्मी जी के साथ विराजने से भगवान् को प्रेम के प्रतीक लक्ष्मी जी से भक्तात्मा पर स्नेह बनाये रखने का उत्साह मिलता है। भगवान् से भोग्य स्वरूप में अपने को स्वीकार करने की आळवार की अभिलाषा पूरी हो जाती है।

आळवार की भक्ति की प्रबल लालसा रूपी गोपद-छाप में **हरि** का करुणा-सागर भरा हुआ है। तिरुवायमोळी (सहस्रगीति) के दसवें शतक में आळवार हरिकी कृपा-रश्मि से शोभायमान हो रहे हैं।

विशेषार्थ- 1. भगवान् का आर्तिहरत्व दिव्यगुण - **तिरुवाय. 10.1.1 -** काले घुँघराले केशवाले कमल-नयन व लाल मूँगे की तरह होंठवाले **तिरुमोगूर** (मदुरै से 10 कि.मी. पर दिव्यदेश) के कालमेघ भगवान् की तरह अन्य

कोई हमारा रक्षक नहीं है। **10.3.3-** आपके श्यामसुन्दर दिव्य मंगल विग्रह। **10.6.8-** अञ्जन पर्वत के सदृश श्रीविग्रहवाले। **10.10.1-** प्रवाल सदृश लाल होंठ, कमल सदृश नयन व नीलमाणि के समान कपटी चोर। **10.10.6-** अतसी फूल के रंगवाले, प्रवाल जैसे लाल होंठ व राजीव नयन। भाव है कि अनेकों आकर्षक रंग के दिव्य मिश्रण वाले प्रभु। इस दिव्य मंगल विग्रह की झाँकी से भक्तों की समस्त वेदना तथा दोष का निवारण होता है। **10.1.10-** भक्तों के मनचाहे स्वरूप में दर्शन देकर उनकी रक्षा करते हैं। तात्पर्य है कि सब प्रपन्नों एवं लोकों को उसके मनचाहे स्वरूप में संरक्षण देते हैं(10.1.3)। प्रभु के कल्याणकारी व करुणायुत श्रीचरण के न मिलने से अपनी रक्षा का समस्त भार भगवान् पर छोड़ते हैं।

2. अर्चिरादिगतिमार्ग के माध्यम से भगवान् का जीवात्मा के साथ सम्बन्ध।

तिरुवाय. 9.9.6- उनकी कृपा ही कृपा है और उसे पाना अभी दूर लगता है। उनकी कृपा पाने के समय तक मरे प्राण शरीर में नहीं रह सकते। दिन का अन्त करके गोधूलि वेला भी आ गयी परन्तु मेरा हृदय अभी तक नहीं आया है। **9.10.5-** आपको जो खोजता है उसे यहाँ और वैकुण्ठ में आप आश्रय प्रदान करते हैं। अर्थात् उनकी कृपा फल से ही मरण पश्चात् मोक्ष मिलना निश्चित है। **10.6.5-** तिरुवत्तारु (केरल के तिरुअनन्तपुरम् से 45 कि.मी. पूरब दिव्यदेश) के प्रभु ने स्वेच्छा से हमें मुक्ति का मार्ग (अर्चिरादिगतिमार्ग) दिया है। अर्थात् अर्चिरादिगतिमार्ग से ही परमपद मिल सकता है। **10.1.5-** धरती मापने वाले आप सबके आदि कारण हैं। तात्पर्य है कि त्रिविक्रम प्रभु के चरण ने धरती को ढ़क कर सब जीवों की परमपद

पाने की योग्यता परखी है। **10.1.2-** श्रेष्ठ पादरूपी छाया का बृहत्तम सरोवर प्रदान करने वाले प्रभु। भाव है कि प्रभु की पादछाया के कारण ही सब वृक्ष एवं सरोवरादि उनकी कृपाफल के रूप में हैं। **गरुड़ पुराण** में कहा है - **पाथेयं पुण्डरीकाक्षं नामसंकीर्तनामृतं।** कमलनयन भगवान् के नाम संकीर्तन का अमृत रास्ते का कलेवा (आहार) है। **10.1.8-** लंका का नाश करने के लिए आप दशरथनन्दन राम जी बने। **10.1.6-** गायों के चरवाहा-रूप रक्षक, आकर्षक चालवाले, गोपाल हम सब के रक्षक हैं।

वा.रा. 1.1.29- गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम्। धर्मात्मा रामजी वहेलियों के राजा प्रिय गुह के पास पहुँचे। परकाल स्वामी **पेरिय तिरु. 5.8.1-** अपने परम समर्पित भाई लक्ष्मण को भी निषादराज का अपना बना दिया। निषादराज को रामजी ने कहा, 'मेरे सखा, प्यारे भाई, आओ'। **वा.रा.1.1.57- सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं।** महान् तेजस्वी दशरथ कुमार शबरी के पास गये। **वा.रा.3.74.13- चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि रघुनन्दन।** हे रामजी! आपकी सुन्दर पावन आँखों की दृष्टि पड़ने से मैं पवित्र हो गयी। पक्षीराज जटायु जी ने भगवान् राम के कैंकर्य करने में अपने शरीर तक का वलिदान कर दिया। फलतः रामजी ने इन्हें दुर्लभ गति प्रदान की। **वा.रा.3.68.29-30 - या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः। अपरावर्तिनाम या च या च भूमिप्रदायिनाम्।29। मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्। गृधराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज।30।** महान् बलशाली गृधराज यज्ञ करनेवाले, अग्निहोत्री, रणभूमि में पीठ न दिखानेवाले और भूमिदान करनेवाले जिस गति की व जिन उत्तम लोकों

की प्राप्ति होती है, मेरी आज्ञा से उन्हीं सर्वोत्तम लोकों में तुम भी जाओ। मेरे द्वारा दाह-संस्कार किये जाने पर तुम्हारी सद्गति हो। वानरराज सुग्रीव के प्रति रामजी की कृतज्ञता एवं रामजी की भक्त-परवशता - **वा.रा.4.4.18- सुग्रीवं नाथमिच्छति।** समस्त जगत के रक्षक राम जी सुग्रीव को अपना रक्षक मानते हैं। **तिरुवाय. 7.5.1-** ब्रह्मा की सृष्टि में छोटा से छोटा तृण तथा कीड़े-मकोड़े को भी गौरवपूर्ण अयोद्धया में जड़-चेतन के साथ सबको रामजी का प्रेम मिला। फलतः जब रामजी वन गये तब सब सूख गये परन्तु वन से अयोध्या लौटने पर सब हृष्ट-पुष्ट हो गये।

विष्णु पु. 5.13.22- चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम्। निरुच्छ्वास तया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका।। रास में जाने से रोक दिये जाने पर परब्रह्म स्वरूप भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हुए चिन्तयन्ती श्वास रुक जाने से मुक्ति पा गयी। एक अन्य गोपी का भी यही हाल हुआ। तात्पर्य है कि भगवान् कृष्ण को **उपाय** मानने से गोपी को परमपद मिला।

भगवान् कृष्ण जब रास से लुप्त होकर दधिभाण्ड नामके गोप के यहाँ छिप गये तो उसने भगवान् को छिपने में सहायता देने के लिए उसने मुक्ति माँगी और भगवान् को मुक्ति देनी पड़ी। उस दधिभाण्ड नामक गोप ने दधि-भाण्ड अर्थात् दही की हाण्डी के लिये भी मोक्ष माँगा और उस जड़ पदार्थ को भी भगवान् ने मोक्ष दिया।

विष्णु पु. 5.20.6- सुगंधमेतद्राजार्हं रुचिरं रुचिरानने। आवयोर्गात्रसद्दशं दीयतामनुलेपनम्।। हे सुमुखी! यह सुन्दर सुगन्धमय चन्दन लेप तो राजा

के ही योग्य है, हमारे शरीर के लिए भी कोई अनुलेप हो तो दो। कुब्जा ने बदले में विना कुछ आशा किए दोनों भाइयों को चन्दन का लेप लगा दिया। भगवान् ने इसे मोक्ष दिया। **विष्णु पु. 5.19.21- प्रसादपरमौ नाथौ मम गेहमुपागतौ। धन्योहऽमर्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीवनः।।** माली ने कहा, "हे नाथ! आपलोग बड़े कृपालु हैं जो मेरे घर पधारे। मैं धन्य हूँ, क्योंकि आज मैं आपका पूजन कर सकूँगा। **विष्णु पु. 5.19.27- धर्मे मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति। युष्मत्सन्तति जातानां दीर्घमायुर्भ-विष्यति।।** हे भद्र! तेरा मन सदा धर्मपरायण रहेगा तथा तेरे वंश में जन्म लेनेवाले दीर्घायु होंगे। माल्यकार के कैंकर्य से प्रसन्न होकर अन्ततः भगवान् ने उसे अपने श्रीचरणों में ले लिया।

घण्टाकर्ण की कथा हरिवंश पुराण में है। **हरिवंश पु. भविष्य पर्व 83.6- नवं शवमिदं पुण्यं वेगपारगमुच्यते। यज्ञशीलं महाप्राज्ञं ब्राह्मणं शवमुत्तमम्।।** भोजन करने योग्य यह तुरंत का मारा हुआ यज्ञादि करनेवाले संस्कार सम्पन्न वेद के ज्ञानवाले ब्राह्मण का है। **वा.रा.2.103.30- यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।** किसी व्यक्ति का जो भोजन होता है वही उसके इष्टदेव का भी होता है। घण्टाकर्ण का जो भोजन था वही उसने भगवान् कृष्ण को भी अर्पित किया। अभक्ष्य वस्तु के प्रेम से समर्पण से प्रसन्न भगवान् कृष्ण ने घण्टाकर्ण को मोक्ष दिया।

आण्डाल (गोदा जी) **नाच्चियार तिरु. 12.6 -** मुझे भक्तविलोचन के पास ले चलो जहाँ वे भूखे, थके तथा किसी से खिलाये जाने की प्रतीक्षा में सामान्य दृष्टि से बहुत दूर बैठे हैं। ब्राह्मण पत्नियों ने भक्ति पूर्वक

भगवान् कृष्ण को भोजन कराया और उन्होंने उन्हें कृपापूर्वक मोक्ष प्रदान किया। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद भगवान् के कृपा पात्र थे। कुलशेखर आळवार **पेरुमाल तिरु. 10.7-** रावण के छोटे भाई विभीषण को राज दिया। **वा.रा.6.19.4- अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः।** मैं रावण का छोटा भाई उससे अपमानित होकर आया हूँ। **वा.रा.6.17.16- राघवं शरणं गतः।** रामजी की शरण में आया हूँ। वामन पुराण **गजेन्द्र मोक्ष 26- परमापदमापन्नो मनसाचिन्तद्हरिम। स तु नागवरः श्रीमन्नारायणपरायणः।** बड़ी विपत्ति को देखकर गजेन्द्र हाथी ने श्रीमन्नारायण का चिन्तन करते हुए उनपर ध्यानस्थ हो गया। भगवान् ने उस प्रपन्न के कैंकर्य को स्वीकार किया। **पेरिय तिरु. 5.8.4-** गरुड़ की भय से विषैला सुमुख (कालिय) साँप आपके पास सुरक्षा की गुहार लगाते आया। **पेरिय तिरु. 5.8.5-** आपने गोविन्द स्वामी पर दया की। युवाकाल में उसने वृन्दावन तथा मथुरा में भगवान् कृष्ण की बचपन की लीलाओं की दिव्यानुभूति मिलने की लालसा से तपस्या की। उसको तदनुरूप फल मिला। **पेरिय तिरु. 5.8.6-** पुराकाल में एक ऋषि ने मार्कण्डेय को जन्म दिया। यम के भय के नाश के लिए उसने आपके चरणारविन्द की प्रार्थना की। आपने उसे अभय देकर उसकी रक्षा की। अठारह जाति एवं विभिन्न संस्कृति वाले लोगों की अपने अवतार काल में आपने उनलोगों को वैकुण्ठ पहुँचने हेतु समुचित अर्चिरादिगतिमार्ग का ज्ञान कराया। **तिरुवाय. 10.1.6-** तिरुमोगूर क्षेत्र में निवास करनेवाले भगवान् के पादारविन्द के विना हमारा दूसरा कोई रक्षक नहीं है। **10.1.1-**

चार भुजा, घुंघराले काले बाल, कमलनयम, मूँगा जैसे लाल होंठ वाले आकर्षक मेघ सा श्याम प्रभु ही हमारे एकमात्र आश्रय हैं।

3. भगवान् कृष्ण को पशुओं को खिलाने से नम्माळवार का रोकना -गोपी भाव में आळवार नहीं चाहते कि भगवान् कृष्ण वन में गाय चराने जायें। पूरे दिन विरह वेदना में रहना पड़ता है। भगवान् ने आळवार का परमपद जाने का समय दिन में तय किया है। इसलिए भी दिन में वियोग नहीं चाहते हैं। दशक 10.3 द्रष्टव्य। **तिरुवाय. 10.2.9-** सूचना की अवधि का अन्त हो रहा है। **9.8.4-** मुझे नहीं पता कब तक मैं यहाँ टिकूँ। **9.10.5-** मृत्यु पश्चात् वैकुण्ठ जाने पर। **विष्णु पु.5.17.3- सुप्रभाता भवन्निशा -** आज की रात्रि सुन्दर प्रभात वाली थी। **विष्णु पु.5.18.24- सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोषिताम्-** मथुरा की नारियों के लिए आज की रात सुन्दर प्रभातवाली हुई है। **तिरुवाय. 10.3.4-** गोविन्द! आप हमारी अकेलापन की चुभन को नहीं समझते। आप केवल अपनी गायों को चाहते हैं एवं हमें छोड़कर उनके पीछे चले जाते हैं। **10.3.9-** विनती है आप गायों के पीछे मत जाइये। **10.3.8-** चुपके से भाग मत जाइये। **10.3.11-** श्रीपति गोपकिशोर को गाय चराने जाने के लिए मना करती हुई एक गोपी समझा रही है।

4. नम्माळवार को कृत्य-अकृत्य का बोध - तरुवाय. 10.4.3- पुनर्जन्म की यातना से मुक्त होकर अब हम दुबारे जन्म नहीं लेंगे। **10.4.4-** मुझे विश्वास है कि आप हमसे अलग नहीं किये जा सकते। **तैत्तिरीय उप. 2.4- न बिभेति कदाचन्।** कभी कोई डर नहीं है। अर्थात् जो आनन्ददाता सार्वभौम

प्रभु पर ध्यान करता है वह कभी लौकिक वासनाओं से भयग्रस्त नहीं होता। आळवार के परमपद जाने का समय तय हो गया है इसलिए लौकिकों को कृत्य-अकृत्य (अच्छे-बुरे कर्मों) का उपदेश देते हैं। हे हृदय! प्रभु के श्रीचरण की पूजा करो। **पेरिय तिरुवन्दादि 1 -** हे उत्सुक हृदय!

तिरुवाय. 10.4.7- हे हृदय! अतिश्रेयस्कर की पूजा कर। **10.4.8-** हे नेक हृदय! प्रभु के श्रीचरण की प्रशस्ति गाओ। **10.6.1-** हे मन! सब संशय छोड़कर आपकी पूजा करो। **10.6.5-** हे मेरे हृदय! अब नरक का उपहास कर सकते हो। **10.7.9-** हे हृदय! उनके पास ही रहो। इस जीवन तथा शरीर का अन्त होने दो। **7.10.9-** उचित कर्म, सुयोग्य हृदय एवं सुन्दर शब्दों के साथ कब हम तिरुवारन्विलै (आळवार तिरुनगरी के पास एक दिव्यदेश) में परिक्रमा करेंगे? नम्माळवार की भावना है कि परमपद जाने का समय नजदीक आने पर संसार में श्रीवैष्णवों की सेवा में लगे रहना है। हँसते हुए वे संसार की प्रशंसा करते हैं कि इसी के कारण विचार परिपक्व हुआ है। साथ ही तिरुमला स्थित खड़े अवस्थावाले भगवान् वेंकटेश की कृपा की प्रशस्ति गाये जिनके कारण विचार निर्मल हुआ।

5. श्रीवैष्णवों की आध्यात्मिक क्रियाशीलता - आळवार श्रीवैष्णवों का सम्मान करते हैं और श्रीवैष्णवजन उनका सम्मान करते हैं। **तिरुवाय. 10.1.5-** चलो भक्तों अपने प्रिय मन्दिर के पास चलें। चलें, आनन्द में नृत्य करें। भक्तों का यही **कर्तव्य** है। **10.2.5-** आपके नाम का चिन्तन करें। इसे **स्मर्तव्य** कहते हैं। **10.2.4-** बिना संकोच के बोलो। तिरुअनन्तपुरम में प्रेम से निवास करनेवाले प्रभु की पुष्पों की अर्चना कर

पूजा करनेवाले कितने भाग्यशाली होंगे? इस सौभाग्य का विना संकोच कीर्तन करो। यह **वक्तव्य** है। **10.2.6-** हमारे लोगों ध्यान से सुनो। अर्थात् यह **श्रोतव्य** है। **10.2.8-** फनधारी शेष पर शयन करते प्रभु का चरण देखने को तैयार हो जाओ। यह **द्रष्टव्य** है। **10.2.1-** तिरुअनन्तपुरम चलें जहाँ प्रभु विषधर नागशय्या पर शयन करते हैं। अर्थात् प्रभु के चरण दर्शन हेतु (**द्रष्टव्य**) इस नगर में पहुँचना ही **गन्तव्य** है। आळवार भक्तों को यह समझाते हैं कि इस नगर में जाओ और वहाँ निवास (**वास्तव्य**) कर श्रीचरण का दर्शन करो।

6. भक्ति से परमपद प्राप्त करना - तिरुवाय. 1.3.1- भक्तों को उनके प्रेम के कारण प्रभु मिलते हैं। भक्ति योग स्पष्ट करते हैं। **1.3.5-** वेद की विधि का पालन करते हुए आत्मानुभव से प्रभु को प्राप्त करो। भ्रम का त्याग करके अपने बन्धनों को काट दो। छः दर्शन सिद्धान्तों के द्वन्द को प्रभु ही मिटाते हैं। **10.4.1-** दामोदर भगवान् के श्रीचरण भक्ति के उपाय हैं। भक्ति की महत्ता बताते हैं। **1.2.1-** क्षुद्र विषय संग त्याग कर सबकुछ भगवद् अर्पण कर दो। यह **प्रपत्ति** है। **1.3.1** में प्रेम से भगवान् को प्राप्त करना **भक्ति योग** है। अपने पूर्वाचार्यगण आलवन्दार तथा रामानुज आदि 1.2.1 को भी भक्ति योग मानते हैं। लेकिन रामानुज स्वामी से बाद के आचार्यगण (भट्टर, ननजीयर, नमपिल्लै आदि) उपर्युक्त प्रपत्ति तथा भक्तियोग का समर्थन करते हैं। उपर्युक्त 1.3.5 को भी परवर्ति आचार्यगण प्रपत्ति बोधक मानते हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य हृदय के पूर्व के सूत्र 219 तथा 224 के व्याख्यान द्रष्टव्य है। तिरुवायमोळी के अधिकांश

व्याख्याकार पूरे तिरुवायमोळी को भक्ति योग परक रचना मानते हैं और इसको द्वय मन्त्र की व्याख्या कहते हैं। **नारायण** नाम पूरे द्वय मन्त्र का एकमात्र प्रतीक है। **तिरुवाय. 1.2.10-** गौरवशाली **नारायण** के चरणारविन्द के साथ आत्मसात हो जाओ जो अनगिनत सद्गुणों के प्रभु हैं तथा अद्वितीय हितैषी है। **10.5.1- नारायण** नाम ही मन्त्र है। **10.5.2- नारायण** मेरे नाथ। तात्पर्य है कि अष्टाक्षर मन्त्र (मूल मन्त्र) नारायण नाम का प्रतीक माना जाता है जो भगवान् के चरणारविन्द को प्राप्त कराता है। **10.5.7- माधव** नाम जपो। भाव है कि नारायण-माधव दो पद वाले द्वय मन्त्र के समानार्थक हैं। मूल मन्त्र के **'ॐ'** में '**नमो'** तथा '**नारायण'** के अर्थ समाहित हैं। अतः मूल मन्त्र का उच्चारण द्वय मन्त्र का बोध कराता है।

आळवार ने भगवान् के श्रीपाद की प्राप्ति का कर्म, वचन तथा मन को लगाकर पूजा करने का सुगम मार्ग बताया है। **तिरुवाय. 10.5.4-** आपके चरण पर फूल विखेर कर प्रतिदिन पूजा करो। अर्थात् **कर्म** से पूजा हुई। **10.5.5-** नाम गान करो। अर्थात् **वचन** से पूजा हुई। **10.5.10-** कमल का फूल चढ़ाकर ध्यान लगाओ। यह **मन** से पूजा हुई। **10.7.1 -** मधुरभाषी कविगण! जब आप गाते हैं तो सावधान रहें। तिरुमालिरुञ्जोलै के प्रभु युक्तिकारक हैं जिन्होंने मधुर गान से हमारे हृदय में प्रवेश कर पूरी आत्मा पर अधिकार कर लिया। भगवान् ने नगर विशेष पर अभिरुचि न दिखाकर आळवार के शरीर को अपने में आत्मसात कर लिया। आळवार द्वारा शरीर में दोष बताने पर रास-मण्डल नृत्य में गोपियों तथा द्वारका के नारियों का दृष्टान्त आता है। **तिरुवाय. 1.5.10-** प्रभु ने हमारे हृदय को

विश्वासपूर्वक अपने ऊपर दृढ़ कर दिया। **1.5.1-** हाय पापी मैं ! मन से उभयविभूति नाथ पर ध्यान लगाया। भाव है कि आळवार शरीर की हीनता के कारण प्रभु के दिव्यगुणों के चिन्तन का अपने को अधिकारी नहीं मानते हैं। **1.5.10-** समस्त जड़-चेतन के अन्तर्यामी प्रभु! मेरे दुष्कर्म मिटाकर, अज्ञानजनित विषय-संग छुड़ाकर तथा मेरे मन को अपने में लीन कराके मेरे लिए परमपद को सजाने लगे। नायकी की मातृवाणी- **6.7.2-** अपने नगर, देश तथा समस्त भूमंडल को अपनी ही भाँति भगवान् के शुभ नाम एवं गुणों का कीर्तनकार बनाने वाली यह किशोरी। भाव है कि आळवार के कारण समग्र जगत भगवान् के नाम एवं सौंदर्य के उपासक और गायक बन गये। लौकिकों में सुधार होते देख भगवान् ने आळवार को धरती पर रखने से अपने को सफल समझा।

7. भगवान् के दिव्यगुणों से श्रीवैष्णवों के लगाव- तिरुवाय. 10.6.3- आप आज ही धरा पर आये हैं और हमारे आदेश पर वैकुण्ठ प्रदान करने के लिए शीघ्रता में हैं। **10.6.7-** गोविन्द हममें निवास कर गये हैं। **10.7.3-** आप हमारी विस्मयकारी वाणी में प्रवेश कर गये और हमको अपना बना लिया। **10.7.8-** तरुमालिरुञ्जोलै पर्वत! क्षीर सागर! वैकुण्ठ! शीतल वेंकटम् पर्वत! मेरा शरीर ! **8.6.8-** प्रभु आपके अनेकों स्थानों में आरामगाह हैं - आकाश, धरा, सागर आदि। तब भी आपने हमारे अधम हृदय को अपना आवास चुना है। अपने भक्तों के प्रत्येक अवयव को अपनाने हेतु ही वे अनेकों नगरों में अवस्थित हैं। लीलाशुक (विल्वमंगल) **कृष्णकर्णामृतम्** 2.35- **अंगनामंगनामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरेणांगना।** हर गोपी

के बीच कृष्ण, और हर कृष्ण के बीच गोपी हैं। रास-मंडल नृत्य का यह दृश्य है। प्रत्येक गोपी कृष्ण के आनन्द में लीन है। **वि.पु. 5.31.17- एकस्मिन्नेव गोविन्दः काले तासां महामुने। जग्राह विधिवत्पाणीन्पृथग्गेहेषु धर्मतः।।** भगवान् गोविन्द ने एक ही साथ (द्वारका के) अलग-अलग भवनों में उनसब (भौमासुर के कारागार से आई सोलह हजार एक सौ कन्याओं से) के साथ विधिवत् धर्मपूर्वक पाणिग्रहण किया। **वि.पु. 5.31.20- उवास विप्र सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः।** विशवरूपधारी श्रीहरि रात्रिकाल में उनसबों के घरों में रहते थे। तात्पर्य है कि इसी तरह आळवार के सभी अंग-प्रत्यंग में भगवान् प्रवेश कर गये थे। **तिरुवाय. 10.7.10-** पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, उनके पाँच शब्दादि विषय, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच भूत, जीव की आत्मा के आवरण के रूप में साथ रहनेवाली मूल प्रकृति, मन, बुद्धि तथा अहंकार से प्रभु छुड़ाने की कृपा कीजिए। आळवार ने इन सबों को शरीर का दोष बताया है।

8. आळवार द्वारा माया का मूलोच्छेदन - जीव को इस जगत् में उलझे रहने के लिए मूल प्रकृति रूपी माया ही मूल कारण है। **तिरुवाय. 10.8.3-** भगवान् का मुझमें प्रवेश करने से अपने को लौकिक जीवन के लोभ से अलग कर लिया। **10.8.5-** अमृतमय बागों से घिरे तेन-तिरुप्पेर (श्रीरंगम् के पास कावेरी के किनारे स्थित मालपुआ से भरा घड़ा साथ रखनेवाले) के मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभु आज हमारे भीतर प्रवेश कर गये हैं। तात्पर्य है कि आळवार को परमपद मिल गया है। उभयविभूति के नाथ श्रीमन्नारायण को आळवार को परमपद ले जाने की बलवती इच्छा है।

10.8.8- बुद्धि से परे प्रभु हमारी आँखों में बसे हैं। परमपद मार्गी जीवात्मा को **आतिवाहिकगण** उचित मार्गदर्शन करते हैं। आतिवाहिक द्वारा ही भगवान् जीवात्मा (आळवार) को मूल प्रकृति की माया से मुक्त करते हैं। **10.8.3 -** आपको धारण करके हमने पुनर्जन्म तथा व्याधि का नाश किया। भाव है कि आळवार की इच्छा के कारण ही प्रभु ने उनको माया से मुक्त कर दिया।

9. भगवान् द्वारा आळवार की जिज्ञासा का समाधान - आळवार भगवान् से वार्ता में पूछते हैं कि आपने आज अकारण मुझे अपना बना लिया है लेकिन पुराकाल से मुझसे कोई सेवा नहीं ली। **तिरुवाय. 10.8.9-** पर्वत समान महलों से घिरे तिरुप्पेर के परमभोग्य प्रभु ने हमारे हृदय में स्थान लेकर हमें आज एक आदरणीय व्यक्ति बना दिया है। उन्होंने अनादिकाल से हमारी उपेक्षा करके हमें क्यों अपने से दूर जाने दिया? भगवान् को कोई उत्तर न देते देख आळवार कहते हैं कि इन्द्रियों के कीचड़ में हम पड़े रहे। भगवान् तब कहते हैं कि इसी कारण तुम पुनर्जन्म के चक्र में फँस गये। कहा है- **यूयम् इन्द्रिय किंकराः।** तुम इन्द्रियों के सेवक बने रहे। **तिरुवाय. 5.8.6-** हमें कर्मों से मुक्त कर दीजिए। **3.2.6-** हम क्षुद्र भौतिक सुख में लगे रहे। इन्द्रियों के जाल में पड़े रहने के लिए भगवान् को ही आळवार दोष लगाते हैं। भगवान् का कहना है कि चेतन की आत्मा को शरीर से जुड़ जाने से ये सब होता है। **तिरुवाय. 7.1.8-** आपकी दी हुई पाँच इन्द्रियाँ अमृत देने के बहाने धोखे में रखती हैं। **5.7.8-** आपकी दी हुई भ्रम में रखने वाली ये दुष्ट इन्द्रियाँ एक दिन छोड़ देंगी। भगवान्

आळवार को समझाते हैं कि तीन गुणों एवं इन्द्रियों के संयोग से ये सब होता है। **तिरुवाय. 3.2.1-** आपने जो यह शरीर दिया है यातनाग्रस्त हो समय काट रहा है। **7.1.10-** हम आपकी गाथा गाते आपके चरणारविन्द पर समर्पित हो जाना चाहते हैं। इसके बदले आपने हमें शरीर का लोथला ढोने तथा इसके भार से दब जाने कि लिए छोड़ दिया है। प्रभु समझाते हैं कि चेतन को उसका शरीर उसके अच्छे या बुरे कर्मों से मिलता है। आळवार का कहना है कि हमारे अच्छे कर्म आपकी कृपा पर आधारित है एवं बुरे कर्म आपके कोप के कारण होते हैं। **1.4.2-** ओह! अपने बुरे कर्मों के कारण लम्बे समय से हम प्रभु का स्मरण नहीं कर पाये हैं। **3.6.8-** लौकिक सुख देने वाला पुण्य भी पाप के सदृश है जो मोक्ष-विरोधी है। आप इन सबों से परे हैं। **10.10.8-** प्रभु चिरन्तन कर्म, उसके फल तथा उसके आनन्द भोगने वाले हैं। तात्पर्य है के पुण्य तथा पाप की उत्पत्ति, उनके फल देनें की शक्ति एवं उनका रहना, नष्ट होना सब भगवान् के अधीन हैं। अतः आळवार के पुण्य-पाप छुड़ाना प्रभु के हाथ में है। **4.7.3-** हाय! कितने क्रूर दुष्ट कर्म हमने किये हैं। **1.4.3-** हाय! हमारे काले कर्म का अन्त नहीं होगा। **10.7.11-** महत्, अहंकार, मनस तथा पाँच इन्द्रियों के नाश का वर्णन करते हुए तिरुमालिरुञ्जोलै के प्रभु की प्रशस्ति का यह दशक है जो हमारे भीतर प्रवेश कर स्वयं हम हो गये अर्थात् आळवार हो गये। **5.6.4-** मेरी बेटी कहती है, 'जो हो रहा है मैं हूँ। जो बचा हुआ है मैं हूँ। जो हो चुका है मैं ही हूँ। मैं सभी कृत्यों के फल को चखता हूँ। प्रेरणा मैं ही हूँ '। क्या राजीवनयन प्रभु ने इसे भावग्रस्त कर लिया है? **3.5.10-** मणिवर्ण

राजीवनयन उभयविभूति नाथ ही कर्म हैं, फल हैं तथा उसके कारण हैं। भाव है कि भगवान् ही सबके कारण एवं कार्य हैं। कर्म के वशीभूत जीवात्मा **कर्तृत्व** तथा **भोक्तृत्व** के भाव से ग्रस्त है। दोनों कर्म जीवात्मा से उत्पन्न होते हैं। आळवार कहते हैं कि परन्तु हमारे दोनों कर्म आपके ही आज्ञापालक हैं। **2.9.9-** अपना स्वरूप नहीं जानता हुआ मैं अहंकार एवं ममकार के वशीभूत हो गया। **3.2.7-** हे मेरा हृदय! ज्ञान के अभाव में मैं कर्मजनित जन्म की यातना से ग्रस्त रहा। कब हम ज्ञानमय कृष्ण प्रभु से जुड़ सकेंगे जो सबों में सर्वदा विराजते हैं? तात्पर्य है कि आळवार ज्ञान से अनभिज्ञ हैं तथा दोषपूर्ण धारणा वाले हैं। **7.8.6-** प्रभु ही ज्ञान एवं अज्ञान हैं। **3.1.4-** आपने मोहजनक मतमतान्तर में उलझा दिया। **5.10.4-** अधर्मियों के हृदय में दहशत उत्पन्न कर उनका समूह में आपने नाश किया। इससे आळवार इस बात की पुष्टि करते हैं कि अज्ञान एवं दोषपूर्ण धारणा सब श्रीमन्नारायण प्रभु उत्पन्न करते हैं। **तिरुविरुत्तम 95-** हर जीवात्मा को पुनर्जन्म एवं मृत्यु की आवृत्ति पड़कर विभिन्न शरीरों से गुजरते देखकर माता-पिता की तरह उदार तिरुमल प्रभु उसकी रक्षा में आते हैं और आशाहीनता की उदासी से बचाते हैं। मैं आपकी पूजा करता हूँ। भाव है कि शरीर को आत्मा मानने से जीवात्मा कर्मों के सूक्ष्म स्वरूप के कारण अनेकों शरीर से गुजरता है। अन्ततः भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। सहस्रगीति में आळवार ने इसको स्पष्ट रूप से समझाया है।

जीवात्मा भगवान् के शरीर का अंश है और भगवान् इसकी रक्षा के लिए लालायित रहते हैं परन्तु संसार में उलझा जीवात्मा उनकी ओर से विमुख

रहता है। **9.7.10-** मैं कृशकाय हो रही हूँ, मेरी कमरधनी खिसक गयी है और मेरा प्राण प्रयान कर रहा है। इस प्रकार मेरी उपेक्षा ठीक नहीं है। **गीता 7.5- अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।** अपरा (निम्नकोटि) के अतिरिक्त मेरी जीवरूपा परा (उच्चकोटि) प्रकृति को समझ। तात्पर्य है कि जीवात्मा भगवान् के शरीर का अंश होने के कारण इसे दोषपूर्ण कार्यों से दूर रहने का भगवान् को आदेश करना चाहिए। तात्पर्य है कि **चित्** जीवात्मा तथा **अचित्** उसका शरीर भगवान् के शरीर का अंश है। अतः भगवान् को किसी की उपेक्षा न करनी चाहिए।

तिरुवाय. 8.10.7- महान् गौरवशाली तथा तीनों लोक का अंकुरण करानेवाले स्वयंजात बीज प्रभु चिरन्तन हैं। **6.2.8-** अप्रमेय ज्ञानप्रभा से युक्त जाज्वल्यमान् प्रभु! प्रलयकाल में आपने सब चेतन व अचेतन के नाम और रूप मिटाकर अपने में विलीन कर लिया। सृष्टि के समय उनके कर्मों के अदल-बदल किये विना उन्हें प्रकट किया। **4.3.3-** हे नारायण! आप एक हुए (सृष्टिपूर्व परवासुदेव), दो हुए (परवासुदेव एवं व्यूहवासुदेव), तीन हुए (संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध व्यूहरूप या सत्व-रज-तम अहंकार) और अनेकों हो गये। पुनः पाँच तत्त्व हुए, दो ज्योति पुंज (सूर्य-चन्द्र) एवं समस्त जीव बन गये। सागर मध्य शेषशायी प्रभु! आपने मेरे मन आदि इन्द्रियों को अपने पूजन के योग्य गंध पुष्पादि सामग्री मानलिया और मेरे दुःख का अन्त किया। **4.3.2-** ब्रह्माण्ड को निगलकर पुनः प्रकट करनेवाले प्रभु के लिए मेरा हृदय चन्दन का लेप है, सहस्रगीति के पद आपकी माला एवं दिव्य वस्त्राभरण हैं। मेरे करबद्ध हाथ आपका ज्योतिर्मय आभूषण है।

भाव है कि आळवार भगवान् के कृपापात्र हैं और संगी भक्तों को सहस्रगीति के पदों से लाभान्वित किया। **पेरिय तिरुवन्दादि 71-** अपनी जटा में गंगा को धारण करनेवाले शिव आपके स्वरूप के एक कोने में हैं। ब्रह्मा का प्रारम्भ आपसे है। आपका न तो कोई समतुल्य है और न कोई श्रेष्ठ। मैं किन शब्दों से आपका गाथा-गान करूँ? तात्पर्य है कि आप सार्वभौम हैं। कोई आपका सहायक नहीं है। **महाभा. अश्वमेध प. - रुद्रं समाश्रितादेवः रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः। ब्रह्मा ममाश्रितो राजन् नहं कञ्चित् उपाश्रितः।।** भगवान् कह रहे हैं - अन्य देव रुद्र पर आश्रित हैं, रुद्र ब्रह्मा पर, ब्रह्मा मुझपर परन्तु मैं किसी पर आश्रित नहीं हूँ। **तिरुवाय. 9.3.2-** आपने विस्तृत धरा वनाया, इसे ऊपर उठाया, इसे निगला, पुनः बनाया तथा मापा। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा अन्य सब आप ही हैं। **पेरिय तिरुवन्दादि 6-** कृष्ण! क्या अपने चरण तक का मार्ग दिखाकर लुप्त होंगे? क्या अपना श्यामल रूप भी दिखायेंगे? आगे क्या होगा हम नहीं जानते? भाव है कि भगवान् आळवार को उपान्तर में लगाना चाहते हैं क्या? आळवार शंका में हैं। **पेरिय तिरुवन्दादि 8-** आप इतने सूक्ष्म हैं कि इस पापी की आँखों से नहीं देखे जा सकते। न तो आपको प्राप्त करने की कोई युक्ति जानते हैं। फिर भी आपके लिए हमारा प्रेम उफान ले रहा है। यह कैसे? कृपया बताइये। परन्तु प्रभु मौन ही रहते हैं।

10. भगवान् का उत्तर न देना परन्तु अर्चिरादिगति मार्ग दिखाना- भगवान् आळवार के कुछेक उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर न देकर उनको परमपद जाने के अर्चिरादिगतिमार्ग की अनुभूति कराते हैं। **तिरुवाय. 10.6.5-** तिरुवत्तारु

के प्रभु ने स्वेच्छा से वैकुण्ठ का मार्ग दिखाया है। हम आपके श्रीचरण अपने शिर पर रखते हैं। **10.9.1-** आकाश में सुन्दर मेघ वाद्य घोष कर रहे हैं। सागर की चंचल लहरें मानो हाथ उठाकर नर्तन कर रही हैं। **10.9.5-** आतिवाहिक देवगण परमपद आते भगवान् के भक्त के स्वागत में विराजने के लिए अपना स्थान दे रहे हैं। वैकुण्ठ के ऋषिगण उन्हें अपना पुण्यफल अर्पित कर रहे हैं। **10.9.6-** अग्नि होम की सुगंधि व्याप्त हो गयी। आकाश में वाद्य यन्त्र की ध्वनि एवं शंखनाद गूंजने लगे। मत्स्य नयना आतिवाहिक देवों की नारियों ने हर्षनाद करते हुए कहा, 'हे भक्त! देवलोक पर शासन करो'। **10.9.7-** दिव्य मकुटधारी सागरशायी गोपाल प्रभु के भक्त की घर वापसी पर आगवानी में मरुत एवं वसुगण पूजा अर्पित करने लगे। श्रीचरण में प्रेम उत्पन्न करने हेतु भगवान् उन्हें **परमभक्ति** की अनुभूति कराने लगे।

11. दिव्य अनुभूति के साथ साक्षात्कार की आवश्यकता- अर्चिरादिगतिमार्ग के ज्ञानचक्षु की अनुभूति से विभोर आळवार भौतिक चक्षु से भगवान् के दर्शन व मिलन का आनन्द लेना चाहते हैं। **तिरुवाय. 10.10.1-** अन्त में आप हमारे पास आये। अब आपको हम नहीं जाने देंगे। कृपा करके पुनः अपनी युक्ति से मत खेलिए। **10.4.7-** आपके चरणारविन्द हमारे सिर पर हैं। **10.6.6-** आपके नुपूर की ध्वनि वाले श्रीचरण हमारे सिर पर हैं। **10.10.2-** खुलेयाम हमसे प्रेम करके आप हमारी आत्मा में घुल गये। तात्पर्य है कि सर्वज्ञ प्रभु आळवार की हीनावस्था की उपेक्षा करके उनकी आत्मा में घुलमिल गये। इसमें कुछ कमी भी दिखने पर भगवान् स्वयं

इसके लिए जिम्मेदार होंगे। **10.10.3 -** लता को बढ़ने के लिए डंडे का सहारा चाहिए उसी तरह आपके अतिरिक्त आश्रय के लिए दूसरा कोई भी आश्रय हम जान नहीं सकते। **10.10.4-** हाय! आपने हमें अकेले बोझ ढ़ोने के लिए छोड़ दिया है। भाव है कि आळवार को संसार में अकेले छोड़ देने पर इसका दोष भगवान् पर लगेगा। **10.10.5-** अगर हमें भ्रमने हेतु छोड़ देंगे तो हम किसके साथ क्या करेंगे? क्या बचा है हमारे पास? हम हैं कौन? तप्त लोहा जल में डालने पर जल सोखता है उसी तरह आपने हमारी आत्मा के समस्त संताप को मिटाया है। तात्पर्य है कि प्रभु से उपेक्षित होकर हमारा सत्तानाश ही होगा।

तिरुवाय. 10.10.6- आपने हमें अतृप्त की तरह पिया है। आप हमें पीते रहें। आळवार पूछते हैं कि भोजन को कभी बीच में छोड़ा जाता है क्या? **10.10.7-** आप कमलस्थ लक्ष्मी के स्नेह से बन्ध गये। तात्पर्य है कि भक्त होकर भी लक्ष्मी जी आपके स्नेह पात्र बन गयीं। आपने उन्हें सागर मन्थन से प्राप्त किया। पुनः वराह स्वरूप में अपने दोनों दाँतों पर भूदेवी का उद्धार किया। आपने दिव्यमहिषियों के लिए हर तरह के कार्य किये हैं। उसी तरह संसारमंडल से उठाकर मेरा भी उद्धार करें। भगवान् ने आळवार के हृदय को अपना लिया है और वह लौटकर आता नहीं है। उसकी अनुपस्थिति में जड़ पदार्थ शरीर कैसे टिकेगा? जड़ एवं चेतन दोनों भगवान् के शरीर के अंश हैं। **10.10.8-** हमारी प्रिय आत्मा (प्रभु)! हम आपको जाने कैसे देंगे? आप ही चिरंतन कर्म, उसके फल तथा भोक्ता हैं। आपको प्राप्त कर क्या अब आपको छोड़ सकूँगा? भाव है कि जीवात्मा

की आत्मा भगवान् हैं तो आत्मा (प्रभु) के चले जाने पर शरीर (जीवात्मा) टिकेगा कैसे? पुण्य-पाप की उत्पत्ति, उनके फल देने की शक्ति, उनका रहना नष्ट होना आदि सब भगवदधीन है। अतः आळवार के पुण्य-पाप छुड़ाना भगवान् के लिए कोई श्रम का कार्य नहीं है। अर्थात् भगवान् की उपस्थिति में सांसारिक कर्म-बन्धन आळवार का क्या नुकसान कर सकता है? कुछ नहीं। इसतरह से आळवार एवं भगवान् **शरीर-शरीरी भाव** पर बात करते हैं। आळवार की भक्ति गोपद चिह्न के समान है और इसका जल भगवान् की कृपा है। **10.10.9-** तीनों लोक के आदिबीज तथा आदि कारण! कब हम आप में मिल जायें? यहाँ, वहाँ, सर्वत्र, हमारे चारो तरफ लम्बा-चौड़ा-अनन्त! तात्पर्य है कि भगवान् चेतन-अचेतन में अन्तर्यामी की तरह रहते हैं और परमपद में दिव्यमंगल विग्रह की तरह। सामान्य ज्ञानी अन्तर्यामी स्वरूप में लीन रहते हैं परन्तु आळवार को दिव्यमंगल विग्रह का कैंकर्य प्रिय है।

12. आळवार की महान् साद्ध्यभक्ति - तिरुवाय. 10.10.9- समस्त दिशाओ में व्याप्त नित्य प्रकृति के नियामक! तेजोरूपी आत्मतत्त्व के नियामक! चेतन-अचेतन में व्याप्त आनन्दमय ज्ञानवाले प्रभु! ओह! आप हमसे मिल गये। भाव है कि आळवार की गोपद चिह्न रूपी भक्ति चित्-अचित्-ईश्वर (तीनों में) सर्वत्र व्याप्त हो गयी है। नित्यविभूति एवं लीलाविभूति को भी ढ़कनेवाला भगवान् का ज्ञान व आनन्द है। इसको भी ढ़कनेवाली आळवार की **परमभक्ति** है जिसके वशीभूत भगवान् इसमें समा गये हैं। अतः आळवार की भक्ति भगवान् के **परत्व** एवं **विभव** से भी वृहत

है। हरि नाम से विभूषित भगवान् आळवार की सभी यातनाओं का अन्त करनेवाले हैं। भगवान् का आळवार के प्रति प्रेम सागर की तरह है जबकि आळवार का स्नेह गोपद चिह्न के सदृश है। **वा.रा. 6.127.41- अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे।** वन से लौटने पर श्रीरघुनाथ जी ने भरत को अपनी गोद में बिठाकर बड़े हर्ष के साथ उनको अपने हृदय से लगाया। इसी तरह से आळवार को अपनाकर भगवान् हर्षित हैं। हरि जिसतरह दोष व यातना हरते हैं उसीतरह आळवार के सब संताप का भगवान् ने नाश कर दिया। अपनी मुक्ति प्राप्त कर लेनेवाले शठकोप स्वामी की सहस्रगीति का यह अन्तिम पूर्णाहुति दशक श्रीहरि की प्रशस्ति है।

चूर्णिका 229 -

भगवान् द्वारा आळवार को मोक्ष देने में विलम्व का कारण।

सूत्र - 229 (11) - सं. न संबध्नीयाम काल एवालक्ष्याम संपादनम् लोकसम्यक्करणाय विषसरस्त्वाभावाय प्रबन्धसमाप्तये मूलधारी भृतसंबंध इवेत्युच्यमानेष्वपीतः परमितः परमिति विंशतिवारघोषहेत्वित्यधिकारपूर्ते-रिति वचनं मुख्यम्।

सूत्रानुवाद - विषैला ताल न बनने के कारण उसे पुनः निम्न स्तर नहीं प्राप्त हुआ। भगवान् ने उसे सेवा करने से वंचित कर दिया; लोक को सुधारने हेतु; तिरुवायमोळी को पूरा करने के लिए; इसकी मिट्टी में जड़ पकड़ने के लिए; बीसो बार और बार-बार इसे कहा; यातना न सहने के कारण तथा प्राप्त करने के लिये।

विशेषार्थ- तिरुविरुत्तम् 1- कृपा कर इसकी स्वीकृति दीजिए कि हम पुनः अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति को न प्राप्त कर लें। आळवार की ऐसी मानसिक स्थिति देख भगवान् ने स्वयं प्रयत्न करके उनके अज्ञान, कर्म, वासनात्मक प्रकृति को दूर करते हुए भगवान् को प्राप्त करने की रुचि उत्पन्न की। **तिरुवाय. 10.8.10-** प्रभु! आपकी सुखद सेवा करके आपके श्रीचरण प्राप्त कर लिया है। नायकी माँ की वाणी में **6.7.2-** अपनी तरह नगर, देश एवं भूमण्डल को प्रभु का नाम एवं प्रतीक चिह्न के कीर्तनकार बनानेवाली। अर्थात् भगवान् की इच्छा है कि आळवार के गौरवशाली उपदेश से देश तथा भूमण्डल का सुधार हो। एक बार प्रपत्ति करने से मोक्ष मिलता है, परन्तु लौकिक वासना के कारण लोग इसे विषैला ताल समझते हैं। इस प्रवृत्ति में सुधार हेतु भगवान् तिरुवायमोळी को पूरा देखना चाहते हैं। **श्रीवचनभूषण 168-171 -** अपना सौंदर्यीकरण हेतु नारियाँ मिट्टी के साथ सुगन्धित जड़ी को अपने केशपास में लगाती हैं। इसीतरह भगवान् ज्ञानी को उसके शरीर के साथ चाहते हैं। उनकी इच्छा से ही ज्ञानी इस संसार में रहना चाहता है। तिरुमालिरुञ्जोलै में भगवान् ज्ञानी भक्तों को सशरीर देखते हैं। अतः अर्चा सन्नधियाँ साधन हैं एवं ज्ञानी भक्त भगवान् के साध्य (लक्ष्य) हैं।

तिरुविरुत्तम् 1- हम बार-बाल अनर्गल ज्ञान की निम्न स्थिति को न प्राप्त हों। **तिरुविरुत्तम् 13-** शीतल हवा रात्रि में पूज्य तुलसी की प्राणघातक सुगंध को फैला रही है। हमारे कंगन को कौन बचायेगा? **तिरुविरुत्तम् 62-** हाय! आपकी कृपा के विना यह किशोरी अपने सौंदर्य को अक्षुण्ण नहीं रख

सकती। **तिरुवाय. 1.4.4-** प्रभु हमारी दशा को न तो देखते हैं और न कहते हैं, 'यह उचित नहीं है'। **1.4.8-** नायकी मैना पक्षी दूत को उसकी बात की उपेक्षा करते देख कहती है, 'अच्छा होगा किसी अन्य को खोज लो जो तुम्हें भोजन दे सके'। **2.1.10-** प्रभु अब मेरा अधिक तिरस्कार न करें। **3.2.1-** कब मैं इस क्षुद्र शरीर को त्यागकर आपसे मिल सकूँगा? **3.2.9-** कहाँ हम आपको खोजें? **4.9.6-** आपने मुझे परिवर्तित कर अपनी सेवा में स्वीकार कर लिया, अब अपने चरण के पास बुला लीजिए। **5.4.2-** कौन हमें अब बचायेगा? **5.4.9-** कौन हमारे हृदय की व्याधि को ठीक कर सकता है? मैं पिघल रही हूँ। **5.7.1-** हम एक क्षण के लिए भी आपसे अलग रहना चाहते नहीं हैं। **5.8.7-** अब अपना संरक्षण देकर हमें जन्म से मुक्त कीजिए। अब इससे ज्यादा हम नहीं सहन कर सकते। **7.3.4-** हाय! मेरा हृदय वहीं रह गया। अब क्या करने के लिए किसकी सहायता मुझे मिलेगी? **9.5.2-** मेरा जीवन उनके ही हाथ में है। **9.5.10-** मेरी आत्मा इस शरीर को छोड़कर वैकुण्ठनाथ से मिल गयी है। हे पक्षीगण! मेरे पास एकत्र होने से क्या लाभ? **9.9.2-** हाय! गोपाल मेरे संरक्षक नहीं आते। अब कैसे हम अपना जीवन बचाकर रखें? **10.10.1-** अन्त में आप हमारे पास आये। अब हम आपको जाने नहीं देंगे। **10.10.6-** आप हमारे परमभोग्य हो। हमारे हेय शरीर एवं विलक्षण आत्मा का निरन्तर उपभोग करके भी आप सन्तोष नहीं पाये। अब जो अवशिष्ट है उसका भी उपभोग कर लीजिए। **10.10.7-** आपने दिव्यमहिषियों के लिए हर तरह के कार्य किये हैं। उसी तरह संसारमंडल से उठाकर मेरा भी उद्धार करें। इनसबों

का तात्पर्य है कि भगवान् सहसा आळवार को परमपद नहीं देना चाहते अचानक वहाँ पहुँचने पर वे पूरा आनन्द नहीं उठा सकते। संसार में रहकर भगवान् के संयोग एवं वियोग से वे **प्रपत्ति** में परिपक्वता प्राप्त करें।

चूर्णिका 230 -

परभक्ति में परज्ञान समाहित है। परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति।

सूत्र - 230 (12) - सं. कमलनेत्र इत्युपक्रम्य नेत्रे स्थित्वा पर्यन्तमपश्यम् इत्युक्तदशकमपि अन्तर्नेत्रेण भूत्वा दर्शनार्थाभिनिवेशस्य ततोद्विगुणित-त्वाद् द्रष्टवा संतुष्यैतत्पर्यन्तपरज्ञानगर्भपरभक्तिः।

सूत्रानुवाद - 'कमलनयन भगवान्' से लेकर 'हमारी आँखों में हैं' के दस; 'उनको देखने की लालसा' से 'आनन्द हेतु आँखों में अर्थात् मन में बसते हैं' तक बीस; प्रभु को वे प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं; परज्ञान की अन्तःदृष्टि परभक्ति है।

विशेषार्थ- तिरुवाय. 1.9.9- मैं कमलनयन भगवान् को अपनी आँखों में देखता हूँ। तात्पर्य है कि इसमें परभक्ति की झाँकी है। **10.8.8-** बुद्धि से परे प्रभु हमारी आँखों (मन) में बसे हैं। दस में देखता हूँ- **2.8.10-** नीलमेघश्याम विग्रह कृष्ण को देखता हूँ। **3.2.10-** कृष्ण के हृदय में रहने से यातना की घनी छाया समाप्त हो गयी। **4.7.7-** तुलसी धारण करनेवाले प्रभु के मानस साक्षात्कार से चिंता-मुक्त हुए। **5.7.5-** यह देखा है कि आप पूजा के लिए उपलब्ध हैं। **5.8.1-** हमने आपके शयन करते दिव्यमंगल विग्रह का तिरुकुडन्दै में दर्शन किया है। वहाँ के उपजाउ खेतों में धान के

पौधों को चँवर की तरह झूलते देखा है। **6.3.1-** तिरुविन्नगर के सम्पन्न लोगों के साथ रहनेवाले प्रभु हमारे नाथ हैं। **9.4.8-** समस्त देवों के मूल कारण श्रीकृष्ण के मैंने दर्शन किये हैं। **10.4.9-** आपके दिव्य चरणारविन्द का दर्शन पाया। उपर्युक्त दस उद्धरणों से आळवार ने अन्तःचक्षु से भगवान् के दर्शन का उल्लेख किया। ह्रदय को अन्तःचक्षु कहा है- **पेरिय तिरुवन्दादि 28-** ह्रदय अन्तःचक्षु है, इससे ध्यान करने पर आपकी अनुभूति होती है।

बीस पदों से देखने की लालसा - **तिरुविरुत्तम् 84-** दिव्य चक्र एवं धवल शंख के साथ आपका दर्शन चाहता हूँ। **तिरुवाय. 1.5.7-** यह निम्न बुद्धिवाली आपके दर्शन के लिए विलाप करती है। **2.4.2-** आपके दर्शन की इच्छा से यह किशोरी अचेत हो जा रही है। **3.2.8-** कृष्ण! कहाँ आपका दर्शन मिलेगा? **3.8.4-** हमारी आँख आपके दर्शन एवं अपनी दृष्टि में बनाये रखने हेतु उत्सुक है। **3.8.7-** आप अपने सुन्दर स्वरूप का दर्शन नहीं देते। **3.8.8-** कब हम आपको जी भरकर देखेंगे। **4.7.1-** न तो आप दर्शन देते हैं और न हमें अपने पास बुलाते हैं। **4.7.9-** मैं देखता हूँ कहाँ आपका दर्शन पा सकूँ। **4.7.10-** प्रभु को आते नहीं देखता। **5.8.4-** आपके दर्शन का आकांक्षी मैं आकाश को देखकर रोती हूँ। **5.8.9-** विनती है, आइये जिससे कि आपका दर्शन मिले। **5.9.5-** कब हमारी आँखें तेजोमय प्रभु के वदन को देखेंगी? **6.9.4-** सभी देवों से घिरकर आकाश में प्रकट होइये। **6.9.6-** कितने दिन हम आपके दर्शन के लिए तड़पते रहेंगे। **8.1.1-** सागर मंथन करनेवाले प्रभु! हमारी दृष्टि को शुद्ध कीजिए। **8.5.1-** क्या

एकदिन दर्शन देनें नहीं आयेंगे? **8.5.6-** परन्तु आइये अवश्य और अपने चरणारविन्द का दर्शन कराइये। **8.5.10-** हाय! कहाँ आपका दर्शन मिलेगा? **9.4.1-** हमारी आँखें आपके दर्शन के लिए आतुर हैं। उपर्युक्त बीस पदों से प्रभु के दर्शन की लालसा प्रकट करते हैं। **10.8.7-** प्रसन्नता देने के लिए प्रभु सदा हमारी आँखों में बस गये हैं। आळवार तिरुप्पेर एवं तुरुमालिरुञ्जोलै की अनुभूति करते हैं। भगवान् परिपूर्ण दर्शनानन्द देते हुए सामने प्रकट हो मुझे छोड़ना नहीं चाह रहे हैं। श्रेष्ठ पुरुषार्थ कैंकर्य रस को भी विशेषरूप से पाया। जबकि आळवार अन्तःकरण से भगवान् की अनुभूति करते हैं परन्तु वे भौतिक चक्षुओं से भी उनके दर्शन की उत्कट चाह रखते हैं। भाव है कि उनकी **परभक्ति** में **परज्ञान** समाहित है।

चूर्णिका 231 -

परज्ञान को स्पष्ट किया है।

सूत्र - 231 (13) - सं. स्थितिरित्युक्तैः पूर्णपरज्ञानम्।

सूत्रानुवाद - पूर्ण परज्ञान स्थिति पर आधारित है।

विशेषार्थ- तिरुवाय. 2.3.10 - कब हम आपके नित्यसूरियों की पङ्कति में बैठेंगे? **10.9.11-** प्रभु के समक्ष खड़ा होकर चिर आनन्द में मग्न था। तात्पर्य है कि आळवार अन्तःचक्षु से अर्चिरादिगतिमार्ग पा कर परमपद के नित्यसूरियों के साथ कैंकर्य के आनन्द में मग्न हैं। इस दिव्य अनुभूति से सम्पन्न होकर आळवार **10.9.1** से **10.9.10** की रचना करते हैं। 'आकाश

में सर्वत्र व्याप्त मेघघोष मानों वाद्यघोष कर रहे' (**10.9.1**)। इस दशक के दस पद की अनुभूति आळवार के परिपूर्ण **परज्ञान** का बोध कराते हैं।

चूर्णिका 232 -

परमभक्ति को स्पष्ट किया है।

सूत्र - 232 (14) - सं. सम्पूर्णाभिनिवेश इत्युक्तिः परमभक्तिः ।

सूत्रानुवाद - परमभक्ति को पूर्ण करता है।

विशेषार्थ- आळवार अनुभव करते हैं कि भौतिक इन्द्रियों से परमपद की अनुभूति नहीं की जा सकती। **तिरुवाय. 10.10.2 -** कृपया पुनः कपट मत कीजिए। आपके वक्षस्थल पर माला के सदृश विराजते लक्ष्मीजी की सौगंध आपके नाम की सौगंध है। मुझ नीच की अल्पता का विचार किये बिना आपने स्नेह से मुझे इस तरह अपनाया कि हम आपकी आत्मवस्तु बन गये। अब मेरी उपेक्षा किये बिना अपने पास बुला लीजिये। तात्पर्य है कि आळवार के निदेश को भगवान् स्वीकार करते हैं। यह आळवार की **साध्य भक्ति** है जो अतिशय स्नेह से अभिषिक्त है। अपने **सौलभ्य गुण** के कारण भगवान् उनको अपने से ऊँचा स्थान देते हैं। आळवार नित्यसूरियों की तरह भक्त हो जाते हैं। जब भगवान् ने इनको अपनी आत्मवस्तु बना ली तब आळवार का भगवान् के लिए दिया गया निदेश निरर्थक हो जाता है। **10.10.11-** (आळवार के) अभिनिवेश को शान्त करते हुए उनके संताप का परिहार करते ब्रह्मा एवं शिव के अन्तर्यामी (शरीरी) शुभ नामवाले हरि शठकोपन को अनुगृहीत करने वाला इस दशक के अध्ययन करनेवाले

भक्तजन इस संसारमंडल में जन्म लेकर भी श्रेष्ठ होते हैं। भाव है कि यह दशक आळवार की **परमभक्ति** का बोध कराता है। **10.10.1-** चारण-ब्रहमा-शिव के अन्तर्यामी, राजीवनयन, प्रबाल होंठ के प्रभु! से लेकर 10.10.10 तक के पद परमभक्ति से ओतप्रोत हैं।

चूर्णिका 233 -

परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति को स्पष्ट किया है।

सूत्र - 233 (15) - सं. एता ज्ञानदर्शनप्राप्त्यवस्था।

सूत्रानुवाद - अन्तःज्ञान से प्राप्त ये अवस्थायें।

विशेषार्थ- युद्ध के क्षेत्र में भगवान् ने अर्जुन को समझाया- **गीता 11.54- भक्त्या त्वनन्या शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ।।** हे अर्जुन केवल अनन्य भक्ति द्वारा मुझे उस रूप में समझा जा सकता है, जिस रूप में तुम्हारे समक्ष खड़ा हूँ और इसी प्रकार मेरा साक्षात् दर्शन भी किया जा सकता है। केवल इसी विधि से तुम मेरे ज्ञान के रहस्य को पा सकते हो। किसी अन्य परिस्थिति में एक बार भाष्यकार स्वामी ने भगवान् रङ्गनाथ से निवेदन किया। **गद्यत्रय - शरणागतिगद्य 17- परभक्ति-परज्ञान-परमभक्त्येक-स्वाभावं मां कुरुष्व।** परभक्ति, परज्ञान और परमभक्ति ही जिसका स्वभाव हो ऐसा मुझे बनाइये। परभक्ति का अर्थ होता है दर्शन की कामना। परज्ञान में संयोग की कामना रहती है। वियोग को सहन न करने की स्थिति को परमभक्ति कहते हैं। **शरणागतिगद्य 24 - अतस्त्वं तव तत्त्वतो मज्जज्ञानदर्शन-प्राप्तिषु**

निस्संशयस्सुखमास्व। इसलिए तुम यथार्थ रूप से मेरे ज्ञान, दर्शन और प्राप्ति के विषय में संशय रहित होकर सुख से रहो। रामानुज स्वामी के प्रेमपूर्वक निवेदन पर भगवान् की यह दिव्यवाणी है। परिणाम स्वरूप उनको तत्सम्बन्धि दिव्य अनुभूति मिली। आलवार भी **परमभक्ति** की स्थिति को चरम-भक्ति, अर्थात् भक्ति की पूर्णता कहते हैं।

चूर्णिका 234 -

सहस्रगीति के दिव्यज्ञान का सार और आचार्य-ह्रदय ग्रन्थ का उपसंहार।

सूत्र - 234 (16) - सं. निवर्तकज्ञानपूर्तिप्रदभगवत्प्रसादान्मोक्षलाभ इत्युक्तिरज्ञाननिवृत्तिर्यथा भवति तथा मोक्षं प्राप्तः इत्युक्तप्रबन्धैकार्थः।

सूत्रानुवाद - अज्ञान मिटाकर भगवान् मोक्ष का पूर्ण ज्ञान देते हैं। 'सर्वशंसय मुक्त', 'मोक्ष प्राप्ति' ग्रन्थ का सार।

विशेषार्थ- ज्ञान के प्रतीक भगवान् ने सभी अज्ञान एवं संशय को मिटाते हुए मोक्ष का पूर्ण ज्ञान दिया। अज्ञान नाश से संसार के आवागमन से छुटकारा मिलता है। **तिरुवाय. 1.1.1-** सभी शंका का निवारण कर पूर्ण ज्ञान देते हैं। **10.10.10-** भगवान् ने आळवार को अपनी आत्मवस्तु बना ली, तात्पर्य है मोक्ष प्रदान किया।

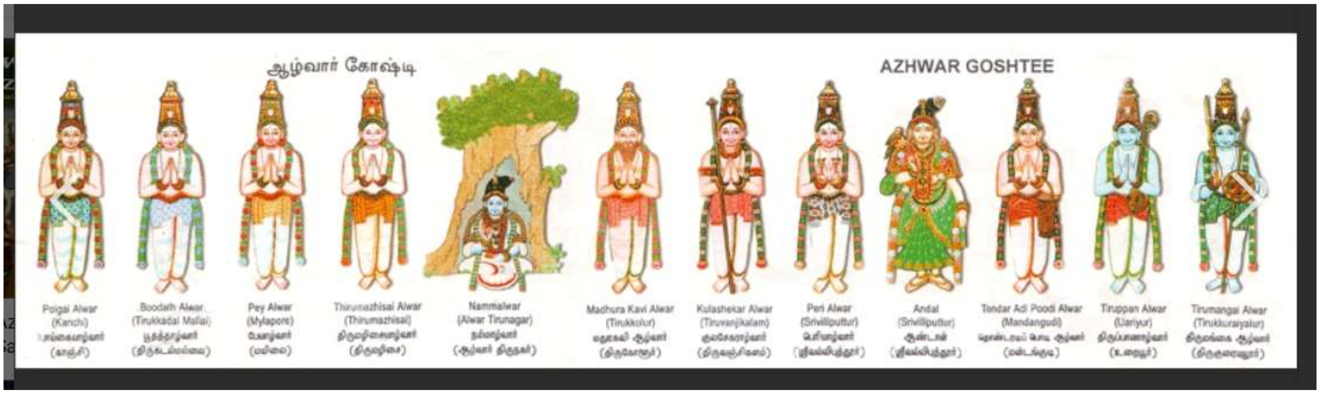
सहस्रगीति में शास्त्रों की महत्ता बताते हुए मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र तथा चरममन्त्र के अन्तर्निहित भाव का सर्वहितकारी वर्णन है। भगवान् ने इसे आळवार के मुख से निकली अपनी वाणी कहा है। आळवार ज्ञान एवं भक्ति

से सम्पन्न हैं। दिव्यदेश में विराजते भगवान् के दिव्यगुणों (परत्व आदि) का विशद विवरण है जिनके प्रति आळवार ने अपने अतिशय प्रेम को दर्शाया है। श्रीमद्भगवद् गीता के साथ इसके अद्भुत सम्बन्ध का सुन्दर उल्लेख है। भगवान् के भक्तों के अतिरिक्त लौकिकजनों के कल्याण हेतु आळवार का उपदेश भगवान् की इच्छा से हुआ है और इसे आळवार भगवान् का कैंकर्य कहते हैं। इसे लीलाविभूति तथा नित्यविभूति के लिए परम हितकारी कहा है। परभक्ति, परज्ञान तथा परमभक्ति प्रदान करने वाला यह अद्भुत ग्रन्थ है।

****** आचार्य हृदय का चौथा प्रकरण पूरा हुआ ******

श्रीः

श्रीमते रामानुजाय नमः



			 पार्थसारथी भगवान्

श्रीः

श्रीमते रामानुजाय नमः

कण्णिनुण् शिरुताम्बु (मधुरकवि आळवार)

मुनि कुरुगूर के अधिक मधुर हैं उखलबन्ध नटवर प्रभु से।

नाम लेन जब सोचत हैं अमृत झरे अविरल मुँह से।।1।।

पावन नाम आनन्द देत है चरण ध्यान् से सत्य प्रकटे।

पद गावत विचरत वीथि नहीं जानत किसी औरों के।।2।।

झाँकी मिलत मुनि कारवदन की भ्रमण करत सर्वत्र मही।

कृपापात्र हम कुरुगूर मुनि के है मेरा सौभाग्य यही।।3।।

योग्य नहीं हम किसी काम के पंडित प्रवरों ने वयान किया।

शठकोपन् प्रभु हमें अपनाये जिमि बालक को मातु पिता।।4।।

परधन ने मुझे बहुत लुभाया और लुभाया नारी वदन।

क्या चाहिए अब और मुझे जब मिला कुरुगूर संत चरण।।5।।

हमें मिली है कृपा आपकी सात जनम यश करें।

कुरुगूर की ऊँची दीवार है आप ही अब उद्धार करें।।6।।

मुनि करिमारन ने हमें चुना पाप पूर्व के नष्ट हुए।

वाणी निर्मल है शठकोपन की आठों दिक् आश्वस्त हुए।। 7।।

दिया आपने तमिल वेद जो ढूँढ़े आपसे भक्ति सीख।

जग हुआ आपका कृपापात्र पाकर सहस्र मधुर तमिल गीत।।8।।

वेद वाक्य को सरल गीत में गाकर मेरा ह्रदय भरा।

प्रवर संत शठकोपन् ने मुझे प्रपन्न स्वीकार किया।।9।।

सभी प्रमादी व नाकाम जीव संग आपके सफल हुए।

कोयल कूक भरे कुरुगूर में हमें आपके चरण मिले।।10।।

आश्रय ढूँढ़ते मित्रगणों को मधुरकवि पुकार कहे।

कुरुगूरनाथ ही आश्रय हैं सबको यहाँ वैकुण्ठ मिले।।11।।